रायचन्द्रजैनशास्त्रमाला ।

११६

श्रीपरमात्मने नमः ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

प्रवचनसारः ।

तत्त्वदीपिका–तात्पर्यवृत्ति–बालबोधिनीभाषेतिटीकात्रयोपेतः ।

पाढमनिवासिपण्डितमनोहरलालेन

प्रचलितहिन्दीभाषायां भाषाटीकां परिवर्त्य संशोधितः ।

[प्रथमावृत्तिः १००० प्रति]

स च

मुम्बापुरीस्थ–श्रीपरमश्रुतप्रभावकमण्डलस्वत्वाधिकारिभिः निर्णयसागराख्यमुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३९ विक्रम संवत् १९६९

श्रीसर्वज्ञायनमः

अर्पणपत्रिका ।

श्रीरायचन्द्रजैनशास्त्रमाला ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

प्रवचनसारः ।

आ पवित्र ग्रंथनी हिंदी भाषाटीकाना खर्च पेटे **शा. पुंजाभाई हिराचंद** तरफथी तेमना पुत्र **कचराभाईना** स्मरणार्थे रुपिआ २०० अंके बशो भेट आप्या छे.

ते मूळ साथे श्रीरायचंद्र जैनशास्त्रमाळाने अर्पण करेल छे.

४ **सप्तभंगीतरंगिणी भा. टी.** यह न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है इसमें ग्रंथकर्ता श्रीविमलदासजीने स्यादस्ति, स्यान्नास्ति आदि सप्तभंगी नयका विवेचन नव्यन्यायकी रीतिसे किया है। स्याद्वादमत क्या है यह जाननेकेलिये यह ग्रंथ अवश्य पढना चाहिये। न्यों. १ रु.

५ **बृहद्द्रव्यसंग्रह संस्कृत भा. टी.** श्रीनेमिचन्द्रस्वामीकृत मूल और श्रीब्रह्मदेवजीकृत संस्कृतटीका तथा उसपर उत्तम बनाई गई भाषाटीका सहित है इसमें छह द्रव्योंका स्वरूप अतिस्पष्टरीतिसे दिखाया गया है। न्यों. २ रु.

६ **द्रव्यानुयोगतर्कणा** इस ग्रंथमें शास्त्रकार श्रीमद्भोजसागरजीने सुगमतासे मन्दबुद्धिजीवोंको द्रव्यज्ञान होनेकेलिये 'अथ, "गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" इस महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्रके अनुकूल द्रव्य—गुण तथा अन्य पदार्थोंका भी विशेष वर्णन किया है और प्रसंगवश 'स्यादस्ति' आदि सप्तभंगोंका और दिगंबराचार्यवर्य श्रीदेवसेनस्वामीविरचित नयचक्रके आधारसे नय, उपनय तथा मूलनयोंका भी विस्तारसे वर्णन किया है। न्यों. २ रु.

७ **सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्** इसका दूसरा नाम तत्वार्थाधिगम मोक्षशास्त्र भी है जैनियोंका यह परममान्य और मुख्य ग्रन्थ है इसमें जैनधर्मके संपूर्णसिद्धान्त आचार्यवर्य श्रीउमास्वाति (मी) जीने बड़े लाघवसे संग्रह किये हैं। ऐसा कोई भी जैनसिद्धान्त नहीं है जो इसके सूत्रोंमें गर्भित न हो। सिद्धान्तसागरको एक अत्यन्त छोटेसे तत्त्वार्थरूपी घटमें भरदेना यह कार्य अनुपमसामर्थ्यवाले इसके रचयिताका ही था। तत्त्वार्थके छोटे २ सूत्रोंके अर्थगांभीर्यको देखकर विद्वानोंको विस्मित होना पडता है। न्यों. २ रु.

८ **स्याद्वादमंजरी संस्कृ. भा. टी.** इसमें छहों मतोंका विवेचनकरके टीका कर्ता विद्वद्वर्य श्रीमल्लिषेणसूरीजीने स्याद्वादको पूर्णरूपसे सिद्ध किया है। न्यों. ४ रु.

९ **गोम्मटसार** (कर्मकाण्ड) संस्कृतछाया और संक्षिप्त भाषाटीका सहित यह महान् ग्रन्थ श्रीनेमिचन्द्राचार्यसिद्धान्तचक्रवर्तीका बनाया हुआ है, इसमें जैनतत्त्वोंका स्वरूप कहते हुए जीव तथा कर्मका स्वरूप इतना विस्तारसे है कि वचनद्वारा प्रशंसा नहीं होसकती देखनेसे ही मालूम होसकता है, और जो कुछ संसारका झगड़ा है वह इन्हीं दोनों (जीव-कर्म) के संबन्धसे है सो इनदोनोंका स्वरूप दिखानेकेलिये अपूर्व सूर्य है। न्यों. २ रु.। इसका दूसरा पूर्वभाग (जीवकाण्ड) भी शीघ्र ही मुद्रित होनेवाला है॥

१० **प्रवचनसार**—श्रीअमृतचन्द्रसूरिकृत तत्त्वप्रदीपिका सं. टी., "जो कि यूनिवर्सिटीके कोर्समें दाखिल है" तथा श्रीजयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति सं. टी. और बालावबोधिनी भाषाटीका इन तीन टीकाओं सहित जो कि आपकी समक्ष उपस्थित है इसके मूलकर्ता श्री कुन्दकुन्दाचार्य हैं। यह अध्यात्मीक ग्रन्थ है। न्यों. ३ रु.

ग्रन्थोंके मिलनेका पता—

शा. रेवाशंकर जगजी

विज्ञापन।

विदित हो कि स्वर्गवासी तत्वज्ञाता शतावधानी कविवर **श्रीरायचन्द्रजीने** अतिशय उपयोगी और अलभ्य ऐसे श्रीउमास्वाति (मी) मुनीश्वर, श्रीकुन्दकुन्दाचार्य, श्रीनेमिचन्द्राचार्य, श्रीअकलङ्कस्वामी, श्रीहरिभद्रसूरी, श्रीहेमचन्द्राचार्य आदि महान् आचार्योंके रचे हुए जैनतत्त्वग्रन्थोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करनेकेलिये **श्रीपरमश्रुतप्रभावकमंडलकी** स्थापना कीथी; जिसके द्वारा उक्त कविराजके चिरकालस्मरणार्थ **रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाके** नामसे अतिशय प्राचीन ग्रन्थ प्रगट होकर आजपर्यंत तत्त्वज्ञानाभिलाषी भव्यजीवोंको आनंदित कर रहे हैं ॥

इस शास्त्रमालाकी योजना विज्ञपाठकोंको दिगम्बरीय तथा श्वेताम्बरीय उभयपक्षके ऋषिप्रणीत सर्वसाधारणोपयोगी उत्तमोत्तम ग्रन्थोंके अभिप्राय विदित होनेकेलिये कीगई है। इसलिये आत्मकल्याणके इच्छुक भव्यजीवोंसे प्रार्थना है की इस पवित्र शास्त्रमालाके ग्रन्थोंके ग्राहक बनकर अपनी चललक्ष्मीको अचल करैं और तत्त्वज्ञानपूर्ण जैनसिद्धान्तोंका पठन पाठन द्वारा प्रचारकर हमारी इस परमार्थयोजनाके परिश्रमको सफल करैं। तथा प्रत्येक सरस्वतीभण्डार, सभा और पाठशालाओंमें इनका संग्रह अवश्य करना चाहिये ॥

इस शास्त्रमालाकी प्रशंसा मुनिमहाराजोंने तथा विद्वानोंने बहुत की है उसको हम स्थानाभावसे लिख नहीं सकते। और यह संस्था किसी स्वार्थकेलिये नहीं है केवल परोपकारकेवास्ते है। जो द्रव्य आता है वह इसी शास्त्रमालामें उत्तमग्रन्थोंके उद्धारकेवास्ते लगाया जाता है ॥ इति शम् ॥

रायचन्द्रजैनशास्त्रमालाद्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंकी सूची।

१ **पुरुषार्थसिद्ध्युपाय भाषाटीका** यह श्रीअमृतचन्द्रस्वामी विरचित प्रसिद्ध शास्त्र है इसमें आचारसंबन्धी बडे २ गूढ रहस्य हैं विशेष कर हिंसाका स्वरूप बहुत खूबीकेसाथ दरसाया गया है, यह एक वार छपकर विकगयाथा इसकारण फिरसे संशोधन कराके दूसरीवार छपाया गया है। न्यों. १ रु.

२ **पञ्चास्तिकाय भा. संस्कृ. टी.** यह श्रीकुन्दकुन्दार्यकृत मूल और श्रीअमृतचन्द्रसूरीकृत संस्कृतटीकासहित प्रसिद्ध शास्त्ररत्न है. इसमें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म और आकाश इन पांच द्रव्योंका तो उत्तम रीतिसे वर्णन है तथा कालद्रव्यका भी संक्षेपसे वर्णन गया है। इसकी भाषा टीका स्वर्गीय पांडे हेमराजजीकी भाषाटीकाके अनुसार भाषाटीकामें परिवर्तन कीगई है। न्यों. १॥ रु.

[illegible] **टी.** इसके कर्ता श्रीशुभचन्द्रस्वामीने ध्यानका वर्णन ब[illegible]

अथ प्रवचनसारस्य विषयानुक्रमणिका ।

ज्ञेयतत्त्वाधिकारः २

चारित्राधिकारः ३

2

इति विषयानुक्रमणिका।

ओं नमः ।

प्रस्तावना ।

प्रिय विज्ञपाठको ! मैं श्रीजिनेन्द्रदेवकी कृपासे आज आपके सन्मुख श्रीप्रवचनसार भी तीन टीकाओंसहित उपस्थित करताहूं । यह उसी नाटकत्रयीमेंका सिद्धान्त ग्रन्थ है । जो कि द्वितीयश्रुतस्कन्धके नामसे प्रसिद्ध है इसीसे जैनसंप्रदायमें परम माननीय है ।

इसकी उत्पत्ति इसतरह है कि, श्रीवर्धमानस्वामीके निर्वाण होनेके पश्चात् ६८३ वर्षपर्यंत अंगज्ञानकी प्रवृत्ति रही । इसके बाद अंगपाठी कोईभी नहीं हुए किन्तु एक भद्रबाहुस्वामी अष्टांगनिमित्तज्ञानके (ज्योतिषके) धारक हुए । इनके समयमें १२ वर्षका दुर्भिक्ष पड़नेसे इनके संघमेंसे अनेक मुनि शिथिलाचारी होगये और स्वच्छन्दप्रवृत्ति होनेसे जैनमार्ग भ्रष्ट होने लगा, तब भद्रबाहूस्वामीके शिष्योंमेंसे एक **धरसेन** नामके मुनि हुए जिनको आग्रायणीनामक दूसरे पूर्वमें पंचम वस्तु महाधिकारके महाप्रकृतिनाम चौथे प्राभृत (अधिकार) का ज्ञान था ।

उक्त धरसेनाचार्यके समयमें ही एक **गुणधर** नामा मुनि हुए, उनको ज्ञानप्रवाद पूर्वके दशमवस्तुमेंके तृतीय प्राभृतका ज्ञान था । उनसे नागहस्तनामा मुनिने उस प्राभृतको पढ़ा और इन दोनों मुनियोंसे फिर यतिनायकनामा मुनिने १२००० श्लोकोंमें एक विस्तृत टीका रची, सो इस ग्रन्थको **श्रीकुन्दकुंदस्वामी** अपने गुरु जिनचन्द्राचार्यसे पढकर पूर्ण रहस्यके ज्ञाता हुए और उसी ग्रंथके अनुसार पंचास्तिकाय—समयसार नाटक-प्रवचनसाररूप नाटकत्रयी आदि[1] ग्रंथ रचे । ये सब ग्रंथ **द्वितीयश्रुतस्कंध**के नामसे कहे जाते हैं। इन सबमें ज्ञानको प्रधान करके शुद्ध द्रव्यार्थिकनयका कथन किया गया है अर्थात् अध्यात्मरीतीसे आत्माका ही अधिकार है । इन्हीं ग्रंथोंसे परद्रव्य तथा परनिमित्तजन्यविकारभाव इनसे भिन्न अपनेको जानकर अपने शुद्धस्वरूपका अनुभवकर शुद्धोपयोगमें लीन हुआ कर्मोंका अभावकर यह जीव मोक्षपदको पाता है ।

इस महान् ग्रंथके कर्ता 'श्रीकुंदकुंदाचार्य' पट्टावलियोंके अनुसार वि० सं० ४९ में हुए हैं इनके बनाये हुए समस्त ग्रन्थोंको दिगंबर और श्वेताम्बर दोनोंही पक्षके विद्वद्गण प्रमाणभूत मानकर परम आदरकी दृष्टिसे इनका स्वाध्याय तथा अवलोकन करते रहते हैं अर्थात् सर्व जैनोंमें मान्य हैं ।

इस ग्रन्थकी इस समय दो संस्कृतटीकायें प्रकाशित कीगई हैं उनमेंसे एक 'तत्त्वदीपिका' नामकी टीका जो कि श्रीअमृतचन्द्रसूरिने बनाई है जो कि विक्रमसंवत् ९६२ में नंदिसंघके पट्टपर हो गये हैं । इन्होंने अन्य ग्रन्थ भी बनाये हैं जो पुरुषार्थसिद्ध्युपायादि नामोंसे प्रसिद्ध हैं । दूसरी 'तात्पर्यवृत्ति' नामकी टीका जो कि श्रीजयसेनाचार्यने रची है इसमें विद्यार्थियोंके लिये बड़ी सुगमता की गई है । और तीसरी बालबोधिनी हिन्दी भाषाटीका पांडे हेमराजजीकृत भी शामिल कर दीगई है ।

यद्यपि पांडे (पंडित) हेमराजजीकृत यह बालबोधिनी बचनिका प्राचीन व्रजभाषापद्धतिके अनुसार बहुतही उत्तम और बालबोध है परंतु आजकलके नवीन हिन्दीभाषाके संस्कारक महाशयोंकी दृष्टिमें यह भाषा सर्वदेशीय नहीं समझी जाती । इसकारण मैंने पंडित हेमराजकृत भाषानुवादके अनुसारही नयी

---

१ इन्होंने ८४ पाहुड (प्राभृत) भी रचे हैं जिनमेंसे अष्ट पाहुड तो इस समय मिलते हैं।

सरल हिंदीभाषामें अविकल अनुवाद किया है अर्थात् संस्कृतके हरएक पदके पीछे 'कहिये' शब्दको उठाने और बदलेमें संस्कृतपदोंको कोष्ठकमें रखने तथा भावार्थको एक जगह करनेके सिवाय अपनी ओरसे अर्थमें कुछ भी न्यूनाधिक नहीं किया है। किंतु जहां २ मूलपाठ और अन्वयअर्थमें लेखकोंकी भूलसे कुछ छूट गया है उसको मैंनें संस्कृत टीकाके अनुसार शुद्ध कर दिया है।

इस ग्रन्थका जो उद्धार स्वर्गीय तत्त्वज्ञानी श्रीमान् **रायचन्द्रजी**द्वारा स्थापित श्रीपरमश्रुत प्रभावक मंडलकी तरफसे हुआ है इसलिये उक्त मंडलके उत्साही प्रबन्धकर्ताओंको "जिन्होंने अत्यंत उत्साहित होकर ग्रंथ प्रकाशित कराके भव्यजीवोंको महान् उपकार पहुंचाया है" कोटिशः धन्यवाद देता हूं। और श्रीजीसे प्रार्थना करता हू की वीतरागदेवप्रणीत उच्च श्रेणीके तत्त्वज्ञानका इच्छित प्रसार करनेमें उक्त मंडल कृतकार्य होवे। द्वितीय धन्यवाद न्यायशीला गवर्नमेंटको दिया जाता है कि जिसने इस ग्रंथको अपने यूनिवर्सिटीके कोर्समें दाखिलकर इसका महत्त्व प्रगट किया है। अब मेरी अन्तमें यह प्रार्थना है कि जो प्रमादसे, दृष्टिदोषसे तथा ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी न्यूनतासे कहींपर अशुद्धियां रहगई होवें तो पाठक मेरे ऊपर क्षमा करके शुद्ध करते हुए पढ़ें क्योंकि 'को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे' इस प्रसिद्ध वाक्यसे इस अध्यात्मिक ग्रंथमें अशुद्धियोंका रहजाना संभव है। इस तरह धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करता हुआ इस प्रस्तावनाको समाप्त करता हूं। अलं विज्ञेषु।

लाडेगंज जैन पाठशाला—जबलपुर।
माघकृष्णा १३ सं० २४३८

जैनसमाजका सेवक
मनोहरलाल
पाढम (मैंनपुरी) निवासी।

श्रीवीतरागाय नमः ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितः

प्रवचनसारः ।

(टीकात्रयोपेतः)

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृततत्त्वप्रदीपिकावृत्तिः ।

मंगलाचरणम् ।

सर्वव्याप्येकचिद्रूपस्वरूपाय परात्मने ।
स्वोपलब्धिप्रसिद्धाय ज्ञानानन्दात्मने नमः ॥ १ ॥
हेलोल्लुप्तं महामोहतमस्तोमं जयत्यदः ।
प्रकाशयज्जगत्तत्त्वमनेकान्तमयं महः ॥ २ ॥

श्रीजयसेनाचार्यकृततात्पर्यवृत्तिः ।

नमः परमचैतन्यस्वात्मोत्थसुखसम्पदे ।
परमागमसाराय सिद्धाय परमेष्ठिने ॥ १ ॥

अथ कश्चिदासन्नभव्यः **शिवकुमार**नामा स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतविपरीतचतुर्गतिसंसारदुःखभयभीतः, समुत्पन्नपरमभेदविज्ञानप्रकाशातिशयः, समस्तदुर्नयैकान्तनिरा-

श्रीपांडे हेमराजजीकृत बालावबोधभाषाटीका ।

मङ्गलाचरण, छप्पयछंद ।

स्वयंसिद्ध करतार, करै निजकरमसरमनिधि ।
आप हि करणसरूप, होइ साधनसाधै विधि ॥
संप्रदानता धरै, आपकौं आप समप्पै ।
अपादानतैं आप, आपकौं करि थिर थप्पै ॥

१ इसटीकाका उपोद्घात प्रकरणसमाप्तिके अन्तमें लिखाजायगा । २ प्रकाशातिशयसमर्थतयैकान्तनिराकृतदुराग्रह इत्यपि पाठः ।

परमानन्दसुधारसपिपासितानां हिताय भव्यानाम् ।
क्रियते प्रकटिततत्त्वा प्रवचनसारस्य वृत्तिरियम् ॥ ३ ॥

अथ खलु कश्चिदासन्नसंसारपारावारः समुन्मीलितसातिशयविवेकज्योतिरस्तमितसमस्तैकान्तवादविद्याभिनिवेशः पारमेश्वरीमनेकान्तविद्यामुपगम्य मुक्तसमस्तपक्षपरिग्रहतयात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा सकलपुरुषार्थसारतया नितान्तमात्मनो हिततमां भगवत्पञ्चपरमेष्ठिप्रसादोपजन्यां परमार्थसत्यां मोक्षलक्ष्मीमक्षयामुपादेयत्वेन निश्चिन्वन् प्रवर्तमानतीर्थनायकपुरःसरान् भगवतः पञ्चपरमेष्ठिनः प्रणमनवन्दनोपजनितनमस्करणेन संभाव्य सर्वारम्भेण मोक्षमार्गं संप्रतिपद्यमानः प्रतिजानीते:—

कृतदुराग्रहः, परित्यक्तसमस्तशत्रुमित्रादिपक्षपातेनात्यन्तमध्यस्थो भूत्वा धर्मार्थकामेभ्यः सारभूतामत्यन्तात्महितामविनश्वरां पञ्चपरमेष्ठिप्रसादोत्पन्नां मुक्तिश्रियमुपादेयत्वेन स्वीकुर्वाणः, श्रीवर्द्धमानस्वामितीर्थकरपरमदेवप्रमुखान् भगवतः पञ्चपरमेष्ठिनो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणम्य परमचारित्रमाश्रयामीति प्रतिज्ञां करोति;—

अधिकरन होइ आधार निज, वरतै पूरन ब्रह्मपर ।
षट्विधि कारकमयरहित, विविधि एकविधि अज अमर ॥ १ ॥

दोहा—*महत्तत्व महनीय मह, महाधाम गुणधाम ।*
चिदानंद परमातमा, वंदौं रमताराम ॥ २ ॥

कुनय-दमनि सुवचन-अवनि, रमनि स्यातपद सुद्ध ।
जिनवानी मानी मुनिप, घटमें करहु सुबुद्धि ॥ ३ ॥

चौपाई—पंच इष्टपदके पद वंदौं । सत्यरूप गुरु गुण अभिनंदौं ।
प्रवचनसारग्रंथकी टीका । बालबोधभाषामय नीका ॥ ४ ॥

रचौं आपपरकौं हितकारी । भव्यजीव आनंद विथारी ।
प्रवचनजलधि अरथजल लैहैं । मतिभाजनसमान जन पैहैं ॥ ५ ॥

दोहा—अमृतचंदकृत संसकृत, टीका अगम अपार ।
तिस अनुसार कहौं कछू, सुगम अल्प विस्तार ॥ ६ ॥

श्रीकुंदकुंदाचार्य प्रथमही ग्रन्थके आरंभमें मंगलाचरणकेलिये नमस्कार करते हैं:—

---

१ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः सकललोकोपकारकं मोक्षमार्गमध्ययनरुचिविनेयाशयवशेनोपदर्शयितुकामो निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलमभिलषन्निष्टदेवताविशेषं शास्त्रस्यादौ नमस्कुर्वन्नाह ।

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदं धोदघाइकम्ममलं ।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं ॥ १ ॥
सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे ।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे ॥ २ ॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेयं ।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते ॥ ३ ॥
किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं ।
अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं ॥ ४ ॥
तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज ।
उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती ॥ ५ ॥ [पणगं]

एष सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं धौतघातिकर्ममलम् ।
प्रणमामि वर्द्धमानं तीर्थं धर्मस्य कर्तारम् ॥ १ ॥
शेषान् पुनस्तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् विशुद्धसद्भावान् ।
श्रमणांश्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान् ॥ २ ॥

पणमामीत्यादिपदखण्डनरूपेण व्याख्यानं क्रियते—**पणमामि** प्रणमामि । स कः । कर्ता **एस** एषोऽहं ग्रन्थकरणोद्यतमनाः स्वसंवेदनप्रत्यक्षः । कं **वड्ढमाणं** अवसमन्ताद्वृद्धं वृद्ध मानं प्रमाणं ज्ञानं यस्य स भवति वर्द्धमानः 'अवाप्योरल्लोपः' इति लक्षणेन भवत्यकारलोपोऽवशब्दस्यात्र, तं रत्नत्रयात्मकप्रवर्तमानधर्मतत्त्वोपदेशकं श्रीवर्द्धमानतीर्थकरपरमदेवं । क प्रणमामि । प्रथमत एव । किं विशिष्टं **सुरासुरमणुसिंदवंदिदं** त्रिभुवनाराध्यानन्तज्ञानादिगुणाधारपदाधिष्ठितत्वात्तत्पदाभिलाषिभिस्त्रिभुवनाधीशैः सम्यगाराध्यपादारविन्दत्वाच्च सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं । पुनरपि किं विशिष्टं **धोदघाइकम्ममलं** परमसमाधिसमुत्पन्नरागादिमलरहितपारमार्थिकसुखामृतरूपनिर्मलनीरप्रक्षालितघातिकर्ममलत्वादन्येषां पापमलप्रक्षालनहेतुत्वाच्च धौतघातिकर्ममलम् । पुनश्च किं लक्षणं **तित्थं** दृष्टश्रुतानुभूतविपयसुखाभिलाषरूपनीरप्रवे-

---

[एष अहं वर्द्धमानं प्रणमामि] यह जो मैं "अपने अनुभवके गोचर ज्ञानदर्शनस्वरूप" कुंदकुंदाचार्य हूं, सो वर्द्धमान जो देवाधिदेव परमेश्वर परमपूज्य अंतिमतीर्थंकर उनको नमस्कार करता हूं। कैसे हैं श्रीवर्द्धमानतीर्थंकर **[सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितं]** विमानवासी देवोंके पातालमें रहनेवाले देवोंके और मनुष्योंके स्वामियोंकर नमस्कार किये गये हैं इस कारण तीन लोककर पूज्य हैं। फिर कैसे हैं **[धौतघातिकर्ममलम्]** धोये हैं चार घातियाकर्मरूप मैल जिन्होंनें इस लिये अ-

तांस्तान् सर्वान् समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम् ।
वन्दे च वर्तमानानर्हतो मानुषे क्षेत्रे ॥ ३ ॥
कृत्वार्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तथा नमो गणधरेभ्यः ।
अध्यापकवर्गेभ्यः साधुभ्यश्चेति सर्वेभ्यः ॥ ४ ॥
तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं समासाद्य ।
उपसम्पद्ये साम्यं यतो निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ ५ ॥ [पञ्चकम्]

एष स्वसंवेदनप्रत्यक्षो दर्शनज्ञानसामान्यात्मात्माहं सुरासुरमनुष्येन्द्रवन्दितत्वात्रिलोकगुरुं, धौतघातिकर्ममलत्वाज्जगदनुग्रहसमर्थानन्तशक्तिपारमैश्वर्यं,योगिनां तीर्थत्वात्तारणसमर्थं, धर्मकर्तृत्वाच्छुद्धस्वरूपवृत्तिविधातारं, प्रवर्तमानतीर्थनायकत्वेन प्रथमत एव परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरपूज्यसुगृहीतनामश्रीवर्द्धमानदेवं प्रणमामि ॥ १ ॥ तदनु विशुद्धसद्भावत्वादुपात्तपाकोत्तीर्णजात्यकार्तस्वरस्थानीयशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावान् शेषानतीततीर्थनायकान् सर्वान् सिद्धांश्च ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारयुक्तत्वात्संभावितपरमशुद्धोप-

शरहितेन परमसमाधिपोतेनोत्तीर्णसंसारसमुद्रत्वात्, अन्येषां तरणोपायभूतत्वाच्च तीर्थम् । पुनश्च किं रूपं । **धम्मस्स कत्तारं** निरुपरागात्मतत्त्वपरिणतिरूपनिश्चयधर्मस्योपादानकारणत्वात् अन्येषामुत्तमक्षमादिबहुविधधर्मोपदेशकत्वाच्च धर्मस्य कर्तारम् । इति क्रियाकारकसम्बन्धः । एवमन्तिमतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ॥ १ ॥ तदनन्तरं प्रणमामि । कान् **सेसे पुणतित्थयरे ससव्वसिद्धे** शेषतीर्थकरान् । पुनः ससर्वसिद्धान् वृषभादिपार्श्वपर्यन्तान् शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणसर्वसिद्धसहितानेतान् सर्वानपि । कथंभूतान् । **विसुद्धसब्भावे** निर्मलात्मोपलब्धिबलेन विश्लेषिताखिलावरणत्वात्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वाच्च विशुद्धसद्भावान् । **समणे य** श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च । किं लक्षणान् **णाणदंसणचरित्ततववी-**

नंतचतुष्टय [अनंतज्ञान, १ अनंतदर्शन २ अनंतवीर्य ३ अनंतसुख ४] सहित हैं । फिर कैसे हैं [**तीर्थं**] तारनेमें समर्थ हैं अर्थात् भव्यजीवोंको संसारसमुद्रसे पार करनेवाले हैं । फिर कैसे हैं । [**धर्मस्य कर्तारम्**] शुद्ध आत्मीक जो धर्म उसके कर्त्ता अर्थात् उपदेश देने वाले हैं ॥ १ ॥ [**पुनः अहं**] फिर मैं कुंदकुंदाचार्य [**शेषान् तीर्थकरान् ससर्वसिद्धान् प्रणमामि**] शेष जो बचे, तेईस तीर्थकर समस्त अतीतकालके सिद्धोंसहित हैं, उनको नमस्कार करता हूं । कैसे हैं तीर्थकर और सिद्ध [**विशुद्धसद्भावान्**] निर्मल हैं ज्ञानदर्शनरूपस्वभाव जिनके । जैसे अन्तिम अग्निकर तपाया हुआ सोना अत्यन्तशुद्ध होजाता है, उसी तरह निर्मल स्वभाव सहित हैं । [**च श्रमणान्**] फिर आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार करता हूं ।

१ वर्द्धमानस्वामितीर्थे ग्रन्थकृतो विशिष्टसद्दर्शनादिगुणप्राप्ते. प्रथमतस्तं नमस्कृत्यान्यानप्यर्हदादिपरमेष्ठिनो नमस्कुर्वन्नाह । २ खपुस्तके निरुपमपरमात्मतत्त्व इति पाठः ।

योगभूमिकानाचार्योपाध्यायसाधुत्वविशिष्टान् श्रमणांश्च प्रणमामि ॥ २ ॥ तदन्वेतानेव पञ्चपरमेष्ठिनस्तत्तद्व्यक्तिव्यापिनः सर्वानेव सांप्रतमेतत्क्षेत्रसंभवतीर्थकरासंभवान्महाविदेहभूमिसंभवत्वे सति मनुष्यक्षेत्रप्रवर्तिभिस्तीर्थनायकैः सह वर्तमानकालं गोचरीकृत्य युगपद्युगपत्प्रत्येकं प्रत्येकं च मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरायमाणपरमनैर्ग्रन्थ्यदीक्षाक्षणोचितमङ्गलाचारभूतकृतिकर्मशास्त्रोपदिष्टवन्दनाभिधानेन संभावयामि ॥३॥ अथैवमर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व-

---

रियायारे सर्वविशुद्धद्रव्यगुणपर्यायात्मके चिद्वस्तुनि यासौ रागादिविकल्परहितनिश्चलचित्तवृत्तिस्तदन्तर्भूतेन व्यवहारपञ्चाचारसहकारिकारणोत्पन्नेन निश्चयपञ्चाचारेण परिणतत्वात् सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारोपेतानिति । एवं शेषत्रयोविंशतितीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा गता ॥२॥ अथ **ते ते सव्वे** तांस्तान्पूर्वोक्तानेव पञ्चपरमेष्ठिनः सर्वान् **वंदामि य** वन्दे, अहं कर्ता । कथं **समगं समगं** समुदायवंदनापेक्षया युगपद्युगपत् । पुनरपि कथं **पत्तेयमेव पत्तेयं** प्रत्येकवन्दनापेक्षया प्रत्येकं प्रत्येकं । न केवलमेतान् वन्दे **अरहंते** अर्हतः । किंविशिष्टान् **वट्टंते माणुसे खेत्ते** वर्तमानान् । क? मानुषे क्षेत्रे । तथाहि—साम्प्रतमत्र भरतक्षेत्रे तीर्थकराभावात् पञ्चमहाविदेहस्थितश्रीमन्दरस्वामितीर्थकरपरमदेवप्रभृतितीर्थकरैः सह तानेव पञ्चपरमेष्ठिनो नमस्करोमि । कया । करणभूतया मोक्षलक्ष्मीस्वयंवरमण्डपभूते जिनदीक्षाक्षणे मङ्गलाचारभूतया अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणभावनारूपया सिद्धभक्त्या, तथैव निर्मलसमाधिपरिणतपरमयोगिगुणभावनालक्षणया योगभक्त्या चेति । एवं पूर्वविदेहतीर्थकरनमस्कारमुख्यत्वेन गाथा

कैसे हैं [**ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारान्**] ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, और वीर्य ये हैं आचरण जिनके अर्थात् ज्ञानादिमें हमेशा लीन रहते हैं इस कारण उत्कृष्ट शुद्धोपयोगकी भूमिको प्राप्त हुए हैं । इस गाथामें पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया है ॥२॥ [**च पुनः अहं**] फिर मैं कुंदकुंदाचार्य [**मानुषे क्षेत्रे वर्तमानान्**] मनुष्योंके रहनेका क्षेत्र जो ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, और आधा पुष्कर) उसमें रहने वाले जो जो अरहंत हैं [**तान् तान् सर्वानर्हतः**] उन २ सब अरहंतोंको [**समकं समकं प्रत्येकमेव प्रत्येकम्**] सबको एकही समय अथवा हरएकको कालके क्रमसे [**वन्दे**] नमस्कार करता हूं । **भावार्थ**—इस भरत क्षेत्रमें इससमय तीर्थंकर मौजूद नहीं हैं, इस कारण जो महाविदेहमें तीर्थंकर वर्तमान हैं उनको मन वचन कायसे शास्त्रके अनुसार नमस्कार करता हूं । वह नमस्कार दोतरहका है, द्वैत तथा अद्वैत, जो शरीरको नमायकर मस्तकको भूमिमें लगाकर अनेक स्तुतियोंसे पंचपरमेष्ठीको अष्टाङ्गनमस्कार करना है, वह द्वैत नमस्कार है । और जिस जगह भाव्यभावकभावोंकी विशेषता (उत्कटता) से अत्यंत लीन होकर 'ये पञ्चपरमेष्ठी' 'यह मैं' ऐसा अपना और परका भेद मिट जावै, उस जगह अद्वैत नमस्कार कहा जाता है । अभ्यन्तरके परिणामोंको भाव्य तथा वचनोंके बोलने रूप बाह्यभावोंको भावक कहते

साधूनां प्रणतिवन्दनाभिधानप्रवृत्तद्वैतद्वारेण भाव्यभावकभावजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलनबलविलीननिखिलस्वपरविभागतया प्रवृत्ताद्वैतं नमस्कारं कृत्वा ॥४॥ तेषामेवार्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधूनां विशुद्धज्ञानदर्शनप्रधानत्वेन सहजशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्वश्रद्धानावबोधलक्षणसम्यग्दर्शनज्ञानसंपादकमाश्रमं समासाद्य सम्यग्दर्शनज्ञानसंपन्नो भूत्वा, जीवस्य कषायकणतया पुण्यबन्धसंप्राप्तिहेतुभूतं सरागचारित्रं क्रमापतितमपि दूरमुत्क्रम्य सकलकषायकलिकलङ्कविविक्ततया निर्वाणसंप्राप्तिहेतुभूतं वीतरागचारित्राख्यं साम्यमुपसंपद्ये । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैक्यात्मकैकाग्र्यं गतोस्मीति प्रतिज्ञार्थः । एवं तावदयं साक्षान्मोक्षमार्गं संप्रतिपन्नः ॥ ५ ॥

गतेत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ अथ **किच्चा** कृत्वा । कं । **णमो** नमस्कारं । केभ्यः । **अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव** अर्हत्सिद्धगणधरोपाध्यायसाधुभ्यश्चैव । कतिसंख्योपेतेभ्यः ? **सव्वेसिं** सर्वेभ्यः । इति पूर्वगाथात्रयेण कृतपञ्चपरमेष्ठिनमस्कारोपसंहारोऽयम् ॥ ४ ॥ एवं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा किं करोमि । **उवसंपयामि** उपसंपद्ये समाश्रयामि । किं । **सम्मं** शाम्यं चारित्रं । यस्मात् किं भवति । **जत्तो णिव्वाणसंपत्ती** यस्मान्निर्वाणसंप्राप्तिः । किं कृत्वा । पूर्वं **समासिज्ज** समासाद्य प्राप्य । कम् । **विसुद्धणाणदंसणपहाणासमं** विशुद्धज्ञानदर्शनलक्षणप्रधानाश्रमं । केषां संबन्धित्वेन । **तेसिं** तेषां पूर्वोक्तपरमेष्ठिनामिति । तथाहि—अहमाराधकः, एते चार्हदादय आराध्या इत्याराध्याराधकविकल्परूपो द्वैतनमस्कारो भण्यते । रागाद्युपाधिविकल्परहितपरमसमाधिबलेनात्मन्येवाराध्याराधकभावः पुनरद्वैतनमस्कारो भण्यते । इत्येवं लक्षणं पूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण पञ्चपरमेष्ठिसम्बन्धिनं द्वैताद्वैतनमस्कारं कृत्वा । ततः किं करोमि । रागादिभ्यो भिन्नोऽयं स्वात्मोत्थसुखस्वभावः परमात्मेति भेदज्ञानं, तथा स एव सर्वप्रकारोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वमित्युक्तलक्षणज्ञानदर्शनस्वभावं, मठचैत्यालयादिलक्षणव्यवहाराश्रमाद्विलक्षणं, भावाश्रमरूपं प्रधानाश्रमं प्राप्य । तत्पूर्वक्रमायातमपि सरागचारित्रं पुण्यबन्धकारणमिति ज्ञात्वा परिहृत्य निश्चल-

हैं ॥ ३ ॥ **[अहं साम्यं उपसंपद्ये]** मैं ग्रन्थकर्ता शान्त भाव जो वीतरागचारित्र उसको स्वीकार करता हूं । क्या करके **[अर्हद्भ्यः नमस्कृत्य]** अरहंत जो अनन्तचतुष्टयसहित जीवन्मुक्त जिनवर हैं, उनको पहिले कहा हुआ दोतरहका नमस्कार करके **[तथा सिद्धेभ्यः]** और उसीप्रकार सिद्धोंको **[गणधरेभ्यः]** आचार्योंको **[अध्यापकवर्गेभ्यः]** उपाध्यायोंके समूहको **[च इति सर्वेभ्यः साधुभ्यः]** और इसी प्रकार सब साधुओंको नमस्कार करके ॥ ४ ॥ फिर क्या करके शमपरिणामोंको स्वीकार करता हूं । **[तेषां विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानाश्रमं]** उन पञ्चपरमेष्ठियोंके निर्मल दर्शन, ज्ञानस्वरूप मुख्य स्थानको **[समासाद्य]** पाकरके । **[यतो निर्वाणसम्प्राप्तिः]** क्योंकि इन शान्तपरिणामोंसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती

अथायमेव वीतरागसरागचारित्रयोरिष्टानिष्टफलत्वेनोपादेयहेयत्वं विवेचयतिः—

संपज्जदि णिव्वाणं देवासुरमणुयरायविहवेहिं ।
जीवस्स चरित्तादो दंसणणाणप्पहाणादो ॥ ६ ॥

संपद्यते निर्वाणं देवासुरमनुजराजविभवैः ।
जीवस्य चरित्राद्दर्शनज्ञानप्रधानात् ॥ ६ ॥

संपद्यते हि दर्शनज्ञानप्रधानाच्चारित्राद्वीतरागान्मोक्षः । तत एव च सरागाद्देवासुरमनुजराजविभवक्लेशरूपो बन्धः । अतो मुमुक्षुणेष्टफलत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयमनिष्टफलत्वात्सरागचारित्रं हेयम् ॥ ६ ॥

शुद्धात्मानुभूतिस्वरूपं वीतरागचारित्रमहमाश्रयामीति भावार्थः । एवं प्रथमस्थले नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं गतम् ॥ ५ ॥ अथोपादेयभूतस्यातीन्द्रियसुखस्य कारणत्वाद्वीतरागचारित्रमुपादेयम्, अतीन्द्रियसुखापेक्षया हेयस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वात्सरागचारित्रं हेयमित्युपदिशतिः—**संपज्जदि** संपद्यते । किम् । **णिव्वाणं** निर्वाणं । कथम् ! सह । कैः । **देवासुरमणुवरायविहवेहिं** देवासुरमनुष्यराजविभवैः । कस्य । **जीवस्स** जीवस्य । कस्मात् । **चरित्तादो** चरित्रात् । कथंभूतात् । **दंसणणाणप्पहाणादो** सम्यग्दर्शनज्ञानप्रधानादिति । तद्यथा–आत्माधीनज्ञानसुखस्वभावे शुद्धात्मद्रव्ये यन्निश्चलनिर्विकारानुभूतिरूपमवस्थानं तल्लक्षणनिश्चयचारित्राज्जीवस्य

है । **भावार्थ**—सब उपाधियोंसे जुदा आत्माको जानना और वैसा ही श्रद्धान करना ये ही निर्मल दर्शन, ज्ञान पंचपरमेष्ठीके स्थान हैं । इनमें ही पंचपरमेष्ठी प्राप्त होते हैं । इस तरह स्थानोंको मैं पाकर वीतरागचारित्रको धारण करता हूं । यद्यपि गुणस्थानोंके चढनेके क्रममें सरागचारित्र जबरदस्ती अर्थात् चारित्र मोहके मन्द उदय होनेसे अपने आप आजाता है तौभी मैं उसको दूरहीसे छोड़ता हूं, क्योंकि वह कषायके अंशोंसे मिला-हुआ है और पुण्यबन्धका कारण है । इस कारण समस्त कषाय कलंक रहित तथा साक्षात् मोक्षका कारण वीतरागचारित्रको अंगीकार करता हूं ॥ ५ ॥

आगे श्रीकुंदकुंदाचार्य वीतराग-सरागचारित्रके उपादेय-हेयफलका खुलासा गाथासूत्रमें कहते हैं:—

[जीवस्य चरित्रात् निर्वाणं संपद्यते] जीवको चारित्रगुणके आचरणसे मोक्ष प्राप्त होती है । कैसे चारित्रसे ? **[दर्शनज्ञानप्रधानात्]** सम्यग्दर्शन-ज्ञान हैं मुख्य जिसमें । किन विभूतियोंसहित मोक्ष पाता है ? **[देवासुरमनुजराजविभवैः सह]** स्वर्गवासी देव, पातालवासी देव तथा मनुष्योंके स्वामियोंकी संपदा सहित । **भावार्थ**—चारित्र दो प्रकारका है, वीतराग तथा सराग । वीतरागचारित्रसे मोक्ष

अथ चारित्रस्वरूपं विभावयतिः—

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥ ७ ॥

चारित्रं खलु धर्मो धर्मो यः स शम इति निर्दिष्टः ।
मोहक्षोभविहीनः परिणाम आत्मनो हि शमः ॥ ७ ॥

स्वरूपे चरणं चारित्रं स्वसमयप्रवृत्तिरित्यर्थः । तदेव वस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः । शुद्धचैतन्यप्रकाशनमित्यर्थः । तदेव च यथावस्थितात्मगुणत्वात्साम्यम् । साम्यं तु दर्शनचारित्रमोहनीयोदयापादितसमस्तमोहक्षोभाभावादत्यन्तनिर्विकारो जीवस्य परिणामः ॥ ७ ॥

समुत्पद्यते । किम् । पराधीनेन्द्रियजनितज्ञानसुखविलक्षणं, स्वाधीनातीन्द्रियरूपपरमज्ञानसुखलक्षणं निर्वाणम् । सरागचारित्रात्पुनर्देवासुरमनुष्यराजविभूतिजनको मुख्यवृत्त्या विशिष्टपुण्यबन्धो भवति, परम्परया निर्वाणं चेति । असुरेषु मध्ये सम्यग्दृष्टिः कथमुत्पद्यते ? इतिचेत्—निदानबन्धेन सम्यक्त्वविराधनां कृत्वा तत्रोत्पद्यत इति ज्ञातव्यम् । अत्र निश्चयेन वीतरागचारित्रमुपादेयं सरागं हेयमिति भावार्थः ॥ ६ ॥ अथ निश्चयचारित्रस्य पर्यायनामानि कथयामीत्यभिप्रायं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति, एवमग्रेऽपि विवक्षितसूत्रार्थं मनसि धृत्वाथवास्य सूत्रस्याग्रे सूत्रमिदमुचितं भवत्येवं निश्चित्य सूत्रमिदं प्रतिपादयतीति पातनिकालक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्:— **चारित्तं** चारित्रं कर्तृ **खलु धम्मो** खलु स्फुटं धर्मो भवति । **धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो** धर्मो यः स तु शम इति निर्दिष्टः । **समो** यस्तु शमः सः **मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु** मोहक्षोभविहीनः परिणामः । कस्य । आत्मनः हु स्फुटमिति ।

होती है, इस कारण वीतराग चारित्र आप मोक्षरूप है और सरागचारित्रसे इंद्र धरणेंद्र, चक्रवर्तीकी विभूतिस्वरूप बंध होता है । क्योंकि सराग चारित्र कषायोंके अंशोंके मेलसे आत्माके गुणोंका घात करनेवाला है । इस कारण आप बंधरूप है । इसीलिये ज्ञानी पुरुषोंको सरागचारित्र त्यागने योग्य कहा है, और वीतरागचारित्र ग्रहण करने योग्य कहा गया है ॥ ६ ॥

आगे निश्चयचारित्रका स्वरूप कहते हैं:—

[खलु चारित्रं धर्मः] निश्चयकर अपनेमें अपने स्वरूपका आचरणरूप जो चारित्र वह धर्म अर्थात् वस्तुका स्वभाव है । जो स्वभाव है वह धर्म है । इस कारण अपने स्वरूपके धारण करनेसे चारित्रका नाम धर्म कहा गया है । **[यः धर्मः तत्साम्यमिति निर्दिष्टम्]** जो धर्म है, वही सम भाव है ऐसा श्रीवीतरागदेवने कहा है । वह साम्यभाव क्या है ? **[मोहक्षोभविहीनः आत्मनः परिणामः]** उद्वेगपने (चंचलता) से रहित आत्माका परिणाम वही साम्यभाव है ।

अथात्मनश्चारित्रत्वं निश्चिनोति:—

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो॥ ८॥

परिणमति येन द्रव्यं तत्कालं तन्मयमिति प्रज्ञप्तम्।
तस्माद्धर्मपरिणत आत्मा धर्मो मन्तव्यः॥ ८॥

यत्खलु द्रव्यं यस्मिन्काले येन भावेन परिणमति तत् तस्मिन् काले किलौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवत्तन्मयं भवति। ततोऽयमात्मा धर्मेण परिणतो धर्म एव भवतीति सिद्धमात्मनश्चारित्रत्वम्॥ ८॥

तथाहि—शुद्धचित्स्वरूपे चरणं चारित्रं, तदेव चारित्रं मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपेण भावसंसारे पतन्तं प्राणिनमुद्धृत्य निर्विकारशुद्धचैतन्ये धरतीति धर्मः। स एव धर्मः स्वात्मभावनोत्थसुखामृतशीतजलेन कामक्रोधादिरूपाग्निजनितस्य संसारदुःखदाहस्योपशमकत्वात् शम इति। ततश्च शुद्धात्मश्रद्धानरूपसम्यक्त्वस्य विनाशको दर्शनमोहाभिधानो मोह इत्युच्यते। निर्विकारनिश्चलचित्तवृत्तिरूपचारित्रस्य विनाशकश्चारित्रमोहाभिधानः क्षोभ इत्युच्यते। तयोर्विध्वंसकत्वात्स एव शमो मोहक्षोभविहीनः शुद्धात्मपरिणामो भण्यत इत्यभिप्रायः॥ ७॥ अथाभेदनयेन धर्मपरिणत आत्मैव धर्मो भवतीत्यावेदयति:—**परिणमदि जेण दव्वं तक्काले तम्मयत्ति पण्णत्तं** परिणमति येन पर्यायेण द्रव्य कर्तृ तत्कालेन तन्मयं भवतीति प्रज्ञप्तम्। यतः कारणात् **तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो** ततः कारणात् धर्मेण परिणत आत्मैव धर्मो मन्तव्य इति। तद्यथा—निजशुद्धात्मपरिणतिरूपो निश्चयधर्मो भवति। पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिपरिणामरूपो व्यवहारधर्मस्तावदुच्यते। यतस्तेन तेन विवक्षिताविवक्षितपर्यायेण परिणतं द्रव्यं तन्मयं भवति,

---

अभिप्राय यह है कि, वीतराग चारित्र वस्तुका स्वभाव है। वीतरागचारित्र, निश्चयचारित्र, धर्म, समपरिणाम ये सब एकार्थवाचक हैं। और मोहकर्मसे जुदा निर्विकार जो आत्माका परिणाम स्थिररूप सुखमय वही चारित्रका स्वरूप है॥ ७॥
आगे चारित्र और आत्माकी एकता दिखाते हैं:—

[येन द्रव्यं परिणमति] जिस वक्त जिस स्वभावसे द्रव्य परणमन करता है **[तत्कालं तन्मयम्]** उस समय उसी स्वभावमय द्रव्य हो जाता है **[इति प्रज्ञप्तम्]** ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है। जैसे लोहेका गोला जब आगमें डाला जाता है तब उष्णरूप होकर परिणमता है अर्थात् उष्णपनेसे तन्मय हो जाता है, इसी तरह यह आत्मा जब शुभ, अशुभ, शुद्ध भावोंमेंसे जिस भावरूप परिणमता है, तब उस भावसे उसी स्वरूप होता है **[तस्माद्धर्मपरिणतः आत्मा]** इस कारण वीतरागचारित्र (समताभाव) रूप धर्मसे परणमता यह आत्मा **[धर्मो मन्तव्यः]** धर्म

अथ जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वं निश्चिनोतिः—

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥ ९ ॥

जीवः परिणमति यदा शुभेनाशुभेन वा शुभोऽशुभः ।
शुद्धेन तदा शुद्धो भवति हि परिणामस्वभावः ॥ ९ ॥

यदाऽयमात्मा शुभेनाशुभेन वा रागभावेन परिणमति तदा जपातापिच्छरागपरिणतस्फटिकवत् परिणामस्वभावः सन् शुभोशुभश्च भवति । यदा पुनः शुद्धेनारागभावेन परिणमति तदा शुद्धारागपरिणतस्फटिकवत्परिणामस्वभावः सन् शुद्धो भवतीति सिद्धं जीवस्य शुभाशुभशुद्धत्वम् ॥ ९ ॥

ततः पूर्वोक्तधर्मद्वयेन परिणतस्तप्तायःपिण्डवदभेदनयेनात्मैव धर्मो भवतीति ज्ञातव्यम् । तदपि कस्मात्? उपादानकारणसदृशं हि कार्यमिति वचनात् । तच्च पुनरुपादानकारणं शुद्धाशुद्धभेदेन द्विधा । रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानमागमभाषया शुक्लध्यानं वा केवलज्ञानोत्पत्तौ शुद्धोपादानकारणं भवति । अशुद्धात्मा तु रागादिना अशुद्धनिश्चयेनाशुद्धोपादानकारणं भवतीति सूत्रार्थः ॥ ८ ॥ एवं चारित्रस्य संक्षेपसूचनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयेण परिणतो जीवः शुभाशुभशुद्धोपयोगस्वरूपो भवतीत्युपदिशतिः—**जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा** जीवः कर्ता यदा परिणमति शुभेनाशुभेन वा परिणामेन **सुहो असुहो हवदि** तदा शुभेन शुभो भवति, अशुभेन वाऽशुभो भवति । **सुद्धेण तदा सुद्धो हि** शुद्धेन यदा परिणमति तदा शुद्धो भवति हि स्फुटम् । कथम्भूतः सन् ।

जानना । **भावार्थ**—जब जिस तरहके भावोंसे यह आत्मा परिणमन करता है तब उन्हीं स्वरूप ही है, इस न्यायसे वीतरागचारित्ररूप धर्मसे परिणमन करता हुआ वीतराग चारित्र धर्म ही होजाता है । इसलिये आत्मा और चारित्रके एकपना है । आत्माको चारित्रभी कहते हैं ॥ ८ ॥

आगे आत्माके शुभ, अशुभ तथा शुद्ध भावोंका निर्णय करते हैं—

[यदा जीवः] जब यह जीव **[शुभेन अशुभेन वा परिणमति]** शुभ अथवा अशुभ परिणामों कर परिणमता है **[तदा शुभ अशुभो भवति]** तब यह शुभ वा अशुभ होता है । अर्थात् जब यह दान, पूजा, व्रतादिरूप शुभपरिणामोंसे परिणमता है, तब उन भावोंके साथ तन्मय होता हुआ शुभ होता है, और जब विषय, कषाय, अव्रतादिरूप अशुभभावोंकर परिणत होता है, तब उन भावोंके साथ उन्हीं स्वरूप हो जाता है । जैसे स्फटिकमणि काले फूलका संयोग मिलने पर काली ही होजाती है । क्योंकि स्फटिकका ऐसाही परिणमन स्वभाव है । उसीप्रकार जीवका भी समझना । **[शुद्धेन तदा शुद्धो भवति]** जब यह जीव आत्मीक वीतराग शुद्धभावस्वरूप

अथ परिणामं वस्तुस्वभावत्वेन निश्चिनोतिः—

णत्थि विणा परिणामं अत्थो अत्थं विणेह परिणामो ।
दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थो अत्थित्तणिव्वत्तो ॥ १० ॥

नास्ति विना परिणाममर्थोऽर्थं विनेह परिणामः ।
द्रव्यगुणपर्ययस्थोऽर्थोऽस्तित्वनिर्वृत्तः ॥ १० ॥

न खलु परिणाममन्तरेण वस्तु सत्तामालम्बते । वस्तुनो द्रव्यादिभिः परिणामात् पृथगुपलम्भाभावान्निःपरिणामस्य खरशृङ्गकल्पत्वाद् दृश्यमानगोरसादिपरिणामविरोधाच्च ।

परिणामसब्भावो परिणामसद्भावः सन्निति । तद्यथा–यथा स्फटिकमणिविशेषो निर्मलोऽपि जपापुष्पादिरक्तकृष्णश्वेतोपाधिवशेन रक्तकृष्णश्वेतवर्णो भवति, तथाऽयं जीवः स्वभावेन शुद्धबुद्धैकस्वरूपोपि व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासम्भवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदानपूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति । मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोगपञ्चप्रत्ययरूपाशुभोपयोगेनाशुभो विज्ञेयः । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन परिणतः शुद्धो ज्ञातव्य इति । किञ्च जीवस्यासंख्येयलोकमात्रपरिणामाः सिद्धान्ते मध्यमप्रतिपत्त्या मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्दशगुणस्थानरूपेण कथिताः । अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेण शुभाशुभशुद्धोपयोगरूपेण कथितानि । कथमिति चेत्—मिथ्यात्वसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः, तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानषट्के तारतम्येन शुद्धोपयोगः, तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिनगुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः ॥ ९ ॥ अथ नित्यैकान्तक्षणिकैकान्तनिषेधार्थं परिणामपरिणामिनोः परस्परं कथञ्चिदभेदं दर्शयतिः—**णत्थि विणा परिणामं अत्थो** मुक्तजीवे तावत्कथ्यते—सिद्धपर्यायरूपशुद्धपरिणामं विना शुद्धजीवपदार्थो

परिणमता है, तब शुद्ध होता है । जैसे स्फटिकमणि जब पुष्पके संबंधसे रहित होती है, तब अपने शुद्ध (निर्मल) भावरूप परिणमन करती है । ठीक उसीप्रकार आत्माभी विकाररहित हुआ शुद्ध होता है । इसप्रकार आत्माके तीनभाव जानना ॥ ९ ॥

आगे वस्तुका स्वभावपरिणाम वस्तुसे अभिन्न (एकरूप) है यह कहते हैं:—

[परिणामं विना अर्थः नास्ति] पर्यायके विना द्रव्य नहीं होता है । क्योंकि द्रव्य किसी समयभी परिणमन किये विना नहीं रहता ऐसा नियम है । जो रहै तो गधेके सींगके समान असंभव समझना चाहिये । जैसे गोरसके परिणाम दूध, दही, घी, तक्र (छांछ) इत्यादि अनेक हैं । इन निजपरिणामोंके विना गोरस जुदा नहीं पाया जाता । जिस जगह ये परिणाम नहीं होते, उस जगह गोरसकी भी सत्ता (मौजूदगी) नहीं होती । उसी तरह परिणामके विना द्रव्यकी सत्ता (मौजूदगी) नहीं होती है ।

अन्तरेण वस्तु परिणामोपि न सत्तामालम्बते । स्वाश्रयभूतस्य वस्तुनोऽभावे निराश्रयस्य परिणामस्य शून्यत्वप्रसङ्गात् । वस्तु पुनरूर्द्धतासामान्यलक्षणे द्रव्ये सहभाविविशेषलक्षणेषु, क्रमभाविविशेषलक्षणेषु पर्यायेषु व्यवस्थितमुत्पादव्ययध्रौव्यमयास्तित्वेन निर्वर्तितं निर्वृत्तिमच्च । अतः परिणामस्वभावमेव ॥ १० ॥

नास्ति । कस्मात् । संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावात् । **अत्थं विणेह परिणामो** मुक्तात्मपदार्थं विना इह जगति शुद्धात्मोपलम्भलक्षणः सिद्धपर्यायरूपः शुद्धपरिणामो नास्ति । कस्मात् । संज्ञादिभेदेपि प्रदेशभेदाभावात् । **दव्वगुणपज्जयत्थो** आत्मस्वरूपं द्रव्यं तत्रैव केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धरूपः पर्यायश्च, इत्युक्तलक्षणेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु तिष्ठतीति द्रव्यगुणपर्यायस्थो भवति । स कः कर्त्ता । **अत्थो** परमात्मपदार्थः, सुवर्णद्रव्यपीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायस्थसुवर्णपदार्थवत् । पुनश्च किंरूपः । **अत्थित्तणिव्वत्तो** शुद्धद्रव्यगुणपर्यायाधारभूतं यच्छुद्धास्तित्वं तेन निर्वृत्तोस्तित्वनिर्वृत्तः, सुवर्णद्रव्यगुणपर्यायास्तित्वनिर्वृत्तसुवर्णपदार्थवदेवेति । अयमत्र तात्पर्यार्थः । यथा—मुक्तजीवे द्रव्यगुणपर्यायत्रयं परस्पराविनाभूतं दर्शितं तथा संसारिजीवेपि मतिज्ञानादिविभावगुणेषु नरनारकादिविभावपर्यायेषु नयविभागेन यथासम्भवं विज्ञेयम्, तथैव पुद्गलादिष्वपि । एवं शुभाशुभशुद्धपरिणामव्याख्यानमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्

कोई ऐसा समझै कि, द्रव्यके विना परिणाम होता होगा सो भी नहीं होता **[अर्थं विना परिणामो न]** द्रव्यके विना परिणामभी नहीं होता । क्योंकि परिणामका आधार द्रव्य है । जो द्रव्यही न होवै, तो परिणाम किसके आश्रय रहै । यदि गोरस ही न होवै, तो दूध, दही, घी, तक्र इत्यादि पर्यायें कहांसे होवैं, इसी प्रकार द्रव्यके विना परिणाम अपनी मौजूदगीको नहीं पासकता है । तो कैसा पदार्थ अपने अस्तिपनेको पासकता है ? **[द्रव्यगुणपर्ययस्थः अर्थः]** जो द्रव्यगुणपर्यायोंमें रहता है, वह पदार्थ **[अस्तित्वनिर्वृत्तः]** अस्तिपने (मौजूदगी) से सिद्ध होता है। **भावार्थ**—जिसजगह द्रव्यगुणपर्यायोंकी एकता हो, वहां पर ही द्रव्यका अस्तित्व है । जो इन तीनोंमेंसे एक भी कम होवै, तो पदार्थही न कहलावै । जैसे सुवर्ण द्रव्य है और उसमें पीतादिगुण हैं तथा कुण्डलादि पर्याय हैं । जो इनमेंसे एककी भी कमी होती है, तो सोनेका अभावही होजाता है, ठीक इसीप्रकार दूसरे पदार्थोंमेंभी ऐसा ही स्वरूप समझना । इससे यह बात सिद्ध हुई कि, परिणाम द्रव्यका पर्याय है । इसके विना द्रव्यका अभाव होजाता है । यहांपर इतनी विशेषता औरभी समझना कि, जहां जैसा द्रव्य होता है वहां पर वैसेही गुणपर्याय होते हैं, इस न्यायसे शुद्ध आत्माके शुद्धगुणपर्याय और अशुद्ध आत्माके अशुद्धगुणपर्याय होते हैं । जहां यह आत्मा शुभअशुभपरिणामरूप परिणमता है, वहां इन अपने परिणामोंसे व्याप्य व्यापकरूप होता हुआ उसी स्वरूप हो जाता है । जब शुद्धपरिणामों रूप परिणमन करता है, तब उन्हीं

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कसम्भववतोः शुद्धशुभपरिणामयोरुपादानहानाय फलमालोचयति:—

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो ।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं ॥ ११ ॥

धर्मेण परिणतात्मा आत्मा यदि शुद्धसंप्रयोगयुतः ।
प्राप्नोति निर्वाणसुखं शुभोपयुक्तो वा स्वर्गसुखम् ॥ ११ ॥

यदायमात्मा धर्मपरिणतस्वभावः शुद्धोपयोगपरिणतिमुद्वहति तदा निःप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणसमर्थचारित्रः साक्षान्मोक्षमवाप्नोति । यदा तु धर्मपरिणतस्वभावोपि शुभोपयोगपरिणत्या संगच्छते तदा सप्रत्यनीकशक्तितया स्वकार्यकरणासमर्थः कथंचिद्विरुद्धकार्यकारिचारित्रः शिखितप्तघृतोपसिक्तपुरुषो दाहदुःखमिव स्वर्गसुखबन्धमवाप्नोति । अतः शुद्धोपयोग उपादेयः शुभोपयोगो हेयः ॥ ११ ॥

॥ १० ॥ अथ वीतरागसरागचारित्रसंज्ञयोः शुद्धशुभोपयोगपरिणामयोः संक्षेपेण फलं दर्शयति:—**धम्मेण परिणदप्पा अप्पा** धर्मेण परिणतात्मा परिणतस्वरूपः सन्नयमात्मा **जदि सुद्धसंपयोगजुदो** यदि चेच्छुद्धोपयोगाभिधानशुद्धसंप्रयोगपरिणामयुतः परिणतो भवति **पावइ णिव्वाणसुहं** तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति । **सुहोवजुत्तो य सग्गसुहं** शुभोपयोगयुतः परिणतः सन् स्वर्गसुखं प्राप्नोति । इतो विस्तरम्—इह धर्मशब्देनाहिंसालक्षणः सागारानगाररूपस्तथोत्तमक्षमादिलक्षणो रत्नत्रयात्मको वा, तथा मोहक्षोभरहित आत्मपरिणामः शुद्धवस्तुस्वभावश्चेति गृह्यते । स एव धर्मः पर्यायान्तरेण चारित्रं भण्यते । **"चारित्तं खलु धम्मो"** इति वचनात् । तच्च चारित्रमपहृतसंयमोपेक्षासंयमभेदेन सरागवीतरागभेदेन वा शुभोपयोगशुद्धोप-

---

स्वरूप होजाता है । क्योंकि परिणाम द्रव्यका स्वभाव है ॥ १० ॥

आगे शुभपरिणाम और शुद्धपरिणाम ये दोनों चारित्र हैं इनके फलको कहते हैं;—

[यदि आत्मा शुद्धसंप्रयोगयुतः तदा निर्वाणसुखं प्राप्नोति] जब आत्मा शुद्ध उपयोगसहित होता है तब मोक्षसुखको पाता है । **[वा शुभोपयुक्तः]** और जब शुभोपयोगरूप भावोंमें परिणमता है, तब **[स्वर्गसुखं]** स्वर्गोंके सुख पाता है । कैसा है यह आत्मा **[धर्मपरिणतात्मा]** धर्मसे परिणमा है स्वरूप जिसका । **भावार्थ**—वीतराग सराग भावोंकर धर्म दो प्रकारका है । जब यह आत्मा वीतराग आत्मीक धर्मरूप परिणमता हुआ शुद्धोपयोग भावोंमें परिणमन करता है, तब कर्मोंसे इसकी शक्ति रोकी नहीं जासकती । अपने कार्य करनेको समर्थ होजाता है इसकारण अनन्त अखण्ड निजसुख जो मोक्षसुख उसको स्वभावहीसे पाता है । और जब यह आत्मा दान, पूजा, व्रत, संयमादिरूप सरागभावोंकर परिणमता हुआ शुभोपयोग

अथ चारित्रपरिणामसंपर्कासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभपरिणामस्य फलमालोचयति;—

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो ।
दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुदो भमइ अचंतं ॥ १२ ॥

अशुभोदयेनात्मा कुनरस्तिर्यग्भूत्वा नैरयिकः ।
दुःखसहस्रैः सदा अभिधृतो भ्रमत्यत्यन्तम् ॥ १२ ॥

यदायमात्मा मनागपि धर्मपरिणतिमनासादयन्नशुभोपयोगपरिणतिमालम्बते तदा कुमनुष्यतिर्यङ्नारकभ्रमणरूपं दुःखसहस्रबन्धमनुभवति । ततश्चारित्रलवस्याप्यभावादत्य-

---

योगभेदेन च द्विधा भवति। तत्र यच्छुद्धसंप्रयोगशब्दवाच्यं शुद्धोपयोगस्वरूपं वीतरागचारित्रं तेन निर्वाणं लभते । निर्विकल्पसमाधिरूपशुद्धोपयोगशक्त्यभावे सति यदा शुभोपयोगरूपसरागचारित्रेण परिणमति तदा पूर्वमनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतमाकुलत्वोत्पादकं स्वर्गसुखं लभते। पश्चात् परमसमाधिसामग्रीसद्भावे मोक्षं च लभते इति सूत्रार्थः ॥ ११ ॥ अथ चारित्रपरिणामासंभवादत्यन्तहेयस्याशुभोपयोगस्य फलं दर्शयतिः—**असुहोदयेण** अशुभोदयेन **आदा** आत्मा **कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो** कुनरस्तिर्यङ्नारको भूत्वा । किं करोति । **दुक्खसहस्सेहिं सया अभिंधुदो भमइ अच्चंतं** दुःखसहस्रैः सदा सर्वकालमभिधृतः कदर्थितः

परिणतिको धारण करता है, तब इसकी शक्ति कर्मोंसे रोकी जाती है । इसलिये मोक्षरूपी कार्य करनेको असमर्थ हो जाता है । फिर उस शुभोपयोग परिणमनसे कर्मबन्धरूप स्वर्गोंके सुखोंको ही पाता है। यद्यपि शुभोपयोग चारित्रका अंग है, तौभी अपने सुखसे उलटा परके आधीन संसारसंबन्धी इन्द्रियोंसे उत्पन्न होनेवाले सुखका कारण है। क्योंकि यह राग-कषायसे मिला हुआ है। और जो इन्द्रियजन्य सुख है, वह वास्तवमें दुःखही है। जैसे कोई पुरुष गरम घी अपनी देहपर डालता है, तो उससे दाहके दुःखको पाता है । ऐसे घीके भी लगनेसे कुछ शांतपना नहीं होता । जिसतरह केवल आगके जलनेसे दुःख होता है, वैसा ही दुःख इस गरम घीसे भी होता है । इसलिये इन्द्रियजनित सुखको गरम घीके समान जानना चाहिये । अर्थात् यह शुभोपयोग भी संसारके फलको देता है, इस कारण अशुभोपयोगके समान त्यागने योग्य है, और शुद्धोपयोग, आत्मीकसुखको 'कि जिसमें किसी तरहकी भी आकुलता नहीं है' देता है। इसलिये उपादेय है॥११॥ आगे बिलकुल त्यागने योग्य और चारित्रका घात करनेवाला जो अशुभोपयोग है, उसके फलको दिखाते हैं:—**[अशुभोदयेन आत्मा अत्यन्तं भ्रमति]** अव्रत, विषय, कषायरूप अशुभोपयोगोंसे परिणमता यह आत्मा अर्थात् धर्मसे बहिर्मुख संसारीजीव है, वह बहुतकालतक संसारमें भटकता है । कैसा होता हुआ? **[कुनरः तिर्यङ्नैरयिकः भूत्वा सदा अभिद्रुतः]** खोटा (दुःखी—दरिद्री)मनुष्य,

न्तहेय एवायमशुभोपयोग इति । एवमयमपास्तसमस्तशुभाशुभोपयोगवृत्तिः शुद्धोपयोगवृत्तिमात्मसात्कुर्वाणः शुद्धोपयोगाधिकारमारभते ॥ १२ ॥

तत्र शुद्धोपयोगफलमात्मनः प्रोत्साहनार्थमभिष्टौतिः—

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं ॥ १३ ॥

अतिशयमात्मसमुत्थं विषयातीतमनौपम्यमनन्तम् ।
अव्युच्छिन्नं च सुखं शुद्धोपयोगप्रसिद्धानाम् ॥ १३ ॥

आसंसारादपूर्वपरमाद्भुतह्लादरूपत्वादात्मानमेवाश्रित्य प्रवृत्तत्वात्पराश्रयनिरपेक्षत्वादत्यन्तविलक्षणत्वात्समस्तायतिनिरपायित्वान्नैरन्तर्यप्रवर्तमानत्वाच्चातिशयवदात्मसमुत्थं विषयातीतमनौपम्यमनन्तमव्युच्छिन्नं शुद्धोपयोगनिःपन्नानां सुखामृतं तत्सर्वथा प्रार्थनीयम् ॥१३॥

पीडितः सन् संसारे अत्यन्तं भ्रमतीति । तथाहि—निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वस्य तत्रैव शुद्धात्मन्यविक्षिप्तचित्तवृत्तिरूपनिश्चयचारित्रस्य च विलक्षणेन विपरीताभिनिवेशजनकेन दृष्टश्रुतानुभूतपञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषतीव्रसंक्लेशरूपेण चाशुभोपयोगेन यदुपार्जितं पापकर्म तदुदयेनायमात्मा सहजशुद्धात्मानन्दैकलक्षणपारमार्थिकसुखविपरीतेन दुःखेन दुःखितः सन् स्वस्वभावभावनाच्युतो भूत्वा संसारेऽत्यन्तं भ्रमतीति तात्पर्यार्थः ॥ एवमुपयोगत्रयफलकथनरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥ १२ ॥ अथ शुभाशुभोपयोगद्वयं निश्चयनयेन हेयं ज्ञात्वा शुद्धोपयोगाधिकारं प्रारभमाणः, शुद्धात्मभावनामात्मसात्कुर्वाणः सन्, स्वस्वभावजीवस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलं प्रकाशयति । अथवा द्वितीयपातनिका—यद्यपि शुद्धोपयोगफलमग्रे ज्ञानं सुखं च संक्षेपेण विस्तरेण च कथयति तथाप्यत्रापि पीठिकायां सूचनां करोति । अथवा तृतीयपातनिका—पूर्वं शुद्धोपयोगफलं निर्वाणं भणितमिदानीं पुनर्निर्वाणस्य फलमनन्तसुखं कथयतीति पातनिकात्रयस्यार्थं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयतिः—**अइसयं** आसंसाराद्देवेन्द्रादि-

---

तिर्यंच तथा नारकी होकर हजारों दुःखोंसे हमेशा दुःखी होताहुआ संसारमें भ्रमण करता है । **भावार्थ**—शुभोपयोग किसी एक व्यवहारनयके अंगसे धर्मका अंग है, परंतु यह अशुभोपयोग तो धर्मका अंग किसी तरह भी नहीं है । इसलिये यह अत्यंत ही हेय है । और जो इसमें लगे रहते हैं, वे खोटे मनुष्य, तिर्यंच, नारकी इन तीन गतियोंमें अनेक दुःखोंसे क्लेशरूप होतेहुए सदाकाल भटकते हैं ॥ १२ ॥ आगे अत्यंत उपादेय शुद्ध उपयोगका फल दिखाते हैंः—**[शुद्धोपयोगप्रसिद्धानां एतादृशं सुखं]** वीतराग—परमसामायिक चारित्रसे उत्पन्न हुए जो अरहंत और सिद्ध हैं उनके ही ऐसा सुख विद्यमान है । कैसा है सुख । **[अतिशयम्]** सबसे अधिक है । क्योंकि अनादिकालसे लेकर ऐसा सुख कभी इन्द्र वगैरहकी पदवियोंमें भी अपूर्व आश्चर्य करनेवाला परम-

अथ शुद्धोपयोगपरिणतात्मस्वरूपं निरूपयति:—

सुविदिदपदत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो ।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगोत्ति ॥ १४ ॥

सुविदितपदार्थसूत्रः संयमतपःसंयुतो विगतरागः ।
श्रमणः समसुखदुःखो भणितः शुद्धोपयोग इति ॥ १४ ॥

सूत्रार्थज्ञानबलेन स्वपरद्रव्यविभागपरिज्ञानकारणात्, विधानसमर्थत्वात्सुविदितपदार्थसूत्रः। सकलषड्जीवनिकायनिशुम्भनविकल्पात्पञ्चेन्द्रियाभिलाषविकल्पाच्च व्यावर्त्यात्मनः शु-

---

सुखेभ्योऽप्यपूर्वाद्भुतपरमाह्लादरूपत्वादतिशयस्वरूपं, **आदसमुत्थं** रागादिविकल्परहितस्वशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नत्वादात्मसमुत्थं, **विसयातीदं** निर्विषयपरमात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतपञ्चेन्द्रियविषयातीतत्वाद्विषयातीतं, **अणोवमं** निरुपमपरमानन्दैकलक्षणत्वेनोपमारहितत्वादनुपमं, **अणंतं** अनन्तागामिकाले विनाशाभावादप्रमितत्वाद्वाऽनन्तं, **अव्वुच्छिण्णं च** असातोदयाभावान्निरन्तरत्वादविच्छिन्नं च **सुहं** एवमुक्तविशेषणविशिष्टं सुखं भवति । केषाम् । **सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं** वीतरागपरमसामायिकशब्दवाच्यशुद्धोपयोगेन प्रसिद्धा उत्पन्ना येऽर्हत्सिद्धास्तेषामिति । अत्रेदमेव सुखमुपादेयत्वेन निरन्तरं भावनीयमिति भावार्थः ॥ १३ ॥ अथ येन शुद्धोपयोगेन पूर्वोक्तसुखं भवति तत्परिणतपुरुषलक्षणं प्रकाशयति—**सुविदिदपयत्थसुत्तो** सुष्ठु संशयादिरहितत्वेन विदिता ज्ञाता रोचिताश्च निजशुद्धात्मादिपदार्थास्तत्प्रतिपादकसूत्राणि च येन स सुविदि-

---

आनंदरूप नहीं हुआ । फिर कैसा है ? [**आत्मसमुत्थं**] अपने आत्मासे ही उत्पन्न हुआ है, पराधीन नहीं है । फिर कैसा है ? [**विषयातीतं**] पांच इंद्रियोंके स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्दस्वरूप जो विषय–पदार्थ उनसे रहित है, संकल्प–विकल्परहित अतींद्रियसुख है । फिर कैसा है ? [**अनौपम्यं**] उपमासे रहित है अर्थात् तीन लोकमें जिस सुखके बराबर दूसरा सुख नहीं है । इस सुखकी अपेक्षा दूसरे सब सुख दुःखही स्वरूप हैं । फिर कैसा है ? [**अनन्तं**] जिसका नाश नहीं होता सदा ही नित्य है । फिर कैसा है । [**अव्युच्छिन्नं**] बाधारहित–हमेशा एकसा रहता है । ऐसा सुख शुद्धोपयोगकाही फल है । इससे यह अभिप्राय निकला कि, शुद्धोपयोग सर्वप्रकारसे उपादेय है और शुभ, अशुभोपयोग हेय हैं । इन दोनोंमें व्यवहारनयसे किसीतरह शुभोपयोग तो उपादेय है परन्तु अशुभोपयोग तो सर्वथाही हेय है ॥ १३ ॥ आगे शुद्धोपयोगसहित जीवका स्वरूप कहते हैं:—[**एतादृशः श्रमणः शुद्धोपयोगः इति भणितः**] ऐसा परम मुनि शुद्धोपयोगभावस्वरूप परिणमता है । इसप्रकार वीतराग–देवने कहा है । कैसा है वह श्रमण अर्थात् मुनि । [**सुविदितपदार्थसूत्रः**] अच्छी-रीतिसे जानलिये हैं जीवादि नव पदार्थ तथा इन पदार्थोंका कहनेवाला सिद्धांत जि-

द्धस्वरूपे संयमनात्, स्वरूपविश्रान्तनिस्तरङ्गचैतन्यप्रतपनाच्च संयमतपःसंयुतः । सकलमोहनीयविपाकविवेकभावनासौष्ठवस्फुटीकृतनिर्विकारात्मस्वरूपत्वाद्विगतरागः । परमकलावलोकनाननुभूयमानसातासातवेदनीयविपाकनिर्वर्तितसुखदुःखजनितपरिणामवैषम्यात्सममुखदुःखः श्रमणः शुद्धोपयोग इत्यभिधीयते ॥ १४ ॥

तपदार्थसूत्रो भण्यते । **संजमतवसंजुदो** बाह्ये द्रव्येन्द्रियव्यावर्तनेन षड्जीवरक्षणेन चाभ्यन्तरे निजशुद्धात्मसंवित्तिबलेन स्वरूपे संयमनात् संयमयुक्तः, बाह्याभ्यन्तरतपोबलेन कामक्रोधादिशत्रुभिरखण्डितप्रतापस्य स्वशुद्धात्मनि प्रतपनाद्विजयनात्तपःसंयुक्तः । **विगदरागो** वीतरागशुद्धात्मभावनाबलेन समस्तरागादिदोषरहितत्वाद्वीतरागः । **समसुहदुक्खो** निर्विकारनिर्विकल्पसमाधेरुद्गता समुत्पन्ना तथैव परमानन्तसुखरसे लीना तल्लया निर्विकारस्वसंवित्तिरूपा या तु परमकला तदवष्टम्भेनेष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरहितत्वात्समसुखदुःखः **समणो** एवं गुणविशिष्टः श्रमणः परममुनिः **भणिओ सुद्धोवओगोत्ति** शुद्धोपयोगो भणित इत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥ एवं शुद्धोपयोगफलभूतानन्तसुखस्य शुद्धोपयोगपरिणतपुरुषस्य च कथनरूपेण पञ्चमस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥

(अथास्यान्तराधिकारस्योपोद्घातः)—अथ प्रवचनसारव्याख्यायां मध्यमरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थायां मुख्यगौणरूपेणान्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वप्ररूपणसमर्थायां च प्रथमत एकोत्तरशतगाथाभिर्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं त्रयोदशाधिकशतगाथाभिर्दर्शनाधिकारः, ततश्च सप्तनवतिगाथाभिश्चारित्राधिकारश्चेति समुदायेनैकादशाधिकत्रिशतप्रमितसूत्रैः सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्ररूपेण महाधिकारत्रयं भवति । अथवा टीकाभिप्रायेण तु सम्यग्ज्ञानज्ञेयचारित्राधिकारचूलिकारूपेणाधिकारत्रयम् । तत्राधिकारत्रये प्रथमतस्तावज्ज्ञानाभिधानमहाधिकारमध्ये द्वासप्ततिगाथापर्यन्तं शुद्धोपयोगाधिकारः कथ्यते । तासु द्वासप्ततिगाथासु मध्ये "एस सुरासुर—" इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण चतुर्दशगाथापर्यन्तं पीठिका । तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंश-

---

सने । अर्थात् जिसने अपना और परका भेद भले प्रकार जान लिया है, श्रद्धान किया है तथा निजस्वरूपमें ही आचरण किया है, ऐसा मुनीश्वरही शुद्धोपयोगवाला है । फिर कैसा है ? **[संयमतपःसंयुतः]** पांच इन्द्रिय तथा मनकी अभिलाषा और छह कायके जीवोंकी हिंसा इनसे आत्माको रोककर अपने स्वरूपका आचरण रूप जो संयम, और बाह्य तथा अंतरंग बारह प्रकारके तपके बलकर स्वरूपकी स्थिरताके प्रकाशसे ज्ञानका तपन (देदीप्यमान होना) स्वरूप तप, इन दोनों कर सहित है । फिर कैसा है । **[विगतरागः]** दूर हुआ है परद्रव्यसे रमण करना रूप परिणाम जिसका । फिर कैसा है **[समसुखदुःखः]** समान हैं सुख और दुःख जिसके अर्थात् उत्कृष्टज्ञानकी कलाकी सहायताकर इष्ट वा अनिष्टरूप इन्द्रियोंके विषयोंमें हर्ष तथा खेद नहीं करता है, ऐसा जो श्रमण है वही शुद्धोपयोगी कहा जाता है ॥ १४ ॥

अथ शुद्धोपयोगलाभान्तरभाविविशुद्धात्मस्वभावलाभमभिनन्दति:—

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ ।
भूदो सयमेवादा जादि परं णेयभूदाणं ॥ १५ ॥

उपयोगविशुद्धो यो विगतावरणान्तरायमोहरजाः ।
भूतः स्वयमेवात्मा याति परं ज्ञेयभूतानाम् ॥ १५ ॥

यो हि नाम चैतन्यपरिणामलक्षणेनोपयोगेन यथाशक्ति विशुद्धो भूत्वा वर्तते स

ङ्गाथापर्यन्तं ज्ञानप्रपञ्चः। ततश्चाष्टादशगाथापर्यन्तं सुखप्रपञ्चश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन शुद्धोपयोगाधिकारो भवति। अथ पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयप्रतिपादकनामा द्वितीयोऽधिकारश्चेत्यधिकारद्वयेन, तदनन्तरं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन चैकोत्तरशतगाथाभिः प्रथममहाधिकारे समुदायपातनिका ज्ञातव्या ॥

इदानीं प्रथमपातनिकाभिप्रायेण प्रथमतः पञ्चगाथापर्यन्तं पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारादिप्ररूपणप्रपञ्चः, तदनन्तरं सप्तगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयपीठिकाव्याख्यानं क्रियते, तत्र पञ्चस्थलानि भवन्ति तेष्वादौ नमस्कारमुख्यत्वेन गाथापञ्चकं, तदनन्तरं चारित्रसूचनमुख्यत्वेन **"संपज्जइ णिव्वाणं"** इति प्रभृति गाथात्रयमथशुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन **"जीवो परिणमदि"** इत्यादिगाथासूत्रद्वयमथ तत्फलकथनमुख्यतया **"धम्मेण परिणदप्पा"** इति प्रभृति सूत्रद्वयम् । अथ शुद्धोपयोगध्यातुः पुरुषस्य प्रोत्साहनार्थं शुद्धोपयोगफलदर्शनार्थं च प्रथमगाथा, शुद्धोपयोगिपुरुषलक्षणकथनेन द्वितीया चेति **'अइसयमादसमुत्थं'** इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं पीठिकाभिधानप्रथमान्तराधिकारे स्थलपञ्चकेन चतुर्दशगाथाभिस्समुदायपातनिका प्रोक्ता ॥

इति चतुर्दशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन **पीठिकाभिधानः** प्रथमोन्तराधिकारः समाप्तः ॥

तदनन्तरं सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिर्ज्ञानविचारः संक्षेपेण शुद्धोपयोगफलं चेति कथनरूपेण गाथासप्तकम् । तत्र स्थलचतुष्टयं भवति, तस्मिन् प्रथमस्थले सर्वज्ञस्वरूपकथनार्थं प्रथमगाथा, स्वयम्भूकथनार्थं द्वितीया चेति **"उवओगविसुद्धो"** इत्यादि गाथाद्वयम् । अथ तस्यैव भगवत उत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनार्थं प्रथमगाथा, पुनरपि तस्यैव दृढीकरणार्थं द्वितीया चेति **'भंगविहीणो'** इत्यादि गाथाद्वयम् । अथ सर्वज्ञश्रद्धानेनानन्तसुखं भवतीति दर्शनार्थं **'तं सव्वट्ठवरिट्ठं'** इत्यादि सूत्रमेकम् । अथातीन्द्रियज्ञानसौख्यपरिणमनकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, केवलिभुक्तिनिराकरणमुख्यत्वेन द्वितीया चेति **'पक्खीणघाइकम्मो'** इति प्रभृति गाथाद्वयम् । एवं द्वितीयान्तराधिकारे स्थलचतुष्टयेन समुदायपातनिका ॥ तद्यथा—अथ शुद्धोपयोगलाभा-

---

आगे शुद्धोपयोगके लाभके बाद ही शुद्ध आत्मस्वभावकी प्राप्ति होती है ऐसा कहते हैं:—
[यः उपयोगविशुद्धः स आत्मा ज्ञेयभूतानां पारं याति] जो आत्मा शुद्धो-

खलु प्रतिपदमुद्भिद्यमानविशिष्टविशुद्धिशक्तिरुद्ग्रन्थितासंसारबद्धदृढतरमोहग्रन्थितयात्यन्तनिर्विकारचैतन्यो निरस्तसमस्तज्ञानदर्शनावरणान्तराया निःप्रतिघविजृम्भितात्मशक्तिश्च स्वयमेव भूतो ज्ञेयत्वमापन्नानामन्तमवाप्नोति । इह किलात्मा ज्ञानस्वभावो ज्ञानं तु ज्ञेयमात्रं ततः समस्तज्ञेयान्तर्वर्तिज्ञानस्वभावमात्मानमात्मा शुद्धोपयोगप्रसादादेवासादयति ॥१५॥ अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्य कारकान्तरनिरपेक्षितयाऽत्यन्तमात्मायत्तत्वं द्योतयतिः—

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो ।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभुत्ति णिद्दिट्ठो ॥ १६ ॥

नन्तरं केवलज्ञानं भवतीति कथयति । अथवा द्वितीयपातनिका—श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवाः सम्बोधनं कुर्वन्ति, हे शिवकुमारमहाराज? कोऽप्यासन्नभव्यः संक्षेपरुचिः पीठिकाव्याख्यानमेव श्रुत्वात्मकार्यं करोति, अन्यः कोपि पुनर्विस्तररुचिः शुद्धोपयोगेन संजातसर्वज्ञस्य ज्ञानसुखादिकं विचार्य पश्चादात्मकार्यं करोतीति व्याख्याति;—**उवओगविसुद्धो जो** उपयोगेन शुद्धोपयोगेन परिणामेन विशुद्धो भूत्वा वर्तते यः **विगदावरणंतरायमोहरओ भूदो** विगतावरणान्तरायमोहरजोभूतः सन् । कथम् । **सयमेव** निश्चयेन स्वयमेव **आदा** स पूर्वोक्त आत्मा **जादि** याति गच्छति । किं **परं** पारमवसानम् । केषाम् । **णेयभूदाणं** ज्ञेयभूतपदार्थानाम् । **सर्वं** जानातीत्यर्थः । अतो विस्तरः—यो निर्मोहशुद्धात्मसंवित्तिलक्षणेन शुद्धोपयोगसंज्ञेनागमभाषया पृथक्त्ववितर्कवीचारप्रथमशुक्लध्यानेन पूर्वं निरवशेषमोहक्षपणं कृत्वा तदनन्तरं रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवित्तिलक्षणेनैकत्ववितर्कवीचारसंज्ञद्वितीयशुक्लध्यानेन क्षीणकषायगुणस्थानेऽन्तर्मुहूर्तकालं स्थित्वा तस्यैवान्त्यसमये ज्ञानदर्शनावरणवीर्यान्तरायाभिधानघातिकर्मत्रयं युगपद्विनाशयति । स जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुगतानन्तधर्माणां युगपत्प्रकाशकं केवलज्ञानं प्राप्नोति । ततः स्थितं शुद्धोपयोगात्सर्वज्ञो भवतीति ॥ १५ ॥ अथ शुद्धोपयोगजन्यस्य शुद्धात्मस्वभाव-

---

पयोगसे निर्मल हो गया है वही आत्मा सब पदार्थोंके अंतको पाता है अर्थात् जो शुद्धोपयोगी जीव है वही तीनकालवर्ती समस्त पदार्थोंके जाननेवाले केवलज्ञानको प्राप्त होता है । कैसा होता हुआ कि [**विगतावरणान्तरायमोहरजाः स्वयमेव भूतः सन्**] दूर हुई है ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, तथा मोहनीय कर्मरूप धूलि (मल) जिससे ऐसा आपही होता हुआ । भावार्थ—जो शुद्धोपयोगी जीव है वह गुणस्थान गुणस्थान प्रति शुद्ध होता हुआ बारहवें गुणस्थानके अन्तमें संपूर्ण चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञानको पाता है । और आत्माका स्वभाव ज्ञान है ज्ञान ज्ञेयके प्रमाण है ज्ञेय तीनों कालोंमें रहनेवाले सब पदार्थ हैं इसलिये शुद्धोपयोगके प्रसादसे ही यह आत्मा सब ज्ञेयोंको जाननेवाले केवल ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ आगे शुद्धोपयोगका फल जो केवल ज्ञानमय शुद्धात्माका लाभ वह जिस समय इस आ-

तथा स लब्धस्वभावः सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितः ।
भूतः स्वयमेवात्मा भवति स्वयम्भूरिति निर्दिष्टः ॥ १६ ॥

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगभावनानुभावप्रत्यस्तमितसमस्तघातिकर्मतया समुपलब्धशुद्धानन्तशक्तिचित्स्वभावः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेन स्वतन्त्रत्वाद्गृहीतकर्तृत्वाधिकारः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन प्राप्यत्वात् कर्मत्वं कलयन्, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन साधकतमत्वात् करणत्वमनुबिभ्राणः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावेन कर्मणा समाश्रियमाणत्वात् संप्रदानत्वं दधानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनसमये पूर्वप्रवृत्तविकलज्ञानस्वभावापगमेपि सहजज्ञानस्वभावेन ध्रुवत्वावलम्बनादपा-

---

लाभस्य भिन्नकारकनिरपेक्षत्वेनात्माधीनत्वं प्रकाशयति;—**तह सो लद्धसहावो** यथा निश्चयरत्नत्रयलक्षणशुद्धोपयोगप्रसादात्सर्वं जानाति तथैव सः पूर्वोक्तलब्धशुद्धात्मस्वभावः सन् **आदा** अयमात्मा **हवदि सयंभुत्ति णिद्दिट्ठो** स्वयम्भूर्भवतीति निर्दिष्टः कथितः । किं विशिष्टो भूतः । **सव्वण्हू सव्वलोयपदिमहिदो भूदो** सर्वज्ञः सर्वलोकपतिमहितश्च भूतः सं-

---

त्माको होता है तब कर्ता—कर्मादि छह कारकरूप आपही होता हुआ स्वाधीन होता है और किसी दूसरे कारकको नहीं चाहता है यह कहते हैं:—[**तथा स आत्मा स्वयम्भूः भवति इति निर्दिष्टः**] जैसे शुद्धोपयोगके प्रभावसे केवलज्ञानादि गुणोंको प्राप्त हुआ था उसी प्रकार वही आत्मा "स्वयंभू"नामवालाभी होता है ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है । तात्पर्य यह है कि जो आत्मा केवलज्ञानादि स्वाभाविक गुणोंको प्राप्त हुआ हो उसीका नाम स्वयंभू है । क्योंकि व्याकरणकी व्युत्पत्तिसेभी जो 'स्वयं' अर्थात् आपहीसे अर्थात् दूसरे द्रव्यकी सहायताविना ही 'भवति' अर्थात् अपने स्वरूप होवै इस कारण इसका नाम स्वयंभू कहा गया है, यह आत्मा अपने स्वरूपकी प्राप्तिके समय दूसरे कारकको इच्छा नहीं करता है । आप ही छह कारकरूप होकर अपनी सिद्धि करता है क्योंकि आत्मामें अनंत शक्ति है । कैसा है वह । [**लब्धस्वभावः**] प्राप्त किया है घातिया कर्मोंके नाशसे अनंतज्ञानादिशक्तिरूप अपना स्वभाव जिसने । फिर कैसा है । [**सर्वज्ञः**] तीन कालमें रहनेवाले सब पदार्थोंको जाननेवाला है । फिर कैसा है स्वयंभू आत्मा । [**सर्वलोकपतिमहितः**] तीनों भुवनोंके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती इनकर पूजित है । फिर कैसा है । [**स्वयमेव भूतः**] अपने आपही परकी सहायताके विना अपने शुद्धोपयोगके बलसे अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके बन्धोंको तोड़कर निश्चयसे इस पदवीको प्राप्त हुआ है अर्थात् सकल सुर, असुर, मनुष्योंके स्वामियोंसे पूज्य सर्वज्ञ वीतराग तीन लोकका स्वामी शुद्ध अपने स्वयंभूपदको प्राप्त हुआ है ॥

दानत्वमुपाददानः, शुद्धानन्तशक्तिज्ञानविपरिणमनस्वभावस्याधारभूतत्वादधिकरणत्वमात्मसात्कुर्वाणः, स्वयमेव षट्कारकीरूपेणोपजायमानः, उत्पत्तिव्यपेक्षया द्रव्यभावभेदभिन्नघातिकर्माण्यपास्य स्वयमेवाविर्भूतत्वाद्वा स्वयंभूरिति निर्दिश्यते । अतो न निश्चयतः

जातः । कथम् । **सयमेव** निश्चयेन स्वयमेवेति । तथाहि—अभिन्नकारकचिदानन्दैकचैतन्यस्वस्वभावेन स्वतन्त्रत्वात् कर्ता भवति । नित्यानन्दैकस्वभावेन स्वयं प्राप्यत्वात् कर्मकारकं भवति । शुद्धचैतन्यस्वभावेन साधकतमत्वात्करणकारकं भवति । निर्विकारपरमानन्दैकपरिणतिलक्षणेन शुद्धात्मभावरूपकर्मणा समाश्रियमाणत्वात्संप्रदानं भवति । तथैव पूर्वमत्यादिज्ञानविकल्पविनाशे-

---

अब षट्कारक दिखाते हैं—कर्ता १ कर्म २ करण ३ संप्रदान ४ अपादान ५ अधिकरण ६ ये छह कारकके नाम हैं। और ये सब दो २ तरहके हैं एक व्यवहार दूसरा निश्चय। उनमें जिस जगह परके निमित्तसे कार्यकी सिद्धि कीजाय वहां व्यवहार षट्कारक होती हैं, और जिस जगह अपनेमें ही अपनेको उपादान कारण कर अपने कार्यकी सिद्धि कीजावै वहां निश्चय षट्कारक हैं। व्यवहार छह कारक, उपचार असद्भूतनयकर सिद्ध की जाती हैं इस कारण असत्य हैं, निश्चय छह कारक, अपनेमें ही जोड़ी जाती हैं इसलिये सत्य हैं। क्योंकि वास्तवमें कोई द्रव्य किसी द्रव्यका कर्ता व हर्ता नहीं है इसलिये व्यवहारकारक असत्य है, अपनेको आपही करता है इस कारण निश्चयकारक सत्य है। जो स्वाधीन होकर करै वह **कर्ता**, जो कार्य किया जावै वह **कर्म**, जिसकर किया जावै वह **करण** जो कर्मकर दिया जावै वह **संप्रदान**, जो एक अवस्थाको छोड़ दूसरी अवस्थारूप होवै वह **अपादान**, जिसके आधार कर्म होवै वह **अधिकरण** कहा जाता है। अब दोनों कारकोंका दृष्टांत दिखलाते हैं। उनमें प्रथम व्यवहारकर इस तरह है—जैसे कुंभकार (कुम्हार) कर्ता है, घड़ारूप कार्यको करता है इससे घट कर्म है, दंड चक्र चीवर (डोरा) आदिकर यह घट कर्म सिद्ध होता है इसलिये दंड आदिक करण कारक हैं, जल वगैरःके भरनेकेलिये घट दिया जाता है इस वास्ते संप्रदानकारक है, मट्टीकी पिंडरूपादि अवस्थाको छोड घट अवस्थाको प्राप्त होना अपादान कारक है, भूमिके आधारसे घटकर्म किया जाता है बनाया जाता है इसलिये भूमि अधिकरणकारक समझना, इस प्रकार ये व्यवहार कारक हैं। क्योंकि इनमें कर्ता दूसरा है कर्म अन्य है करण अन्यही द्रव्य है दूसरेहीको देना दूसरेसे करना। आधार जुदा ही है॥ निश्चय छह कारक अपने आपहीमें होते हैं जैसे—मृत्तिका-द्रव्य (मट्टी) करता है, अपने घट परिणाम कर्मको करता है इसलिये आपही कर्म है, आपही अपने घट परिणामको सिद्ध करता है इसलिये स्वयं ही करण है, अपने घट परिणामको करके अपनेकोही सौंप देता है इस कारण आपही संप्रदान है।

परेण सहात्मनः कारकत्वसम्बन्धोस्ति, यतः शुद्धात्मस्वभावलाभायसामग्रीमार्गणव्यग्रतया परतंत्रैर्भूयते ॥ १६ ॥

प्यखण्डितैकचैतन्यप्रकाशेनाविनश्वरत्वादपादानं भवति । निश्चयशुद्धचैतन्यादिगुणस्वभावात्मनः स्वयमेवाधारत्वादधिकरणं भवतीत्यभेदषट्कारकीरूपेण स्वत एव परिणममाणः सन्नयमात्मा परमात्मस्वभावकेवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे यतो भिन्नकारकं नापेक्षते ततः स्वयंभूर्भवतीति भावार्थः

अपनी मृत्पिंड अवस्थाको छोड़ अपनी घट अवस्थाको करता है इसलिये आपही अपादान है। अपनेमें ही अपने घटपरिणामको करता है इसवास्ते आपही अधिकरण है । इस तरह ये निश्चय षट्कारक हैं, क्योंकि किसीभी दूसरे द्रव्यकी सहायता नहीं है इस कारण अपने आपमें ही ये निश्चयकारक साधे जाते हैं। इसीप्रकार यह आत्मा संसार अवस्थामें जब शुद्धोपयोगभावरूप परिणमन करता है उस समय किसी दूसरेकी सहायता (मदत) न लेकर अपनीही अनंत शुद्धचैतन्यशक्तिकर आपही छह कारकरूप होके केवलज्ञानको पाता है इसी अवस्थामें 'स्वयंभू' कहा जाता है । शुद्ध अनंतशक्ति तथा ज्ञायकस्वभाव होनेसे अपने आधीन होता हुआ यह आत्मा अपने शुद्ध ज्ञायक स्वभावको करता है इसलिये आपही 'कर्ता' है, और जिस शुद्धज्ञायकस्वभावको करता है वह आत्माका कर्म है, सो वह कर्म आपही है क्योंकि शुद्ध–अनंतशक्ति, ज्ञायक स्वभावकर अपने आपकोही प्राप्त होती है वहां यह आत्मा ही 'कर्म' है, यह आत्मा अपने शुद्ध आत्मीक परिणामकर स्वरूपको साधन करता है वहांपर अपने अनंतज्ञान-कर 'करणकारक' होता है, यह आत्मा अपने शुद्धपरिणामोंको करता हुआ अपनेको ही देता है उस अवस्थामें शुद्ध अनंतशक्ति ज्ञायकस्वभाव कर्मकर आपको ही स्वीकार करता हुआ 'संप्रदानकारक' होता है, यह आत्मा जब शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता है उससमय इस आत्माके सांसारीक अशुद्ध–क्षायोपशमिक मतिआदिज्ञानका नाश होता है उसी अवस्थामें अपने स्वाभाविक ज्ञानस्वभावकर स्थिरपनेको धारण करता है तब 'अपादान कारक' होता है । यह आत्मा जब अपने शुद्ध अनंतशक्ति ज्ञायकस्वभावका आधार है उस दशामें 'अधिकरणकारक'को स्वीकार करता है । इस प्रकार यह आत्मा आपही षट्कारकरूप होकर अपने शुद्ध स्वरूपको उत्पन्न (प्रगट) करता है तभी स्वयंभू पदवीको पाता है। अथवा अनादिकालसे बहुत मजबूत बंधे हुए घातियाकर्मोंको (ज्ञानावरण १ दर्शनावरण २ मोहनीय ३ अन्तराय ४) नाशकरके आपही प्रगट हुआ है दूसरेकी सहायता कुछभी नहीं ली इस कारण स्वयंभू कहा जाता है ॥ यहां पर कोई प्रश्न करै कि परकी सहायतासे स्वरूपकी प्राप्ति क्यों नहीं होती ? उसका समाधान–कि जो यह आत्मा पराधीन होवै तो आकुलता सहित होजाय और जिस जगह आकुलता

अथ स्वायम्भुवस्यास्य शुद्धात्मस्वभावलाभस्यात्यन्तमनपायत्वं कथंचिदुत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तत्वं चालोचयतिः—

भंगविहीणो य भवो संभवपरिवज्जिदो विणासो हि ।
विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवायो ॥ १७ ॥

भङ्गविहीनश्च भवः संभवपरिवर्जितो विनाशो हि ।
विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः ॥ १७ ॥

अस्य खल्वात्मनः शुद्धोपयोगप्रसादात् शुद्धात्मस्वभावेन यो भवः स पुनस्तेन रूपेण प्रलयाभावाद्भङ्गविहीनः । यस्त्वशुद्धात्मभावेन विनाशः स पुनरुत्पादाभावात्संभवपरिवर्जितः । अतोस्य सिद्धत्वेनानपायित्वम् । एवमपि स्थितिसंभवनाशसमवायोस्य न विप्रतिषिध्यते, भङ्गरहितोत्पादेन संभववर्जितविनाशेन तद्द्वयाधारभूतद्रव्येण च समवेतत्वात् ॥ १७ ॥

॥ १६ ॥ एवं सर्वज्ञमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । स्वयंभूमुख्यत्वेन द्वितीया चेति प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम् ॥ अथास्य भगवतो द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायार्थिकनयेनानित्यत्वमुपदिशति;—**भंगविहीणो य भवो** भङ्गविहीनश्च भवः जीवितमरणादिसमताभावलक्षणपरमोपेक्षासंयमरूपशुद्धोपयोगेनोत्पन्नो योसौ भवः केवलज्ञानोत्पादः । स किं विशिष्टः । भङ्गविहीनो विनाशरहितः । **संभवपरिवज्जिओ विणासोत्ति** योसौ मिथ्यात्वरागादिसंसरणरूपसंसारपर्यायस्य विनाशः स किंविशिष्टः । संभवहीनः निर्विकारात्मतत्त्वविलक्षणरागादिपरिणामाभावादुत्पत्तिरहितः । तस्माज्ज्ञायते तस्यैव भगवतः सिद्धस्वरूपतो द्रव्यार्थिकनयेन विनाशो नास्ति । **विज्जदि तस्सेव पुणो ठिदिसंभवणाससमवाओ** विद्यते तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः, तस्यैव भगवतः पर्यायार्थिकनयेन शुद्धव्यञ्जनपर्यायापेक्षया सिद्धपर्यायेणोत्पादः, संसारपर्यायेण विनाशः, केवलज्ञानादिगुणाधारद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति । ततः स्थितं द्रव्यार्थिकनयेन नि-

---

है वहां स्वरूपकी प्राप्ति नहीं इस कारण परकी सहायता विनाही आत्मा निराकुल होता है, इसी दशामें अपनी सहायतासे आपको पाता है । इसवास्ते निश्चय करके आपही षट्कारक है । जो अपनी अनंत शक्तिरूप संपदासे परिपूर्ण है तो वह दूसरेकी इच्छा क्यों रक्खे अर्थात् कभी नहीं ? ॥ १६ ॥ आगे इस स्वयंभू प्रभूके शुद्धस्वभावको नित्य दिखलाते हैं और किसीप्रकारसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य अवस्थाभी दिखलाते हैं:—[**तस्य आत्मनः भंगविहीनः भवः विद्यते**] जो आत्मा शुद्धोपयोगके प्रसादसे स्वरूपको प्राप्त हुआ है उस आत्माके नाशरहित उत्पाद है । अर्थात् जो इस आत्माके शुद्धस्वभावकी उत्पत्ति हुई फिर उसका नाश कभी नहीं होता [**च संभवपरिवर्जितः विनाशः**] और विनाश है वह उत्पत्तिकर रहित है, अर्थात् अनादिकालकी अविद्या (अज्ञान) से पैदा हुआ जो विभाव (अशुद्ध) परिणाम उसका एकदफै

अथोत्पादादित्रयं सर्वद्रव्यसाधारणत्वेन शुद्धात्मनोप्यवश्यं भवतीति विभावयति:—

उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अत्थजादस्स ।
पज्जाएण दु केणवि अत्थो खलु होदि सब्भूदो ॥ १८ ॥

उत्पादश्च विनाशो विद्यते सर्वस्यार्थजातस्य ।
पर्यायेण तु केनाप्यर्थः खलु भवति सद्भूतः ॥ १८ ॥

यथाहि जात्यजाम्बूनदस्याङ्गदपर्यायेणोत्पत्तिर्दृष्टा । पूर्वव्यवस्थिताङ्गुलीयकादिपर्यायेण

त्वत्वेपि पर्यायार्थिकनयेनोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयं संभवतीति ॥ १७ ॥ अथोत्पादादित्रयं यथा सुवर्णादिमूर्तपदार्थेषु दृश्यते तथैवामूर्तेपि सिद्धस्वरूपे विज्ञेयं पदार्थत्वादिति निरूपयति;—**उप्पादो य विणासो विज्जदि सव्वस्स अट्ठजादस्स** उत्पादश्च विनाशश्च विद्यते तावत्सर्वस्यार्थजातस्य पदार्थसमूहस्य । केन कृत्वा । **पज्जाएण दु केणवि** पर्यायेण तु केनापि विवक्षितेनार्थव्यञ्जनरूपेण स्वभावविभावरूपेण वा । स चार्थः किं विशिष्टः । **अट्ठो खलु होइ संभूदो** अर्थः खलु स्फुटं सत्ताभूतः सत्ताया अभिन्नो भवतीति । तथाहि—सुवर्णगोरसमृत्तिकापुरुषादिमूर्तपदार्थेषु यथोत्पादादित्रयं लोके प्रसिद्धं तथैवामूर्तेपि मुक्तजीवे । यद्यपि शुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिलक्षणस्य संसारावसानोत्पन्नकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशो भ-

---

नाश हुआ फिर वह नहीं उत्पन्न होता है इससे तात्पर्य यह निकला कि जो इस भगवान (ज्ञानवान) आत्माके उत्पाद है वह विनाशरहित है और विनाश उत्पत्तिरहित है तथा अपने सिद्धिस्वरूप कर ध्रुव (नित्य) है अर्थात् जो यह आत्मा पहले अशुद्ध हालतमें था वही आत्मा अब शुद्धदशामें मौजूद है इसकारण ध्रुव है । **[तस्यैव पुनः स्थितिसंभवनाशसमवायः]** फिर उसी आत्माके ध्रौव्य उत्पत्ति नाश इन तीनोंका मिलाप एकही समयमें मौजूद है क्योंकि यह भगवान एकही वक्त तीनों स्वरूप परिणमता है अर्थात् जिस समय शुद्धपर्यायकी उत्पत्ति है उसी वक्त अशुद्ध पर्यायका नाश है और उसी कालमें द्रव्यपनेसे ध्रुव है दूसरे समयकी जरूरतही नहीं है इस कहनेसे यह अभिप्राय हुआ कि द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा नित्य होनेपरभी पर्यायार्थिकनयसे उत्पत्ति, विनाश, ध्रौव्य, इन तीनों सहितही है ॥ १७ ॥ आगे उत्पाद आदिक द्रव्यका स्वरूप है इस कारण सब द्रव्योंमें है तो फिर आत्मामेंभी अवश्य है यह कहते हैं ।

[केनापि] किसी एक **[पर्यायेण]** पर्यायसे **[सर्वस्य अर्थजातस्य]** सब पदार्थोंकी **[उत्पादः]** उत्पत्ति **[च विनाशः]** तथा नाश **[विद्यते]** मौजूद है **[तु]** लेकिन **[खलु]** निश्चयसे **[अर्थः]** पदार्थ **[सद्भूतः]** सत्तास्वरूप **[भवति]** है । **भावार्थ**—पदार्थका अस्तित्व (होना) सत्तागुणसे है और सत्ता उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप है सो किसी पर्यायसे उत्पाद तथा किसी पर्यायसे विनाश और किसी

च विनाशः । पीततादिपर्यायेण तूभयत्राप्युत्पत्तिविनाशावनासादयतः ध्रुवत्वम् । एवमखिलद्रव्याणां केनचित्पर्यायेणोत्पादः केनचिद्विनाशः केनचिद्ध्रौव्यमित्यवबोद्धव्यम् । अतः शुद्धात्मनोप्युत्पादादित्रयरूपं द्रव्यलक्षणभूतमस्तित्वमवश्यं भावि ॥ १८ ॥

अथास्यात्मनः शुद्धोपयोगानुभावात्स्वयंभुवो भूतस्य कथमिन्द्रियैर्विना ज्ञानानन्दाविति संदेहमुदस्यति;—

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो ।
जादो अदिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि ॥ १९ ॥

वति तथैव केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारपर्यायस्योत्पादश्च भवति, तथाप्युभयपर्यायपरिणतात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यत्वं पदार्थत्वादिति । अथवा ज्ञेयपदार्थाः प्रतिक्षणं भङ्गत्रयेण परिणमन्ति तथा ज्ञानमपि परिच्छित्त्यपेक्षया भङ्गत्रयेण परिणमति । षट्स्थानगतागुरुलघुकगुणवृद्धिहान्यपेक्षया वा भङ्गत्रयमवबोद्धव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ १८ ॥ एवं सिद्धजीवे द्रव्यार्थिकन-

---

पर्यायसे ध्रुवपना सब पदार्थोंमें है । जब सब पदार्थोंमें तीनों अवस्था हैं तब आत्मामेंभी अवश्य होना सम्भव है । जैसे सोना कुंडल पर्यायसे उत्पन्न होता है पहली कंकण (कड़ा) पर्यायसे विनाशको पाता है और पीत, गुरु, तथा स्निग्ध (चिकने) आदिक गुणोंसे ध्रुव है इसी प्रकार यह जीवभी संसारअवस्थामें देव आदि पर्यायकर उत्पन्न होता है, मनुष्य आदिक पर्यायसे विनाश पाता है और जीवपनेसे स्थिर है । मोक्ष अवस्थामेंभी शुद्धपनेसे उत्पन्न होता है अशुद्ध पर्यायसे विनाशको प्राप्त होता है और द्रव्यपनेसे ध्रुव है । अथवा आत्मा सब पदार्थोंको जानता है ज्ञान है वह ज्ञेय (पदार्थ)के आकार होता है इस लिये सब पदार्थ जैसे २ उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप होते हैं वैसा २ ज्ञानभी होता है, इस ज्ञानकी अपेक्षाभी आत्माके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य जान लेना, तथा षट्गुणी हानि वृद्धिकी अपेक्षाभी उत्पाद आदिक तीन आत्मामें हैं । इसी प्रकार और बाकी द्रव्योंमें उत्पाद आदि सिद्ध करलेना ॥ यहांपर किसीने प्रश्न किया कि द्रव्यका अस्तित्व (मौजूद होना) उत्पाद वगैरः तीनसे क्यों कहा है एक ध्रुवहीसे कहना चाहिये क्योंकि जो ध्रुव (स्थिर) होगा वह हमेशा मौजूद रहसक्ता है ? इसका समाधान इसतरह है—जो पदार्थ ध्रुवही होता तब मट्टी सोना दूध आदि सब पदार्थ अपने सादा आकारसेही रहते घड़ा, कुंडल, दही वगैरः भेद कभी नहीं होते परंतु ऐसा देखनेमें नहीं आता । भेद तो अवश्य देखनेमें आता है इस कारण पदार्थ अवस्थाकर उपजताभी है और नाशभी पाता है इसीलिये द्रव्यका स्वरूप उत्पाद, व्ययभी है । अगर ऐसा न माना जावे तो संसारकाही लोप होजावे इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि पर्यायसे उत्पाद तथा व्यय सिद्ध होते हैं और द्रव्यपनेसे ध्रुव सिद्ध होता है इन तीनोंसेही द्रव्यका अस्तित्व (मौजूदगी) है ॥ १८ ॥

आगे कहते हैं कि यह आत्मा शुद्धोपयोगके प्रभावसे स्वयंभू तो हुआ परंतु इंद्रि-

प्रक्षीणघातिकर्मा अनन्तवरवीर्योऽधिकतेजाः ।
जातोतीन्द्रियः स ज्ञानं सौख्यं च परिणमते ॥ १९ ॥

अयं खल्वात्मा शुद्धोपयोगसामर्थ्यात् प्रक्षीणघातिकर्मा, क्षायोपशमिकज्ञानदर्शनासंपृक्तत्वादतीन्द्रियो भूतः सन्निखिलान्तरायक्षयादनन्तवरवीर्यः, कृत्स्नज्ञानदर्शनावरणप्रलयादधिककेवलज्ञानदर्शनाभिधानतेजाः, समस्तमोहनीयाभावादत्यन्तनिर्विकारशुद्धचैतन्यस्व-

---

येन नित्यत्वेऽपि विवक्षितपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्यस्थापनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ तं पूर्वोक्तसर्वज्ञं ये मन्यन्ते ते सम्यग्दृष्टयो भवन्ति, परम्परया मोक्षं च लभन्त इति प्रतिपादयति;—

[1]**तं सव्वट्ठवरिट्ठं इट्ठं अमरासुरप्पहाणेहिं ।**
ये सद्दहंति जीवा तेसिं दुक्खाणि खीयंति ॥ १ ॥

तं सव्वट्ठवरिट्ठं तं सर्वार्थवरिष्ठं **इट्ठं** इष्टमभिमतम् । कैः । **अमरासुरप्पहाणेहिं** अमरासुरप्रधानैः । **ये सद्दहंति** ये श्रद्दधति रोचन्ते **जीवा** भव्यजीवाः । **तेसिं** तेषाम् । **दुक्खाणि** दुःखानि । **खीयंति** विनाशं गच्छन्ति, इति सूत्रार्थः ॥ १ ॥ एवं निर्दोषिपरमात्मश्रद्धानान्मोक्षो भवतीति कथनरूपेण तृतीयस्थले गाथा गता ॥ अथास्यात्मनो निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणशुद्धोपयोगप्रभावात्सर्वज्ञत्वे सतीन्द्रियैर्विना कथं ज्ञानानन्दाविति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति—**पक्खीणघाइकम्मो** ज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयस्वरूपपरमात्मद्रव्यभावनालक्षणशुद्धोपयोगबलेन प्रक्षीणघातिकर्मा सन् । **अणंतवरवीरियो** अनन्तवरवीर्यः । पुनरपि किं विशिष्टः । **अहियतेजो** अधिकतेजाः । अत्र तेजःशब्देन केवलज्ञानदर्शनद्वयं ग्राह्यम् । **जादो सो** स पूर्वो-

---

योंके विना ज्ञान और आनंद इस आत्माके किस तरह होता है, ऐसी शंकाको दूर करते हैं अर्थात् ये अज्ञानी जीव इन्द्रियविषयोंके भोगनेमेंही ज्ञान, आनंद मान बैठे हैं उनके चेतावनेके लिये स्वभावसे उत्पन्न हुए ज्ञान तथा सुखको दिखाते हैं;—**[सः]** वह स्वयंभू भगवान् आत्मा **[अतीन्द्रियः जातः 'सन्']** इन्द्रिय ज्ञानसे रहित होता हुआ **[ज्ञानं सौख्यं च]** अपने और परके प्रकाशने (जानने)वाला ज्ञान तथा आकुलता रहित अपना सुख, इन दोनों स्वभावरूप **[परिणमति]** परिणमता है । कैसा है भगवान् । **[प्रक्षीणघातिकर्मा]** सर्वथा नाश किये हैं चार घातिया कर्म जिसने अर्थात् जबतक घातियाकर्म सहित था तबतक क्षायोपशमिक मत्यादि ज्ञान तथा चक्षुरादि दर्शन सहित था । घातिया कर्मोंके नाश होतेही अतीन्द्रिय हुआ । फिर कैसा है । **[अनन्तवरवीर्यः]** मर्यादा रहित है उत्कृष्ट बल जिसके अर्थात् अंतरायके दूर होनेसे अनन्तबलसहित है । फिर कैसा है । **[अधिकतेजाः]** अनंत है ज्ञानदर्शन-

---

१ इस गाथाकी श्रीमत अमृतचन्द्राचार्यने टीका नहीं की इस तात्पर्यवृत्तिमें ही इसका व्याख्यान है इसकारण क्षेपक होनेका संदेह है ।

भावमात्मानमासादयन् स्वयमेव स्वपरप्रकाशकत्वलक्षणं ज्ञानमनाकुलत्वलक्षणं सौख्यं च भूत्वा परिणमते । एवमात्मनो ज्ञानानन्दौ स्वभाव एव । स्वभावस्य तु परानपेक्षत्वादिन्द्रियैर्विनाप्यात्मनो ज्ञानानन्दौ संभवतः ॥ १९ ॥

अथानिन्द्रियत्वादेव शुद्धात्मनः शारीरं सुखदुःखं नास्तीति विभावयति;—

सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं ।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं ॥ २० ॥

त्तलक्षण आत्मा जातः संजातः । कथंभूतः । **अणिंदियो** अनिन्द्रिय इन्द्रियविषयव्यापाररहितः । अतीन्द्रियः सन् किं करोति । **णाणं सोक्खं च परिणमदि** केवलज्ञानमनन्तसौख्यं च परिणमतीति । तथाहि—अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति, आत्मा तावन्निश्चयेनानन्तज्ञानसुखस्वभावोऽपि व्यवहारेण संसारावस्थायां कर्मप्रच्छादितज्ञानसुखः सन् पश्चादिन्द्रियाधारेण किमप्यल्पज्ञानं सुखं च परिणमति । यदा पुनर्निर्विकल्पस्वसंवित्तिबलेन कर्माभावो भवति तदा क्षयोपशमाभावादिन्द्रियाणि न सन्ति स्वकीयातीन्द्रियज्ञानसुखं चानुभवति । तदपि कस्मात् । स्वभावस्य परापेक्षा नास्तीत्यभिप्रायः ॥ १९ ॥ अथातीन्द्रियत्वादेव केवलिनः शरीराधारोद्भूतं भोजनादिसुखं क्षुधादिदुःखं च नास्तीति विचारयतिः—**सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि** सुखं वा पुनर्दुःखं वा केवलज्ञानिनो नास्ति । कथंभूतम् । **देहगदं** देहगतं देहाधारजिह्वेन्द्रियादिसमुत्पन्न कवलाहारादिसुखम्, असातोदयजनितं क्षुधादिदुःखं च । कस्मान्नास्ति । **जह्मा अदिंदियत्तं जादं** यस्मान्मोहादिघातिकर्माभावे पञ्चेन्द्रियविषयसुखाय

रूप प्रकाश जिसके अर्थात् ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके जानेसे अनंतज्ञान, अनंतदर्शनमयी है । और समस्त मोहनीय कर्मके नाशसे स्थिर अपने स्वभावको प्राप्त होगया है । **भावार्थ**—इस आत्माका स्वभाव ज्ञान–आनंद है परके अधीन नहीं है इस लिये निरावरण अवस्थामेंही इन्द्रियविना ज्ञान, सुख स्वभावसेही परिणमते हैं । जैसे सूर्यका स्वभाव प्रकाश है वह मेघपटलोंकर ढंक जानेसे हीन प्रकाश होजाता है, लेकिन मेघसमूहके दूर होजानेपर स्वाभाविक प्रकाश होजाता है, इसी प्रकार इस आत्माकेभी इन्द्रिय–आवरण करनेवाले कर्मोंके दूर होजानेसे स्वाभाविक (किसीके निमित्तविना) ज्ञान तथा सुख प्रगट होजाता है ॥ १९ ॥

आगे जबतक आत्मा इंद्रियोंके अधीन है तबतक शरीरसंबंधी सुख, दुःखका अनुभव करता है । यह केवलज्ञानी भगवान् अतीन्द्रिय है इस कारण इसके शरीरसंबंधी सुख, दुःख नहीं है ऐसा कहते हैं;—[**केवलज्ञानिनः**] केवल ज्ञानीके [**देहगतम्**] शरीरसे उत्पन्न हुआ [**सौख्यं**] भोजनादिक सुख [**वा पुनः दुःखं**] अथवा भूख वगैरःका दुःख [**नास्ति**] नही है [**यस्मात्**] इसी कारणसे इस केवली भगवानके [**अतीन्द्रियत्वं जातं**] इन्द्रियरहित भाव प्रगट हुआ [**तस्मात्तु**] इसी–

सौख्यं वा पुनर्दुःखं केवलज्ञानिनो नास्ति देहगतम् ।
यस्मादतीन्द्रियत्वं जातं तस्मात्तु तज्ज्ञेयम् ॥ २० ॥

यत एव शुद्धात्मनो जातवेदस इव कालायसगोलोत्कूलितपुद्गलाशेषविलासकल्पो

व्यापाररहितत्वं जातम् । **तह्मा दु तं णेयं** तस्मादतीन्द्रियत्वाद्धेतोरतीन्द्रियमेव तज्ज्ञानं सुखं च ज्ञेयमिति । तद्यथा—लोहपिण्डसंसर्गाभावादग्निर्यथा घनघातपिट्टनं न लभते तथायमात्मापि लोहपिण्डस्थानीयेन्द्रियग्रामाभावात् सांसारिकसुखदुःखं नानुभवतीत्यर्थः । कश्चिदाह—केवलिनां भुक्तिरस्ति, औदारिकशरीरसद्भावात् । असद्वेद्यकर्मोदयसद्भावाद्वा । अस्मदादिवत् । परिहारमाह—तद्भगवतः शरीरमौदारिकं न भवति किन्तु परमौदारिकम्—**शुद्धस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः । जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम् ॥ १ ॥** यच्चोक्तमसद्वेद्योदयसद्भावात्तत्र परिहारमाह—यथा व्रीह्यादिबीजं जलसहकारिकारणसहितमङ्कुरादिकार्यं जनयति तथैवासद्वेद्यकर्म मोहनीयसहकारिकारणसहितं क्षुधादिकार्यमुत्पादयति । कस्मात् । **'मोहस्स बलेण घाददे जीवं'** इति वचनात् । यदि पुनर्मोहाभावेपि क्षुधादिपरीषहं जनयति तर्हि वधरोगादिपरीषहमपि जनयतु न च तथा । तदपि कस्मात् । "भुक्त्युपसर्गाभावात्" इति वचनात् । अन्यदपि दूषणमस्ति । यदि क्षुधाबाधास्ति तर्हि क्षुधाक्षीणशक्तेरनन्तवीर्यं नास्ति । तथैव क्षुधादुःखितस्यानन्तसुखमपि नास्ति । जिह्वेन्द्रियपरिच्छित्तिरूपमतिज्ञानपरिणतस्य केवलज्ञानमपि न संभवति । अथवा अन्यदपि कारणमस्ति । असद्वेद्योदयापेक्षया सद्वेद्योदयोऽनन्तगुणोस्ति । ततः कारणात् शर्कराराशिमध्ये निम्बकणिकावदसद्वेद्योदयो विद्यमानोपि न ज्ञायते । तथैवान्यदपि बाधकमस्ति—यथा प्रमत्तसंयतादितपोधनानां वेदोदये विद्यमानेपि मन्दमोहोदयत्वादखण्डब्रह्मचारिणां स्त्रीपरीषहबाधा नास्ति । यथैव च नवग्रैवेयकाद्यहमिन्द्रदेवानां वेदोदये विद्यमानेपि मन्दमोहोदयेन स्त्रीविषयबाधा नास्ति, तथा भगवत्यसद्वेद्योदये विद्यमानेपि निरवशेषमोहाभावात् क्षुधाबाधा नास्ति । यदि पुनरुच्यते भवद्भिः—मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवलिपर्यन्तास्त्रयोदशगुणस्थानवर्तिनो जीवा आहारका भवन्तीत्याहारकमार्गणायामागमे भणितमास्ते, ततः कारणात् केवलिनामाहारोस्तीति । तदप्ययुक्तम् । परिहारः—**णोकम्म-कम्महारो कवलाहारो य लेप्पमाहारो । ओजमणोवि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥ १ ॥** इति गाथाकथितक्रमेण यद्यपि षट्प्रकार आहारो भवति तथापि नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वमवबोद्धव्यम् । न च कवलाहारापेक्षया । तथाहि—सूक्ष्माः सुरसाः सुगन्धा अन्यमनुजानामसंभविनः कवलाहारं विनापि किञ्चिदूनपूर्वकोटिपर्यन्तं शरीरस्थितिहेतवः सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीरनोकर्माहारयोग्या लाभान्तरायकर्मनिरवशेषक्षयात् प्रतिक्षणं पुद्गला आस्रवन्तीति नवके-

---

लिये **[तत् ज्ञेयम्]** तत् अर्थात् अतीन्द्रियही ज्ञान और सुख जानने चाहिये । **भावार्थ**—जैसे आग लोहेके गोलेकी संगति छूट जानेपर घनकी चोटको नहीं प्राप्त होती इसी प्रकार यह आत्माभी लोहके पिण्डसमान जो इन्द्रियग्राम उसके अभावसे

नास्तीन्द्रियग्रामस्तत एव घोरघनघाताभिघातपरम्परास्थानीयं शरीरगतं सुखदुःखं न स्यात् ॥ २० ॥

अथ ज्ञानस्वरूपप्रपञ्चं सौख्यस्वरूपप्रपञ्चं च क्रमप्रवृत्तप्रबन्धद्वैतेनाभिदधाति, तत्र केवलिनोतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वात्सर्वप्रत्यक्षं भवतीति विभावयति;—

वक्तिलब्धिव्याख्यानकाले भणितं तिष्ठति । ततो ज्ञायते नोकर्माहारापेक्षया केवलिनामाहारकत्वम् । अथ मतम्—भवदीयकल्पनया आहारानाहारकत्वं नोकर्माहारापेक्षया, न च कवलाहारापेक्षया चेति कथं ज्ञायते । नैवम् ।"एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः" इति तत्त्वार्थे कथितमास्ते । अस्य सूत्रस्यार्थः कथ्यते—भवान्तरगमनकाले विग्रहगतौ शरीराभावे सति नूतनशरीरधारणार्थं त्रयाणां शरीराणां षण्णां पर्याप्तीनां योग्यपुद्गलपिण्डग्रहणं नोकर्माहार उच्यते । स च विग्रहगतौ कर्माहारे विद्यमानेप्येकद्वित्रिसमयपर्यन्तं नास्ति । ततो नोकर्माहारापेक्षयाहारानाहारकत्वमागमे ज्ञायते । यदि पुनः कवलाहारापेक्षया तर्हि भोजनकालं विहाय सर्वदैवानाहारक एव, समयत्रयनियमो न घटते । अथ मतम्—केवलिनां कवलाहारोऽस्ति मनुष्यत्वात् वर्तमानमनुष्यवत् । तदप्ययुक्तम् । तर्हि पूर्वकालपुरुषाणां सर्वज्ञत्वं नास्ति, रामरावणादिपुरुषाणां च विशेषसामर्थ्यं नास्ति वर्तमानमनुष्यवत् । न च तथा । किंच छद्मस्थतपोधना अपि सप्तधातुरहितपरमौदारिकशरीराभावे "छट्ठोत्ति पढमसण्णा" इति वचनात् प्रमत्तसंयतषष्ठगुणस्थानवर्तिनो यद्यप्याहारं गृह्णन्ति तथापि ज्ञानसंयमध्यानसिद्ध्यर्थं, न च देहममत्वार्थम् । उक्तं च—**कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते । ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखम् ॥ १ ॥ ण बलाउसाहणट्ठं ण सरीरस्स य चयट्ठ तेजट्ठं । णाणट्ठ संजमट्ठं झाणट्ठं चेव भुंजंति** ॥ १ ॥ तस्य भगवतो ज्ञानसंयमध्यानादिगुणाः स्वभावेनैव तिष्ठन्ति न चाहारबलेन । यदि पुनर्देहममत्वेनाहारं गृह्णाति तर्हि छद्मस्थेभ्योऽप्यसौ हीनः प्राप्नोति । अथोच्यते—तस्यातिशयविशेषात्प्रकटा भुक्तिर्नास्ति प्रच्छन्ना विद्यते । तर्हि परमौदारिकशरीरत्वाद्भुक्तिरेव नास्त्ययमेवातिशयः किं न भवति । तत्र तु प्रच्छन्नभुक्तौ मायास्थानं दैन्यवृत्तिः, अन्येपि पिण्डशुद्धिकथिता दोषा बहवो भवन्ति । ते चान्यत्र तर्कशास्त्रे ज्ञातव्याः । अत्र चाध्यात्मग्रन्थत्वान्नोच्यन्त इति । अयमत्र भावार्थः—इदं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यमत्राग्रहो न कर्तव्यः । कस्मात् । दुराग्रहे सति रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च निर्विकारचिदानन्दैकस्वभावपरमात्मभावनाविघातो भवति ॥ २० ॥ एवमनन्तज्ञानसुखस्थापने प्रथमगाथा केवलिभुक्तिनिराकरणे द्वितीया चेति गाथाद्वयं गतम् ।

इति सप्तगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन सामान्येन सर्वज्ञसिद्धिनामा द्वितीयोन्तराधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

(उपोद्घातः) अथ ज्ञानप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथा भवन्ति । तत्राष्टौ स्थलानि ।

संसारसंबंधी सुखदुःखका अनुभव नहीं करता है । इस गाथामें केवलीके कवलाहारका निषेध किया है ॥ २० ॥

आगे केवलीको अतीन्द्रिय ज्ञानसेही सब वस्तुका प्रत्यक्ष होता है यह कहते हैं;—

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया ।
सो णेव ते विजाणदि ओग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं ॥ २१ ॥

परिणममानस्य खलु ज्ञानं प्रत्यक्षाः सर्वद्रव्यपर्यायाः ।
स नैव तान् विजानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः ॥ २१ ॥

यतो न खल्विन्द्रियाण्यालम्ब्यावग्रहेहावायपूर्वकक्रमेण केवली विजानाति। स्वयमेवस-मस्तावरणक्षयक्षण एवानाद्यनन्ताहेतुकासाधारणभूतज्ञानस्वभावमेव कारणत्वेनोपादाय

तेष्वादौ केवलज्ञानस्य सर्वं प्रत्यक्षं भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'परिणमदो खलु' इत्यादिगाथाद्वयम्, अथात्मज्ञानयोर्निश्चयेनासंख्यातप्रदेशत्वेपि व्यवहारेण सर्वगतत्वं भवतीत्यादिकथनमुख्यत्वेन "आदा णाणपमाणं" इत्यादिगाथापञ्चकम्, ततः परं ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमननिराकरणमुख्यतया "णाणी णाणसहावो" इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ निश्चयव्यवहारकेवलिप्रतिपादनादिमुख्यत्वेन 'जो हि सुदेण' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं, अथ वर्तमानज्ञाने कालत्रयपर्यायपरिच्छित्तिकथनादिरूपेण "तक्कालिगेव सव्वे" इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं बन्धकारणं न भवति रागादिविकल्प-रहितं छद्मस्थज्ञानमपि । किन्तु रागादयो बन्धकारणमित्यादिनिरूपणमुख्यतया "परिणमदि णेयं" इत्यादिसूत्रपञ्चकम्, अथ केवलज्ञानं सर्वज्ञानं सर्वज्ञत्वेन प्रतिपादयतीत्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन "ज तक्कालियमिदरं" इत्यादिगाथापञ्चकम्, अथ ज्ञानप्रपञ्चोपसंहारमुख्यत्वेन प्रथमगाथा, नम-स्कारकथनेन द्वितीया चेति "णवि परिणमदि" इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं ज्ञानप्रपञ्चाभिधान-तृतीयान्तराधिकारे त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः स्थलाष्टकेन समुदायपातनिका । तद्यथा—अथातीन्द्रिय-ज्ञानपरिणतत्वात्केवलिनः सर्वप्रत्यक्षं भवतीति प्रतिपादयति;—**पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया** सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा भवन्ति । कस्य । केवलिनः । किं कुर्वतः । **परिणमदो** परिणममा-नस्य **खलु** स्फुटम् । किम् । **णाणं** अनन्तपदार्थपरिच्छित्तिसमर्थं केवलज्ञानम् । तर्हिं किं क्रमेण जानाति । **सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं** स च भगवान्नैव तान् जानात्यवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः, किन्तु युगपदित्यर्थः । इतो विस्तरः—अनाद्यनन्तमहेतुकं चिदानन्दैकस्वभावं निजशुद्धात्मानमुपादेयं कृत्वा केवलज्ञानोत्पत्तेर्बीजभूतेनागमभाषया शुक्लध्यान-

---

[ज्ञानं परिणममानस्य] केवल ज्ञानको परिणमता हुआ जो केवली भगवान है उसको **[खलु]** निश्चयसे **[सर्वद्रव्यपर्यायाः]** सब द्रव्य तथा उनकी तीनों-कालकी पर्यायें **[प्रत्यक्षाः]** प्रत्यक्ष अर्थात् प्रगट हैं। जैसे स्फटिकमणिके अंदर तथा बाहिरमें प्रगट पदार्थ दीखते हैं। उसी तरह भगवानको सब प्रत्यक्ष हैं। **[सः]** वह केवली भगवान **[तान्]** उन द्रव्यपर्यायोंको **[अवग्रहपूर्वाभिः क्रियाभिः]** अवग्रह आदि अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणारूप जो क्रिया हैं उनसे **[नैव विजानाति]** नहीं जानता है। सारांश यह है कि—जैसे कर्मोंके क्षयोपशमसे उत्पन्न

तदुपरि प्रविशत्केवलज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमते । ततोस्याक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्य-क्षेत्रकालभावतया समस्तसंवेदनालम्बनभूताः सर्वद्रव्यपर्यायाः प्रत्यक्षा भवन्ति ॥ २१ ॥

अथास्य भगवतोतीन्द्रियज्ञानपरिणतत्वादेव न किञ्चित्परोक्षं भवतीत्यभिप्रैति;—

णत्थि परोक्खं किंचिवि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स ।
अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स ॥ २२ ॥

नास्ति परोक्षं किञ्चिदपि समन्ततः सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य ।
अक्षातीतस्य सदा स्वयमेव हि ज्ञानजातस्य ॥ २२ ॥

अस्य खलु भगवतः समस्तावरणक्षयक्षण एव सांसारिकपरिच्छित्तिनिष्पत्तिबलाधान-

---

संज्ञेन रागादिविकल्पजालरहितस्वसंवेदनज्ञानेन यदायमात्मा परिणमति, तदा स्वसंवेदनज्ञानफल-भूतकेवलज्ञानपरिच्छित्याकारपरिणतस्य तस्मिन्नेव क्षणे क्रमप्रवृत्तक्षायोपशमिकज्ञानाभावादक्रम-समाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया सर्वद्रव्यगुणपर्याया अस्यात्मनः प्रत्यक्षा भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ २१ ॥ अथ सर्वं प्रत्यक्षं भवतीत्यन्वयरूपेण पूर्वसूत्रे भणितमिदानीं तु परोक्षं किमपि ना-स्तीति तमेवार्थं व्यतिरेकेण दृढयति;—**णत्थि परोक्खं किंचिवि** अस्य भगवतः परोक्षं किमपि नास्ति । किंविशिष्टस्य । **समन्त सव्वक्खगुणसमिद्धस्स** समन्ततः सर्वात्मप्र-देशैः सामस्त्येन वा स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छित्तिरूपसर्वेन्द्रियगुणसमृद्धस्य । तर्हि किमक्षस-हितस्य । नैवम् । **अक्खातीदस्स** अक्षातीतस्येन्द्रियव्यापाररहितस्य, अथवा द्वितीयव्याख्या-नम्—अक्ष्णोति ज्ञानेन व्याप्नोतीत्यक्ष आत्मा तद्गुणसमृद्धस्य । **सया** सर्वदा सर्वकालम् ।

हुए ज्ञानवाले, अवग्रह आदि जो मतिज्ञानकी भेदरूप क्रिया हैं उनसे जानते हैं वैसे केवली नहीं जानते । क्योंकि उन केवली भगवानके सब तरफ़से कर्मोंके पड़दे दूर होजानेके कारण अखंड अनन्त शक्तिसे पूर्ण, आदि अन्त रहित,असाधारण, अपने आपही प्रगट हुआ केवल ज्ञान है इस कारण एकही समयमें सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ज्ञानरूपीभूमिमें प्रत्यक्ष झलकते हैं ॥ २१ ॥

आगे इस भगवानके अतीन्द्रिय ज्ञानरूप परिणमन करनेसे कोईभी वस्तु परोक्ष नहीं है यह कहते हैं;—[**अस्य भगवतः**] इस केवली भगवानके [**किंचिदपि**] कुछभी पदार्थ [**परोक्षं नास्ति**] परोक्ष नहीं है । एकही समय सब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको प्रत्यक्ष जानता है इस लिये परोक्ष नहीं । कैसे हैं वे भगवान । [**अक्षातीतस्य**] इन्द्रियोंसे रहित ज्ञानवाले हैं अर्थात् इन्द्रियें संसारसंबंधी ज्ञानको कारण हैं। और परोक्षरूप मर्यादालिये पदार्थोंको जानती हैं, इस प्रकारकी भाव इंद्रियें भगवानके अब नहीं इसलिये सत् प्रत्यक्ष स्वरूप जानते हैं । फिर कैसे हैं । [**समन्ततः**] सब आत्माके प्रदेशों (अंगों) में [**सर्वाक्षगुणसमृद्धस्य**] सब इंद्रियोंके गुण जो

हेतुभूतानि प्रतिनियतविषयग्राहीण्यक्षीणि तैरतीतस्य, स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दपरिच्छेद-रूपैः समरसतया समन्ततः सर्वैरेवेन्द्रियगुणैः समृद्धस्य, स्वयमेव सामस्त्येन स्वपरप्रकाशनस्य, स्वैरं लोकोत्तरज्ञानजातस्य, अक्रमसमाक्रान्तसमस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया न किञ्चनापि परोक्षमेव स्यात् ॥ २२ ॥

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वं ज्ञानस्य सर्वगतत्वं चोद्योतयति;—

आदा णाणपमाणं णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं।
णेयं लोगालोगं तम्हा णाणं तु सव्वगयं ॥ २३ ॥

आत्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणमुद्दिष्टम्।
ज्ञेयं लोकालोकं तस्माज्ज्ञानं तु सर्वगतम् ॥ २३ ॥

आत्मा हि "समगुणपर्यायं द्रव्य"मिति वचनात् ज्ञानेन सह हीनाधिकत्वरहितत्वेन परिणतत्वात्तत्परिमाणं, ज्ञानं तु ज्ञेयनिष्ठत्वाद्दाह्यनिष्ठदहनवत्तत्परिमाणं, ज्ञेयं तु लोकालो-

---

पुनरपि किंरूपस्य। **सयमेव हि णाणजादस्स** स्वयमेव हि स्फुटं केवलज्ञानरूपेण जातस्य परिणतस्येति। तद्यथा–अतीन्द्रियस्वभावपरमात्मनो विपरीतानि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानीन्द्रियाण्यतिक्रान्तस्य जगत्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रत्यक्षप्रतीतिसमर्थमविनश्वरमखण्डैकभासमयं केवलज्ञानं परिणतस्यास्य भगवतः परोक्षं किमपि नास्तीति भावार्थः ॥ २२ ॥ एवं केवलिनां समस्तं प्रत्यक्षं भवतीति कथनरूपेण प्रथमस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथात्मा ज्ञानप्रमाणो भवतीति ज्ञानं च व्यवहारेण सर्वगतमित्युपदिशति;—**आदा णाणपमाणं** ज्ञानेन सह हीनाधिकत्वाभावादात्मा ज्ञानप्रमाणो भवति। तथाहि–"समगुणपर्यायं द्रव्यं भवती"ति वचनाद्वर्तमानमनुष्यभवे वर्तमानमनुष्यपर्यायप्रमाणः, तदेव मनुष्यपर्यायप्रदेशवर्तिज्ञानगुणप्रमाणश्च प्रत्य-

---

स्पर्शवगैरःका ज्ञान उस कर पूर्ण हैं अर्थात् जो एक एक इन्द्रिय एक एक गुणको ही जानती है जैसे आंख रूपको इसतरहके क्षयोपशमजन्यज्ञानके अभाव होनेपर प्रगट हुए केवलज्ञानसे वे केवली भगवान्, सब अंगों द्वारा सब स्पर्शादिविषयोंको जानते हैं। फिर कैसे हैं। [**स्वयमेव**] अपने आपही [**हि**] निश्चय कर [**ज्ञानजातस्य**] केवल ज्ञानको प्राप्त हुए हैं। भावार्थ–अपने और पर वस्तुके प्रकाशनेवाला नाशरहित लौकिकज्ञानसे जुदा ऐसा अतीन्द्रियज्ञान (केवलज्ञान) जब प्रगट हुआ तब परोक्षपना किसतरह हो सक्ता है ? (नहीं होता) ॥ २२ ॥

आगे आत्माको ज्ञानप्रमाण कहते हैं और ज्ञानको सर्वव्यापक दिखलाते हैं;—

[**आत्मा**] जीवद्रव्य [**ज्ञानप्रमाणं**] ज्ञानके बराबर है, क्योंकि द्रव्य अपने २ गुणपर्यायोंके समान होता है, इसी न्यायसे जीवभी अपने ज्ञानगुणके बराबर हुआ। आत्मा ज्ञानसे न तो अधिक न कम परिणमन करता है, जैसे सोना अपनी कड़े कुंडल

कविभागविभक्तानन्तपर्यायमालिकालीढस्वरूपसूचिता विच्छेदोत्पादध्रौव्या षड्द्रव्यी सर्व-मिति यावत्। ततो निःशेषावरणक्षयक्षण एव लोकालोकविभागविभक्तसमस्तवस्त्वाकार-पारमुपगम्य तथैवाप्रच्युतत्वेन व्यवस्थितत्वात् ज्ञानं सर्वगतम्॥ २३॥

अथात्मनो ज्ञानप्रमाणत्वानभ्युपगमे द्वौ पक्षावुपन्यस्य दूषयतिः—

णाणप्पमाणमादा ण हवदि जस्सेह तस्स सो आदा।
हीणो वा अधिगो वा णाणादो हवदि धुवमेव॥ २४॥

क्षेण दृश्यते यथायमात्मा, तथा निश्चयतः सर्वदैवाव्याबाधाक्षयसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतो योसौ केवलज्ञानगुणस्तत्प्रमाणोऽयमात्मा। **णाणं णेयप्पमाणमुद्दिट्ठं** दाह्यनिष्ठदहनवत् ज्ञानं ज्ञेय-प्रमाणमुद्दिष्टं कथितम्। **णेयं लोयालोयं** ज्ञेयं लोकालोकं भवति। शुद्धबुद्धैकस्वभावसर्वप्रका-रोपादेयभूतपरमात्मद्रव्यादिषड्द्रव्यात्मको लोकः, लोकाद्बहिर्भागे शुद्धाकाशमलोकः, तच्च लोका-लोकद्वयं स्वकीयस्वकीयानन्तपर्यायपरिणतिरूपेणानित्यमपि द्रव्यार्थिकनयेन नित्यम्। **तम्हा णाणं तु सव्वगयं** यस्मान्निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगभावनाबलेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानं तट्टङ्को-त्कीर्णाकारन्यायेन निरन्तरं पूर्वोक्तज्ञेयं जानाति, तस्माद्व्यवहारेण तु ज्ञानं सर्वगतं भण्यते। ततः स्थितमेतदात्मा ज्ञानप्रमाणं ज्ञानं सर्वगतमिति॥ २३॥ अथात्मानं ज्ञानप्रमाणं ये न मन्यन्ते तत्र हीनाधिकत्वे दूषणं ददाति;—**णाणपमाणं आदा ण हवदि जस्सेह** ज्ञान-प्रमाणमात्मा न भवति यस्य वादिनो मतेऽत्र जगति **तस्स सो आदा** तस्य मते स आत्मा

आदिपर्यायोंसे तथा पीलेवर्ण आदिक गुणोंसे कम अधिक नहीं परिणमता उसीप्रकार आत्माभी समझना। [**ज्ञानं ज्ञेयप्रमाणं**] और ज्ञान ज्ञेयके (पदार्थोंके) प्रमाण है ऐसा [**उद्दिष्टम्**] जिनेन्द्रदेवने कहा है, जैसे–ईंधनमें स्थित आग ईंधनके बरा-बर है, उसीतरह सब पदार्थोंको जानता हुआ ज्ञान ज्ञेयके प्रमाण है। [**ज्ञेयं लो-कालोकं**] ज्ञेय है वह लोक तथा अलोक है, जो भूत भविष्यत वर्तमानकालकी अनंत पर्यायोंसहित छह द्रव्य हैं उसको लोक और इस लोकसे बाहर अकेला आकाश उसको अलोक जानना, इन्हीं दोनोंको ज्ञेय कहते हैं। [**तस्मात्**] इसलिये [**ज्ञानं तु**] केवलज्ञान तो [**सर्वगतम्**] सब पदार्थोंमें प्रवेश करनेवाला सर्वव्यापक है अर्थात् सबको जानता है, इससे ज्ञान ज्ञेयके बराबर है॥ २३॥

आगे जो मूढदृष्टि आत्माको ज्ञानके प्रमाण नहीं मानकर अधिक तथा हीन मानते हैं उनके पक्षको युक्तिसे दूषित करते हैं;–[**इह**] इस लोकमें [**यस्य**] जिस मूढबुद्धिके 'मतमें' [**आत्मा**] आत्मद्रव्य [**ज्ञानप्रमाणं**] ज्ञानके बराबर [**न भवति**] नहीं होताहै अर्थात् जो विपरीत बुद्धिवाले आत्माको ज्ञानके बराबर नहीं मानते [**तस्य**] उस कुमतीके मतमें [**स आत्मा**] वह जीवद्रव्य [**ज्ञानात्**]

हीणो जदि सो आदा तण्णाणमचेदणं ण जाणादि ।
अधिगो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि ॥ २५ ॥ जुगलम् ।

ज्ञानप्रमाणमात्मा न भवति यस्येह तस्य स आत्मा ।
हीनो वा अधिको वा ज्ञानाद्भवति ध्रुवमेव ॥ २४ ॥
हीनो यदि स आत्मा तत् ज्ञानमचेतनं न जानाति ।
अधिको वा ज्ञानात् ज्ञानेन विना कथं जानाति ॥ २५ ॥ युगलम् ।

यदि खल्वयमात्मा हीनो ज्ञानादित्यभ्युपगम्यते, तदात्मनोतिरिच्यमानं ज्ञानं स्वाश्रयभूतचेतनद्रव्यस्य समवायाभावादचेतनं भवद्रूपादिगुणकल्पतामापन्नं न जानाति । यदि पुनर्ज्ञानादधिक इति पक्षः कक्षीक्रियते तदावश्यं ज्ञानादतिरिक्तत्वात् पृथग्भूतो भवन् घटपटादिस्थानीयतामापन्नो ज्ञानमन्तरेण न जानाति ततो ज्ञानप्रमाण एवायमात्माभ्युपगन्तव्यः ॥ २४ ॥ २५ ॥

हीणो वा अहियो वा णाणादो हवदि धुवमेव हीनो वा अधिको वा ज्ञानात्सकाशाद् भवति निश्चितमेवेति ॥ २४ ॥ **हीणो जदि सो आदा तं णाणमचेदणं ण जाणादि** हीनो यदि स आत्मा तदाग्नेरभावे सति उष्णगुणो यथा शीतलो भवति तथा स्वाश्रयभूतचेतनात्मकद्रव्यसमवायाभावात्तस्यात्मनो ज्ञानमचेतनं भवत्सत् किमपि न जानाति । **अहियो वा णाणादो णाणेण विणा कहं णादि** अधिको वा ज्ञानात्सकाशात्तर्हि यथोष्णगुणाभावेऽग्निः शीतलो भवन्सन् दहनक्रियां प्रत्यसमर्थो भवति तथा ज्ञानगुणाभावे सत्यात्माप्यचेतनो भवन्सन् कथं जानाति न कथमपि । अयमत्र भावार्थः—ये केचनात्मान-

---

अपने ज्ञानगुणसे [**हीनो वा अधिको वा**] हीन (कम) अथवा अधिक (बड़ा) [**ध्रुवमेव**] निश्चयसे [**भवति**] होता है अर्थात् उन्हें या तो आत्माको ज्ञानसे कम मानना पड़ैगा या अधिक मानना पड़ैगा । [**यदि**] जो [**स आत्मा**] वह जीवद्रव्य [**हीनः**] ज्ञानसे न्यून होगा [**तदा**] तो [**तद् ज्ञानम्**] वह ज्ञान [**अचेतनं**] अचेतन होनेसे [**न जानाति**] कुछभी नहीं जान सकैगा [**वा**] अथवा [**ज्ञानात्**] ज्ञानसे [**अधिकः**] अधिक होगा तो [**ज्ञानेन विना**] ज्ञानके विना [**कथं जानाति**] कैसे जानेगा ? **भावार्थ**—जो आत्माको ज्ञानसे हीन मानैं तो ज्ञानगुण स्पर्श रस गंध वर्णकी तरह अचेतन हो जावेगा, और अचेतन (जड़) होनेसे कुछभी नहीं जानसकैगा, जैसे अग्निसे उष्णगुण अधिक माना जावे तो अधिक उष्णगुण अग्निके विना शीतल होनेसे जला नहीं सकता । और जो ज्ञानसे आत्मा अधिक होगा अर्थात् आत्मासे ज्ञानहीन होगा तो घट वस्त्रादि पदार्थोंकी तरह आत्मा ज्ञान विना अचेतन हुआ कुछभी नहीं जान सकैगा, जैसे अग्नि उष्णगुणसे जितनी अधिक

अथात्मनोपि ज्ञानवत् सर्वगतत्वं न्यायायातमभिनन्दति:—

सव्वगदो जिणवसहो सव्वेवि य तग्गया जगदि अट्ठा।
णाणमयादो य जिणो विसयादो तस्स ते भणिदा ॥ २६ ॥

सर्वगतो जिनवृषभः सर्वेपि च तद्गता जगत्यर्थाः ।
ज्ञानमयत्वाच्च जिनो विषयत्वात्तस्य ते भणिताः ॥ २६ ॥

ज्ञानं हि त्रिसमयावच्छिन्नसर्वद्रव्यपर्यायरूपव्यवस्थितविश्वज्ञेयाकारानाक्रामत् सर्वगतमुक्तं तथाभूतज्ञानमयीभूय व्यवस्थितत्वाद्भगवानपि सर्वगत एव । एवं सर्वगतज्ञानविषयत्वात्सर्वेर्था अपि सर्वगतज्ञानाव्यतिरिक्तस्य भगवतस्तस्य ते विषया इति भणितत्वात्तद्गता

मङ्गुष्ठपर्वमात्रं, श्यामाकतण्डुलमात्रं, वटककणिकादिमात्रं वा मन्यन्ते ते निषिद्धाः । येपि समुद्घातसप्तकं विहाय देहादधिकं मन्यन्ते तेपि निराकृता इति ॥ २५ ॥ अथ यथा ज्ञानं पूर्वं सर्वगतमुक्तं तथैव सर्वगतज्ञानापेक्षया भगवानपि सर्वगतो भवतीत्यावेदयति;— **सव्वगदो** सर्वगतो भवति । स कः कर्ता । **जिणवसहो** जिनवृषभः सर्वज्ञः । कस्मात् सर्वगतो भवति । **जिणो** जिनः **णाणमयादो य** ज्ञानमयत्वाद्धेतोः **सव्वेवि य तग्गया जगदि अट्ठा** सर्वेपि च ये जगत्यर्थास्ते दर्पणे बिम्बवद् व्यवहारेण तत्र भगवति गता भवन्ति । कस्मात् । **ते भणिया** तेर्थास्तत्र गता भणिताः **विसयादो** विषयत्वात्परिच्छेद्यत्वाद् ज्ञेयत्वात् । कस्य । **तस्स** तस्य भगवतः इति । तथाहि—यदनन्तज्ञानमनाकुलत्वलक्षणानन्तसुखं च तदाधारभूतस्तावदात्मा इत्थंभूतात्मप्रमाणं ज्ञानमात्मनः स्वस्वरूपं भवति । इत्थंभूतं स्वस्वरूपं देहगतमपरित्यजन्नेव लोकालोकं परिच्छिनत्ति । ततः कारणाद्व्यवहारेण सर्वगतो

होगी उतनीही शीतल होनेके कारण ईंधनको नहीं जलासकती । इसकारण यह सिद्ध हुआ कि आत्मा ज्ञानकेही प्रमाण है कमती बढ़ती नहीं है ॥ २४ । २५ ॥ आगे जिसतरह ज्ञान सर्वगत है उसीतरह आत्माभी सर्वगत है ऐसा कहते हैं;— **[ज्ञानमयत्वात्]** ज्ञानमयी होनेसे **[जिनवृषभः]** जिन अर्थात् गणधरादिदेव उनमें वृषभ (प्रधान) **[जिनः]** सर्वज्ञ भगवान् **[सर्वगतः]** सब लोक अलोकमें प्राप्त हैं **[च]** और **[तस्य विषयत्वात्]** उन भगवानके जानने योग्य होनेसे **[जगति]** संसारमें **[सर्वेपि च ते अर्थाः]** वे सबही पदार्थ **[तद्गताः]** उन भगवानमें प्राप्त हैं ऐसा **[भणिताः]** सर्वज्ञने कहाहै ॥ **भावार्थ**–अतीत अनागत वर्तमान काल सहित सब पदार्थोंके आकारोंको (पर्यायोंको) जानता हुआ ज्ञान सर्वगत कहा है और भगवान ज्ञानमयी हैं इसकारण भगवानभी सर्वगतही हैं । और जिसतरह आरसीमें घटपटादि पदार्थ झलकते हैं वैसे ज्ञानसे अभिन्न भगवानमें भी सब पदार्थ प्राप्त हुए हैं, क्योंकि वे पदार्थ भगवानके जानने योग्य हैं । निश्चयकर ज्ञान

एव भवन्ति । तत्र निश्चयनयेनानाकुलत्वलक्षणसौख्यसंवेदनत्वाधिष्ठानत्वावच्छिन्नात्मप्रमाणज्ञानस्वतत्त्वापरित्यागेन विश्वज्ञेयाकाराननुपगम्यावबुध्यमानोपि व्यवहारनयेन भगवान् सर्वगत इति व्यपदिश्यते । तथा नैमित्तिकभूतज्ञेयाकारानात्मस्थानवलोक्य सर्वेर्थास्तद्गता इत्युपचर्यन्ते, न च तेषां परमार्थतोन्योन्यगमनमस्ति, सर्वद्रव्याणां स्वरूपनिष्ठत्वात् । अयं क्रमो ज्ञानेपि निश्चेयः ॥ २६ ॥

अथात्मज्ञानयोरेकत्वान्यत्वं चिन्तयतिः—

णाणं अप्पत्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं ।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा ॥ २७ ॥

ज्ञानमात्मेति मतं वर्तते ज्ञानं विना नात्मानम् ।
तस्मात् ज्ञानमात्मा आत्मा ज्ञानं वा अन्यद्वा ॥ २७ ॥

यतः शेषसमस्ताचेतनवस्तुसमवायसंबन्धनिरुत्सुकतयाऽनाद्यनन्तस्वभावसिद्धसमवाय-

---

भण्यते भगवान् । येन च कारणेन नीलपीतादिबहिःपदार्था आदर्शे बिम्बवत् परिच्छित्त्याकारेण ज्ञाने प्रतिफलन्ति ततः कारणादुपचारेणार्थकार्यभूता अर्थाकारा अप्यर्था भण्यन्ते । ते च ज्ञाने तिष्ठन्तीत्युच्यमाने दोषो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ २६ ॥ अथ ज्ञानमात्मा भवति, आत्मा तु ज्ञानं सुखादिकं वा भवतीति प्रतिपादयति;—**णाणं अप्पत्ति मयं** ज्ञानमात्मा भवतीति

आत्माप्रमाण है, क्योंकि निर्विकार निराकुल अनन्तसुखको आत्मामें आप वेदता है अर्थात् अनुभव करता है । ज्ञान आत्माका स्वभावरूप लक्षण है इसकारण वह अपने ज्ञानस्वरूप स्वभावको कभी नहीं छोड़ता । समस्त ज्ञेया (पदार्थ) कारोंमें प्राप्त नहीं होता अपनेमेंही स्थिर रहता है । यह आत्मा सब पदार्थोंका जाननेवाला है इसलिये व्यवहार नयसे सर्वगत (सर्वव्यापक) कहा है निश्चयसे नहीं । इसीप्रकार निश्चयनयसे वे पदार्थभी इस आत्मामें प्राप्त नहीं होते क्योंकि कोई पदार्थ अपने स्वरूपको छोड़कर दूसरेके आकार नहीं होता सब अपने २ स्वरूपमें रहते हैं । निमित्तभूत ज्ञेयके आकारोंको आत्मामें ज्ञेयज्ञायक संबंधसे प्रतिबिंबित होनेसे व्यवहारसे कहते हैं कि सब पदार्थ आत्मामें प्राप्त होजाते हैं । जैसे आरसीमें घटादि पदार्थ प्रतिबिम्बनिमित्तसे प्रवेश करते हैं ऐसा व्यवहारमें कहा जाता है निश्चयसे वे अपने स्वरूपमेंही रहते हैं । इस कथनसे सारांश यह निकला कि निश्चयसे पदार्थ आत्मामें नहीं आत्मा पदार्थोंमें नहीं । व्यवहारसे ज्ञानरूप आत्मा पदार्थोंमें है पदार्थ आत्मामें हैं क्योंकि इन दोनोंका ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध दुर्निवार है ॥ २६ ॥ आगे ज्ञान और आत्मा एक है तथा आत्मा ज्ञानभी है और सुखादिस्वरूपभी है ऐसा कहते हैं;—[ज्ञानं] ज्ञानगुण [आत्मा] जीवही है [इति

संबन्धमेकमात्मानमाभिमुख्येनावलम्ब्य प्रवृत्तत्वात् तं विना आत्मानं ज्ञानं न धारयति । ततो ज्ञानमात्मैव स्यात् । आत्मात्वनन्तधर्माधिष्ठानत्वात् ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानमन्यधर्मद्वारेणान्यदपि स्यात् । किं चानेकान्तोत्र बलवान् । एकान्तेन ज्ञानमात्मेति ज्ञानस्याभावोऽचेतनत्वमात्मनो विशेषगुणाभावादभावो वा स्यात् । सर्वथात्मा ज्ञानमिति निराश्रयत्वात् ज्ञानस्याभाव आत्मनः शेषपर्यायाभावस्तदविनाभाविनस्तस्याप्यभावः स्यात् ॥ २७ ॥

मतं सम्मतं । कस्मात् । **वट्टइ णाणं विणा ण अप्पाणं** ज्ञानं कर्तृ विनात्मानं जीवमन्यत्र घटपटादौ न वर्तते । **तम्हा णाणं अप्पा** तस्मात् ज्ञायते कथंचिज्ज्ञानमात्मैव स्यात् । इति गाथापादत्रयेण ज्ञानस्य कथंचिदात्मत्वं स्थापितम् । **अप्पा णाणं च अण्णं वा** आत्मा तु ज्ञानधर्मद्वारेण ज्ञानं भवति, सुखवीर्यादिधर्मद्वारेणान्यद्वा नियमो नास्तीति । तद्यथा—यदि पुनरेकान्तेन ज्ञानमात्मेति भण्यते तदा ज्ञानगुणमात्र एवात्मा प्राप्तः सुखादिधर्माणामवकाशो नास्ति । तथा सुखवीर्यादिधर्मसमूहाभावादात्माऽभावः, आत्मन आधारभूतस्याभावादाधेयभूतस्य ज्ञानगुणस्याप्यभावः, इत्येकान्ते सति द्वयोरप्यभावः । तस्मात्कथंचिज्ज्ञानमात्मा न सर्वथेति । अयमत्राभिप्रायः—आत्मा व्यापको ज्ञानं व्याप्यं ततो ज्ञानमात्मा स्यात् । आत्मा तु ज्ञानमन्यद्वा भवतीति । तथाचोक्तं—"व्यापकं तदतन्निष्ठं व्याप्यं तन्निष्ठमेव च" ॥ २७ ॥

मतं] ऐसा कहा है । [**आत्मानं विना**] आत्माके विना [**ज्ञानं**] चेतनागुण [**न वर्तते**] औरकिसी जगह नहीं रहता [**तस्मात्**] इसकारण [**ज्ञानं**] ज्ञानगुण [**आत्मा**] जीव है [**च**] और [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**ज्ञानं**] चैतन्य गुणरूप है [**वा अन्यत्**] अथवा अन्यगुणरूपभी है ॥ **भावार्थ**—ज्ञान और आत्मामें भेद नहीं है दोनों एक हैं । क्योंकि अन्य सब अचेतन वस्तुओंके साथ संबंध न करके केवल आत्माकेही साथ ज्ञानका अनादिनिधन स्वाभाविक गाढसंबंध है, इसकारण आत्माको छोड़ ज्ञान दूसरी जगह नहीं रहसकता । परंतु (लेकिन) आत्मा अनन्तधर्मवाला होनेसे ज्ञानगुणरूपभी है और अन्य सुखादि गुणरूपभी है अर्थात् जैसे ज्ञानगुण रहता है वैसे अन्यगुणभी रहते हैं । दूसरी बात यह है कि भगवन्तका अनेकान्तसिद्धान्त बलवान है । जो एकान्तसे ज्ञानको आत्मा कहेंगे तो ज्ञानगुण आत्मद्रव्य हो जावेगा और जब गुणही द्रव्य होजावेगा तो गुणके अभावसे आत्मद्रव्यके अभावका प्रसङ्ग आवैगा क्योंकि गुणवाला द्रव्यका लक्षण है वह नहीं रहा । और जो सर्वथा आत्माको ज्ञानही मानेंगे तो आत्मद्रव्य एक ज्ञानगुणमात्रही रहजावेगा सुखवीर्यादि गुणोंका अभाव होगा । गुणके अभावसे आत्मद्रव्यका अभाव सिद्ध होगा तब निराश्रय अर्थात् आधार न होनेसे ज्ञानकाभी अभाव होजाइगा । इसकारण सिद्धान्त यह निकला कि ज्ञानगुण तो आत्मा अवश्य है क्योंकि ज्ञान अन्यजगह नहीं रहता । परंतु, आत्मा ज्ञानगुणकी अपेक्षा ज्ञान है अन्यगुणोंकी अपेक्षा अन्य है ॥ २७ ॥

अथ ज्ञानज्ञेययोः परस्परगमनं प्रतिहन्ति:—

णाणी णाणसहावो अत्था णेयापगा हि णाणिस्स ।
रूवाणि व चक्खूणं णेवण्णोण्णेसु वट्टंति ॥ २८ ॥

ज्ञानी ज्ञानस्वभावोऽर्था ज्ञेयात्मका हि ज्ञानिनः ।
रूपाणीव चक्षुषोः नैवान्योन्येषु वर्तन्ते ॥ २८ ॥

ज्ञानी चार्थाश्च स्वलक्षणभूतपृथक्त्वतो न मिथो वृत्तिमासादयन्ति किन्तु तेषां ज्ञानज्ञेयस्वभावसंबन्धसाधितमन्योन्यवृत्तिमात्रमस्ति । यथा हि चक्षूंषि तद्विषयभूतरूपिद्रव्याणि च परस्परप्रवेशमन्तरेणापि ज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणान्येवमात्माऽर्थाश्चान्योन्यवृत्तिमन्तरेणापि विश्वज्ञेयाकारग्रहणसमर्पणप्रवणाः ॥ २८ ॥

इत्यात्मज्ञानयोरेकत्वं, ज्ञानस्य व्यवहारेण सर्वगतत्वमित्यादिकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ ज्ञानं ज्ञेयसमीपे न गच्छतीति निश्चिनोति;–**णाणी णाणसहावो** ज्ञानी सर्वज्ञः केवलज्ञानस्वभाव एव । **अट्ठा णेयप्पगा हि णाणिस्स** जगत्त्रयकालत्रयवर्तिपदार्था ज्ञेयात्मका एव भवन्ति न च ज्ञानात्मकाः । कस्य ? ज्ञानिनः । **रूवाणिव चक्खूणं णेवऽण्णोण्णेसु वट्टंति** ज्ञानी पदार्थाश्चान्योन्यं परस्परमेकत्वेन वर्तन्ते । कानीव केषां संबन्धित्वेन ? रूपाणीव चक्षुषामिति । तथाहि–यथा रूपिद्रव्याणि चक्षुषा सह परस्परं संबन्धाभावेपि स्वाकारसमर्पणे समर्थानि । चक्षूंषि च तथाकारग्रहणे समर्थानि भवन्ति, तथा त्रैलोक्योदरविवरवर्तिपदार्थाः कालत्रयपर्यायपरिणता ज्ञानेन सह परस्परप्रदेशसंसर्गाभावेऽपि स्वकीयाकारसमर्पणे समर्था भवन्ति । अखण्डैकप्रतिभासमयं केवलज्ञानं तु तदाकारग्रहणे समर्थमिति भावार्थः ॥ २८ ॥

आगे निश्चयसे ज्ञान न तो ज्ञेयमें जाता है और न ज्ञेय ज्ञानमें आता है ऐसा कहते हैं;—
[**हि**] निश्चयकर [**ज्ञानी**] आत्मा [**ज्ञानस्वभावः**] ज्ञानस्वभाववाला है । तथा [**अर्थाः**] पदार्थ [**ज्ञेयात्मकाः**] ज्ञेयस्वरूप हैं । क्योंकि [**ज्ञानिनः**] ज्ञानीके [**ते अर्थाः**] वे पदार्थ [**चक्षुषां**] नेत्रोंके [**रूपाणि इव**] रूपीपदार्थोंके समान [**अन्योन्येषु**] आपसमें अर्थात् सब मिलके एक अवस्थामें [**नैव**] नहीं [**वर्तन्ते**] प्रवर्तते हैं । **भावार्थ**–यद्यपि आत्मा और पदार्थोंका स्वभावसेही ज्ञेयज्ञायक संबंध आपसमें है तौ भी ज्ञानी आत्मा ज्ञानस्वरूप है ज्ञेयस्वरूप नहीं है और पदार्थ ज्ञेय (जानने योग्य) स्वरूप हैं ज्ञानस्वरूप नहीं अर्थात् अपने स्वरूपको छोड़कर एकरूप नहीं होते । जैसे कि नेत्र रूपीपदार्थोंमें प्रवेश किये विनाही उन पदार्थोंके स्वरूप ग्रहण करनेको समर्थ हैं । और वे रूपीपदार्थभी नेत्रोंमें प्रवेश किये विनाही अपना स्वरूप नेत्रोंके जनानेको समर्थ हैं । इसीप्रकार आत्माभी न तो उन पदार्थोंमें जाता है और न वे (पदार्थ) आत्मामें आते हैं अर्थात् ज्ञेयज्ञायक संबंधसे सकल पदार्थोंमें प्रवेश किये विनाही आत्मा सबको जानता है । और वे पदार्थभी आत्मामें प्रवेश नहीं करके अपने स्वरूपको जनाते हैं । इसीकारण आत्माको व्यवहारसे सर्वगत कहते हैं ॥ २८ ॥

अथार्थेष्ववृत्तस्यापि ज्ञानिनस्तद्वृत्तिसाधकं शक्तिवैचित्र्यमुद्योतयतिः—

ण पविट्ठो णाविट्ठो णाणी णेयेसु रूवमिव चक्खू।
जाणदि पस्सदि णियदं अक्खातीदो जगमसेसं॥ २९॥

न प्रविष्टो नाविष्टो ज्ञानी ज्ञेयेषु रूपमिव चक्षुः।
जानाति पश्यति नियतमक्षातीतो जगदशेषम्॥ २९॥

यथाहि चक्षू रूपिद्रव्याणि स्वप्रदेशैरसंस्पृशदप्रविष्टं परिच्छेद्यमाकारमात्मसात्कुर्वन्न चाप्रविष्टं जानाति पश्यति च। एवमात्माप्यक्षातीतत्वात्प्राप्यकारिताविचारगोचरदूरतामवाप्तो ज्ञेयतामापन्नानि समस्तवस्तूनि स्वप्रदेशैरसंस्पृशन्न प्रविष्टः शक्तिवैचित्र्यवशतो वस्तु-

---

अथ ज्ञानी ज्ञेयपदार्थेषु निश्चयनयेनाप्रविष्टोपि व्यवहारेण प्रविष्ट इव प्रतिभातीति शक्तिवैचित्र्यं दर्शयति;—**ण पविट्ठो** निश्चयनयेन न प्रविष्टः, **णाविट्ठो** व्यवहारेण च नाप्रविष्टः, किन्तु प्रविष्ट एव। स कः कर्ता। **णाणी** ज्ञानी। केषु मध्ये **णेयेसु** ज्ञेयपदार्थेषु। किमिव। **रूवमिव चक्खू** रूपविषये चक्षुरिव। एवंभूतस्सन् किं करोति। **जाणदि पस्सदि** जानाति पश्यति च **णियदं** निश्चितं संशयरहितं। किं विशिष्टः सन्। **अक्खातीदो** अक्षातीतः। किं जानाति पश्यति। **जगमसेसं** जगदशेषमिति। तथाहि—यथा लोचनं कर्तृ रूपिद्रव्याणि यद्यपि निश्चयेन न स्पृशति तथापि व्यवहारेण स्पृशतीति प्रतिभाति लोके। तथायमात्मा मिथ्यात्वरागाद्यास्रवाणामात्मनश्च संबन्धि यत्केवलज्ञानात्पूर्वं विशिष्टभेदज्ञानं तेनोत्पन्नं यत्केवलज्ञानदर्शनद्वयं तेन जगत्रयकालत्रयवर्तिपदार्थान्निश्चयेनास्पृशन्नपि व्यवहारेण स्पृशति, तथा स्पृशन्निव ज्ञानेन जानाति दर्शनेन पश्यति च। कथंभूतस्सन्। अतीन्द्रियसुखास्वादपरिणतः सन्नक्षातीत

आगे निश्चयनयसे यद्यपि पदार्थोंमें आत्मा प्रवेश नहीं करता है तौभी व्यवहारसे प्रविष्ट (प्रवेश किया) सरीखा है, ऐसी शक्तिकी विचित्रता दिखलाते हैं;—[**अक्षातीतः**] इन्द्रियोंसे रहित अर्थात् अनंत अतीन्द्रियज्ञानसहित [**ज्ञानी**] आत्मा [**ज्ञेयेषु**] जानने योग्य अन्यपदार्थोंमें [**प्रविष्टः न**] पैठता नहीं है। और [**अविष्टः न**] नहीं पैठता ऐसाभी नहीं अर्थात् व्यवहार कर पैठासाभी है। वह [**रूपं**] रूपी पदार्थोंको [**चक्षुरिव**] नेत्रोंकी तरह [**अशेषं जगत्**] सब संसारको [**नियतं**] निश्चित अर्थात् ज्योंका त्यों [**जानाति**] जानता है और [**पश्यति**] देखता है। **भावार्थ**—अनन्त अतीन्द्रिय ज्ञानसहित आत्मा निश्चयनयसे ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेश नहीं करता है परन्तु एकान्तसे सर्वथा ऐसाही नहीं है, व्यवहारनयसे वह ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेशभी करता है। और जैसे—नेत्र अपने प्रदेशोंसे रूपीपदार्थोंका स्पर्श नहीं करता तथा रूपीपदार्थोंकाभी उस (नेत्र) में प्रवेश नहीं होता केवल उन्हें जानता तथा देखता है। परंतु व्यवहारसे 'उन पदार्थोंमें दृष्टि है' ऐसा कहते

वर्तिनः समस्तज्ञेयाकारानुन्मूल्य इव कवलयन्न चाप्रविष्टो जानाति पश्यति च । एवमस्य विचित्रशक्तियोगिनो ज्ञानिनोऽर्थेष्वप्रवेश इव प्रवेशोपि सिद्धिमवतरति ॥ २९ ॥

अथैवं ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति संभावयतिः—

रयणमिह इंदणीलं दुद्धज्झसियं जहा सभासाए ।
अभिभूय तंपि दुद्धं वट्टदि तह णाणमत्थेसु ॥ ३० ॥

रत्नमिहेन्द्रनीलं दुग्धाध्युषितं यथा स्वभासा ।
अभिभूय तदपि दुग्धं वर्तते तथा ज्ञानमर्थेषु ॥ ३० ॥

यथा किलेन्द्रनीलरत्नं दुग्धमधिवसत्स्वप्रभाभारेण तदभिभूय वर्तमानं दृष्टं, तथा संवेदनमप्यात्मनोऽभिन्नत्वात् कर्त्रंशेनात्मतामापन्नं करणांशेन ज्ञानतामापन्नेन कारणभूतानामर्थानां कार्यभूतान् समस्तज्ञेयाकारानभिव्याप्य वर्तमानं कार्यकारणत्वेनोपचर्य ज्ञानमर्थानभिभूय वर्तत इत्युच्यमानं न विप्रतिषिध्यते ॥ ३० ॥

इति । ततो ज्ञायते निश्चयेनाप्रवेश इव व्यवहारेण ज्ञेयपदार्थेषु प्रवेशोऽपि घटत इति ॥ २९ ॥ अथ तमेवार्थं दृष्टान्तद्वारेण दृढयति;—**रयणमिह** रत्नमिह जगति । किं नाम । **इंदणीलं** इन्द्रनीलसंज्ञं । किं विशिष्टं । **दुद्धज्झसियं** दुग्धे निक्षिप्तं **जहा** यथा **सभासाए** स्वकीयप्रभया **अभिभूय** तिरस्कृत्य । किं । **तंपि दुद्धं** तत्पूर्वोक्तं दुग्धमपि **वट्टइ** वर्तते । इति दृष्टान्तो गतः । **तह णाणमट्ठेसु** तथा ज्ञानमर्थेषु वर्तत इति । तद्यथा-यथेन्द्रनीलरत्नं कर्तृ स्वकीयनीलप्रभया करणभूतया दुग्धं नीलं कृत्वा वर्तते, तथा निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमसामायिकसंयमेन यदुत्पन्नं केवलज्ञानं तत् स्वपरपरिच्छित्तिसामर्थ्येन समस्ताज्ञानान्धकारं तिरस्कृत्य युगपदेव सर्वपदार्थेषु परिच्छित्त्याकारेण वर्तते । अयमत्र भावार्थः—कारणभूतानां सर्वपदार्थानां कार्यभूताः परिच्छित्त्याकारा उपचारेणार्था भण्यन्ते, तेषु च ज्ञानं वर्तत इति भण्यमानेपि व्यवहारेण दोषो

हैं । इसीप्रकार आत्माभी ज्ञेयपदार्थोंमें निश्चयनयसे यद्यपि प्रवेश नहीं करता है तौभी ज्ञायकशक्ति उसमें कोई ऐसी विचित्र है । इसकारण व्यवहारनयसे उसका ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेशभी कहाजाता है ॥ २९ ॥ आगे व्यवहारसे आत्मा ज्ञेयपदार्थोंमें प्रवेश करता है यह बात दृष्टान्तसे फिर पुष्ट करते हैं;–[**इह**] इस लोकमें [**यथा**] जैसे [**दुग्धाध्युषितं**] दूधमें डुबाया हुआ [**इंद्रनीलं रत्नं**] प्रधान नीलमणि [**स्वभासा**] अपनी दीप्तिसे [**तत् दुग्धं**] उस दूधको [**अपि**] भी [**अभिभूय**] दूर करके अर्थात् अपनासा नीलवर्ण करके [**वर्तते**] वर्तता है । [**तथा**] उसीप्रकार [**अर्थेषु**] ज्ञेयपदार्थोंमें [**ज्ञानं**] केवलज्ञान प्रवर्तता है । **भावार्थ**—यदि दूधसे भरे हुए किसी एकवर्तनमें प्रधान नीलारत्न डालदें तो उस वर्तनका सब दूध नीलवर्ण दिखलाई देगा। क्योंकि उस नीलमणिमें ऐसी एक शक्ति है कि जिसकी प्रभासे वह सारे दूधको नीला-

अथैवमर्था ज्ञाने वर्तन्त इति संभावयतिः—

जदि ते ण संति अत्था णाणे णाणं ण होदि सव्वगयं ।
सव्वगयं वा णाणं कहं ण णाणट्ठिया अत्था ॥ ३१ ॥

यदि ते न सन्त्यर्था ज्ञाने ज्ञानं न भवति सर्वगतम् ।
सर्वगतं वा ज्ञानं कथं न ज्ञानस्थिता अर्थाः ॥ ३१ ॥

यदि खलु निखिलात्मीयज्ञेयाकारसमर्पणद्वारेणावतीर्णाः सर्वेऽर्था न प्रतिभान्ति ज्ञाने तदा तन्न सर्वगतमभ्युपगम्यते । अभ्युगम्येत वा सर्वगतं । तर्हि साक्षात् संवेदनमुकुरुन्दभूमिकावतीर्णप्रतिबिम्बस्थानीयस्वीयस्वीयसंवेद्याकारकारणानि, परम्परया प्रतिबिम्बस्थानीयसंवेद्याकारकारणानीति कथं ज्ञानस्थायिनोर्था निश्चीयन्ते ॥ ३१ ॥

नास्तीति ॥ ३० ॥ अथ पूर्वसूत्रेण भणितं ज्ञानमर्थेषु वर्तते व्यवहारेणात्र पुनरर्था ज्ञाने वर्तन्त इत्युपदिशन्ति;—**जइ** यदि चेत् **ते अट्ठा ण संति** ते पदार्थाः स्वकीयपरिच्छित्त्याकारसमर्पणद्वारेणादर्शे बिम्बवन्न सन्ति यदि चेत् । क । **णाणे** केवलज्ञाने **णाणं ण होइ सव्वगयं** तदा ज्ञानं सर्वगतं न भवति । **सव्वगयं वा णाणं** व्यवहारेण सर्वगतं ज्ञानं सम्मतं चेद्भवतां **कहं ण णाणट्ठिया अट्ठा** तर्हि व्यवहारनयेन स्वकीयज्ञेयाकारपरिच्छित्तिसमर्पणद्वारेण ज्ञानस्थिता अर्था कथं न भवन्ति किन्तु भवन्त्येव । अत्रायमभिप्रायः—यत एव व्यवहारेण ज्ञेयपरिच्छित्त्याकारग्रहणद्वारेण ज्ञानं सर्वगतं भण्यते, तस्मादेव ज्ञेयपरिच्छित्त्याकारसमर्पण-

---

कर देता है । इस क्रियामें यद्यपि निश्चयसे नीलमणि आपमेंही है परन्तु प्रकाशकी विचित्रताके कारण व्यवहारनयसे उसको सब दूधमें व्याप्त कहते हैं । ठीक ऐसीही ज्ञान और ज्ञेयों (पदार्थों) की दशा (हालत) है अर्थात् निश्चयनयसे ज्ञान आत्मामेंही है परन्तु व्यवहारनयसे ज्ञेयमेंभी कहते हैं । जैसे दर्पणमें घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं और दर्पण अपनी स्वच्छतारूप शक्तिसे उन पदार्थोंके आकार होजाता है, उसीप्रकार ज्ञानमें पदार्थ झलकते हैं और अपनी स्वच्छतारूप ज्ञायकशक्तिसे वह ज्ञेयाकार होजाता है अतएव व्यवहारसे ज्ञान पदार्थोंमें है ऐसा कहते हैं ॥ ३० ॥ आगे जैसे ज्ञेयमें ज्ञान है वैसेही व्यवहारसे ज्ञानमें ज्ञेय (पदार्थ) है ऐसा कहते हैं;—[**यदि**] जो [**ते अर्थाः**] वे ज्ञेयपदार्थ [**ज्ञाने**] केवल ज्ञानमें [**न सन्ति**] नहीं होवें [**तदा**] तो [**सर्वगतं ज्ञानं**] सब पदार्थोंमें प्राप्त होनेवाला ज्ञान अर्थात् केवलज्ञानही [**न भवति**] नहीं होवै । और [**वा**] जो [**सर्वगतं ज्ञानं**] केवलज्ञान है ऐसा मानो तो [**अर्थाः**] पदार्थ [**ज्ञानस्थिताः**] ज्ञानमें स्थित हैं (मौजूद हैं) ऐसा [**कथं न**] क्यों न होवै ? अवश्यही होवै । **भावार्थ**—यदि ज्ञानमें सब ज्ञेयोंके आकार 'दर्पणमें प्रतिबिम्बकी तरह' नहीं प्रतिभासें तो ज्ञान सर्वगतही नहीं ठहरै

अथैव ज्ञानिनोर्थैः सहान्योन्यवृत्तिमत्त्वेपि परग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावेन सर्वं पश्यतोध्यवसतश्चात्यन्तविविक्तत्वं भावयतिः—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि ण परं परिणमदि केवली भगवं ।
पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं ॥ ३२ ॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति न परं परिणमति केवली भगवान् ।
पश्यति समन्ततः स जानाति सर्वं निरवशेषम् ॥ ३२ ॥

अयं खल्वात्मा स्वभावत एव परद्रव्यग्रहणमोक्षणपरिणमनाभावात्स्वतत्त्वभूतकेवलज्ञानस्वरूपेण विपरिणम्य निष्कम्पोन्मज्जज्ज्योतिर्जात्यमणिकल्पो भूत्वाऽवतिष्ठमानः स-

---

द्वारेण पदार्था अपि व्यवहारेण ज्ञानगता भण्यन्त इति ॥ ३१ ॥ अथ ज्ञानिनः पदार्थैः सह यद्यपि व्यवहारेण ग्राह्यग्राहकसम्बन्धोऽस्ति तथापि संश्लेषादिसम्बन्धो नास्ति, तेन कारणेन ज्ञेयपदार्थैः सह भिन्नत्वमेवेति प्रतिपादयति;—**गेण्हदि णेव ण मुंचदि** गृह्णाति नैव मुञ्चति नैव **ण परं परिणमदि** परं परद्रव्यं ज्ञेयपदार्थं नैव परिणमति । स कः कर्ता । **केवली भगवं** केवली भगवान् सर्वज्ञः । ततो ज्ञायते परद्रव्येण सह भिन्नत्वमेव । तर्हि किं परद्रव्यं न जानाति । **पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं** तथापि व्यवहारनयेन पश्यति समन्ततः सर्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्जानाति च सर्वं निरवशेषम् । अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—अभ्यन्तरे कामक्रोधादि बहिर्विषये पञ्चेन्द्रियविषयादिकं बहिर्द्रव्यं न गृह्णाति, स्वकीया-

---

क्योंकि जब आरसीमें स्वच्छपना है तब घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं उसी समय आरसी भी सबके आकार होजाती है । इसीप्रकार ज्ञान ज्ञेयको तब जानता है जब अपनी ज्ञायकशक्तिसे सब पदार्थोंके आकार होजाता है । और जब सब पदार्थोंके आकार हुआ तो सब पदार्थ उस ज्ञानमें स्थित क्यों न कहे जावैंगे ? व्यवहारसे अवश्यही कहे जावेंगे । इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान और पदार्थ दोनोंही एक दूसरेमें मौजूद हैं ॥ ३१ ॥

आगे आत्मा और पदार्थोंका उपचारसे यद्यपि आपसमें ज्ञेयज्ञायक संबंध है तौभी निश्चयनयसे परपदार्थके ग्रहण तथा त्यागरूप परिणामके अभावसे सब पदार्थोंको देखने जाननेपरभी अत्यंत पृथक्पना है ऐसा दिखाते हैं;—[**केवली भगवान्**] केवलज्ञानी सर्वज्ञ देव [**परं**] ज्ञेयभूत परपदार्थोंको [**नैव**] निश्चयसे न तो [**गृह्णाति**] ग्रहण करते हैं [**न मुञ्चति**] न छोड़ते हैं और [**न परिणमति**] न परिणमन करते हैं । [**सः**] वे केवली भगवान् [**सर्वं**] सब [**निरवशेषं**] कुछभी बाकी नहीं ऐसे ज्ञेय पदार्थोंको [**समन्ततः**] सर्वांग ही [**पश्यति**] देखते हैं और [**जानाति**] जानते हैं । **भावार्थ**—जब यह आत्मा केवल ज्ञा-

मन्ततः स्फुरितदर्शनज्ञानशक्तिः, समस्तमेव निःशेषतयात्मानमात्मनात्मनि संचेतयते । अथवा युगपदेव सर्वार्थसार्थसाक्षात्करणेन ज्ञप्तिपरिवर्तनाभावात् संभावितग्रहणमोक्षणलक्षणक्रियाविरामः प्रथममेव समस्तपरिच्छेद्याकारपरिणतत्वात् पुनः परमाकारान्तरमपरिणममानः समन्ततोपि विश्वमशेषं पश्यति जानाति च विविक्तत्वमेव ॥ ३२ ॥

अथ केवलज्ञानिश्रुतज्ञानिनोरविशेषदर्शनेन विशेषाकाङ्क्षाक्षोभं क्षपयति;—

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण ।
तं सुयकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवयरा ॥ ३३ ॥

यो हि श्रुतेन विजानात्यात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन ।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणन्ति लोकप्रदीपकराः ॥ ३३ ॥

यथा भगवान् युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यविशेषशालिना केवलज्ञानेनानादिनिधननि-

---

नन्तज्ञानादिचतुष्टयं च न मुञ्चति यतस्ततः कारणादयं जीवः केवलज्ञानोत्पत्तिक्षण एव युगपत्सर्वं जानन्सन् परं विकल्पान्तरं न परिणमति । तथाभूतः सन् किं करोति । स्वतत्त्वभूतकेवलज्ञानज्योतिषा जात्यमणिकल्पो निःकम्पचैतन्यप्रकाशो भूत्वा स्वात्मानं स्वात्मना स्वात्मनि जानात्यनुभवति । तेनापि कारणेन परद्रव्यैः सह भिन्नत्वमेवेत्यभिप्रायः ॥ ३२ ॥ एवं ज्ञानं ज्ञेयरूपेण न परिणमतीत्यादिव्याख्यानरूपेण तृतीयस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ यथा निरावरणसकलव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानेनात्मपरिज्ञानं भवति तथा सावरणैकदेशव्यक्तिलक्षणेन केवलज्ञानोत्पत्तिबीजभूतेन स्वसंवेदनज्ञानरूपभावश्रुतेनाप्यात्मपरिज्ञानं भवतीति निश्चिनोति । अथवा द्वितीयपातनिका—यथा केवलज्ञानं प्रमाणं भवति तथा केवलज्ञानप्रणीतपदार्थप्रकाशकं श्रुतज्ञानमपि परोक्षप्रमाणं भवतीति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—जो

नस्वरूप परिणमन करता है तब इसके निष्कंप ज्ञानरूपी ज्योति प्रगट होती है, जो कि उज्वल रत्नके अडोल प्रकाशके समान स्थिर रहती है । वह केवलज्ञानी पर ज्ञेयपदार्थोंको न ग्रहण करता है न छोड़ता है और न उनके रूप परिणमन करता है । अपने स्वरूपविषें आप अपनेको ही वेदता है (अनुभव करता है) परद्रव्योंसे स्वभावसे ही उदासीन है । जैसे दर्पणकी इच्छाके विनाही दर्पणमें घटपट वगैरः पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं उसीप्रकार जाननेकी इच्छाविना ही केवलज्ञानीके ज्ञानमें त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं । इस कारण व्यवहारसे ज्ञाता द्रष्टा है । इससे यह सिद्ध हुआ कि यह ज्ञाता आत्मा परद्रव्योंसे अत्यन्त (बिलकुल) जुदाही है व्यवहारसे ज्ञेय ज्ञायक संबंध है ॥ ३२ ॥ आगे केवल ज्ञानसे ही आत्मा जाना जाता है अन्यज्ञानसे क्या नहीं जाना जाता ? इसके उत्तरमें केवलज्ञानी और श्रुतकेवली इन दोनोंको बराबर दिखाते हैं;—[यः] जो पुरुष [हि] निश्चयसे [श्रु-

ष्कारणासाधारणस्वसंचेत्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतकस्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन आत्मनात्मनि संचेतनात् केवली, तथायं जनोपि क्रमपरिणममाणकतिपयचैतन्यविशेषशालिना श्रुतज्ञानेनानादिनिधननिष्कारणासाधारणस्वसंवेद्यमानचैतन्यसामान्यमहिम्नश्चेतकस्वभावेनैकत्वात् केवलस्यात्मन आत्मनात्मनि संचेतनात् श्रुतकेवली । अलं विशेषाकांक्षाक्षोभेण, स्वरूपनिश्चलैरेवावस्थीयते ॥ ३३ ॥

यः कर्ता **हि** स्फुटं **सुदेण** निर्विकारस्वसंवित्तिरूपभावश्रुतपरिणामेन **विजाणदि** विजानाति विशेषेण जानाति विषयसुखानन्दविलक्षणनिजशुद्धात्मभावनोत्थपरमानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादेनानुभवति । कम् । **अप्पाणं** निजात्मद्रव्यं । कथम्भूतं । **जाणगं** ज्ञायकं केवलज्ञानस्वरूपं । केन कृत्वा । **सहावेण** समस्तविभावरहितस्वस्वभावेन **तं सुयकेवलिं** तं महायोगीन्द्रं श्रुतकेवलिनं **भणंति** कथयन्ति । के कर्तारः । **इसिणो** ऋषयः । किं विशिष्टाः । **लोयप्पदीवयरा** लोकप्रदीपकरा लोकप्रकाशका इति । अतो विस्तरः—युगपत्परिणतसमस्तचैतन्यशालिना केवलज्ञानेन अनाद्यनन्तनिःकारणान्यद्रव्यासाधारणस्वसंवेद्यमानपरमचैतन्यसामान्यलक्षणस्य परद्रव्यरहितत्वेन केवलस्यात्मन आत्मनि स्वानुभवनाद्यथा भगवान् केवली भवति, तथायं गणधरदेवादिनिश्चयरत्नत्रयाराधकजनोपि पूर्वोक्तलक्षणस्यात्मनो भावश्रुतज्ञानेन स्वसंवेदनान्निश्चयश्रुतकेवली भवतीति । किञ्च—यथा कोपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति, रात्रौ किमपि प्रदीपेनेति । तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवसस्थानीयमोक्षपर्याये भगवानात्मानं पश्यति । संसारी विवेकिजनः पुनर्निशास्थानीयसंसारपर्याये प्रदीपस्थानीयेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिना निजात्मानं पश्यतीति । अयमत्राभिप्रायः—आत्मा परोक्षः, कथं ध्यानं क्रियते

तेन] भावश्रुतज्ञानसे [**स्वभावेन ज्ञायकं**] अपने ही सहज स्वभावसे सबको जाननेवाले [**आत्मानं**] आत्माको अर्थात् अपने निजस्वरूपको [**विजानाति**] विशेषतासे जानता है [**तं**] उस भावश्रुतज्ञानीको [**लोकप्रदीपकराः**] समस्तलोकके उद्योत करनेवाले [**ऋषयः**] श्रीवीतरागदेव [**श्रुतकेवलिनं**] श्रुतकेवली [**भणन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ**—जिसप्रकार केवलज्ञानी एकही कालमें अनन्त चैतन्यशक्तियुक्त केवलज्ञानसे अनादि अनंत, कारणरहित, असाधारण, स्वसंवेदन ज्ञानकी महिमाकर सहित, केवल आत्माको अपनेमें आप वेदता है; उसीप्रकार यह सम्यग्दृष्टिभी कितनीएक क्रमवर्ती चैतन्यशक्तियोंसहित श्रुतज्ञानसे केवल आत्माको आपमें आपसे वेदता है, इसकारण इसे श्रुतकेवली कहते हैं। वस्तुके स्वरूप जाननेकी अपेक्षा केवलज्ञानी और श्रुतकेवली दोनों समान हैं। भेद केवल इतना ही है कि केवलज्ञानी संपूर्ण अनंत ज्ञानशक्तियोंसे वेदता है, श्रुतकेवली कितनीएक शक्तियोंसे वेदता है। ऐसा जानकर जो सम्यग्दृष्टि हैं वे अपने स्वरूपको स्वसंवेदन ज्ञानसे वेदते हैं,तथा आपमें निश्चल होकर स्थिर होते हैं। और जैसे कोई पुरुष दिनमें सूर्यके प्रकाशसे देखता है उसी प्रकार केवलज्ञानी अपने केव-

अथ ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदमुदस्यति;—

सुत्तं जिणोवदिट्ठं पोग्गलदव्वप्पगेहिं वयणेहिं ।
तज्जाणणा हि णाणं सुत्तस्स य जाणणा भणिया ॥ ३४ ॥

सूत्रं जिनोपदिष्टं पुद्गलद्रव्यात्मकैर्वचनैः ।
तज्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानं सूत्रस्य च ज्ञप्तिर्भणिता ॥ ३४ ॥

श्रुतं हि तावत्सूत्रं । तच्च भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञं स्यात्कारकेतनं पौद्गलिकं शब्दब्रह्म । तज्ज्ञप्तिर्हि ज्ञानं । श्रुतं तु तत्कारणत्वात् ज्ञानत्वेनोपचर्यत एव । एवं सति सूत्रस्य ज्ञप्तिः श्रुतज्ञानमित्यायाति । अथ सूत्रमुपाधित्वान्नाद्रियते ज्ञप्तिरेवावशिष्यते । सा च केवलिनः श्रुतकेवलिनश्चात्मसंचेतने तुल्यैवेति नास्ति ज्ञानस्य श्रुतोपाधिभेदः ॥ ३४ ॥

इति सन्देहं कृत्वा परमात्मभावना न त्याज्येति ॥ ३३ ॥ अथ शब्दरूपं द्रव्यश्रुतं व्यवहारेण ज्ञानं निश्चयेनार्थपरिच्छित्तिरूपं भावश्रुतमेव ज्ञानमिति कथयति । अथवात्मभावनारतो निश्चयश्रुतकेवली भवतीति पूर्वसूत्रे भणितम्, अयं तु व्यवहारश्रुतकेवलीति कथ्यते;—**सुत्तं** द्रव्यश्रुतं । कथम्भूतं । **जिणोवदिट्ठं** जिनोपदिष्टं । कैः कृत्वा । **पोग्गलद्व्वप्पगेहिं वयणेहिं** पुद्गलद्रव्यात्मकैर्दिव्यध्वनिवचनैः **तं जाणणा हि णाणं** तेन पूर्वोक्त शब्दश्रुताधारेण ज्ञप्तिरर्थपरिच्छित्तिर्ज्ञानं भण्यते **हि** स्फुटं **सुत्तस्स य जाणणा भणिया** पूर्वोक्तद्रव्यश्रुतस्यापि व्यवहारेण ज्ञानव्यपदेशो भवति न तु निश्चयेनेति । तथाहि—यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो जीवः पश्चाद्व्यवहारेण नरनारकादिरूपोपि जीवो भण्यते । तथा निश्चयेनाखण्डैकप्रतिभासरूपं समस्तवस्तुप्रकाशकं ज्ञानं भण्यते, पश्चाद्व्यवहारेण मेघपटलावृतादित्यस्यावस्थाविशेषवत्कर्मपट-

---

लज्ञानसे आपको देखते हैं । तथा जैसे कोई पुरुष रात्रिको दीपकके प्रकाशसे देखता है उसीप्रकार संसारपर्यायरूपरात्रिमें ये सम्यग्दृष्टि विवेकी भावश्रुतज्ञानरूप दीपकसे अपनेको देखते हैं । इसतरह केवली और श्रुतकेवली समान हैं ॥ ३३ ॥ आगे ज्ञानके श्रुतरूप उपाधिभेदको दूर करते हैं;—[**पुद्गलद्रव्यात्मकैः**] पुद्गलद्रव्यस्वरूप [**वचनैः**] वचनोंसे [**जिनोपदिष्टं**] जो जिनभगवानकर उपदेश किया हुआ है [**सूत्रं**] वह द्रव्यश्रुत है [**हि**] निश्चयकर [**तद्ज्ञप्तिः**] उस द्रव्यश्रुतका जानना वह [**ज्ञानं**] भावश्रुत ज्ञान है । [**च सूत्रस्य**] और द्रव्यश्रुतकोभी [**ज्ञप्तिः**] ज्ञान [**भणिता**] 'व्यवहारसे' कहा है । **भावार्थ**—द्रव्यश्रुत पुद्गलमय है क्योंकि वह वीतराग भगवानका अनेकान्तरूप वचन है । इस द्रव्यश्रुतको जो ज्ञान जानता है उसे निश्चयसे ज्ञान कहते हैं । परन्तु जो द्रव्यश्रुतको ही ज्ञान कहते हैं सो व्यवहारनयसे ज्ञानके उत्पन्न करनेमें कारणभूत होनेसे अन्नमें प्राणकी तरह कारणमें कार्यका व्यवहारकर कहते हैं, यथार्थमें द्रव्यश्रुतकी ज्ञानसंज्ञा नहीं है क्योंकि वचन जड़ पुद्गलमयी है तथा वह ज्ञानको उपाधिरूप है । और ज्ञान जानने मात्र है उसके कोई उपा-

---

१ 'तं जाणणा' ऐसाभी पाठ देखनेमें आता है ।

अथात्मज्ञानयोः कर्तृकरणताकृतं भेदमपनुदति;—

जो जाणदि सो णाणं ण हवदि णाणेण जाणगो आदा ।
णाणं परिणमदि सयं अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे ॥ ३५ ॥

यो जानाति स ज्ञानं न भवति ज्ञानेन ज्ञायक आत्मा ।
ज्ञानं परिणमते स्वयमर्था ज्ञानस्थिताः सर्वे ॥ ३५ ॥

अपृथग्भूतकर्तृकरणत्वशक्तिपारमैश्वर्ययोगित्वादात्मनो य एव स्वयमेव जानाति स एव ज्ञानमन्तर्लीनसाधकतमोष्णत्वशक्तेः स्वतन्त्रस्य जातवेदसो दहनक्रियाप्रसिद्धेरुष्णव्यपदेश-

---

लावृताखण्डैकज्ञानरूपजीवस्य मतिज्ञानश्रुतज्ञानादिव्यपदेशो भवतीति भावार्थः ॥ ३४ ॥ अथ भिन्नज्ञानेनात्मा ज्ञानी न भवतीत्युपदिशति;—**जो जाणदि सो णाणं** यः कर्ता जानाति स ज्ञानं भवतीति । तथाहि—यथा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि सति पश्चादभेदनयेन दहन-क्रियासमर्थोष्णगुणेन परिणतोऽग्निरप्युष्णो भण्यते, तथार्थक्रियापरिच्छित्तिसमर्थेन ज्ञानगुणेन परिणत आत्मापि ज्ञानं भण्यते । तथा चोक्तम्—'जानातीति ज्ञानमात्मा' **ण हवदि णाणेण जाणगो आदा** सर्वथैव भिन्नज्ञानेनात्मा ज्ञायको न भवतीति । अथ मतम्—यथा भिन्नदात्रेण

धिका कामही नहीं है । लेकिन 'श्रुतज्ञान' ऐसा कहनेका कारण यह है कि कर्मके संयोगसे द्रव्यश्रुतका निमित्त पाकर ज्ञान उत्पन्न होता है । यदि वस्तुके स्वभावका विचार किया जाय तो ज्ञान ज्ञानसे ही उत्पन्न होता है इसीलिये ज्ञानके कोई श्रुत वगैरः उपाधि नहीं है ॥ ३४ ॥ आगे कितनेही एकान्तवादी ज्ञानसे आत्माको भिन्न मानते हैं सो उनके पक्षको दूर करनेकेलिये आत्मा कर्ता है, ज्ञान कारण है ऐसा भिन्नपना दूर करके आत्मा और ज्ञानमें अभेद सिद्ध करते हैं;—**[यः]** जो आत्मा **[जानाति]** जानता है **[सः]** वह **[ज्ञानं]** ज्ञान है । **[ज्ञानेन]** ज्ञानगुणसे **[ज्ञायकः]** जाननेवाला **[आत्मा]** आत्मा अर्थात् चेतनद्रव्य **[न भवति]** नहीं होता । **[ज्ञानं]** ज्ञान **[स्वयं]** आपही **[परिणमते]** परिणमन करता है **[सर्वे अर्थाः]** और सब ज्ञेय पदार्थ **[ज्ञानस्थिताः]** ज्ञानमें स्थित हैं । **भावार्थ**—यद्यपि व्यवहारमें संज्ञा, संख्या, लक्षण प्रयोजनादि भेदोंसे ज्ञान और आत्माको वस्तुके समझनेके लिये भिन्न कहते हैं परन्तु निश्चयमें ज्ञान और आत्मामें भिन्नपना नहीं है, प्रदेशोंसे ज्ञान और आत्मा एक है । इसीकारण ज्ञानभावरूप परिणमता आत्मा ही ज्ञान है । जैसे अग्नि ज्वलनक्रिया करनेका कर्ता है और उष्णगुण ज्वलन क्रियाका कारण है । अग्नि और उष्णपना व्यवहारसे भिन्न हैं परन्तु यथार्थमें भिन्न नहीं है, जो अग्नि है वही उष्णपना है और इसलिये अग्निको उष्णभी कहते हैं । इसीप्रकार यह आत्मा जाननेरूप क्रियाका कर्ता है और ज्ञान जानन-क्रियाका साधन

वत् । न तु यथा पृथग्वर्तिना दात्रेण लावको भवति देवदत्तस्तथा ज्ञायको भवत्यात्मा । तथा सत्युभयोरचेतनत्वमचेतनयोः संयोगेपि न परिच्छित्तिनिष्पत्तिः । पृथक्त्ववर्तिनोरपि परिच्छेदाभ्युपगमे परपरिच्छेदेन परस्य परिच्छित्तिर्भूतिप्रभृतीनां च परिच्छित्तिप्रभूतिरनङ्कुशा स्यात् । किंच—स्वतोव्यतिरिक्तसमस्तपरिच्छेद्याकारपरिणतं ज्ञानं, स्वयं परिणममानस्य कार्यभूतसमस्तज्ञेयाकारकारणीभूताः सर्वेर्था ज्ञानवर्तिन एव कथंचिद्भवन्ति, किं ज्ञातृज्ञानविभागक्लेशकल्पनया ॥ ३५ ॥

अथ किं ज्ञानं किं ज्ञेयमिति व्यनक्ति;—

तम्हा णाणं जीवो णेयं दव्वं तिधा समक्खादं ।
दव्वंति पुणो आदा परं च परिणामसंबद्धं ॥ ३६ ॥

लावको भवति देवदत्तस्तथा भिन्नज्ञानेन ज्ञायको भवतु को दोष इति । नैवम् । छेदनक्रियाविषये दात्रं बहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नं भवतु, अभ्यन्तरोपकरणं तु देवदत्तस्य छेदनक्रियाविषये शक्तिविशेषस्तच्चाभिन्नमेव भवति । उपाध्यायप्रकाशादिबहिरङ्गोपकरणं तद्भिन्नमपि भवतु दोषो नास्ति । यदि च भिन्नज्ञानेन ज्ञानी भवति तर्हि परकीयज्ञानेन सर्वेपि कुम्भस्तम्भादिजडपदार्था ज्ञानिनो भवन्तु न च तथा । **णाणं परिणमदि सयं** यत एव भिन्नज्ञानेन ज्ञानी न भवति तत एव घटोत्पत्तौ मृत्पिण्ड इव स्वयमेवोपादानरूपेणात्मा ज्ञानं परिणमति । **अट्ठा णाणट्ठिया सव्वे** व्यवहारेण ज्ञेयपदार्था आदर्शे बिम्बमिव परिच्छित्त्याकारेण ज्ञाने तिष्ठन्तीत्यभिप्रायः ॥ ३५ ॥ अथात्मा ज्ञानं भवति शेषं तु ज्ञेयमित्यावेदयति;—**तम्हा णाणं जीवो** । यस्मादात्मैवोपादान-

---

है इसमें व्यवहारसे भिन्नपना (भेद) है वस्तुतः आत्मा और ज्ञान एक ही है । और जैसे कोई पुरुष लोहेके दांते (हँसिये) से घासका काटनेवाला कहलाता है उस तरह आत्मा ज्ञानसे जाननेवाला नहीं कहा जाता, क्योंकि घासका काटनेवाला पुरुष और घास काटनेमें कारण लोहेका दांता ये दोनों जैसे जुदे २ पदार्थ हैं उसप्रकार आत्मा और ज्ञानमें जुदापना नहीं है, क्योंकि आत्मा और ज्ञान, अग्नि और उष्णताकी तरह अभिन्नही देखनेमें आते हैं जुदे नहीं दीखते । और जो कोई अन्यवादी मिथ्यादृष्टि कहते हैं कि, आत्मासे ज्ञान भिन्न है ज्ञानके संयोगसे आत्मा ज्ञायक है । सो उन्हें "आत्मा अचेतन है ज्ञानके संयोगसे चेतन हो जाता है" ऐसा मानना पड़ेगा । जिससे धूलि, भस्म, घट, पटादि समस्त अचेतनपदार्थ चेतन होजावेंगे, क्योंकि जब ये पदार्थ जाने जाते हैं तब इन धूलि वगैरः पदार्थोंसे भी ज्ञानका संयोग होता है । इसकारण इस दोषके मेंटनेके लिये आत्मा और ज्ञान एक ही मानना चाहिये । और जैसे आरसीमें घटपटादि पदार्थ प्रतिबिम्बरूपसे रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें सब ज्ञेयपदार्थ आरहते हैं । इससे यह सारांश निकला कि आत्मा और ज्ञान अभिन्न हैं अन्यवादियोंकी तरह भिन्न नहीं हैं ॥ ३५ ॥ आगे "ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या

तस्मात् ज्ञानं जीवो ज्ञेयं द्रव्यं त्रिधा समाख्यातम्।
द्रव्यमिति पुनरात्मा परश्च परिणामसंबद्धः ॥ ३६ ॥

यतः परिच्छेदरूपेण स्वयं विपरिणम्य स्वतन्त्र एव परिच्छिनत्ति ततो जीव एव ज्ञान-मन्यद्रव्याणां तथा परिणन्तुं परिच्छेत्तुं चाशक्तेः। ज्ञेयं तु वृत्तवर्तमानवर्तिष्यमाणविचित्रपर्यायपरम्पराप्रकारेण त्रिधाकालकोटिस्पर्शित्वादनाद्यनन्तं द्रव्यं, तत्तु ज्ञेयतामापद्यमानं द्वेधात्मपरविकल्पात्। इष्यते हि स्वपरपरिच्छेदकत्वाववबोधस्य बोध्यस्यैवंविधं द्वैविध्यम्। ननु स्वात्मनि क्रियाविरोधात् कथं नामात्मपरिच्छेदकत्वं। का हि नाम क्रिया कीदृशश्च विरोधः। क्रियाह्यत्र विरोधिनी समुत्पत्तिरूपा वा ज्ञप्तिरूपा वा। उत्पत्तिरूपा हि तावन्नैकं स्वस्मात्प्रजायत इत्यागमाद्विरुद्धैव। ज्ञप्तिरूपायास्तु प्रकाशनक्रिययैव प्रत्यव-

---

रूपेण ज्ञानं परिणमति तथैव पदार्थान् परिच्छिनत्ति, इति भणितं पूर्वसूत्रे। तस्मादात्मैव ज्ञानं **णेयं दव्वं** तस्य ज्ञानरूपस्यात्मनो ज्ञेयं भवति। किं। द्रव्यम्। **तिहा समक्खादं** तच्च द्रव्यं कालत्रयपर्यायपरिणतिरूपेण द्रव्यगुणपर्यायरूपेण वा तथैवोत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण च त्रिधा समाख्यातम्। **दव्वत्ति पुणो आदा परं च** तच्च ज्ञेयभूतं द्रव्यमात्मा भवति। परं च। कस्मात्। यतो ज्ञानं स्वं जानाति परं चेति प्रदीपवत्। तच्च स्वपरद्रव्यं कथं-

---

है" इन दोनोंका भेद कहते हैं;—[**तस्मात्**] इसीकारणसे [**जीवः**] आत्मा [**ज्ञानं**] ज्ञानस्वरूप है। और [**त्रिधा समाख्यातं**] अतीत अनागत वर्तमान पर्यायके भेदसे अथवा उत्पाद व्यय ध्रौव्य भेदसे अथवा द्रव्य, गुण, पर्यायसे तीन प्रकार कहलानेवाला [**द्रव्यं**] द्रव्य है [**ज्ञेयं**] वह ज्ञेय है। [**पुनः**] फिर [**आत्मा**] जीव पदार्थ [**च**] और [**परं**] अन्य अचेतन पांच पदार्थ [**परिणामसंबद्धम्**] परिणमनसे बंधे हैं इसलिये [**द्रव्यमिति**] द्रव्य ऐसे पदको धारण करते हैं। भावार्थ—पहले गाथामें कहा है कि यह आत्मा ज्ञानभावसे आपही परिणमन करके परकी सहायता विना स्वाधीन जानता है, इसलिये आत्मा ही ज्ञान है। अन्य (दूसरा) द्रव्य ज्ञानभावपरिणमनके जाननेमें असमर्थ है। इसलिये अतीतादि भेदसे, उत्पादादिकसे, द्रव्यगुणपर्यायके भेदसे तीन प्रकार हुआ द्रव्य ज्ञेय है अर्थात् आत्माके जानने योग्य है। और आत्मा दीपककी तरह आप तथा पर दोनोंका प्रकाशक (ज्ञायक) होनेसे ज्ञेयभी है ज्ञानभी है अर्थात् दोनों स्वरूप है। इससे यह सारांश निकला कि ज्ञेय पदार्थ स्वज्ञेय और परज्ञेय (दूसरेसे जानने योग्य) के भेदसे दो प्रकार हैं, उनमें पांच द्रव्य ज्ञेयही हैं इस कारण परज्ञेय हैं और आत्मद्रव्य ज्ञेय–ज्ञान दोनोंरूप है, इसकारण स्वज्ञेय है। यहांपर कोई प्रश्न करै कि आत्मा अपनेको जानता है यह बात असंभव है। जैसे कि, नटकलामें अत्यंत चतुर भी नट आप अपने ही कंधेपर नहीं चढ़सक्ता उसीप्रकार अन्य पदार्थोंके जाननेमें दक्ष आत्मा आपको नहीं जानसक्ता, तो इसका समाधान यह है

स्थितत्वान्न तत्र विप्रतिषेधस्यावतारः । यथा हि प्रकाशकस्य प्रदीपस्य परं प्रकाश्यतामापन्नं प्रकाशयतः स्वस्मिन् प्रकाश्ये न प्रकाशान्तरं मृग्यं, स्वयमेव प्रकाशनक्रियायाः समुपलम्भात्। तथा परिच्छेदकस्यात्मनः परं परिच्छेद्यतामापन्नं परिच्छिन्दतः स्वस्मिन् परिच्छेद्येन परिच्छेदकान्तरं मृग्यं, स्वयमेव परिच्छेदनक्रियायाः समुपलम्भात्। ननु कुत आत्मनो द्रव्यज्ञानरूपत्वं द्रव्याणां च आत्मज्ञेयरूपत्वं च। परिणामसंबन्धत्वात्, यतः खलु आत्म-द्रव्याणि च परिणामैः सह संबध्यन्ते। तत आत्मनो द्रव्यालम्बनज्ञानेन द्रव्याणां तु ज्ञानमालम्ब्य ज्ञेयाकारेण परिणतिरबाधिता प्रथयति ॥ ३६ ॥

अथातिवाहितानागतानामपि द्रव्यपर्यायाणां तादात्विकवत् पृथक्त्वेन ज्ञाने वृत्ति-मुद्योतयति;—

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं ।
वट्टंते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं ॥ ३७ ॥

भूतं । **परिणामसंबद्धं** कथंचित्परिणामीत्यर्थः । नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह—ज्ञानं ज्ञानान्तरवेद्यं प्रमेयत्वात् घटादिवत् । परिहारमाह–प्रदीपेन व्यभिचारः, प्रदीपस्तावत्प्रमेयः परिच्छेद्यो ज्ञेयो भवति न च प्रदीपान्तरेण प्रकाश्यते, तथा ज्ञानमपि स्वयमेवात्मानं प्रकाशयति न च ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते। यदि पुनर्ज्ञानान्तरेण प्रकाश्यते तर्हि गगनावलम्बिनी महती दुर्निवारानवस्था प्राप्नोतीति सूत्रार्थः ॥ ३६ ॥ एवं निश्चयश्रुतकेवलिव्यवहारश्रुतकेवलिकथनमुख्यत्वेन भिन्नज्ञाननिराकरणेन ज्ञानज्ञेयस्वरूपकथनेन च चतुर्थस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथातीतानागतपर्याया वर्तमानज्ञाने सांप्रता इव दृश्यन्त इति निरूपयति;—**सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया** सर्वे सद्भूता असद्भूता अपि पर्यायाः ये **हि** स्फुटं **वट्टंते** ते पूर्वोक्ताः पर्याया वर्तन्ते प्रतिभासन्ते प्रतिस्फुरन्ति । क्व । **णाणे** केवलज्ञाने । कथंभूता इव । **तक्कालिगेव** तात्कालिका इव वर्तमाना इव । कासां सम्बन्धिनः । **तासिं दव्वजादीणं** तासां

कि पहले कहे हुए दीपकके दृष्टांतसे आत्मामेंभी स्वपर प्रकाशक शक्ति है, इसकारण आत्मा अपनेको तथा परको जाननेवाला अवश्य होसक्ता है। इससे असंभव दोष कभी भी नहीं लगसक्ता । अब यहांपर फिर कोई प्रश्न करै कि आत्माको द्रव्योंका ज्ञान किससे है ? और द्रव्योंको किसरीतिसे प्राप्त होता है ? तो उससे कहना चाहिये कि ज्ञान, ज्ञेयरूप पदार्थ, परिणामोंसे बँध रहे हैं। आत्माके ज्ञानपरिणति ज्ञेय पदार्थकी सहायतासे है। यदि ज्ञेय न होवे तो किसको जाने ? और ज्ञेय पदार्थ ज्ञानका अवलम्बन करके ज्ञेय अवस्थाको धारण करते हैं। जो ज्ञान न होवै तो इन्हें कोन जाने ? इसलिये पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक सम्बन्ध हमेशासे है मिट नहीं सकता ॥ ३६ ॥ आगे कहते हैं, कि अतीतकालमें हुए द्रव्योंके पर्याय और अनागत (भविष्यत्) कालमें होनेवाले पर्याय, ज्ञानमें वर्तमान सरीखे प्रतिभासन्ते (मालूम पड़ते) हैं;—[**तासां द्रव्यजातीनां**] उन प्रसिद्ध

तात्कालिका इव सर्वे सदसद्भूता हि पर्यायास्तासाम् ।
वर्तन्ते ते ज्ञाने विशेषतो द्रव्यजातीनाम् ॥ ३७ ॥

सर्वासामेव हि द्रव्यजातीनां त्रिसमयावच्छिन्नात्मलाभभूमिकत्वेन क्रमप्रतपत्स्वरूपसंपदः सद्भूतासद्भूततामायान्तो ये यावन्तः पर्यायास्ते तावन्तस्तात्कालिका इवात्यन्तसंकरेणाप्यवधारितविशेषलक्षणा एकलक्षण एवावबोधसौधस्थितिमवतरन्ति । न खल्वेतदयुक्तं दृष्टाविरोधात् । दृश्यते हि छद्मस्थस्यापि वर्तमानमिव व्यतीतमनागतं वा वस्तु चिन्तयतः संविदालम्बितस्तदाकारः । किंच चित्रपटीस्थानीयत्वात् संविदः । यथा हि चित्रपट्यामतिवाहितानामनुपस्थितानां वर्तमानानां च वस्तूनामालेख्याकाराः साक्षादेकक्षण एवावभासन्ते, तथा संविद्भित्तावपि । किंच सर्वज्ञेयाकाराणां तादात्विकाविरोधात् । यथा हि प्रध्वस्तानामनुदितानामालेख्याकारा वर्तमाना एव, तथातीतानामनागतानां च पर्यायाणां ज्ञेयाकारा वर्तमाना एव भवन्ति ॥ ३७ ॥

प्रसिद्धानां शुद्धजीवद्रव्यजातीनामिति । व्यवहितसम्बन्धः कस्मात् । **विसेसदो** स्वकीयस्वकीयप्रदेशकालाकारविशेषैः सङ्करव्यतिकरपरिहारेणेत्यर्थः । किंच—यथा छद्मस्थपुरुषस्यातीतानागतपर्याया मनसि चिन्तयतः प्रतिस्फुरन्ति, यथा च चित्रभित्तौ बाहुबलिभरतादिव्यतिक्रान्तरूपाणि श्रेणिकतीर्थकरादिभाविरूपाणि च वर्तमानानीव प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते तथा चित्रभित्तिस्थानीयकेवलज्ञाने भूतभाविनश्च पर्याया युगपत्प्रत्यक्षेण दृश्यन्ते, नास्ति विरोधः । यथायं केवली भगवान् परद्रव्यपर्यायान् परिच्छित्तिमात्रेण जानाति न च तन्मयत्वेन, निश्चयेन तु केवलज्ञानादिगुणाधारभूतं स्वकीयसिद्धपर्यायमेव स्वसंवित्त्याकारेण तन्मयो भूत्वा परिच्छिनत्ति जानाति, तथासन्नभव्यजीवेनापि निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयपर्याय एव सर्वता-

---

जीवादिक द्रव्यजातियोंके [**ते सर्वे**] वे समस्त [**सदसद्भूताः**] विद्यमान तथा अविद्यमान [**पर्यायाः**] पर्याय [**हि**] निश्चयसे [**ज्ञाने**] ज्ञानमें [**विशेषतः**] भिन्न २ भेद लिये [**तात्कालिका इव**] वर्तमानकाल संबंधी पर्यायोंकी तरह [**वर्तन्ते**] प्रवर्तते हैं। **भावार्थ**—जैसे किसी चित्रकारने (चतेरेने) चित्रपटमें बाहुबली-भरतादि अतीत पुरुषोंका चित्र लिखा और भावीकालसम्बन्धी श्रेणिकादि तीर्थंकरका चित्र लिखा सो वे चित्र उस चित्रपटमें वर्तमानकालमें देखे जाते हैं। उसीप्रकार ज्ञानचित्रपटमें जो पर्याय होचुके तथा जो आगे होनेवाले हैं उनका वर्तमान प्रतिबिम्ब भासता है। यहांपर कोई प्रश्न करै कि "वर्तमानकालके ज्ञेयोंके आकार ज्ञानमें प्रतिबिम्बित होसक्ते हैं, परंतु जो होचुके हैं तथा जो होनेवाले हैं उनका प्रतिभास होना असंभव माळूम होता है" उसका समाधान यह है कि जो छद्मस्थ ज्ञानी (अल्पज्ञानी तपस्वी) भी योगबलसे वा तपस्याके प्रभावसे ज्ञानमें कुछ निर्मलता होनेसे अतीत अनागत वस्तुका विचार करलेते हैं तब उनका ज्ञान अतीत अनागत वस्तुके

अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदधाति;—

जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया ।
ते होंति असब्भूया पज्जाया णाणपच्चक्खा ॥ ३८ ॥

येनैव हि संजाता ये खलु नष्टा भूत्वा पर्यायाः ।
ते भवन्ति असद्भूताः पर्याया ज्ञानप्रत्यक्षाः ॥ ३८ ॥

ये खलु नाद्यापि संभूतिमनुभवन्ति, ये चात्मलाभमनुभूय विलयमुपगतास्ते किलासद्भूता अपि परिच्छेदं प्रति नियतत्वात् ज्ञानप्रत्यक्षतामनुभवन्तः शिलास्तम्भोत्कीर्णभूतभाविदेववदप्रकम्पार्पितस्वरूपाः सद्भूता एव भवन्ति ॥ ३८ ॥

त्पर्येण ज्ञातव्य इति तात्पर्यम् ॥ ३७ ॥ अथातीतानागतपर्यायाणामसद्भूतसंज्ञा भवतीति प्रतिपादयति;—**जेणेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्जाया** ये नैव संजाता नाद्यापि भवन्ति, भाविन इत्यर्थः । हि स्फुटं ये च खलु नष्टा विनष्टाः पर्यायाः । किं कृत्वा । भूत्वा **ते होंति असब्भूदा पज्जाया** ते पूर्वोक्ता भूता भाविनश्च पर्याया अविद्यमानत्वादसद्भूता भण्यते । **णाणपच्चक्खा** ते चाविद्यमानत्वादसद्भूता अपि वर्तमानज्ञानविषयत्वाद्व्यवहारेण भूतार्था भण्यन्ते, तथैव ज्ञानप्रत्यक्षाश्चेति । यथायं भगवान्निश्चयेन परमानन्दैकलक्षणसुखस्वभावं मोक्षपर्यायमेव तन्मयत्वेन परिच्छिनत्ति, परद्रव्यपर्यायं तु व्यवहारेणेति । तथा भावितात्मना पुरुषेण रागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनपर्याय एव तात्पर्येण ज्ञातव्यः, बहिर्द्रव्यपर्यायाश्च गौण-

आकार होजाता है वहांपर वस्तु वर्तमान नहीं है । तैसे निरावरण ज्ञानमें (जिसमें कोईतरहका आच्छादन न हो बिलकुल निर्मल हो ऐसे ज्ञानमें) अतीत अनागत वस्तु प्रतिभासै तो असंभव नहीं है । ज्ञानका स्वभावही ऐसा है । स्वभावमें तर्क नहीं चलसकती ॥ ३७ ॥ आगे जो पर्याय वर्तमान पर्याय नहीं हैं उनको किसीएक प्रकार वर्तमान दिखलाते हैं;—[**हि**] निश्चयकरके [**ये पर्यायाः**] जो पर्याय [**नैव संजाताः**] उत्पन्नही नहीं हुए हैं तथा [**ये**] जो [**खलु**] निश्चयसे [**भूत्वा**] उत्पन्न होकर [**नष्टाः**] नष्ट होगये हैं [**ते**] वे सब अतीत अनागत [**पर्यायाः**] पर्याय [**असद्भूताः**] वर्तमानकालके गोचर नहीं ऐसे [**भवन्ति**] होते हैं, तौभी [**ज्ञानप्रत्यक्षाः**] केवल ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं । **भावार्थ**—जो उत्पन्न नहीं हुए ऐसे अनागत अर्थात् भविष्यत् कालके और जो उत्पन्न होकर नष्ट होगये ऐसे अतीतकालके पर्यायोंको असद्भूत कहते हैं, क्योंकि वे वर्तमान नहीं हैं । परंतु ज्ञानकी अपेक्षा येही दोनों पर्याय सद्भूतभी हैं, क्योंकि केवलज्ञानमें प्रतिविम्बित हैं । और जैसे भूत-भविष्यतकालके चौवीस तीर्थंकरोंके आकार पाषाण (पत्थर) के स्तंभ (खंभा) में चित्रित रहते हैं उसीप्रकार ज्ञानमें अतीत अनागत ज्ञेयोंके आकार प्रति-

अथैतदेवासद्भूतानां ज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति;—

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स ।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वंत्ति हि के परूविंति ॥ ३९ ॥

यदि प्रत्यक्षोऽजातः पर्यायः प्रलयितश्च ज्ञानस्य ।
न भवति वा तत् ज्ञानं दिव्यमिति हि के प्ररूपयन्ति ॥ ३९ ॥

यदि खल्वसंभावितभावं संभावितभावं च पर्यायजातमप्रतिघविजृम्भिताखण्डितप्रताप-प्रभुशक्तितया प्रसभेनैव नितान्तमाक्रम्याक्रमसमर्पितस्वरूपसर्वस्वमात्मानं प्रतिनियतं ज्ञानं करोति, तदा तस्य कुतस्तनी दिव्यता स्यात् । अतः काष्ठाप्राप्तस्य परिच्छेदस्य सर्वमेतदुपपन्नम् ॥ ३९ ॥

अथेन्द्रियज्ञानस्यैव प्रलीनमनुत्पन्नं च ज्ञातुमशक्यमिति वितर्कयति;—

वृत्त्येति भावार्थः ॥ ३८ ॥ अथासद्भूतपर्यायाणां वर्तमानज्ञानप्रत्यक्षत्वं दृढयति;—**जइ पच्चक्खमजायं पज्जायं पलइयं च णाणस्स ण हवदि वा** यदि प्रत्यक्षो न भवति । स कः । अजातपर्यायो भाविपर्यायः । न केवलं भाविपर्यायः प्रलयितश्च वा । कस्य । ज्ञानस्य **तं णाणं दिव्वंति हि के परूवेंति** तद्ज्ञानं दिव्यमिति के प्ररूपयन्ति ? न केपीति । तथाहि—यदि वर्तमानपर्यायवदतीतानागतपर्यायं ज्ञानं कर्तृ क्रमकरणव्यवधानरहितत्वेन साक्षात्प्रत्यक्षं न करोति, तर्हि तत् ज्ञानं दिव्यं न भवति । वस्तुतस्तु ज्ञानमेव न भवतीति । यथायं केवली परकीयद्रव्यपर्यायान् यद्यपि परिच्छित्तिमात्रेण जानाति तथापि निश्चयनयेन सहजानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मनि तन्मयत्वेन परिच्छित्तिं करोति, तथा निर्मलविवेकिजनोपि यद्यपि व्यवहारेण परकीयद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानं करोति, तथापि निश्चयेन निर्विकारस्वसंवेदनपर्याये विषयत्वात्पर्यायेण परिज्ञानं करोतीति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ३९ ॥ अथातीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थानिन्द्रियज्ञानं

विम्बित होकर वर्तमान होते हैं ॥ ३८ ॥ आगे असद्भूतपर्यायें ज्ञानमें प्रत्यक्ष हैं इसीको पुष्ट करते हैं;—**[यदि वा]** और जो **[ज्ञानस्य]** केवलज्ञानके **[अजातः पर्यायः]** अनागत पर्याय **[च]** तथा **[प्रलयितः]** अतीतपर्याय **[प्रत्यक्षः]** अनुभवगोचर **[न भवति]** नहीं होते **[तदा]** तो **[तद्ज्ञानं]** उस ज्ञानको **[दिव्यं]** सबसे उत्कृष्ट अर्थात् स्तुति करने योग्य **[हि]** निश्चयकर **[के प्ररूपयन्ति]** कौन कहता ? कोईभी नहीं । **भावार्थ**—जो ज्ञान भूतभविष्यत पर्यायोंको नहीं जाने तो फिर उस ज्ञानकी महिमा ही क्या रहे ? कुछभी नहीं, ज्ञानकी प्रशंसा तो यही है कि वह सबको प्रत्यक्ष जानता है । इसलिये भगवान्‌के दिव्यज्ञानमें तीनों कालकी समस्त द्रव्यपर्याय एकही बार प्रत्यक्ष प्रतिभासित होते हैं इसमें कुछभी संदेह नहीं है । अनंत महिमासहित सर्वज्ञका ज्ञान ऐसाही आश्चर्य करनेवाला है ॥ ३९ ॥ आगे इंद्रियजनित ज्ञान अतीत अनागत पर्यायोंके जाननेमें असमर्थ है, ऐसा कहते

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति।
तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कंति पण्णत्तं ॥ ४० ॥

अर्थमक्षनिपतितमीहापूर्वैः ये विजानन्ति।
तेषां परोक्षभूतं ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तम् ॥ ४० ॥

ये खलु विषयविषयिसन्निपातलक्षणमिन्द्रियार्थसन्निकर्षमधिगम्य क्रमोपजायमानेनेहादिकप्रक्रमेण परिच्छिन्दन्ति, ते किलातिवाहितस्वास्तित्वमनुपस्थितस्वास्तित्वकालं वा यथोदितलक्षणस्य ग्राह्यग्राहकसंबन्धस्यासंभवतः परिच्छेत्तुं न शक्नुवन्ति ॥ ४० ॥

न जानातीति विचारयति;—**अट्ठं** पदार्थं **अक्खणिवदिदं** इन्द्रियगोचरं **ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति** ईहापूर्वकं ये विजानन्ति। **तेसिं परोक्खभूदं** तेषां सम्बन्धि ज्ञानं परोक्षभूतं सत् **णादुमसक्कंत्ति पण्णत्तं** सूक्ष्मादिपदार्थान् ज्ञातुमशक्यमिति प्रज्ञप्तं कथितम्। कैः। ज्ञानिभिरिति। तद्यथा—चक्षुरादीन्द्रियं घटपटादिपदार्थपार्श्वे गत्वा पश्चादर्थं जानातीति सन्निकर्षलक्षणं नैयायिकमते। अथवा संक्षेपेणेन्द्रियार्थयोः संबन्धः सन्निकर्षः स एव प्रमाणम्। स च सन्निकर्ष आकाशाद्यमूर्तपदार्थेषु देशान्तरितमेर्वादिपदार्थेषु कालान्तरितरामरावणादिषु स्वभावान्तरितभूतादिषु तथैवातिसूक्ष्मेषु परचेतोवृत्तिपुद्गलपरमाण्वादिषु च न प्रवर्तते। कस्मादिति-चेत् इन्द्रियाणां स्थूलविषयत्वात्, तथैव मूर्तविषयत्वाच्च। ततः कारणादिन्द्रियज्ञानेन सर्वज्ञो न भवति। तत एव चातीन्द्रियज्ञानोत्पत्तिकारण रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं विहाय पञ्चेन्द्रियसुखसाधनीभूत इन्द्रियज्ञाने नानामनोरथविकल्पजालरूपे मानसज्ञाने च ये रतिं कु-

---

हैं;—[**ये**] जो जीव [**अक्षनिपतितं**] इन्द्रिय गोचर हुए [**अर्थं**] घटपटादि पदार्थोंको [**ईहापूर्वैः**] ईहा है पूर्वमें जिनके ऐसे ईहा, अवाय, धारणा इन मतिज्ञानोंसे [**विजानन्ति**] जानते हैं [**तेषां**] उन जीवोंके [**परोक्षभूतं**] अतीत अनागतकालसंबंधी परोक्ष वस्तु [**ज्ञातुम्**] जाननेको [**अशक्यं**] असमर्थपना है [**इति**] इसप्रकार [**प्रज्ञप्तम्**] सर्वज्ञ देवने कहा है। **भावार्थ**—जितने मतिज्ञानी जीव हैं उन सबके पहले तो इंद्रिय और पदार्थका संबंध होता है पीछे अवग्रह ईहादि भेदोंसे पदार्थका निश्चय होता है। इसलिये अतीत अनागतकाल संबंधी वस्तुएं उनके ज्ञानमें नहीं झलकतीं, क्योंकि उन वस्तुओंसे इंद्रियका संयोग नहीं होता। इनके सिवाय वर्तमानकालसंबंधी भी जो सूक्ष्म परमाणु आदि हैं तथा स्वर्ग मेरु आदि दूरवर्ती और अनेक अमूर्तीक पदार्थ हैं उनको इन्द्रियसंयोग न होनेके कारण मतिज्ञानी नहीं जानसकता। इन्द्रियज्ञानसे स्थूल घटपटादि पदार्थ जाने जाते हैं, इसलिये इन्द्रियज्ञान परोक्ष है, हीन है, हेय है। केवल ज्ञानकी तरह सर्व प्रत्यक्ष नहीं है

अथातीन्द्रियज्ञानस्य तु यद्यदुच्यते तत्तत्संभवतीति संभावयति;—

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं ।
पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं ॥ ४१ ॥

अप्रदेशं सप्रदेशं मूर्तममूर्तं च पर्ययमजातम् ।
प्रलयं गतं च जानाति तज्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितम् ॥ ४१ ॥

इन्द्रियज्ञानं नाम उपदेशान्तःकरणेन्द्रियादीनि विरूपकारणत्वेनोपलब्धिसंकारादीन् अन्तरङ्गस्वरूपकारणत्वेनोपादाय प्रवर्तते । प्रवर्तमानं च सप्रदेशमेवाध्यवस्यति स्थूलोपलम्भकत्वान्नाप्रदेशं । मूर्तमेवावगच्छति तथाविधविषयनिबन्धनसद्भावान्नामूर्तम् । वर्तमानमेव परिच्छिनत्ति विषयविषयिसन्निपातसद्भावान्न तु वृत्तं वर्त्स्यच्च । यत्तु पुनरनावरणमनिन्द्रियं ज्ञानं तस्य समिद्धधूमध्वजस्येवानेकप्रकारतालिङ्गितं दाह्यं दाह्यतानतिक्रमाद्दाह्यमेव यथा तथात्मनः अप्रदेशं मूर्तममूर्तमजातमतिवाहितं च पर्यायजातं ज्ञेयतानतिक्रमात्परिच्छेद्यमेव भवतीति ॥ ४१ ॥

वेन्ति ते सर्वज्ञपदं न लभन्ते इति सूत्राभिप्रायः ॥ ४० ॥ अथातीन्द्रियज्ञानमतीतानागतसूक्ष्मादिपदार्थान् जानातीत्युपदिशति;—**अपदेसं** अप्रदेशं कालाणुपरमाण्वादि **सपदेसं** शुद्धजीवास्तिकायादिपञ्चास्तिकायस्वरूपं **मुत्तं** मूर्तं पुद्गलद्रव्यं **अमुत्तं च** अमूर्तं च शुद्धजीवद्रव्यादि **पज्जयमजादं पलयं गयं च** पर्ययमजातं भाविनं प्रलयं गतं चातीतमेतत्सर्वं पूर्वोक्तं ज्ञेयं वस्तु **जाणदि** जानाति यद्ज्ञानं कर्तृ **तं णाणमणिंदियं भणियं** तद्ज्ञानमतीन्द्रियं भणितं तेनैव सर्वज्ञो भवति । तत एव च पूर्वगाथोदितमिन्द्रियज्ञानं मानसज्ञानं च त्यक्त्वा ये निर्विकल्पसमाधिरूपस्वसंवेदनज्ञाने समस्तविभावपरिणामत्यागेन रतिं कुर्वन्ति त एव पर-

---

॥ ४० ॥ आगे अतीन्द्रियज्ञान सबको जानता है, ऐसा कहते हैं;—**[यत्]** जो ज्ञान **[अप्रदेशं]** प्रदेशरहित कालाणु तथा परमाणुओंको, **[सप्रदेशं]** प्रदेशसहितको अर्थात् पंचास्तिकायोंको **[मूर्तं]** पुद्गलोंको **[च]** और **[अमूर्तं]** शुद्धजीवादिक द्रव्योंको **[अजातं पर्यायं]** अनागत पर्यायोंको **[च]** और **[प्रलयं गतं]** अतीतपर्यायोंको **[जानाति]** जानता है **[तद्ज्ञानं]** उस ज्ञानको **[अतीन्द्रियं]** अतीन्द्रिय **[भणितं]** कहा है । **भावार्थ**—अतीन्द्रियज्ञान सबको जानता है, इसलिये अतीन्द्रियज्ञानीको ही सर्वज्ञ पद है । जो इन्द्रियज्ञानसे सर्वज्ञ मानते हैं वे प्रत्यक्ष मिथ्या बोलते हैं । क्योंकि जो पदार्थ वर्तमान होवे, मूर्तीक स्थूल प्रदेश सहित होवे तथा निकट होवे उसीको इन्द्रियज्ञान क्रमसे कुछेक जानसकता है । अप्रदेशी अमूर्तीक तथा अतीत अनागतकालसंबंधी जो पदार्थ हैं उनको नहीं जानसकता । ऐसे

अथ ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया ज्ञानान्न भवतीति श्रद्दधाति;—

परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि णेव खाइगं तस्स ।
णाणंत्ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता ॥ ४२ ॥

परिणमति ज्ञेयमर्थं ज्ञाता यदि नैव क्षायिकं तस्य ।
ज्ञानमिति तं जिनेन्द्राः क्षपयन्तं कर्मैवोक्तवन्तः ॥ ४२ ॥

परिच्छेत्ता हि यत्परिच्छेद्यमर्थं परिणमति तन्न तस्य सकलकर्मकक्षक्षयप्रवृत्तस्वाभाविकपरिच्छेदनिदानमथवा ज्ञानमेव नास्ति तस्य । यतः प्रत्यर्थपरिणतिद्वारेण मृगतृष्णाम्भोभारसंभावनाकरणमानसः सुदुःसहं कर्मभारमेवोपभुञ्जानः स जिनेन्द्रैरुद्गीतः ॥ ४२ ॥

माह्लादैकलक्षणसुखस्वभावं सर्वज्ञपदं लभन्ते इत्यभिप्रायः ॥ ४१ ॥ एवमतीतानागतपर्याया वर्तमानज्ञाने प्रत्यक्षा न भवन्तीति बौद्धमतनिराकरणमुख्यत्वेन गाथात्रयं, तदनन्तरमिन्द्रियज्ञानेन सर्वज्ञो न भवत्यतीन्द्रियज्ञानेन भवतीति नैयायिकमतानुसारिशिष्यसंबोधनार्थं च गाथाद्वयमिति समुदायेन पञ्चमस्थले गाथापञ्चकं गतम् ॥ अथ रागद्वेषमोहाः बन्धकारणं, न च ज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तद्यथा—यस्येष्टानिष्टविकल्परूपेण कर्मबन्धकारणभूतेन ज्ञेयविषये परिणमनमस्ति तस्य क्षायिकज्ञानं नास्तीत्यावेदयति;—**परिमदि णेयमट्ठं णादा जदि** नीलमिदं पीतमिदमित्यादिविकल्परूपेण यदि ज्ञेयार्थं परिणमति ज्ञातात्मा **णेव खाइयं तस्स णाणंति** तस्यात्मनः क्षायिकज्ञानं नैवास्ति । अथवा ज्ञानमेव नास्ति । कस्मान्नास्ति । **तं जिणिदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता** तं पुरुषं कर्मतापन्नं जिनेन्द्राः कर्तारः उक्तवन्तः । किं कुर्वन्तं । क्षपयन्तमनुभवन्तं । किमेव । कर्मैव । निर्विकारसहजानन्दैकसुखस्वभावानुभवनशून्यः सन्नुदयागतं स्वकीयकर्मैव स अनुभवन्नास्ते न च ज्ञानमित्यर्थः । अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—यदि ज्ञाता प्रत्यर्थं परिणम्य पश्चादर्थं जानाति तदा अर्थानामानन्त्यात्सर्वपदार्थपरिज्ञानं नास्ति । अथवा तृतीयव्याख्यानम्—बहिरङ्गज्ञेयपदार्थान् यदा छद्मस्थावस्थायां चिन्तयति तदा रागादिविकल्परहितं स्वसंवेदनज्ञानं नास्ति, तदभावे क्षायिकज्ञानमेव

ज्ञानसे सर्वज्ञ पदवी कहांसे मिलसकती है? कहींसेभी नहीं ॥ ४१ ॥ आगे अतीन्द्रियज्ञानमें इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें सविकल्परूप परिणमन क्रिया नहीं है ऐसा दिखलाते हैं,—**[यदि]** जो **[ज्ञाता]** जाननेवाला आत्मा **[ज्ञेयमर्थं]** ज्ञेयपदार्थको **[परिणमति]** संकल्प विकल्परूप होकर परिणमन करता है **[तदा]** तो **[तस्य]** उस आत्माके **[क्षायिकं ज्ञानं]** कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुआ अतीन्द्रियज्ञान **[नैव]** निश्चयसे नहीं है **[इति 'हेतोः']** इसलिये **[जिनेन्द्राः]** सर्वज्ञदेव **[तं]** उस विकल्पी जीवको **[कर्म क्षपयन्तं]** कर्मका अनुभव करनेवाला **[एव]** ही **[उक्तवन्तः]** कहते हैं । **भावार्थ**—जबतक आत्मा सविकल्परूप पदार्थोंको जानता है तब तक उसके क्षायक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि जो जीव सविकल्पी है वह प्रत्येक

अथ कुतस्तर्हि ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया तत्फलं च भवतीति विवेचयति;—

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया ।
तेसु हि मुहिदो रत्तो दुट्ठो वा बंधमणुहवदि ॥ ४३ ॥

उदयगताः कर्मांशा जिनवरवृषभैः नियत्या भणिताः ।
तेषु हि मूढो रक्तो दुष्टो वा बन्धमनुभवति ॥ ४३ ॥

संसारिणो हि नियमेन तावदुदयगताः पुद्गलकर्मांशाः सन्त्येव । अथ स सत्सु तेषु संचेतयमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यते । तत एव च क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति । अतो मोहोदयात् क्रिया क्रियाफले न तु ज्ञानात् ॥ ४३ ॥

नोत्पद्यते इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥ अथानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणमनेपि ज्ञानं बन्धकारणं न भवति, न च रागादिरहितकर्मोदयोपीति निश्चिनोति;—**उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया** उदयगता उदयं प्राप्ताः कर्मांशा ज्ञानावरणादिमूलोत्तरकर्मप्रकृतिभेदाः जिनवरवृषभैर्नियत्या स्वभावेन भणिताः, किन्तु स्वकीयशुभाशुभफलं दत्त्वा गच्छन्ति, न च रागादिपरिणामरहिताः सन्तो बन्धं कुर्वन्ति । तर्हि कथं बन्धं करोति जीवः इति चेत् । **तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बन्धमणुभवदि** तेषु उदयागतेषु सत्सु कर्मांशेषु मोहरागद्वेषविलक्षणनिजशुद्धात्मतत्त्वभावनारहितः सन् यो विशेषेण मूढो रक्तो दुष्टो वा भवति सः केवलज्ञानाद्यनन्तगुणव्यक्तिलक्षणमोक्षाद्विलक्षणं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदभिन्नं बन्धमनुभवति । ततः स्थितमेतत् ज्ञानं बन्धकारणं न भवति कर्मोदयेपि, किन्तु रागादयो बन्धकारणमिति

पदार्थमें रागी हुआ मृगतृष्णा (बालू) में जलकीसी बुद्धि करता हुआ कर्मोंको भोगता है । इसीलिये उसके निर्मल ज्ञानका लाभ नहीं है । परन्तु क्षायिकज्ञानीके भावरूप इन्द्रियोंके अभावसे पदार्थोंमें सविकल्परूप परिणति नहीं होती है, क्योंकि निरावरण अतीन्द्रियज्ञानसे अनंत सुख अपने साक्षात् अनुभव गोचर है । परोक्षज्ञानीके इन्द्रियोंके आधीन सविकल्परूप परिणति है इसलिये वह कर्मसंयोगसे प्राप्त हुए पदार्थोंको भोगता है ॥ ४२ ॥ आगे कहते हैं, कि ज्ञान बंधका कारण नहीं है, ज्ञेयपदार्थोंमें जो रागद्वेषरूप परिणति है वही बंधका कारण है;—[**जिनवरवृषभैः**] गणधरादिकोंमें श्रेष्ठ अथवा बड़े ऐसे वीतराग देवने [**उदयगताः कर्मांशाः**] उदय अवस्थाको प्राप्त हुए कर्मोंके अंश अर्थात् ज्ञानावरणादि भेद [**नियत्या**] निश्चयसे [**भणिताः**] कहे हैं । [**तेषु**] उन उदयागत कर्मोंमें [**हि**] निश्चयकरके [**मूढः**] मोही, [**रक्तः**] रागी [**वा**] अथवा [**दुष्टः**] द्वेषी [**बन्धं**] प्रकृति, स्थिति आदि चार प्रकारके बन्धको [**अनुभवति**] अनुभव करता है अर्थात् भोगता है । **भावार्थ**—संसारी सब जीवोंके कर्मका उदय है परंतु वह

अथ केवलिनां क्रियापि क्रियाफलं न साधयतीत्यनुशास्ति;—

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं ।
अरहंताणं काले मायाचारोव्व इच्छीणं ॥ ४४ ॥

स्थाननिषद्याविहारा धर्मोपदेशश्च नियतयस्तेषाम् ।
अर्हतां काले मायाचार इव स्त्रीणाम् ॥ ४४ ॥

यथा हि महिलानां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयोग्यतासद्भावात् स्वभावभूत एव मायोपगुण्ठनागुण्ठितो व्यवहारः प्रवर्तते, तथा हि केवलिनां प्रयत्नमन्तरेणापि तथाविधयोग्यतासद्भावात् स्थानमासनं विहरणं धर्मदेशना च स्वभावभूता एव प्रवर्तन्ते । अपि चाविरुद्धमेतदम्भोधरदृष्टान्तात् । यथा खल्वम्भोधराकारपरिणतानां पुद्गलानां गमनमवस्थानं गर्जनमम्बुवर्षं च पुरुषप्रयत्नमन्तरेणापि दृश्यन्ते, तथा केवलिनां स्थानादयोऽबुद्धिपूर्वका एव दृश्यन्ते । अतोऽमी स्थानादयो मोहोदयपूर्वकत्वाभावात् क्रियाविशेषा अपि केवलिनां क्रियाफलभूतबन्धसाधनानि न भवन्ति ॥ ४४ ॥

॥ ४३ ॥ अथ केवलिनां रागाद्यभावाद्धर्मोपदेशादयोपि बन्धकारणं न भवन्तीति कथयति;— **ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य** स्थानमूर्ध्वस्थितिर्निषद्या चासनं विहारो धर्मोपदेशश्च **णियदओ** एते व्यापारा नियतयः स्वभावा अनीहिताः । केषां । **तेसिं अरहंताणं** तेषामर्हतां निर्दोषिपरमात्मनां । क । **काले** अर्हदवस्थायां । क इव । **मायाचारोव्व इत्थीणं** मायाचार इव स्त्रीणामिति । तथाहि—यथा स्त्रीणां स्त्रीवेदोदयसद्भावात्प्रयत्नाभावेपि मायाचारः प्रवर्तते, तथा भगवतां शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतमोहोदयकार्येहापूर्वप्रयत्नाभावेपि श्रीविहारादयः प्रवर्तन्ते । मेघानां स्थानगमनगर्जनजलवर्षणादिवद्वा । ततः स्थितमेतत् मोहाद्यभावात् क्रियावि-

---

उदय बंधका कारण नहीं है । यदि कर्मजनित इष्ट अनिष्टभावोंमें जीव रागी द्वेषी मोही होकर परिणमता है तभी बंध होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान तथा कर्मके उदयसे उत्पन्न क्रियायें बंधकी कारण नहीं हैं, बंधके कारण केवल राग द्वेष मोहभाव हैं, इसकारण ये सबतरहसे त्यागने योग्य हैं ॥ ४३ ॥ आगे केवलीके कर्मका उदय है और वचनादियोग क्रियाभी है परन्तु उनके रागादि भावोंके अभावसे बंध नहीं होता है;—[**तेषामर्हतां**] उन अरहंतदेवोंके [**काले**] कर्मोंके उदयकालमें [**स्थाननिषद्याविहाराः**] स्थान, आसन और विहार ये तीन काययोगकी क्रियायें [**च**] और [**धर्मोपदेशः**] दिव्यध्वनिसे निश्चयव्यवहारस्वरूप धर्मका उपदेश यह वचन योगकी क्रिया [**स्त्रीणां**] स्त्रियोंके स्वाभाविक [**मायाचार इव**] कुटिल आचरणकी तरह [**नियतयः**] निश्चित होती हैं । **भावार्थ**—वीतराग देवके औदयिक भावोंसे काय, वचन योगकी क्रियायें अवश्य होती हैं परन्तु उन क्रियाओंमें भगवानका कोई यत्न नहीं है, मोहके अभावसे इच्छाके विना स्वभावसे ही होती हैं ।

अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिञ्चित्कर एवेत्यवधारयति;—

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदयिगा ।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइगत्ति मदा ॥ ४५ ॥

पुण्यफला अर्हन्तस्तेषां क्रिया पुनर्हि औदयिकी ।
मोहादिभिः विरहिता तस्मात् सा क्षायिकीति मता ॥ ४५ ॥

अर्हन्तः खलु सकलसम्यक्परिपक्कपुण्यकल्पपादपफला एव भवन्ति । क्रिया तु तेषां या काचन सा सर्वापि तदुदयानुभावसंभावितात्मसंभूतितया किलौदयिक्येव । अथैवंभूतापि सा समस्तमहामोहमूर्द्धाभिषिक्तस्कन्धावारस्यात्यन्तक्षये संभूतत्वान्मोहरागद्वेषरूपाणामुपरञ्जकानामभावाच्चैतन्यविकारकारणतामनासादयन्ती नित्यमौदयिकी कार्यभूतस्य बंधस्याकारणभूततया कार्यभूतस्य मोक्षस्य कारणभूततया च क्षायिक्येव । कथं हि नाम नानुमन्येत चेत्तर्हि कर्मविपाकोपि न तेषां स्वभावविघाताय ॥ ४५ ॥

शेषा अपि बन्धकारणं न भवन्तीति ॥ ४४ ॥ अथ पूर्वं यदुक्तं रागादिरहितकर्मोदयो बन्धकारणं न भवति विहारादिक्रिया च, तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढयति;—**पुण्णफला अरहंता** पञ्चमहाकल्याणपूजाजनकं त्रैलोक्यविजयकरं यत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति **तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया** तेषां या दिव्यध्वनिरूपवचनव्यापारादिक्रिया सा निःक्रियशुद्धात्मतत्त्वविपरीतकर्मोदयजनितत्वात्सर्वाप्यौदयिकी भवति हि स्फुटं । **मोहादीहिं विरहिया** निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वप्रच्छादकममकाराहङ्कारोत्पादनसमर्थमोहादिविरहितत्वाद्यतः **तम्हा सा खाइयत्ति मदा** तस्मात् सा यद्यप्यौदयिकी तथापि निर्विकारशुद्धात्मतत्त्वस्य विक्रियामकुर्वती सती क्षायिकी मता । अत्राह शिष्यः—'औदयिका भावाः बन्धकारणम्' इत्यागमवचनं

जैसे स्त्रीवेद कर्मके उदयसे स्त्रीके हाव भाव विलास विभ्रमादिक स्वभावहीसे होते हैं उसीप्रकार अरहंतके योगक्रियायें सहजही होती हैं । तथा जैसे मेघके जलका वरसना, गर्जना, चलना, स्थिर होना इत्यादि क्रियायें पुरुषके यत्नके विनाही उसके स्वभावसे होती हैं उसीप्रकार इच्छाके विना औदयिक भावोंसे अरहंतोंके क्रिया होती हैं । इसीकारण केवलीके बंध नहीं है । रागादिकोंके अभावसे औदयिक क्रिया बंधके फलको नहीं देती ॥ ४४ ॥ आगे अरहंतोंके पुण्यकर्मका उदय बंधका कारण नहीं है यह कहते हैं;—[**अर्हन्तः**] सर्वज्ञवीतरागदेव [**पुण्यफलाः**] तीर्थंकर नामा पुण्यप्रकृतिके फल हैं अर्थात् अरहंत पद तीर्थंकर नाम पुण्यकर्मके उदयसे होता है । [**पुनः**] और [**तेषां**] उनकी [**क्रिया**] काय तथा वचनकी क्रिया [**हि**] निश्चयसे [**औदयिकी**] कर्मके उदयसे है । परंतु [**सा**] वह क्रिया [**मोहादिभिः**] मोह, राग, द्वेषादि भावोंसे [**विरहिता**] रहित है । [**तस्मात्**] इसलिये [**क्षायिकी**] मोहकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुई है [**इति मता**] ऐसी कही गई है । **भावार्थ**—अर-

अथ केवलिनामिव सर्वेषामपि स्वभावविघाताभावं निषेधयति;—

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण ।
संसारोवि ण विज्जदि सव्वेसिं जीवकायाणं ॥ ४६ ॥

यदि स शुभो वा अशुभो न भवति आत्मा स्वयं स्वभावेन ।
संसारोपि न विद्यते सर्वेषां जीवकायानाम् ॥ ४६ ॥

यदि खल्वेकान्तेन शुभाशुभभावस्वभावेन स्वयमात्मा न परिणमते तदा सर्वदैव सर्वथा निर्विघातेन शुद्धस्वभावेनैवावतिष्ठते । तथा च सर्व एव भूतग्रामाः समस्तबन्ध-

---

तर्हि वृथा भवति । परिहारमाह—औदयिका भावा बन्धकारणं भवन्ति, परं किन्तु मोहोदयसहिताः । द्रव्यमोहोदयेपि सति यदि शुद्धात्मभावनाबलेन भावमोहेन न परिणमति तदा बन्धो न भवति । यदि पुनः कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति तर्हि संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्सर्वदैव बन्ध एव न मोक्ष इत्यभिप्रायः ॥ ४५ ॥ अथ यथार्हतां शुभाशुभपरिणामविकारो नास्ति तथैकान्तेन संसारिणामपि नास्तीति सांख्यमतानुसारिशिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति दूषणद्वारेण परिहारं ददाति;—**जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण** यथैव शुद्धनयेनात्मा शुभाशुभाभ्यां न परिणमति तथैवाशुद्धनयेनापि स्वयं स्वकीयोपा-

---

हंत भगवानके जो दिव्यध्वनि, विहार आदि क्रिया हैं वे पूर्वबंधे कर्मके उदयसे हैं । वे आत्माके प्रदेशोंको चलायमान करती हैं परंतु रागद्वेषमोहभावोंके अभावसे आत्माके चैतन्यविकाररूप भावकर्मको उत्पन्न नहीं करतीं इसलिये औदयिक हैं, और आगे नवीन बंधमें कारणरूप नहीं हैं पूर्वकर्मके क्षयमें कारण हैं । तथा जिस कर्मके उदयसे वह क्रिया होती है उसकर्मका बंध अपना रस (फल) देकर खिर जाता है, इस अपेक्षा अरहंतोंकी क्रिया कर्मके क्षयका कारण है । इसीकारण उस क्रियाको क्षायिकीभी कहते हैं अर्थात् अरहंतोंकी दिव्यध्वनिआदि क्रिया नवीनबंधको करती नहीं है और पूर्वबंधका नाश करती है तब क्यों न क्षायिकी मानी जावै ? अवश्य मानने योग्य है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि केवलीके बंध नहीं होता क्योंकि कर्मका फल आत्माके भावोंको घातता नहीं । मोहनीयकर्मके होनेपर क्रिया आत्मीक भावोंका घात करती है और उसके अभावसे क्रियाका कुछभी बल नहीं रहता ॥४५॥ आगे कहते हैं कि जैसे केवलीके परिणामोंमें विकार नहीं है वैसे अन्यजीवोंके परिणामोंमें विकारोंका अभावभी नहीं है;—**[यदि]** जो **[सः]** वह आत्मा **[स्वभावेन]** अपने स्वभावसे **[स्वयं]** आपही **[शुभः]** शुभपरिणामरूप **[वा]** अथवा **[अशुभः]** अशुभपरिणामरूप **[न भवति]** न होवे **[तदा]** तो **[सर्वेषां]** सब **[जीवकायानां]** जीवोंको **[संसार एव]** संसार परिणति ही **[न विद्यते]** नहीं मौजूद होवे । **भावार्थ**—आत्मा परिणामी है । जैसे स्फटिकमणि काले, पीले, लाल फूलके संयोगसे उसीके आकार

साधनशून्यत्वादाजवं जवाभावस्वभावतो नित्यमुक्ततां प्रतिपद्येरन् । तच नाभ्युपगम्यते । आत्मनः परिणामधर्मत्वेन स्फटिकस्य जपातापिच्छरागस्वभावत्ववत् शुभाशुभभावत्वद्योतनात् ॥ ४६ ॥

अथ पुनरपि प्रकृतमनुसृत्यातीन्द्रियज्ञानं सर्वज्ञत्वेनाभिनन्दति;—

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं ।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं ॥ ४७ ॥

यत्तात्कालिकमितरं जानाति युगपत्समन्ततः सर्वम् ।
अर्थं विचित्रविषमं तत् ज्ञानं क्षायिकं भणितम् ॥ ४७ ॥

तत्कालकलितवृत्तिकमतीतोदर्ककालकलितवृत्तिकं चाप्येकपद एव समन्ततोपि सकलमप्यर्थजातं, पृथक्त्ववृत्तस्वलक्षणलक्ष्मीकटाक्षितानेकप्रकारव्यञ्जितवैचित्र्यमितरेतरविरोध-

---

दानकारणेन स्वभावेनाशुद्धनिश्चयरूपेणापि यदि न परिणमति तदा । किं दूषणं भवति । **संसारोवि ण विज्जदि** निस्संसारशुद्धात्मस्वरूपात्प्रतिपक्षभूतो व्यवहारनयेनापि संसारो न विद्यते । केषां । **सव्वेसिं जीवकायाणं** सर्वेषां जीवसंघातानामिति । तथाहि—आत्मा तावत्परिणामी स च कर्मोपाधिनिमित्ते सति स्फटिकमणिरिवोपाधिं गृह्णाति, ततः कारणात्संसाराभावो न भवति । अथ मतं—संसाराभावः सांख्यानां दूषणं न भवति, भूषणमेव । नैवम् । संसाराभावो हि मोक्षो भण्यते, स च संसारिजीवानां न दृश्यते, प्रत्यक्षविरोधादिति भावार्थः ॥ ४६ ॥ एवं रागादयो बन्धकारणं न च ज्ञानमित्यादिव्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ प्रथमं तावत् केवलज्ञानमेव सर्वज्ञस्वरूपं, तदनन्तरं सर्वपरिज्ञाने सति एकपरिज्ञानं, एकपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानमित्यादिकथनरूपेण गाथापञ्चकपर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तद्यथा—अत्र ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानं प्रकृतं तावत्तत्प्रस्तुतमनुसृत्य पुनरपि केवलज्ञानं स-

---

काला पीला लालरूप परिणमन करता है, उसीप्रकार यह आत्मा अनादिकालसे परद्रव्यके संयोगसे रागद्वेषमोहरूप अज्ञानभावोंमें परिणमन करता है । इसकारण संसारभाव है । यदि आत्माको ऐसा (परिणामी) न मानें तो संसारही न होवै, सभी जीव अनादिकालसे लेकर मोक्षस्वरूपमें स्थित (ठहरे) कहलावें परन्तु ऐसा नहीं है । इससे सारांश यह निकला कि केवली शुभाशुभ भावरूप परिणमन नहीं करते हैं बाकी सब संसारी जीव शुभ, अशुभभावोंमें परिणमते हैं ॥ ४६ ॥ आगे पूर्व कहागया अतीन्द्रिय ज्ञानही सबका जाननेवाला है, ऐसा फिर कहते हैं;—[**यत्**] जो ज्ञान [**समन्ततः**] सर्वांगसे [**तात्कालिकमितरं**] वर्तमानकालसंबंधी और उससे जुदी भूतभविष्यतकालसंबंधी पर्यायोंकरसहित [**विचित्रं**] अपनी लक्षणरूप लक्ष्मीसे अनेक प्रकार [**विषमं**] और मूर्त अमूर्तादि असमान जातिभेदोंसे विषम अर्थात्

धापितासमानजातीयत्वोद्दामितवैषम्यं क्षायिकं ज्ञानं किल जानीयात्। तस्य हि क्रमप्रवृत्तिहेतुभूतानां क्षयोपशमावस्थावस्थितज्ञानावरणीयकर्मपुद्गलानामत्यन्ताभावात्तात्कालिकमतात्कालिकं वाप्यर्थजातं तुल्यकालमेव प्रकाशेत। सर्वतो विशुद्धस्य प्रतिनियतदेशविशुद्धेरन्तःप्लवनात् समन्ततोपि प्रकाशेत। सर्वावरणक्षयाद्देशावरणक्षयोपशमस्यानवस्थानात्सर्वमपि प्रकाशेत। सर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयादसर्वप्रकारज्ञानावरणीयक्षयोपशमस्य विलयनाद्विचित्रमपि प्रकाशेत। असमानजातीयज्ञानावरणक्षयात्समानजातीयज्ञानावरणीयक्षयोपशमस्य विनाशनाद्विषममपि प्रकाशेत। अलमथवातिविस्तरेण, अनिवारितप्रसरप्रकाशशालितया क्षायिकज्ञानमवश्यमेव सर्वदा सर्वत्र सर्वथा सर्वमेव जानीयात्॥ ४७॥

र्वज्ञत्वेन निरूपयति;—**जं** यज्ज्ञानं कर्तृ **जाणदि** जानाति। कं। **अत्थं** अर्थं पदार्थमिति विशेष्यपदं। किं विशिष्टं। **तक्कालियमिदरं** तात्कालिकं वर्तमानमितरं चातीतानागतम्। कथं जानाति। **जुगवं** युगपदेकसमये **समंतदो** समन्ततः सर्वात्मप्रदेशैः सर्वप्रकारेण वा। कतिसंख्योपेतं। **सव्वं** समस्तं। पुनरपि किंविशिष्टं। **विचित्तं** नानाभेदभिन्नं। पुनरपि किंरूपं। **विसमं** मूर्तामूर्तचेतनाचेतनादिजात्यन्तरविशेषैर्विसदृशं **तं णाणं खाइयं भणियं** यदेवं गुणविशिष्टं ज्ञानं तत्क्षायिकं भणितम्। अभेदनयेन तदेव सर्वज्ञस्वरूपं तदेवोपादेयभूतानन्तसुखाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं सर्वप्रकारोपादेयरूपेण भावनीयम्। इति तात्पर्यम्॥४७॥

एकसा नहीं ऐसे [**सर्वं अर्थं**] सबही पदार्थोंके समूहको [**युगपत्**] एकही समयमें [**जानाति**] जानता है [**तद्ज्ञानं**] उस ज्ञानको [**क्षायिकं**] क्षायिक अर्थात् कर्मके क्षयसे प्रगट हुआ अतीन्द्रिय ऐसा [**भणितं**] कहा है। **भावार्थ—** अतीत अनागत वर्तमानकालसंबंधी नानाप्रकार विषमतासहित समस्त पदार्थोंको सर्वांग एकसमयमें प्रकाशित करनेको एक अतीन्द्रिय क्षायिक केवलज्ञानही समर्थ है, अन्य किसी ज्ञानकी शक्ति नहीं है। ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे जो ज्ञान एकही वार सब पदार्थोंको नहीं जानता क्रमलिये जानता है ऐसे क्षायोपशमिक ज्ञानकाभी केवलज्ञानमें अभाव है, क्योंकि केवलज्ञान एकही वार सबको जानता है। और क्षायोपशमिकज्ञान एकदेश निर्मल है इसलिये सर्वांग वस्तुको नहीं जानता, क्षायिकज्ञान सर्वदेश विशुद्ध है इसीमें एकदेश निर्मलज्ञानभी समाजाता है इसलिये वस्तुको सर्वांगसे प्रकाशित करता है। और इस केवलज्ञानके सब आवरणका नाश है, मतिज्ञानावरणादि क्षयोपशमकाभी अभाव है, इसकारण सब वस्तुको प्रकाशित करता है। इस केवलज्ञानमें मतिज्ञानावरणादि पांचों कर्मोंका क्षय हुआ है, इससे नाना प्रकार वस्तुको प्रकाशता है। और असमानजातीय केवलज्ञानावरणका क्षय तथा समानजातीय मतिज्ञानावरणादि चारके क्षयोपशमका क्षय है, इसलिये विषमको प्रकाशित करता है। क्षायिकज्ञानकी महिमा कहां तक कही जावे अतिविस्तारसेभी पूर्णता नहीं होसकी,

अथ सर्वमजानन्नेकमपि न जानातीति निश्चिनोति;—

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तेकालिके तिहुवणत्थे ।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेकं वा ॥ ४८ ॥

यो न विजानाति युगपदर्थान् त्रैकालिकान् त्रिभुवनस्थान् ।
ज्ञातुं तस्य न शक्यं सपर्ययं द्रव्यमेकं वा ॥ ४८ ॥

इह किलैकमाकाशद्रव्यमेकं धर्मद्रव्यमेकमधर्मद्रव्यमसंख्येयानि कालद्रव्याण्यनन्तानि जीवद्रव्याणि ततोप्यनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि । तथैषामेव प्रत्येकमतीतानागतानुभूय-

---

अथ यः सर्वं न जानाति स एकमपि न जानातीति विचारयति:—**जो ण विजाणदि** यः कर्ता नैव जानाति । कथं । **जुगवं** युगपदेकक्षणे । कान् । **अत्थे** अर्थान् । कथंभूतान् । **तिकालिगे** त्रिकालपर्यायपरिणतान् । पुनरपि कथंभूतान् । **तिहुवणत्थे** त्रिभुवनस्थान् **णादुं तस्स ण सक्कं** तस्य पुरुषस्य सम्बन्धि ज्ञानं ज्ञातुं समर्थं न भवति । किं । **दव्वं** ज्ञेयद्रव्यं । किंविशिष्टं । **सपज्जयं** अनन्तपर्यायसहितं । कतिसंख्योपेतं । **एगं वा** एकमपीति । तथाहि—आकाशद्रव्यं तावदेकं, धर्मद्रव्यमेकं, तथैवाधर्मद्रव्यं च, लोकाकाशप्रमितासंख्येयकालद्रव्याणि, ततोऽनन्तगुणानि जीवद्रव्याणि, तेभ्योप्यनन्तगुणानि पुद्गलद्रव्याणि । तथैव सर्वेषां प्रत्येकमनन्तपर्यायाः, एतत्सर्वं ज्ञेयं तावत्तत्रैकं विवक्षितं जीवद्रव्यं ज्ञातृ भवति । एवं तावद्वस्तुस्वभावः । तत्र यथा दहनः समस्तं दाह्यं दहन् सन् समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनस्वरूपमुष्णपरिणततृणपर्णाद्याकारमात्मानं (स्वकीयस्वभावं) प-

---

यह अपने अखंडित प्रकाशकी सुन्दरताईसे सबकालमें सबजगह सबप्रकार सबको अवश्यही जानता है ॥ ४७ ॥ आगे जो सबको नहीं जानता वह एकको भी नहीं जानता इस विचारको निश्चित करते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**त्रिभुवनस्थान्**] तीनलोकमें स्थित [**त्रैकालिकान्**] अतीत अनागत वर्तमान इन तीनकालसंबंधी [**अर्थान्**] पदार्थोंको [**युगपत्**] एकही समयमें [**न विजानाति**] नहीं जानता है [**तस्य**] उस पुरुषके [**सपर्ययं**] अनन्तपर्यायोंसहित [**एकं द्रव्यं वा**] एक द्रव्यकोभी [**ज्ञातुं**] जाननेकी [**शक्यं न**] सामर्थ्य नहीं है । **भावार्थ**—इस लोकमें आकाश द्रव्य एक है, धर्मद्रव्य एक है, अधर्मद्रव्यभी एक है, कालद्रव्य असंख्यात है, जीवद्रव्य अनंत है और पुद्गलद्रव्य जीवराशिसे अनंतगुणा अधिक है । इन छहों द्रव्योंके तीनकालसंबंधी अनंत २ भिन्न २ पर्याय हैं । ये सब द्रव्य पर्याय ज्ञेय हैं । इन द्रव्योंमें जाननेवाला एक जीवही है । जैसे अग्नि समस्त ईंधनको जलाता हुआ उसके निमित्तसे काठ तृण पत्ता वगैरः ईंधनके आकार होकर अपने एक अग्निस्वभावरूप परिणमता है, उसीप्रकार यह ज्ञायक (जाननेवाला) आत्मा सब ज्ञेयोंको

मानभेदभिन्ननिरवधिवृत्तिप्रवाहपरिपातिनोऽनन्ताः पर्याया एवमेतत्समस्तमपि समुदितं ज्ञेयं, इहैवैकं किञ्चिज्जीवद्रव्यं ज्ञातृ। अथ यथा समस्तं दाह्यं दहन् दहनः समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनाकारमात्मानं परिणमति, तथा समस्तं ज्ञेयं जानन् ज्ञाता समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञानाकारं चेतनत्वात् स्वानुभवप्रत्यक्षमात्मानं परिणमति। एवं किल द्रव्यस्वभावः। यस्तु समस्तज्ञेयं न जानाति स समस्तं दाह्यमदहन् समस्तदाह्यहेतुकसमस्तदाह्याकारपर्यायपरिणतसकलैकदहनाकारमात्मानं दहन इव समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकज्ञानाकारमात्मानं चेतनत्वात् स्वानुभवप्रत्यक्षत्वेपि न परिणमति। एवमेतदायाति यः सर्वं न जानाति स आत्मानं न जानाति॥ ४८॥

रिणमति। तथायमात्मा समस्तं ज्ञेयं जानन् सन् समस्तज्ञेयहेतुकसमस्तज्ञेयाकारपर्यायपरिणतसकलैकाखण्डज्ञानरूपं स्वकीयमात्मानं परिणमति जानाति परिच्छिनत्ति। यथैव च स एव दहनः पूर्वोक्तलक्षणं दाह्यमदहन् सन् तदाकारेण न परिणमति, तथात्मापि पूर्वोक्तलक्षणं समस्तं ज्ञेयमजानन् पूर्वोक्तलक्षणमेव सकलैकाखण्डज्ञानाकारं स्वकीयमात्मानं न परिणमति न जानाति न परिच्छिनत्ति। अपरमप्युदाहरणं दीयते—यथा कोऽप्यन्धक आदित्यप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन्नादित्यमिव, प्रदीपप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् प्रदीपमिव, दर्पणस्थबिम्बान्यपश्यन् दर्पणमिव, स्वकीयदृष्टिप्रकाश्यान् पदार्थानपश्यन् हस्तपादाद्यवयवपरिणतं स्वकीयदेहाकारमात्मानं स्वकीयदृष्ट्या न पश्यति, तथायं विवक्षितात्मापि केवलज्ञानप्रकाश्यान् पदार्थानजानन् सकलाखण्डैककेवलज्ञानरूपमात्मानमपि न जानाति। तत एतत्स्थितं यः सर्वं न जानाति स आत्मानमपि न जानातीति॥ ४८॥

जानता हुआ ज्ञेयके निमित्तसे समस्त ज्ञेयाकाररूप होकर अपने ज्ञायकस्वभावरूप परिणमन करता है, और अपनेद्वारा अपनेको आप वेदता (जानता) है। यह आत्मद्रव्यका स्वभाव है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो सब ज्ञेयोंको नहीं जानता वह एक आत्माकोभी नहीं जानता, क्योंकि आत्माके ज्ञानमें सब ज्ञेयोंके आकार प्रतिबिम्बित होते हैं; इसकारण यह आत्मा सबका जाननेवाला है। इन सबके जाननेवाले आत्माको जब प्रत्यक्ष जानते हैं तब अन्य सब ज्ञेयभी जाने जाते हैं, क्योंकि सब ज्ञेय इसीमें प्रतिबिम्बित हैं। जो सबको जाने तो आत्माकोभी जाने और जो आत्माको जाने तो सबको जाने यह बात परस्पर एक है, क्योंकि सबका जानना एक आत्माके जाननेसे होता है। इसलिये आत्माका जानना और सबका जानना एक है। सारांश यह निकला कि जो सबको नहीं जानता वह एक आत्माकोभी नहीं जानता॥ ४८॥

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोतिः—

दव्वं अणंतपज्जयमेक्कमणंताणि दव्वजादाणि ।
ण विजाणदि जदि जुगवं कध सो सव्वाणि जाणादि ॥ ४९ ॥

द्रव्यमनन्तपर्यायमेकमनन्तानि द्रव्यजातानि ।
न विजानाति यदि युगपत् कथं स सर्वाणि जानाति ॥ ४९ ॥

आत्मा हि तावत्स्वयं ज्ञानमयत्वे सति ज्ञातृत्वात् ज्ञानमेव । ज्ञानं तु प्रत्यात्मवर्ति प्रतिभासमयं महासामान्यं । तत्तु प्रतिभासमयानन्तविशेषव्यापि । ते च सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनाः । अथ यः सर्वद्रव्यपर्यायनिबन्धनानन्तविशेषव्यापिप्रतिभासमयमहासामान्यरूपमात्मानं स्वानुभवप्रत्यक्षं न करोति स कथं प्रतिभासमयमहासामान्यव्याप्यप्रतिभा-

---

अथैकमजानन् सर्वं न जानातीति निश्चिनोति;—**दव्वं** द्रव्यं **अणंतपज्जयं** अनन्तपर्यायं **एगं** एकं **अणंताणि दव्वजादीणि** अनन्तानि द्रव्यजातीनि **जो ण विजाणदि** यो न विजानाति अनन्तद्रव्यसमूहान् **किह सो सव्वाणि जाणादि** कथं स सर्वान् जानाति **जुगवं** युगपदेकसमये न कथमपीति । तथाहि—आत्मलक्षणं तावज्ज्ञानं तच्चाखण्डप्रतिभासमयं सर्वजीवसाधारणं महासामान्यम् । तच्च महासामान्यं ज्ञानमयानन्तविशेषव्यापि । ते च ज्ञानविशेषा अनन्तद्रव्यपर्यायाणां विषयभूतानां ज्ञेयभूतानां परिच्छेदका ग्राहका । अखण्डैकप्रतिभासमयं यन्महासामान्यं तत्स्वभावमात्मानं योसौ प्रत्यक्षं न जानाति स पुरुषः प्रतिभासमयेन महासामान्येन ये व्याप्ता अनन्तज्ञानविशेषास्तेषां विषयभूताः येऽनन्तद्रव्यपर्यायास्तान् कथं जानाति ? न कथमपि । अथ एतदायातं यः आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानातीति । तथा चोक्तम्—"एको भावः सर्वभावस्वभावः सर्वे भावा एकभावस्व-

---

आगे कहते हैं कि जो एकको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता;—**[यदि]** जो **[अनन्तपर्यायं एकं द्रव्यं]** अनंतपर्यायवाले एक आत्मद्रव्यको **[नैव जानाति]** निश्चयसे नहीं जानता **[तदा]** तो **[सः]** वह पुरुष **[युगपत्]** एकही बार **[अनन्तानि]** अंतरहित **[सर्वाणि]** संपूर्ण **[द्रव्यजातानि]** द्रव्योंके समूह **[कथं]** कैसे **[जानाति]** जानसकता है ? **भावार्थ**—आत्माका लक्षण ज्ञान है । ज्ञान प्रकाशरूप है वह सब जीवराशिमें महासामान्य है, और अपने ज्ञानमयी अनंतभेदोंसे व्याप्त है । ज्ञेयरूप अनंतद्रव्यपर्यायोंके निमित्तसे ज्ञानके अनंत भेद हैं । इसलिये अपने अनंतविशेषणोंसे युक्त यह सामान्यज्ञान सबको जानता है । जो पुरुष ऐसे ज्ञानसंयुक्त आत्माको प्रत्यक्ष नहीं जानसकता वह सब पदार्थोंको कैसे जानसकेगा ? इसलिये 'एक आत्माके जाननेसे सब जाना जाता है । जो एक आत्माको नहीं जानता वह सबको नहीं जानता', यह बात सिद्ध हुई । दूसरी बात यह है कि, आत्मा

समस्तावान्तरविशेषनिबन्धनभूतसर्वद्रव्यपर्यायान् प्रत्यक्षी कुर्यात् । एवमेतदायाति य आत्मानं न जानाति स सर्वं न जानाति । अथ सर्वज्ञानादात्मज्ञानमात्मज्ञानात्सर्वज्ञानमित्यवतिष्ठते । एवं च सति ज्ञानमयत्वेन स्वसंचेतकत्वादात्मनो ज्ञातृज्ञेययोर्वस्तुत्वेनान्यत्वे सत्यपि प्रतिभासप्रतिभास्यमानयोः स्वस्यामवस्थायामन्योन्यसंवलनेनात्यन्तमशक्यविवेचनत्वात्सर्वमात्मनि निखातमिव प्रतिभाति । यद्येवं न स्यात् तदा ज्ञानस्य परिपूर्णात्मसंचेतनाभावात् परिपूर्णस्यैकस्यात्मनोपि ज्ञानं न सिद्ध्येत् ॥ ४९ ॥

अथ क्रमकृतप्रवृत्त्या ज्ञानस्य सर्वगतत्वं न सिद्ध्यतीति निश्चिनोति;—

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अत्थे पडुच्च णाणिस्स ।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं ॥ ५० ॥

उत्पद्यते यदि ज्ञानं क्रमशोऽर्थान् प्रतीत्य ज्ञानिनः ।
तन्नैव भवति नित्यं न क्षायिकं नैव सर्वगतम् ॥ ५० ॥

यत्किल क्रमेणैकैकमर्थमालम्ब्य प्रवर्तते ज्ञानं तदेकार्थालम्बनादुत्पन्नमन्यार्थालम्बनात्

भावाः । एको भावस्तत्त्वतो येन बुद्धः सर्वे भावास्तत्त्वतस्तेन बुद्धाः ॥ १ ॥" अत्राह शिष्यः— आत्मपरिज्ञाने सति सर्वपरिज्ञानं भवतीत्यत्र व्याख्यातं, तत्र तु पूर्वसूत्रे भणितं सर्वपरिज्ञाने सत्यात्मपरिज्ञानं भवतीति । यद्येवं तर्हि छद्मस्थानां सर्वपरिज्ञानं नास्त्यात्मपरिज्ञानं कथं भविष्यति? आत्मपरिज्ञानाभावे चात्मभावना कथं? तदभावे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नास्तीति । परिहारमाह— परोक्षप्रमाणभूतश्रुतज्ञानेन सर्वपदार्था ज्ञायन्ते । कथमिति चेत्—लोकालोकादिपरिज्ञानं व्याप्तिज्ञानरूपेण छद्मस्थानामपि विद्यते, तच्च व्याप्तिज्ञानं परोक्षाकारेण केवलज्ञानविषयग्राहकं कथंचिदात्मैव भण्यते । अथवा स्वसंवेदनज्ञानेनात्मा ज्ञायते, ततश्च भावना क्रियते, तया रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानभावनया केवलज्ञानं च जायते । इति नास्ति दोषः ॥ ४९ ॥ अथ क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति व्यवस्थापयति;—उप्पज्जदि जदि णाणं उत्पद्यते

और पदार्थोंका ज्ञेयज्ञायक संबंध है । यद्यपि अपने २ स्वरूपसे दोनों पृथक् २ हैं तौभी ज्ञेयाकार ज्ञानके परिणमनसे सब ज्ञेयपदार्थ ऐसे भासते हैं मानों ज्ञानमें ठहरही रहे हैं । जो ऐसा आत्माको नहीं मानें तो वह अपने स्वरूपको संपूर्णपनेसे नहीं वेदै, तथा आत्माके ज्ञानकी महिमा न होवै । इसकारण जो आत्माको जानता है वह सबको जानता है, और जो सबको जानता है वह आत्माको जानता है । एकके जाननेसे सब जाने जाते हैं, और सबके जाननेसे एक जाना जाता है, यह कहना सिद्ध हुआ । यह कथन एकदेशज्ञानकी अपेक्षासे नहीं है किंतु केवलज्ञानकी अपेक्षासे है ॥ ४९ ॥ आगे जो ज्ञान पदार्थोंको क्रमसे जानता है वह सर्वगत नहीं होसकता ऐसा सिद्ध करते हैं;—[यदि] जो [ज्ञानिनः] आत्माका [ज्ञानं] चैतन्यगुण [अर्थान्]

प्रक्षीयमानं नित्यमसत्कर्मोदयादेकां व्यक्तिं प्रतिपन्नं पुनर्व्यक्त्यन्तरं प्रतिपद्यमानं क्षायिकमप्यसदनन्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानाक्रान्तुमशक्तत्वात् सर्वगतं न स्यात् ॥ ५० ॥

अथ यौगपद्यप्रवृत्त्यैव ज्ञानस्य सर्वगतत्वं सिद्ध्यतीति व्यवतिष्ठते:—

तेकालणिच्चविसमं सकलं सव्वत्थ संभवं चित्तं ।
जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं ॥ ५१ ॥

त्रैकाल्यनित्यविषमं सकलं सर्वत्र संभवं चित्रम् ।
युगपज्जानाति जैनमहो हि ज्ञानस्य माहात्म्यम् ॥ ५१ ॥

क्षायिकं हि ज्ञानमतिशयास्पदीभूतपरममाहात्म्यं, यत्तु युगपदेव सर्वार्थानालम्ब्य प्रव-

---

ज्ञानं यदि चेत्—**कमसो** क्रमशः सकाशात् । किं कृत्वा । **अट्ठे पडुच्च** ज्ञेयार्थानाश्रित्य । कस्य । **णाणिस्स** ज्ञानिनः आत्मनः **तं णेव हवदि णिच्चं** उत्पत्तिनिमित्तभूतपदार्थविनाशे तस्यापि विनाश इति नित्यं न भवति । **ण खाइयं** ज्ञानावरणीयकर्मक्षयोपशमाधीनत्वात् क्षायिकमपि न भवति । **णेव सव्वगयं** यत एव पूर्वोक्तप्रकारेण पराधीनत्वेन नित्यं न भवति, क्षयोपशमाधीनत्वेन क्षायिकं न भवति, तत एव युगपत्समस्तद्रव्यक्षेत्रकालभावानां परिज्ञानसामर्थ्याभावात्सर्वगतं न भवति । अत एतत्स्थितं यद्ज्ञानं क्रमेणार्थान् प्रतीत्य जायते तेन सर्वज्ञो न भवति । इति ॥ ५० ॥ अथ युगपत्परिच्छित्तिरूपज्ञानेनैव सर्वज्ञो भवतीत्यावेदयति:—**जाणदि** जानाति । किं कर्तृ । **जोण्हं** जैनज्ञानं । कथं । **जुगवं** युगपदेकसमये **अहो हि णाणस्स माहप्पं** अहो हि स्फुटं जैनज्ञानस्य माहात्म्यं पश्यताम् । किं जानाति । अर्थमित्यध्याहारः । कथंभूतं । **तिकालणिच्चविसयं** त्रिकालविषयं त्रिकालगतं नित्यं सर्व-

---

पदार्थोंको [**क्रमशः**] क्रमसे [**प्रतीत्य**] अवलम्बन करके [**उत्पद्यते**] उत्पन्न होता है [**तदा**] तो [**तत्**] वह ज्ञान [**नैव**] न तो [**नित्यं**] अविनाशी [**भवति**] है [**न क्षायिकं**] न क्षायिक है और [**नैव सर्वगतं**] न सबका जाननेवाला होता है । **भावार्थ**—जो ज्ञान एक २ पदार्थका अवलम्बन (ग्रहण) करके क्रमसे प्रवर्तता है, एकही वार सबको नहीं जानता है वह ज्ञान विनाशीक है, एकपदार्थके अवलम्बनसे उत्पन्न होता है दूसरेके ग्रहणसे नष्ट होता है, इसकारण अनित्य है । यही ज्ञानावरणीकर्मके क्षयोपशमसे हीनाधिक होता है इसलिये क्षायिकभी नहीं है किंतु क्षयोपशमरूप है । और अनंतद्रव्य क्षेत्र काल भाव जाननेमें असमर्थ है, इसवास्ते सबके न जाननेसे असर्वगत है । सारांश यह है कि, जिस ज्ञानसे पदार्थ क्रमपूर्वक जाने जाते हैं वह ज्ञान पराधीन है । ऐसे ज्ञानसे सर्वज्ञ पदका होना असिद्ध है अर्थात् सर्वज्ञ नहीं कहा जाता ॥ ५० ॥ आगे जो ज्ञान एकही वार सबको जानता है उसज्ञानसे सर्वज्ञ पदकी सिद्धि है ऐसा कहते हैं;—[**जैनं**] केवलज्ञान [**त्रैकाल्यनित्यविषमं**] अतीतादि तीनों कालसे सदाकाल (हमेशा) असम ऐसे [**स-**

र्तते ज्ञानं तट्टङ्कोत्कीर्णन्यायावस्थितसमस्तवस्तुज्ञेयाकारतयाधिरोपितनित्यत्वं प्रतिपन्नसमस्तव्यक्तित्वेनाभिव्यक्तस्वभावभासिक्षायिकभावं त्रैकाल्येन नित्यमेव विषमीकृतां सकलामपि सर्वार्थसंभूतिमनन्तजातिप्रापितवैचित्र्यां परिच्छिन्ददक्रमसमाक्रान्तानन्तद्रव्यक्षेत्रकालभावतया प्रकटीकृताद्भुतमाहात्म्यं सर्वगतमेव स्यात् ॥ ५१ ॥

अथ ज्ञानिनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेपि क्रियाफलभूतं बन्धं प्रतिषेधयन्नुपसंहरति;—

ण विपरिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अत्थेसु ।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो ॥ ५२ ॥

नापि परिणमति न गृह्णाति उत्पद्यते नैव तेष्वर्थेषु ।
जानन्नपि तानात्मा अबन्धकस्तेन प्रज्ञप्तः ॥ ५२ ॥

कालं । पुनरपि किंविशिष्टं । **सयलं** समस्तं । पुनरपि कथंभूतं । **सव्वत्थ संभवं** सर्वत्र लोके संभवं समुत्पन्नं स्थितं । पुनश्च किंरूपं । **चित्तं** नानाजातिभेदेन विचित्रमिति । तथाहि—युगपत्सकलग्राहकज्ञानेन सर्वज्ञो भवतीति ज्ञात्वा किं कर्तव्यं । ज्योतिष्कमन्त्रवादरससिद्ध्यादीनि यानि खण्डविज्ञानानि मूढजीवानां चित्तचमत्कारकारणानि परमात्मभावनाविनाशकानि च तत्राग्रहं त्यक्त्वा जगत्रयकालत्रयसकलवस्तु युगपत्प्रकाशकमविनश्वरमखण्डैकप्रतिभासरूपं सर्वज्ञशब्दवाच्यं यत्केवलज्ञानं तस्यैवोत्पत्तिकारणभूतं यत्समस्तरागादिविकल्पजालेन रहितं सहजशुद्धात्मनोऽभेदज्ञानं तत्र भावना कर्तव्या, इति तात्पर्यम् ॥ ५१ ॥ एवं केवलज्ञानमेव सर्वज्ञ इति कथनरूपेण गाथैका, तदनन्तरं सर्वपदार्थपरिज्ञानमिति द्वितीया चेति । ततश्च क्रमप्रवृत्तज्ञानेन सर्वज्ञो न भवतीति प्रथमगाथा, युगपद्ग्राहकेण स भवतीति द्वितीया चेति समुदायेन सप्तमस्थले गाथापञ्चकं गतम् । अथ पूर्वं यदुक्तं पदार्थपरिच्छित्तिसद्भावेऽपि रागद्वेषमोहाभावात्

र्वत्र संभवं] सब लोकमें तिष्ठते [**चित्रं**] नानाप्रकारके [**सकलं**] सब पदार्थ [**युगपत्**] एकही वार [**जानाति**] जानता है । [**अहो**] हे भव्यजीवो [**हि**] निश्चयकर यह [**ज्ञानस्य**] ज्ञानकी [**माहात्म्यं**] महिमा है । **भावार्थ**—जो ज्ञान एकही वार सकल पदार्थोंका अवलंबनकर प्रवर्तता है वह नित्य है, क्षायिक है और सर्वगत है । जिसकारण केवलज्ञानमें सब पदार्थ टंकोत्कीर्णन्यायसे प्रतिभासते हैं औरप्रकार नहीं । इस ज्ञानको कुछ औरजानना अवशेष (बांकी) नहीं है जो इसमें ज्ञेयाकारोंकी पलटना होवै, इसकारण यह ज्ञान नित्य है । इस ज्ञानकी कोई शक्ति कर्मसे ढंकी हुई नहीं है अनंतशक्तियां खुली हैं, इसलिये यह ज्ञान क्षायिक है । और यह अनंतद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावोंको प्रगट करता है इससे यह ज्ञान सर्वगत है । सारांश—केवलज्ञानकी महिमा कोईभी नहीं कहसकता, ऐसेही ज्ञानसे सर्वज्ञ पदकी सिद्धि होती है ॥ ५१ ॥ आगे केवलीके ज्ञानकी क्रिया है परंतु क्रियाका फल बंध नहीं है, ऐसा कथन संक्षेपसे कहकर आचार्य ज्ञानाधिकार पूरा करते हैं;—[**आत्मा**] केवलज्ञानी शुद्धात्मा

इह खलु "उदयगदा कम्मंसा" इत्यत्र सूत्रे उदयगतेषु पुद्गलकर्मांशेषु सत्सु संचेतयमानो मोहरागद्वेषपरिणतत्वात् ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणया क्रियया युज्यमानः क्रियाफलभूतं बन्धमनुभवति, न तु ज्ञानादिति प्रथममेवार्थपरिणमनक्रियाफलत्वेन बन्धस्य समर्थितत्वात्। तथा "गेण्हदि णेव ण मुञ्चदि" इत्यर्थपरिणमनादिक्रियाणामभावस्य शुद्धात्मनो निरूपितत्वाच्चार्थानपरिणमतोऽगृह्णतस्तेष्वनुत्पद्यमानस्य चात्मनो ज्ञप्तिक्रियासद्भावेपि न खलु क्रियाफलभूतो बन्धः सिद्ध्येत्॥ ५२॥ "जानन्नप्येष विश्वं युगपदपि भवद्भाविभूतं समस्तं मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा॥ तेनास्ते मुक्त एव प्रसभविकसितज्ञप्तिविस्तारपीतज्ञेयाकारं त्रिलोकीं पृथगपृथगथ द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः"॥ १॥ इति ज्ञानाधिकारः।

केवलिनां बन्धो नास्तीति तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढीकुर्वन् ज्ञानप्रपञ्चाधिकारमुपसंहरति;— **ण विपरिणमदि** यथा स्वकीयात्मप्रदेशैः समरसीभावेन सह परिणमति तथा ज्ञेयरूपेण न परिणमति **ण गेण्हदि** यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयरूपमात्मरूपमात्मरूपतया गृह्णाति तथा ज्ञेयरूपं न गृह्णाति **उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु** यथा च निर्विकारपरमानन्दैकसुखरूपेण स्वकीयसिद्धपर्यायेणोत्पद्यते तथैव च ज्ञेयपदार्थेषु नोत्पद्यते। किं कुर्वन्नपि। **जाणण्णवि ते** तान् ज्ञेयपदार्थान् स्वस्मात् पृथग्रूपेण जानन्नपि। स कः कर्ता। **आदा** मुक्तात्मा **अबंधगो तेण पण्णत्तो** ततः कारणात्कर्मणामबन्धकः प्रज्ञप्त इति। तद्यथा—रागादिरहितज्ञानं बन्धकारणं न भवतीति ज्ञात्वा शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षविपरीतस्य नारकादिदुःखकारणकर्मबन्धस्य कारणानीन्द्रियमनोजनितान्येकदेशविज्ञानानि त्यक्त्वा सकलविमलकेवलज्ञानस्य कर्मबन्धाकारणभूतस्य यद्बीजभूतं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानं तत्रैव भावना कर्तव्येत्यभिप्रायः॥ ५२॥ एवं रागद्वेषमोहरहितत्वात्केवलिनां बन्धो नास्तीति कथनरूपेण ज्ञानप्रपञ्चसमाप्तिमुख्यत्वेन चैकसूत्रेणाष्टमस्थलं गतम्।

[तान्] उन पदार्थोंको **[जानन् अपि]** जानता हुआ भी **[येन]** जिसकारण **[अपि]** निश्चयकरके **[न परिणमति]** न तो परिणमता है **[न गृह्णाति]** न ग्रहण करता है **[नैव]** और न **[तेषु अर्थेषु]** उन पदार्थोंमें **[उत्पद्यते]** उत्पन्न होता है **[तेन]** उसी कारणसे वह **[अबन्धकः]** नवीन कर्मबंधसे रहित **[प्रज्ञप्तः]** कहागया है। **भावार्थ**—यद्यपि केवलज्ञानी सब पदार्थोंको जानता है तौभी उन पदार्थोंको राग द्वेष मोहभावसे न परिणमता है, न ग्रहण करता है और न उनमें उत्पन्न होता है इसकारण बंधरहित है। क्रिया दो प्रकारकी है एक ज्ञप्तिक्रिया और दूसरी ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया, उनमें ज्ञानकी रागद्वेष मोहरहित जाननेरूप क्रियाको 'ज्ञप्तिक्रिया' और जो रागद्वेष मोहकर पदार्थका जानना ऐसी क्रियाको 'ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया' कहते हैं। इनमेंसे ज्ञेयार्थपरिणमन क्रियासे बंध होता है, ज्ञप्तिक्रियासे नहीं होता।

अथ ज्ञानादभिन्नस्य सौख्यस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन् ज्ञानसौख्ययोः हेयोपादेयत्वं चिन्तयति;—

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु ।
णाणं च तधा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं ॥ ५३ ॥

अस्त्यमूर्तं मूर्तमतीन्द्रियमैन्द्रियं चार्थेषु ।
ज्ञानं च तथा सौख्यं यत्तेषु परं च तत् ज्ञेयम् ॥ ५३ ॥

अत्र ज्ञानं सौख्यं च मूर्तमिन्द्रियजं चैकमस्ति । इतरदमूर्तमतीन्द्रियं चास्ति । तत्र

अथ ज्ञानप्रपञ्चव्याख्यानानन्तरं ज्ञानाधारसर्वज्ञं नमस्करोति;—

तस्स णमाइं लोगो देवासुरमणुअरायसंबंधो ।
भत्तो करेदि णिच्चं उवजुत्तो तं तहावि अहं ॥ २ ॥

करेदि करोति । स कः । **लोगो** लोकः । कथंभूतः । **देवासुरमणुअरायसंबंधो** देवासुरमनुष्यराजसंबन्धः । पुनरपि कथंभूतः । **भत्तो** भक्तः । **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं । पुनरपि किंविशिष्टः । **उवजुत्तो** उपयुक्त उद्यतः । इत्थम्भूतो लोकः कां करोति । **णमाइं** नमस्यां नमस्क्रियां । कस्य । **तस्स** तस्य पूर्वोक्तसर्वज्ञस्य । **तं तहावि अहं** तं सर्वज्ञं तथा तेनैव प्रकारेणाहमपि ग्रन्थकर्ता नमस्करोमीति । अयमत्रार्थः—यथा देवेन्द्रचक्रवर्त्यादयोऽनन्ताक्षयसुखादिगुणास्पदं सर्वज्ञस्वरूपं नमस्कुर्वन्ति, तथैवाहमपि तत्पदाभिलाषी परमभक्त्या प्रणमामि ॥ २ ॥ एवमष्टाभिः स्थलैर्द्वात्रिंशद्गाथास्तदनन्तरं नमस्कारगाथा चेति समुदायेन त्रयस्त्रिंशत्सूत्रैर्**ज्ञानप्रपंच**नामा तृतीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः । अथ सुखप्रपञ्चाभिधानान्तराधिकारेऽष्टादश गाथा भवन्ति । अत्र पञ्चस्थलानि, तेषु प्रथमस्थले "अत्थि अमुत्तं" इत्याद्यधिकारगाथासूत्रमेकं, तदनन्तरमतीन्द्रियज्ञानमुख्यत्वेन "जं पेच्छदो" इत्यादि सूत्रमेकं, अथेन्द्रियज्ञानमुख्यत्वेन "जीवो सयं अमुत्तो" इत्यादि गाथाचतुष्टयं, अथानन्तरमिन्द्रियसुखप्रतिपादनरूपेण गाथाष्टकं, तत्राप्यष्टकमध्ये प्रथमत इन्द्रियसुखस्य दुःखत्वस्थापनार्थं "मणुआ सुरा" इत्यादि गाथाद्वयं, अथ मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं देहः सुखकारणं न भवतीति कथनरूपेण "पप्पा इट्ठे विसये" इत्यादि सूत्रद्वयं, तदनन्तरमिन्द्रियविषया अपि सुखकारणं न

केवलीके ज्ञप्तिक्रिया है इसलिये उनके बंध नहीं है । पहले "उदयगदा कम्मंसा" आदि गाथासे ज्ञेयार्थपरिणमन क्रियाको बंधका कारण कहा है, सो यह केवलीके नहीं है । और "गिण्हदि णेव ण मुंचदि" आदि गाथासे केवलीके देखने जाननेरूप क्रिया कही है, सो इस ज्ञप्तिक्रियासे बंध नहीं है ॥ ५२ ॥ इसप्रकार **ज्ञानाधिकार** पूर्ण हुआ ॥ आगे इस दूसरे अधिकारमें ज्ञानसे अभिन्नरूप सुखका वर्णन करते हुए आचार्य महा-

---

१ इस गाथासूत्रकीभी श्रीमदमृतचन्द्राचार्यने टीका नहीं की इससे मूलसंख्यामें नहीं रक्खा ।

तेषु चतुर्षु मध्ये यदमूर्तमतीन्द्रियं च तत्प्रधानत्वादुपादेयत्वेन ज्ञातव्यं । तत्राद्यं मूर्ताभिः क्षायोपशमिकीभिरुपयोगशक्तिभिस्तथाविधेभ्य इन्द्रियेभ्यः समुत्पद्यमानं परायत्तत्वात् कादाचित्कत्वं, क्रमकृतप्रवृत्ति सप्रतिपक्षं सहानिवृद्धि च गौणमिति कृत्वा ज्ञानं च सौख्यं च हेयं । इतरत्पुनरमूर्ताभिश्चैतन्यानुविधायिनीभिरेकाकिनीभिरेवात्मपरिणामशक्तिभिस्तथाविधेभ्योऽतीन्द्रियेभ्यः स्वाभाविकचिदाकारपरिणामेभ्यः समुत्पद्यमानमत्यन्तमात्मायत्तत्वान्नित्यं, युगपत्कृतप्रवृत्ति निःप्रतिपक्षमहानिवृद्धि च मुख्यमिति कृत्वा ज्ञानं सौख्यं चोपादेयम् ॥ ५३ ॥

भवन्तीति कथनेन "तिमिरहरा" इत्यादि गाथाद्वयं, अतोपि सर्वज्ञनमस्कारमुख्यत्वेन "तेजो-दिट्ठि" इत्यादि गाथाद्वयम् । एवं पञ्चान्तराधिकारे **समुदायपातनिका** ॥ अथातीन्द्रियसुखस्योपादेयभूतस्य स्वरूपं प्रपञ्चयन्नतीन्द्रियज्ञानमतीन्द्रियसुखं चोपादेयमिति, यत्पुनरिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च तद्धेयमिति प्रतिपादनरूपेण प्रथमतस्तावदधिकारस्थलगाथया स्थलचतुष्टयं सूत्रयति;—**अत्थि** अस्ति विद्यते । किं कर्तृ । **णाणं** ज्ञानमिति भिन्नप्रक्रमो व्यवहितसम्बन्धः । किंविशिष्टं । **अमुत्तं मुत्तं** अमूर्तं मूर्तं च । पुनरपि किंविशिष्टं । **अदिंदियं इंदियं च** यदमूर्तं तदतीन्द्रियं मूर्तं पुनरिन्द्रियजं । इत्थंभूतं ज्ञानमस्ति । केषु विषयेषु । **अत्थेसु** ज्ञेयपदार्थेषु, **तहा सोक्खं च** तथैव ज्ञानवदमूर्तमतीन्द्रियं मूर्तमिन्द्रियजं च सुखमिति । **जं तेसु परं च तं णेयं** यत्तेषु पूर्वोक्तज्ञानसुखेषु मध्ये परमुत्कृष्टमतीन्द्रियं तदुपादेयमिति ज्ञातव्यम् । तदेव विव्रियते—अमूर्ताभिः क्षायिकीभिरतीन्द्रियाभिश्चिदानन्दैकलक्षणाभिः शुद्धात्मशक्तिभिरुत्पन्नत्वादतीन्द्रियज्ञानं सुखं चात्माधीनत्वेनाविनश्वरत्वादुपादेयमिति पूर्वोक्तामूर्तशुद्धात्मशक्तिभ्यो विलक्षणाभिः क्षायोपशमिकेन्द्रियशक्तिभिरुत्पन्नत्वादिन्द्रियजं ज्ञानं सुखं च परायत्तत्वेन विनश्वर-

---

राज पहले "कौन सुख हेय है और कौन उपादेय है" यह विचार दिखाते हैं;—**[अर्थेषु]** पदार्थोंमें **[अतीन्द्रियं]** इंद्रियोंकी आधीनतासे रहित **[ज्ञानं]** ज्ञान है वह **[अमूर्तं]** अमूर्तीक **[च]** और **[ऐन्द्रियं]** इंद्रियजनित ज्ञान **[मूर्तं]** मूर्तीक **[अस्ति]** है । **[च तथा]** और इसीतरह **[सौख्यं]** सुखभी है। अर्थात् जो इंद्रियविना सुखका अनुभव है वह अतींद्रिय अमूर्तीक सुख है, और जो इंद्रियके आधीन सुखका अनुभव है सो इंद्रियजनित मूर्तीक सुख है । **[च]** और **[तेषु]** उन ज्ञानसुखके भेदोंमें **[यत्]** जो **[परं]** उत्कृष्ट है **[तत्]** वह **[ज्ञेयं]** जानने योग्य है । **भावार्थ**—ज्ञान और सुख दो प्रकारके हैं एक अतींद्रिय अमूर्तीक और दूसरा इन्द्रियाधीन मूर्तीक । इनमेंसे अतींद्रिय अमूर्तीक ज्ञानसुख उपादेय हैं और इंद्रियाधीन मूर्तीक ज्ञानसुख हेय हैं । जो ज्ञानसुख आत्मीक अमूर्तीक चैतन्यरूप परद्रव्योंके संयोगसे रहित केवल शुद्ध परिणतिरूप शक्तिसे उत्पन्न है वह सब तरहसे आत्माके आधीन है, अविनाशी है, एकही वार अखंडितधारा प्रवाहरूप प्रवर्तता है, शत्रु-

अथातीन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमभिष्टौति;—

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं ।
सकलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं ॥ ५४ ॥

यत्प्रेक्षमाणस्यामूर्तं मूर्तेष्वतीन्द्रियं च प्रच्छन्नम् ।
सकलं स्वकं च इतरत् तद्‌ज्ञानं भवति प्रत्यक्षम् ॥ ५४ ॥

अतीन्द्रियं हि ज्ञानं यदमूर्तं यन्मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियं यत्प्रच्छन्नं च तत्सकलं स्वपरविकल्पान्तःपाति प्रेक्षत एव । तस्य खल्वमूर्तेषु धर्माधर्मादिषु, मूर्तेष्वप्यतीन्द्रियेषु परमाण्वादिषु द्रव्यप्रच्छन्नेषु कालादिषु, क्षेत्रप्रच्छन्नेष्वलोकाकाशप्रदेशादिषु, कालप्रच्छन्नेष्वसांप्रतिक-

---

त्वाद्धेयमिति तात्पर्यम् ॥ ५३ ॥ एवमधिकारगाथया प्रथमस्थलं गतम् । अथ पूर्वोक्तमुपादेयभूतमतीन्द्रियज्ञानं विशेषेण व्यक्तीकरोति;—**जं** यदन्तीन्द्रियं ज्ञानं कर्तृ **पेच्छदो** प्रेक्षमाणपुरुषस्य जानाति । किं किं । **अमुत्तं** अमूर्तमतीन्द्रियनिरुपरागसदानन्दैकसुखस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृति समस्तामूर्तद्रव्यसमूहं **मुत्तेसु अइंदियं च** मूर्तेषु पुद्गलद्रव्येषु यदतीन्द्रियं परमाण्वादि **पच्छण्णं** कालाणुप्रभृतिद्रव्यरूपेण प्रच्छन्नं व्यवहितमन्तरितं, अलोकाकाशप्रदेशप्रभृति क्षेत्रप्रच्छन्नं, निर्विकारपरमानन्दैकसुखास्वादपरिणतिरूपपरमात्मनो वर्तमानसमयगतपरिणामास्तत्प्रभृतयो ये समस्तद्रव्याणां वर्तमानसमयगतपरिणामास्ते कालप्रच्छन्नाः, तस्यैव परमात्मनः सिद्धरूपशुद्धव्यञ्जनपर्यायः शेषद्रव्याणां च ये यथासंभवं व्यञ्जनपर्यायास्तेष्वन्तर्भूताः प्रतिसमयप्रवर्तमानषट्प्रकारवृद्धिहानिरूपा अर्थपर्याया भावप्रच्छन्ना भण्यन्ते । **सयलं** तत्पूर्वोक्तं समस्तं ज्ञेयं द्विधा भवति । कथमितिचेत् । **सगं च इदरं** किमपि यथासंभवं स्वद्रव्यगतं इतरत्परद्रव्यगतं च तदुभयं यतः कारणाज्जानाति तेन कारणेन **तण्णाणं** तत्पूर्वोक्तज्ञानं

रहित है और घटता बढता नहीं है; इसकारण उत्कृष्ट तथा उपादेय है । और जो आत्माके मूर्तीक क्षायोपशमरूप इंद्रियोंके आधीन चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न है वह पराधीन है, विनाशीक है, क्रमरूप प्रवर्तता है, शत्रुसे खंडित है और घटता बढता है इसकारण हीन तथा हेय है ॥ ५३ ॥ आगे अतीन्द्रिय सुखका कारण अतींद्रिय ज्ञान उपादेय है यह कहते हैं;—[**प्रेक्षमाणस्य**] देखनेवाले पुरुषका [**यद्‌ज्ञानं**] जो ज्ञान [**अमूर्तं**] धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव इन पांच अमूर्तीक द्रव्योंको [**च**] और [**मूर्तेषु**] मूर्तीक अर्थात् पुद्गलद्रव्योंके पर्यायोंमें [**अतीन्द्रियं**] इंद्रियोंसे नहीं ग्रहण करने योग्य परमाणुओंको [**प्रच्छन्नं**] द्रव्य क्षेत्र काल भावसे गुप्तपदार्थोंको [**सकलं स्वकं**] सबही स्वज्ञेय [**च**] और [**इतरं**] परज्ञेयोंको

---

१ कालकी अणु वगैरः द्रव्यसे गुप्त, अलोकाकाशके प्रदेशादि क्षेत्रप्रच्छन्न, अतीतादिपर्याय कालप्रच्छन्न, और सूक्ष्मपर्याय भावप्रच्छन्न हैं ।

पर्यायेषु, भावप्रच्छन्नेषु स्थूलपर्यायान्तर्लीनसूक्ष्मपर्यायेषु सर्वेष्वपि स्वपरव्यवस्थाव्यवस्थितेष्वस्ति द्रष्टृत्वं प्रत्यक्षत्वात् । प्रत्यक्षं हि ज्ञानमुद्भिन्नानन्तशुद्धिसन्निधानमनादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धमेकमेवाक्षनामानमात्मानं प्रतिनियतमितरासामग्रीममृगयमाणमनन्तशक्तिसद्भावतोऽनन्ततामुपगतं दहनस्येव दाह्याकाराणां ज्ञानस्य ज्ञेयाकाराणामनतिक्रमाद्यथोदितानुभावमनुभवत्तत् केन नाम निवार्येत । अतस्तदुपादेयम् ॥ ५४ ॥

अथेन्द्रियसौख्यसाधनीभूतमिन्द्रियज्ञानं हेयं प्रणिन्दति;—

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं ।
ओगिण्हित्ता जोग्गं जाणदि वा तण्ण जाणादि ॥ ५५ ॥

जीवः स्वयममूर्तो मूर्तिगतस्तेन मूर्तेन मूर्तम् ।
अवगृह्य योग्यं जानाति वा तन्न जानाति ॥ ५५ ॥

इन्द्रियज्ञानं हि मूर्तोपलम्भकं मूर्तोपलभ्यं च तद्वान् जीवः स्वयममूर्तोपि पञ्चेन्द्रिया-

---

हवदि भवति । कथंभूतं । **पच्चक्खं** प्रत्यक्षमिति । अत्राह शिष्यः—ज्ञानप्रपञ्चाधिकारः पूर्वमेवगतः, अस्मिन् सुखप्रपञ्चाधिकारे सुखमेव कथनीयमिति । परिहारमाह—यदतीन्द्रियं ज्ञानं पूर्वं भणितं तदेवाभेदनयेन सुखं भवतीति ज्ञापनार्थं, अथवा ज्ञानस्य मुख्यवृत्त्या तत्र हेयोपादेयचिन्ता नास्तीति ज्ञापनार्थं वा । एवमतीन्द्रियज्ञानमुपादेयमिति कथनमुख्यत्वेनैकगाथया द्वितीयस्थलं गतम् ॥ ५४ ॥ अथ हेयभूतस्येन्द्रियसुखस्य कारणत्वादल्पविषयत्वाच्चेन्द्रियज्ञानं हेयमित्युपदिशति;—**जीवो सयं अमुत्तो** जीवस्तावच्छक्तिरूपेण शुद्धद्रव्यार्थिकनयेनामूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखस्वभावः, पश्चादनादिबन्धवशाद् व्यवहारेण **मुत्तिगओ** मूर्तशरीरगतो मूर्तशरीरपरिणतो भवति । **तेण मुत्तिणा** तेन मूर्तशरीरेण मूर्तशरीराधारोत्पन्नमूर्तद्रव्येन्द्रियभावे-

---

जानता है । [**तत्**] वह ज्ञान [**प्रत्यक्षं**] इंद्रिय विना केवल आत्माके आधीन [**भवति**] होता है । **भावार्थ**—जो सबको जानता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं । इस ज्ञानमें अनंत शुद्धता है । अन्य सामग्री नहीं चाहता, केवल एक अक्षनामा आत्माके प्रति निश्चिन्त हुआ प्रवर्तता है और अपनी शक्तिसे अनंतस्वरूप है । जैसे अग्नि (आग) ईंधनके आकार है वैसेही यह ज्ञान ज्ञेयाकारोंको नहीं छोड़ता है, इसलिये अनन्तस्वरूप है । इसप्रकार प्रत्यक्ष ज्ञानकी महिमाको कोई दूर नहीं करसकता । इसलिये यह प्रत्यक्षज्ञान उपादेय है और अतीन्द्रिय सुखका कारण है ॥ ५४ ॥ आगे जो इंद्रियसुखका कारण इंद्रियज्ञान है उसे हेय दिखलाकर निंदा करते हैं;—[**जीवः**] आत्मद्रव्य [**स्वयं**] अपने स्वभावसे [**अमूर्तः**] स्पर्श, रस, गंध, वर्णरहित अमूर्तीक है । और [**स एव**] वही अनादि बंध परिणमनकी अपेक्षा [**मूर्तिगतः**] मूर्तिमान् शरीरमें स्थित (मौजूद) है । [**तेन मूर्तेन**] उस मूर्तीक शरीरमें ज्ञानकी

त्मकं शरीरं मूर्तमुपागतस्तेन ज्ञप्तिनिष्पत्तौ बलाधाननिमित्ततयोपलम्भकेन मूर्तेन मूर्तं स्पर्शादिप्रधानं वस्तूपलम्भ्यतामुपागतं योग्यमवगृह्य कदाचित्तदुपर्युपरि शुद्धिसंभवादवगच्छति, कदाचित्तदसंभवान्नावगच्छति । परोक्षत्वात् । परोक्षं हि ज्ञानमतिदृढतराज्ञानतमोग्रन्थिगुण्ठनान्निमीलितस्यानादिसिद्धचैतन्यसामान्यसंबन्धस्याप्यात्मनः स्वयं परिच्छेत्तुमर्थमसमर्थस्योपात्तानुपात्तपरप्रत्ययसामग्रीमार्गणव्यग्रतयात्यन्तविसंस्थूलत्वमवलम्बमानमनन्तायाः शक्तेः परिस्खलनान्नितान्तविक्लवीभूतं महामोहमल्लस्य जीवदवस्थत्वात् परपरिणतिप्रवर्तितामिप्रायमपि पदे पदे प्राप्तविप्रलम्भमनुपलम्भसंभावनामेव परमार्थतोऽर्हति । अतस्तद्धेयम् ॥ ५५ ॥

अथेन्द्रियाणां स्वविषयमात्रेपि युगपत्प्रवृत्त्यसंभवाद्धेयमेवेन्द्रियज्ञानमित्यवधारयति;—

फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पुग्गला होंति ।
अक्खाणं ते अक्खा जुगवं ते णेव गेण्हंति ॥ ५६ ॥

न्द्रियाधारेण **मुत्तं** मूर्तं वस्तु **ओगेण्हित्ता** अवग्रहादिकेन क्रमकरणव्यवधानरूपं कृत्वा **जोग्गं** तत्स्पर्शादिमूर्तं वस्तु । कथंभूतं । इन्द्रियग्रहणयोग्यं **जाणदि वा तण्ण जाणादि** स्वावरणक्षयोपशमयोग्यं किमपि स्थूलं जानाति, विशेषक्षयोपशमाभावात् सूक्ष्मं न जानातीति । अयमत्र भावार्थः—इन्द्रियज्ञानं यद्यपि व्यवहारेण प्रत्यक्ष भण्यते, तथापि निश्चयेन केवलज्ञानापेक्षया परोक्षमेव । परोक्षं तु यावतांशेन सूक्ष्मार्थं न जानाति तावतांशेन चित्तखेदकारणं भवति । खेदश्च दुःखं, ततो दुःखजनकत्वादिन्द्रियज्ञानं हेयमिति ॥ ५५ ॥ अथ चक्षुरादीन्द्रियज्ञानं रूपादिस्वविषयमपि युगपन्न जानाति तेन कारणेन हेयमिति निश्चिनोति;—**फासो**

उत्पत्तिको निमित्तकारणरूप मूर्तिवंत द्रव्येंद्रियसे [**योग्यं मूर्तं**] इंद्रियके ग्रहण करने योग्य स्थूलस्वरूप मूर्तीकको अर्थात् स्पर्शादिरूप वस्तुको [**अवगृह्य**] अवग्रह ईहादिभेदोंसे क्रमसे ग्रहण करके [**जानाति**] जानता है [**वा**] अथवा [**तत्**] उस मूर्तीकको [**न जाणाति**] नहीं जानता अर्थात् जब कर्मके क्षयोपशमकी तीव्रता होती है तब जानता है, मंदता होती है तब नहीं जानता । **भावार्थ**—यह आत्मा अनादिकालसे अज्ञानरूप अंधकारकर अंधा होगया है । यद्यपि अपनी चैतन्यकी महिमाको लिये रहता है तौभी कर्मके संयोगसे इंद्रियके विना अपनी शक्तिसे जाननेको असमर्थ है, इसलिये आत्माके यह परोक्षज्ञान है । यह परोक्षज्ञान मूर्तिवन्त द्रव्येंद्रियके आधीन है, मूर्तीक पदार्थोंको जानता है, अतिशयकर चंचल है, अनंतज्ञानकी महिमासे भिन्न हुआ है, अत्यंत विकल है, महामोहमल्लकी सहायतासे पर परिणतिमें प्रवर्तता है, पद पद (जगह २) पर विवादरूप, उलाहना देने योग्य है, वास्तवमें स्तुति करने योग्य नहीं है, निंद्य है; इसीलिये हेय है ॥ ५५ ॥ आगे इंद्रियज्ञान यद्यपि अपने जानने योग्य मूर्तीक पदार्थोंको जानता है तौभी एकही वार नहीं जानता इसलिये हेय है, ऐसा क-

स्पर्शो रसश्च गन्धो वर्णः शब्दश्च पुद्गला भवन्ति ।
अक्षाणां तान्यक्षाणि युगपत्तान्नैव गृह्णन्ति ॥ ५६ ॥

इन्द्रियाणां हि स्पर्शरसगन्धवर्णप्रधानाः शब्दश्च, ग्रहणयोग्याः पुद्गलाः । अथेन्द्रियैर्युगपत्तेपि न गृह्यन्ते, तथाविधक्षयोपशमनशक्तेरसंभवात् । इन्द्रियाणां हि क्षयोपशमसंज्ञिकायाः परिच्छेत्र्याः शक्तेरन्तरङ्गायाः काकाक्षितारकवत् क्रमप्रवृत्तिवशादनेकतः प्रकाशयितुमसमर्थत्वात्सत्स्वपि द्रव्येन्द्रियद्वारेषु न यौगपद्येन निखिलेन्द्रियार्थावबोधः सिद्ध्येत्, परोक्षत्वात् ॥ ५६ ॥

रसो य गन्धो वण्णो सद्दो य पोग्गला होंति स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाः पुद्गला मूर्ता भवन्ति । ते च विषयाः । केषां । अक्खाणं स्पर्शनादीन्द्रियाणां ते अक्खा तान्यक्षाणीन्द्रियाणि कर्तॄणि जुगवं ते णेव गेण्हंति युगपत्तान् स्वकीयविषयानपि न गृह्णन्ति न जानन्तीति । अयमत्राभिप्रायः—यथा सर्वप्रकारोपादेयभूतस्यानन्तसुखस्योपादानकारणभूतं केवलज्ञानं युगपत्समस्तं वस्तु जानत्सत् जीवस्य सुखकारणं भवति तथेदमिन्द्रियज्ञानं स्वकीयविषयेपि

हते हैं;—[अक्षाणां] पांचों इन्द्रियोंके [स्पर्शः] स्पर्श [रसः] रस [च गन्धः] और गंध [वर्णः] रूप [च] तथा [शब्दः] शब्द ये पांच विषय [पुद्गलाः] पुद्गलमयी [भवन्ति] हैं अर्थात् पांच इंद्रियां उक्त स्पर्शादि पांच विषयोंको जानती हैं परंतु [तानि अक्षाणि] वे इंद्रियां [तान्] उन पांच विषयोंको [युगपत्] एकही वार [नैव] नहीं [गृह्णन्ति] ग्रहण करतीं । भावार्थ—ये स्पर्शनादि पांचों इन्द्रियां अपने २ स्पर्शादि विषयोंको ग्रहण करती हैं परंतु एकही समय ग्रहण नहीं करसकतीं । अर्थात् जिससमय जिह्वा इंद्रिय रसका अनुभव करती है उस समय अन्य श्रोत्रादि इंद्रियोंका कार्य नहीं होता । सारांश-एक इंद्रियका जब कार्य होता है तब दूसरीका बन्द रहता है, क्योंकि अंतरंगमें जो क्षायोपशमिकज्ञान है उसकी शक्ति क्रमसे प्रवर्तती है । जैसे काकके दोनों नेत्रोंकी पूतली एकही होती है परंतु वह पूतली ऐसी चंचल है कि लोगोंको यह मालूम पड़ता है जो दोनों नेत्रोंमें जुदी २ पुतली है । यथार्थमें वह एकही है, जिससमय वह जिस नेत्रसे देखता है उससमय उसी नेत्रमें आजाती है, परंतु एकवार दोनों नेत्रोंसे नहीं देख सकता । यही दशा क्षायोपशमिकज्ञानकी है । यह ज्ञान स्पर्शादि पांचों विषयोंको एकही बार जाननेमें असमर्थ है । जिससमय जिस इंद्रियरूपद्वारमें जाननेरूप प्रवृत्ति करता है उससमय उसी द्वारमें रहता है अन्य द्रव्येन्द्रियद्वारमें नहीं । इसकारण एकही काल सब इन्द्रियोंके ज्ञान नहीं होता । इसीलिये इन्द्रियज्ञान परोक्ष है, पराधीन है और हेय है ॥ ५६ ॥

अथेन्द्रियज्ञानं न प्रत्यक्षं भवतीति निश्चिनोति;—

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिदा ।
उवलद्धं तेहि कहं पच्चक्खं अप्पणो होदि ॥ ५७ ॥

परद्रव्यं तान्यक्षाणि नैव स्वभाव इत्यात्मनो भणितानि ।
उपलब्धं तैः कथं प्रत्यक्षमात्मनो भवति ॥ ५७ ॥

आत्मानमेव केवलं प्रतिनियतं केवलज्ञानं प्रत्यक्षं, इदं तु व्यतिरिक्तास्तित्वयोगितया परद्रव्यतामुपगतैरात्मनः स्वभावतां मनागप्यसंस्पृशद्भिरिन्द्रियैरुपलभ्योपजन्यमानं नैवात्मनः प्रत्यक्षं भवितुमर्हति ॥ ५७ ॥

अथ परोक्षप्रत्यक्षलक्षणमुपलक्षयति;—

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खत्ति भणिदमत्थेसु ।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं ॥ ५८ ॥

युगपत्परिज्ञानाभावात्सुखकारणं न भवति ॥ ५६ ॥ अथेन्द्रियज्ञानं प्रत्यक्षं न भवतीति व्यवस्थापयति;—**परदव्वं ते अक्खा** तानि प्रसिद्धान्यक्षाणीन्द्रियाणि परद्रव्यं भवन्ति । कस्य । आत्मनः **णेव सहावोत्ति अप्पणो भणिया** योसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभाव आत्मनः संबन्धी तत्स्वभावानि निश्चयेन न भणितानीन्द्रियाणि । कस्मात् । भिन्नास्तित्वनिष्पन्नत्वात् । **उवलद्धं तेहि** उपलब्धं ज्ञातं यत्पञ्चेन्द्रियविषयभूतं वस्तु तैरिन्द्रियैः **कहं पच्चक्खं अप्पणो होदि** तद्वस्तु कथं प्रत्यक्षं भवत्यात्मनो न कथमपीति । तथैव च नानामनोरथव्याप्तिविषये प्रतिपाद्यप्रतिपादकादिविकल्पजालरूपं यन्मनस्तदपीन्द्रियज्ञानवन्निश्चयेन परोक्षं भवतीति ज्ञात्वा । किं कर्तव्यं । सकलैकाखण्डप्रत्यक्षप्रतिभासमयपरमज्योतिःकारणभूते स्वशुद्धात्मस्वरूपभावनासमुत्पन्नपरमाह्लादैकलक्षणसुखसंवित्त्याकारपरिणतिरूपे रागादिविकल्पोपाधिरहिते स्वसंवेदनज्ञाने भावना कर्तव्या इत्यभिप्रायः ॥ ५७ ॥ अथ पुनरपि प्रकारान्तरेण प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणं कथ-

---

आगे इंद्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा निश्चित करते हैं;—**[आत्मनः]** आत्माका **[स्वभावः]** चेतनास्वभाव **[नैव]** उन इन्द्रियोंमें **[नैव]** नहीं है **[इति]** इसलिये **[तानि अक्षाणि]** वे स्पर्शनादि इन्द्रियां **[परद्रव्यं]** अन्य पुद्गलद्रव्य **[भणितानि]** कहीगई हैं । **[तैः]** उन इंद्रियोंसे **[उपलब्धं]** प्राप्त हुए (जाने हुए) पदार्थ **[आत्मनः]** आत्माके **[कथं]** कैसे **[प्रत्यक्षं]** प्रत्यक्ष **[भवति]** होवें ? कभी नहीं होवें । **भावार्थ**—आत्मा चैतन्यस्वरूप है और द्रव्येन्द्रियां जड़स्वरूप हैं। इन इन्द्रियोंके द्वारा जाना हुआ पदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होसकता, क्योंकि पराधीनतासे रहित आत्माके आधीन जो ज्ञान है उसेही प्रत्यक्ष कहते हैं, और यह इंद्रियज्ञान पुद्गलकी इंद्रियोंके द्वारा उनके अधीन होकर पदार्थको जानता है, इसकारण परोक्ष है तथा पराधीन है । ऐसे ज्ञानको प्रत्यक्ष नहीं कहसके ॥ ५७ ॥ आगे परोक्ष और प्रत्य-

यत्परतो विज्ञानं तत्तु परोक्षमिति भणितमर्थेषु ।
यदि केवलेन ज्ञातं भवति हि जीवेन प्रत्यक्षम् ॥ ५८ ॥

यत्तु खलु परद्रव्यभूतादन्तःकरणादिन्द्रियात्परोपदेशादुपलब्धेः संस्कारादालोकादेर्वा निमित्ततामुपगतात् स्वविषयमुपगतस्यार्थस्य परिच्छेदनं तत् परतः प्रादुर्भवत्परोक्षमित्यालक्ष्यते । यत्पुनरन्तःकरणमिन्द्रियं परोपदेशमुपलब्धिसंस्कारमालोकादिकं वा समस्तमपि परद्रव्यमनपेक्ष्यात्मस्वभावमेवैकं कारकत्वेनोपादाय सर्वद्रव्यपर्यायजातमेकपद एवाभिव्याप्य प्रवर्तमानं परिच्छेदनं तत् केवलादेवात्मनः संभूतत्वात् प्रत्यक्षमित्यालक्ष्यते । इह हि सहजसौख्यसाधनीभूतमिदमेव महाप्रत्यक्षमभिप्रेतमिति ॥ ५८ ॥

अथैतदेव प्रत्यक्षं पारमार्थिकसौख्यत्वेनोपक्षिपति;—

जादं सयं समत्तं णाणमणंतत्थवित्थिदं विमलं ।
रहिदं तु उग्गहादिहि सुहत्ति एयंतियं भणिदं ॥ ५९ ॥

यति;—**जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खत्ति भणिदं** यत्परतः सकाशाद्विज्ञानं परिज्ञानं भवति तत्पुनः परोक्षमिति भणितं । केषु विषयेषु । **अट्ठेसु** ज्ञेयपदार्थेषु **जदि केवलेण णादं हवदि हि** यदि केवलेनासहायेन ज्ञातं भवति हि स्फुटं । केन कर्तृभूतेन । **जीवेण** जीवेन तर्हि **पच्चक्खं** प्रत्यक्षं भवतीति । अतो विस्तरः—इन्द्रियमनःपरोपदेशावलोकादिबहिरङ्गनिमित्तभूतात्तथैव च ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजनितार्थग्रहणशक्तिरूपाया उपलब्धेरर्थावधारणरूपसंस्काराचान्तरङ्गकारणभूतात्सकाशादुत्पद्यते यद्विज्ञानं तत्पराधीनत्वात्परोक्षमित्युच्यते । यदि पुनः पूर्वोक्तसमस्तपरद्रव्यमनपेक्ष्य केवलाच्छुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मनः सकाशात्समुत्पद्यते ततोऽक्षनामानमात्मानं प्रतीत्योत्पद्यमानत्वात्प्रत्यक्षं भवतीति सूत्राभिप्रायः ॥ ५८ ॥ एवं हेयभूतेन्द्रिय-

---

क्षका लक्षण दिखाते हैं;—[**यत्**] जो [**परतः**] परकी सहायतासे [**अर्थेषु**] पदार्थोंमें [**विज्ञानं**] विशेषज्ञान उत्पन्न होवै [**तत्**] वह [**परोक्षं**] परोक्ष है [**इति भणितं**] ऐसा कहा है । [**तु**] परंतु [**यदि**] जो [**केवलेन**] परकी सहायताविना अपने आपही [**जीवेन**] आत्माकर [**हि**] निश्चयसे [**ज्ञातं**] जाना जावे [**तदा**] तो वह [**प्रत्यक्षं**] प्रत्यक्षज्ञान [**भवति**] है ॥ **भावार्थ**—जो ज्ञान मनसे पांचइंद्रियोंसे परोपदेशसे क्षयोपशमसे पूर्वके अभ्याससे और सूर्यादिकके प्रकाशसे उत्पन्न होताहै उसे परोक्षज्ञान कहते हैं, क्योंकि यह ज्ञान इन्द्रियादिक परद्रव्यस्वरूप निमित्तोंसे उत्पन्न होताहै और परजनित होनेसे पराधीन है । परंतु जो ज्ञान, मन इन्द्रियादिक परद्रव्योंकी सहायताकेविना केवल आत्माकीही सहायतासे उत्पन्न होता है तथा एकही समयमें सब द्रव्य पर्यायोंको जानता है उसे प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं, क्योंकि वह केवल आत्माके आधीन है यही महाप्रत्यक्षज्ञान आत्मीकस्वाभाविक सुखका साधन माना है ॥ ५८ ॥ आगे यही अतीन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान निश्च-

जातं स्वयं समस्तं ज्ञानमनन्तार्थविस्तृतं विमलम् ।
रहितं तु अवग्रहादिभिः सुखमिति ऐकान्तिकं भणितम् ॥ ५९ ॥

स्वयं जातत्वात्, समस्तत्वात्, अनन्तार्थविस्तृतत्वात्, विमलत्वात्, अवग्रहादिरहितत्वाच्च प्रत्यक्षं ज्ञानं सुखमैकान्तिकमिति निश्चीयते । अनाकुलत्वैकलक्षणत्वात्सौख्यस्य, यतो हि परतो जायमानं पराधीनतया असमस्तमितरद्वारावरणेन कतिपयार्थप्रवृत्तमितरार्थबुभुत्सया समलमसम्यगवबोधेन अवग्रहादिसहितं, क्रमकृतार्थग्रहणखेदेन परोक्षं ज्ञानमत्यन्तमाकुलं भवति । ततो न तत् परमार्थतः सौख्यं । इदं तु पुनरनादिज्ञानसामान्यस्वभावस्योपरि महाविकाशेनाभिव्याप्य स्वत एव व्यवस्थितत्वात्स्वयं जायमानमात्माधीनतया समन्तात्मप्रदेशात् परमसमक्षज्ञानोपयोगीभूयाभिव्याप्य व्यवस्थितत्वात्समन्तम् । अशेषद्वारापावरणेन प्रसभं निपीतसमस्तवस्तुज्ञेयाकारं परमं वैश्वरूप्यमभिव्याप्य व्यवस्थि-

---

ज्ञानकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथाभेदनयेन पञ्चविशेषणविशिष्टं केवलज्ञानमेव सुखमिति प्रतिपादयति;—**जादं** जातं उत्पन्नं । किं कर्तृ । **णाणं** केवलज्ञानं । कथं जातं । **सयं** स्वयमेव । पुनरपि किंविशिष्टं । **समत्तं** परिपूर्णं । पुनरपि किंरूपं । **अणंतत्थवित्थडं** अनन्तार्थविस्तीर्णं । पुनः कीदृशं । **विमलं** संशयादिमलरहितं । पुनरपि कीदृक् । **रहियं तु ओग्गहादिहिं** अवग्रहादिरहितं चेति । एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं यत्केवलज्ञानं **सुहंति एगंतियं भणियं** तत्सुखं भणितं । कथंभूतं । ऐकान्तिकं नियमेनेति । तथाहि—परनिरपेक्षत्वेन चिदानन्दैकस्वभावं निजशुद्धात्मानमुपादानकारणं कृत्वा समुत्पद्यमानत्वात्स्वयं जायमानं सत्सर्वशुद्धात्मप्रदेशाधारत्वेनोत्पन्नत्वात्समस्तं सर्वज्ञानाविभागपरिच्छेदपरिपूर्णं सत् समस्तावरणक्षयेनोत्पन्नत्वात्समस्तज्ञेयपदार्थग्राहकत्वेन विस्तीर्णं सत् संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेन सूक्ष्मादिपदार्थपरि-

---

यसुख है ऐसा अभेद दिखाते हैं;—[**स्वयं जातं**] अपने आपसेही उत्पन्न [**समस्तं**] संपूर्ण [**अनन्तार्थविस्तृतं**] सब पदार्थोंमें फैला हुआ [**विमलं**] निर्मल [**तु**] और [**अवग्रहादिभिः रहितं**] अवग्रह ईहा आदिसे रहित [**ज्ञानं**] ऐसा ज्ञान [**ऐकान्तिकं सुखं**] निश्चयसुख है [**इति भणितं**] इसप्रकार सर्वज्ञने कहा है । **भावार्थ**—जिसमें आकुलता न हो वही सुख है । यह अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान आकुलतारहित है इसलिये सुखरूप है । यह परोक्षज्ञान पराधीन है क्योंकि परसे (द्रव्येन्द्रियसे) उत्पन्न है । असंपूर्ण है क्योंकि आवरणसहित है। सब पदार्थोंको नहीं जाननेसे सबमें विस्ताररूप नहीं है संकुचित है, संशयादिकसहित होनेसे मलसहित है निर्मल नहीं है, क्रमवर्ती है क्योंकि अवग्रह ईहादि युक्त है, और खेद (आकुलता) सहित होनेसे निराकुल नहीं है; इसलिये परोक्षज्ञान सुखरूप नहीं है । और यह अतीन्द्रियप्रत्यक्षज्ञान पराधीनता रहित एक निजशुद्धात्माके कारणको पाकर उत्पन्न हुआ है इसलिये आपसेही उत्पन्न है, आवरणरहित होनेसे अपने आ-

तत्वादनन्तार्थविस्तृतं । समस्तार्थाबुभुत्सया सकलशक्तिप्रतिबन्धककर्मसामान्यनिःक्रान्ततया परिस्पष्टप्रकाशभास्वरं स्वभावमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वाद्विमलं । सम्यगवबोधेन युगपत्समर्पितत्रैसमयिकात्मस्वरूपं लोकालोकमभिव्याप्य व्यवस्थितत्वादवग्रहादिरहितं । क्रमकृतार्थग्रहणखेदाभावेन प्रत्यक्षं ज्ञानमनाकुलं भवति । ततस्तत्पारमार्थिकं खलु सौख्यम् ॥ ५९ ॥

अथ केवलस्यापि परिणामद्वारेण खेदस्य संभवादैकान्तिकसुखत्वं नास्तीति प्रत्याचष्टे;—

जं केवलत्ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव ।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा ॥ ६० ॥

यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं परिणामश्च स चैव ।
खेदस्तस्य न भणितो यस्मात् घातीनि क्षयं जातानि ॥ ६० ॥

अत्र को हि नाम खेदः कश्च परिणामः कश्च केवलसुखयोर्व्यतिरेकः, यतः केवलस्यैका-

---

च्छित्तिविषयेऽत्यन्तविशदत्वाद्विमलं सत् क्रमकरणव्यवधानजनितखेदाभावादवग्रहादिरहितं च सत्, यदेवं पञ्चविशेषणविशिष्टं क्षायिकज्ञानं तदनाकुलत्वलक्षणपरमानन्दैकरूपपारमार्थिकसुखात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेनाभिन्नत्वात्पारमार्थिकसुखं भण्यते । इत्यभिप्रायः ॥५९॥ अथानन्तपदार्थपरिच्छेदनात्केवलज्ञानेपि भेदोस्तीति पूर्वपक्षे सति परिहारमाह;—**जं केवलत्ति णाणं तं सोक्खं** यत्केवलमिति ज्ञानं तत्सौख्यं भवति, तस्मात् **खेदो तस्स ण भणिओ** तस्य केवलज्ञानस्य खेदो दुःखं न भणितं । तदपि कस्मात् । **जम्हा घादिक्खयं जादो** यस्मान्मोहादिघातिकर्माणि क्षयं गतानि । तर्हि तस्यानन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामो दुःखकारणं भविष्यति ? नैवम् । **परिणमं च सो चेव** तस्य केवलज्ञानस्य संबन्धी परिणामश्च स

त्माके सब प्रदेशोंमें अपनी अनंत शक्तिसहित है इसलिये सम्पूर्ण है, अपनी ज्ञायक शक्तिके बलसे समस्त ज्ञेयाकारोंको मानों पिया ही है इसकारण सब पदार्थोंमें विस्तीर्ण है, अनन्त शक्तिको बाधा करनेवाले कर्मोंके क्षयसे संशय, विमोह, विभ्रमदोषरहित सकल सूक्ष्मादि पदार्थोंको स्पष्ट (प्रगट) जानता है इसलिये निर्मल है, और अतीत अनागत वर्तमानकालरूप लोकालोकको एकही वार जानता है इसलिये अक्रमवर्ती है, खेदयुक्त नहीं है निराकुल है; इसकारण प्रत्यक्षज्ञानही अतीन्द्रियसुख है ऐसा जानना ॥ ५९ ॥ आगे केवलज्ञानीको सबके जाननेसे खेद उत्पन्न होता होगा, इस प्रकारके तर्कका निषेध करनेको कहते हैं;—**[यत्]** जो **[केवलं इति]** केवल ऐसे नामवाला **[ज्ञानं]** ज्ञान है **[तत्]** वह **[सौख्यं]** अनाकुल सुख है **[च]** और **[स एव]** वही सुख **[परिणामः]** सबके जाननेरूप परिणाम है । **[तस्य]** उस

कान्तिकसुखत्वं न स्यात्। खेदस्यायतनानि घातिकर्माणि, न नाम केवलं परिणाममात्रं। घातिकर्माणि हि महामोहोत्पादकत्वादुन्मत्तकवदतस्मिंस्तद्बुद्धिमाधाय परिच्छेद्यमर्थं प्रत्यात्मानं यतः परिणामयति, ततस्तानि तस्य प्रत्यर्थं परिणम्य परिणम्य श्राम्यतः खेदनिदानतां प्रतिपद्यन्ते। तदभावात्कुतो हि नाम केवले खेदस्योद्भेदा, यतश्च त्रिसमयावच्छिन्नसकलपदार्थपरिच्छेद्याकारवैश्वरूप्यप्रकाशनास्पदीभूतं चित्रभित्तिस्थानीयमनन्तस्वरूपं स्वयमेव परिणमत्केवलमेव परिणामः, ततः कुतोन्यः परिणामो यद्वारेण खेदस्यात्मलाभः। यतश्च समस्तस्वभावप्रतिघाताभावात्समुल्लसितनिरङ्कुशानन्तशक्तितया सकलं त्रैकालिकं लोकालोकाकारमभिव्याप्य कूटस्थत्वेनात्यन्तनिःप्रकम्पं व्यवस्थितत्वादनाकुलतां सौख्यलक्षणभूतामात्मनोऽव्यतिरिक्तां बिभ्राणं केवलमेव सौख्यं। ततः कुतः केवलसुखयोर्व्यतिरेकः। अतः सर्वथा केवलं सुखमैकान्तिकमनुमोदनीयम् ॥ ६० ॥

एव सुखरूप एवेति। इदानीं विस्तरः—ज्ञानदर्शनावरणोदये सति युगपदर्थान् ज्ञातुमशक्यत्वात् क्रमकरणव्यवधानग्रहणे खेदो भवति, आवरणद्वयाभावे सति युगपद्ग्रहणे केवलज्ञानस्य खेदो नास्तीति सुखमेव। तथैव तस्य भगवतो जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्परिच्छित्तिसमर्थमखण्डैकरूपं प्रत्यक्षपरिच्छित्तिमयं स्वरूपं परिणमत्सत् केवलज्ञानमेव परिणामो न च केवलज्ञानाद्भिन्नपरिणामोऽस्ति येन खेदो भविष्यति। अथवा परिणामविषये द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—युगपदनन्तपदार्थपरिच्छित्तिपरिणामेपि वीर्यान्तरायनिरवशेषक्षयादनन्तवीर्यत्वात् खेदकारणं नास्ति, तथैव च शुद्धात्मसर्वप्रदेशेषु समरसीभावेन परिणममानानां सहजशुद्धानन्दैकलक्षणसुखरसास्वादपरिणतिरूपामात्मनः सकाशादभिन्नामनाकुलतां प्रति खेदो नास्ति। संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि निश्चयेनाभेदरूपेण परिणममानं केवलज्ञानमेव

केवलज्ञानके [**खेदः**] आकुलभाव [**न भणितः**] नहीं कहा है [**यस्मात्**] क्योंकि [**घातीनि**] ज्ञानावरणादि चार घातियाकर्म [**क्षयं**] नाशको [**जातानि**] प्राप्त हुए हैं। **भावार्थ**—मोहकर्मके उदयसे यह आत्मा मतवालासा होकर असत्य वस्तुमें सत् बुद्धिको धारता हुआ ज्ञेयपदार्थोंमें परिणमन करता है, जिससे कि वे घातियाकर्म इसे इन्द्रियोंके आधीन करके पदार्थके जाननेरूप परिणमाते २ खेदके कारण होतेहैं। इससे सिद्ध हुआ कि घातिया कर्मोंके होनेपर आत्माके जो अशुद्ध ज्ञानपरिणाम हैं वे खेदके कारण हैं अर्थात् ज्ञानको खेदके कारण घातियाकर्म हैं। परंतु जहां इन घातिया कर्मोंका अभाव है उस केवलज्ञानावस्थामें खेद नहीं होसक्ता, क्योंकि "कारणके अभावसे कार्यकाभी अभाव होजाता है" ऐसा न्याय है। एकही समय त्रिकालवर्ती सब ज्ञेयोंको जाननेमें समर्थ चित्रविचित्र भीतकी तरह अनन्तस्वरूप परिणाम है वह केवलज्ञानपरिणाम है। इस स्वाधीनपरिणाममें खेदके उत्पन्न होनेकी संभावना कैसे होसकती है। ज्ञानस्वभावके घातनेवाले कर्मोंका नाश होनेसे ज्ञानकी अनंतशक्ति प्रगट

अथ पुनरपि केवलस्य सुखस्वरूपतां निरूपयन्नुपसंहरति;—

णाणं अत्थंतगदं लोगालोगेसु वित्थडा दिट्ठी ।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं ॥ ६१ ॥

ज्ञानमर्थान्तगतं लोकालोकेषु विस्तृता दृष्टिः ।
नष्टमनिष्टं सर्वमिष्टं पुनर्यत्तु तल्लब्धम् ॥ ६१ ॥

स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं हि सौख्यं । आत्मनो हि दृशिज्ञप्ती स्वभावः तयोर्लोकाऽलोकविस्तृतत्वेनार्थान्तगतत्वेन च स्वच्छन्दविजृम्भितत्वाद्भवति प्रतिघाताभावः । ततस्तद्धेतुकं सौख्यमभेदविवक्षायां केवलस्य स्वरूपं । किंच केवलं सौख्यमेव, सर्वानिष्टप्रहाणात् सर्वेष्टोपलम्भाच्च । यतो हि केवलावस्थायां सुखप्रतिपत्तिविपक्षभूतस्य दुःखस्य साधनतामुपगतमज्ञानमखिलमेव प्रणश्यति, सुखस्य साधनीभूतं तु परिपूर्णं ज्ञानमुपजायेत । ततः केवलमेव सौख्यमित्यलं प्रपञ्चेन ॥ ६१ ॥

सुखं भण्यते । ततः स्थितमेतत्केवलज्ञानाद्भिन्नं सुखं नास्ति । तत एव केवलज्ञाने खेदो न संभवतीति ॥ ६० ॥ अथ पुनरपि केवलज्ञानस्य सुखस्वरूपतां प्रकारान्तरेण दृढयति;—**णाणं अत्थंतगयं** ज्ञानं केवलज्ञानमर्थान्तगतं ज्ञेयान्तप्राप्तं **लोयालोयेसु वित्थडा दिट्ठी** लोकालोकयोर्विस्तृता दृष्टिः केवलदर्शनं । **णट्ठमणिट्ठं सव्वं** अनिष्टं दुःखमज्ञानं च तत्सर्वं नष्टं **इट्ठं पुण जं हि तं लद्धं** इष्टं पुनर्यद् ज्ञानं सुखं च हि स्फुटं तत्सर्वं लब्धमिति । तद्यथा—स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकं सुखं भवति । स्वभावो हि केवलज्ञानदर्शनद्वयं, तयोः प्रतिघात आवरणद्वयं तस्याभावः केवलिनां, ततः कारणात्स्वभावप्रतिघाताभावहेतुकमक्षयानन्तसुखं भवति । यतश्च परमानन्दैकलक्षणसुखप्रतिपक्षभूतमाकुलत्वोत्पादकमनिष्टं दुःखमज्ञानं च नष्टं, यतश्च पूर्वोक्त-

---

होती है उससे समस्त लोकालोकके आकारको व्याप्त कर कूटस्थ अवस्थासे अत्यंत निश्चल तथा आत्मासे अभिन्न अनन्तसुखरूप अनाकुलता सहित केवलज्ञानही सुख है, ज्ञान और सुखमें कोई भेद नहीं है । इसकारण सब तरहसे निश्चयकर केवलज्ञानको ही सुख मानना योग्य है ॥ ६० ॥ आगे फिरभी केवल ज्ञानको सुखरूप दिखाते हैं;— [**अर्थान्तगतं**] पदार्थोंके पारको प्राप्त हुआ [**ज्ञानं**] केवलज्ञान है [**तु**] तथा [**लोकालोकेषु**] लोक और अलोकमें [**विस्तृता**] फैला हुआ [**दृष्टिः**] केवलदर्शन है जब [**सर्वं अनिष्टं**] सब दुःखदायक अज्ञान [**नष्टं**] नाश हुआ [**पुनः**] तो फिर [**यत्**] जो [**इष्टं**] सुखका देनेवाला ज्ञान है [**तत्**] वह [**लब्धं**] प्राप्त हुआ ही । **भावार्थ**—जो आत्माके स्वभावका घात करता है उसे दुःख कहते हैं, और उस घातनेवालेका नाश वह सुख है । आत्माके स्वभाव ज्ञान और दर्शन हैं । सो जबतक इन ज्ञान दर्शनरूप स्वभावोंके घातनेवाले आवरण रहतेहैं तबतक सब जानने और देखनेकी स्वच्छन्दता नहीं रहती यही आत्माके दुःख है । घातक आवरणके नाश

अथ केवलिनामेव पारमार्थिकसुखमिति श्रद्धापयति;—

ण हि सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमंति विगदघादीणं ।
सुणिऊण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति ॥ ६२ ॥

न हि श्रद्दधति सौख्यं सुखेषु परममिति विगतघातिनाम् ।
श्रुत्वा ते अभव्या भव्या वा तत्प्रतीच्छन्ति ॥ ६२ ॥

इह खलु स्वभावप्रतिघातादाकुलत्वाच्च मोहनीयादिकर्मजालशालिनां सुखाभासेप्यपारमार्थिकी सुखमिति रूढिः । केवलिनां तु भगवतां प्रक्षीणघातिकर्मणां स्वभावप्रतिघाताभावादनाकुलत्वाच्च यथोदितस्य हेतोर्लक्षणस्य च सद्भावात्पारमार्थिकं सुखमिति श्रद्धेयं ।

लक्षणसुखाविनाभूतं त्रैलोक्योदरविवरवर्तिसमस्तपदार्थयुगपत्प्रकाशकमिष्टं ज्ञानं च लब्धं, ततो ज्ञायते केवलिनां ज्ञानमेव सुखमित्यभिप्रायः ॥६१॥ अथ पारमार्थिकसुखं केवलिनामेव, संसारिणां ये मन्यन्ते तेऽभव्या इति निरूपयति;—**णो सद्दहंति** नैव श्रद्दधति न मन्यन्ते । किं । **सोक्खं** निर्विकारपरमाह्लादैकसुखं । कथंभूतं न मन्यन्ते । **सुहेसु परमंत्ति** सुखेषु मध्ये तदेव परमसुखं । केषां संबन्धि यत्सुखं । **विगदघादीणं** विगतघातिकर्मणां केवलिनां । किं कृत्वापि न मन्यन्ते । **सुणिदूण** "जादं सयं समत्तं" इत्यादिपूर्वोक्तगाथात्रयकथितप्रकारेण श्रुत्वापि **ते अभव्वा** ते अभव्याः ते हि जीवा वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्त्यभावादभव्या भण्यन्ते, न पुनः सर्वथा **भव्वा वा तं पडिच्छंति** ये वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्तिपरिणतास्तिष्ठन्ति ते तदनन्तसुखमिदानीं मन्यन्ते । ये च सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्त्या भाविकाले परिणमिष्यन्ति ते च दूरभव्या अग्रे श्रद्धानं कुर्युरिति । अयमत्रार्थः—मारणार्थे

होनेपर ज्ञान दर्शनसे सबका जानना और देखना होताहै । यही स्वच्छंदतासे निराबाध (निराकुल) सुख है । इसलिये अनन्तज्ञान दर्शन सुखके कारण हैं । और अभेदकी विवक्षासे (कहनेकी इच्छासे) जो केवलज्ञान है वही आत्मीकसुख है, क्योंकि केवलज्ञान सुखस्वरूपही है । आत्माके दुःखका कारण अनिष्टस्वरूप अज्ञान है, वह तो केवलअवस्थामें नाशको प्राप्त होताहै और सुखका कारण इष्टस्वरूप जो सबका जाननारूप ज्ञान है वह प्रगट होता है । सारांश यह है कि केवलज्ञानही सुख है अधिक कहनेसे क्या ? ॥ ६१ ॥ अब केवलीकेही पारमार्थिक अतीन्द्रियसुख है ऐसा निश्चय करते हैं;— **[विगतघातिनां]** जिनके घातिया कर्मोंका क्षय होगया है ऐसे केवली भगवानके **[सुखेषु परमं सौख्यं]** अन्य सबसुखोंमें उत्कृष्ट अतींद्रिय सुख है **[इति श्रुत्वा]** ऐसा सुनकर **[ये]** जो कोई पुरुष **[न हि श्रद्दधति]** विश्वास नहीं करते **[ते]** वे पुरुष **[अभव्याः]** सम्यक्त्वरूपपरिणतिसे रहित अभव्य हैं । **[वा]** और जो पुरुष **[तत्]** केवलीके उस अतींद्रिय सुखको **[प्रतीच्छन्ति]** मानते हैं **['ते' भव्याः]** वे भव्य हैं अर्थात् सम्यक्त्वपरिणामकर सहित हैं । **भावार्थ—**

न किलैवं येषां श्रद्धानमस्ति ते खलु मोक्षसुखसुधापानदूरवर्तिनो मृगतृष्णाम्भोभारमेवाभव्याः पश्यन्ति । ये पुनरिदमिदानीमेव वचः प्रतीच्छन्ति ते शिवश्रियो भाजनं समासन्नभव्याः भवन्ति । ये तु पुरा प्रतीच्छन्ति ते तु दूरभव्या इति ॥ ६२ ॥

अथ परोक्षज्ञानिनामपारमार्थिकमिन्द्रियसुखं विचारयति;—

मणुआऽसुरामरिंदा अहिदुआ इंदिएहिं सहजेहिं ।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु ॥ ६३ ॥

मनुजासुरामरेन्द्राः अभिद्रुता इन्द्रियैः सहजैः ।
असहमानास्तद्दुःखं रमन्ते विषयेषु रम्येषु ॥ ६३ ॥

अमीषां प्राणिनां हि प्रत्यक्षज्ञानाभावात्परोक्षज्ञानमुपसर्पतां तत्सामग्रीभूतेषु स्वरसत एवेन्द्रियेषु मैत्री प्रवर्तते । अथ तेषां तेषु मैत्रीमुपगतानामुदीर्णमहामोहकालानलकवलितानां तप्तायोगोलानामिवात्यन्तमुपात्ततृष्णानां तद्दुःखवेगमसहमानानां व्याधिसात्म्यता-

---

तलवरगृहीततस्करस्य मरणमिव यद्यपीन्द्रियसुखमिष्टं न भवति, तथापि तलवरस्थानीयचारित्रमोहोदयेन मोहितः सन्निरुपरागस्वात्मोत्थसुखमलभमानः सन् सरागसम्यग्दृष्टिरात्मनिन्दादिपरिणतो हेयरूपेण तदनुभवति । ये पुनर्वीतरागसम्यग्दृष्टयः शुद्धोपयोगिनस्तेषां, मत्स्यानां स्थलगमनमिवाग्निप्रवेश इव वा निर्विकार शुद्धात्मसुखाच्च्यवनमपि दुःखं प्रतिभाति । तथा चोक्तं—"समसुखशीलितमनसां च्यवनमपि द्वेषमेति किमु कामाः । स्थलमपि दहति झषाणां किमङ्ग पुनरङ्गमङ्गाराः" ॥ ६२ ॥ एवमभेदनयेन केवलज्ञानमेव सुखं भण्यते इति कथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन चतुर्थस्थलं गतं । अथ संसारिणामिन्द्रियज्ञानसाधकमिन्द्रियसुखं विचारयति;— **मणुआऽसुरामरिंदा** मनुजाऽसुरामरेन्द्राः । कथंभूताः । **अहिदुदा इंदियेहिं सहजेहिं** अभिधृताः कदर्थिताः दुःखिताः । कैः । इन्द्रियैः सहजैः **असहंता तं दुक्खं** तद्दुःखोद्रेकमसहमानाः सन्तः **रमंति विसएसु रम्मेसु** रमन्ति विषयेषु रम्याभासेषु इति । अथ वि-

---

सम्यग्दृष्टि जीव संसारके सुखोंको सुखाभास समझते हैं और इंद्रियसुखोंको रूढीसे सुख मानते हैं । परंतु यथार्थमें केवलीके सुखकोही सुख मानते हैं, क्योंकि उनके घातियाकर्मोंके नाश होनेसे अनाकुलता प्रगट होती है । और आकुलतारहित सुखही पारमार्थिक (निश्चयसे) सुख है । जो अज्ञानी आत्मीक सुखके आस्वाद लेनेवाले नहीं हैं वे मृगतृष्णाकी तरह अजलमें जलबुद्धि करके इंद्रियाधीन सुखको सुख मानते हैं ॥ ६२ ॥ अब परोक्षज्ञानियोंके इंद्रियाधीन सुख है परमार्थसुख नहीं है ऐसा कहते हैं;—[**सहजैः**] स्वाभाविक व्याधिरूप [**इन्द्रियैः**] इंद्रियोंसे [**अभिद्रुताः**] पीडित [**मनुजाऽसुरामरेन्द्राः**] मनुष्य, असुर (पातालवासीदेव) और देवोंके (स्वर्गवासीदेवोंके) इन्द्र अर्थात् स्वामी [**तत् दुःखं**] उस इन्द्रियजनित दुःखको [**असहमानाः**] सहन करनेमें असमर्थ होते हुए [**रम्येषु विषयेषु**] रमणीक इंद्रियज-

मुपगतेषु रम्येषु विषयेषु रतिरुपजायते । ततो व्याधिस्थानीयत्वादिन्द्रियाणां व्याधिसा-म्यसमत्वाद्विषयाणां च न छद्मस्थानां पारमार्थिकं सौख्यम् ॥ ६३ ॥

अथ यावदिन्द्रियाणि तावत्स्वभावादेव दुःखमेवं वितर्कयति;—

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं ।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं ॥ ६४ ॥

येषां विषयेषु रतिस्तेषां दुःखं विजानीहि स्वाभावम् ।
यदि तन्न हि स्वभावो व्यापारो नास्ति विषयार्थम् ॥ ६४ ॥

येषां जीवदवस्थानि हतकानीन्द्रियाणि, न नाम तेषामुपाधिप्रत्ययं दुःखं । किन्तु स्वाभाविकमेव, विषयेषु रतेरवलोकनात् । अवलोक्यते हि तेषां स्तम्बेरमस्य करेणुकुट्टनीगात्रस्पर्श इव, सफरस्य बडिशामिषस्वाद इव, इन्दिरस्य संकोचसंमुखारविन्दामोद इव, पतङ्गस्य प्रदीपार्चीरूप इव, कुरङ्गस्य मृगयुगेयस्वर इव, दुर्निवारेन्द्रियवेदनावशीकृतानामासन्ननिपातेष्वपि विषयेष्वभिपातः । यदि पुनर्न तेषां दुःखं स्वाभाविकमभ्युपगम्येत तदोपशान्तशीतज्वरस्य संस्वेदनमिव, प्रहीणदाहज्वरस्यारनालपरिषेव इव, निवृत्तनेत्रसंरम्भस्य

स्तरः—मनुजादयो जीवा अमूर्तातीन्द्रियज्ञानसुखास्वादमलभमानाः सन्तः मूर्तेन्द्रियज्ञानसुखनिमित्तं पञ्चेन्द्रियेषु मैत्रीं कुर्वन्ति । ततश्च तप्तलोहगोलकानामुदकाकर्षणमिव विषयेषु तीव्रतृष्णा जायते । तां तृष्णामसहमाना विषयाननुभवन्ति इति । ततो ज्ञायते पञ्चेन्द्रियाणि व्याधिस्थानीयानि, विषयाश्च तत्प्रतीकारौषधस्थानीया इति संसारिणां वास्तवं सुखं नास्ति ॥ ६३ ॥ अथ यावदिन्द्रियव्यापारस्तावद्दुःखमेवेति कथयति;—**जेसिं विसयेसु रई** येषां निर्विषयातीन्द्रियपरमात्मस्वरूपविपरीतेषु विषयेषु रतिः **तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं** तेषां बहिर्मुखजीवानां निजशुद्धात्मद्रव्यसंवित्तिसमुत्पन्ननिरुपाधिपारमार्थिकसुखविपरीतं स्वभावेनैव दुःखमस्तीति विजानीहि । कस्मादिति चेत् । पञ्चेन्द्रियविषयेषु रतेरवलोकनात् **जइ तं ण हि सब्भावं वा**

नित सुखोंमें [**रमन्ति**] क्रीडा करते हैं । **भावार्थ**—संसारी जीवोंके प्रत्यक्ष ज्ञानके अभावसे परोक्षज्ञान है । जो कि इंद्रियोंके आधीन है और तप्त लोहेके गोलेके समान महामोहरूप कालाग्निसे ग्रसित तीव्रतृष्णासहित है । जैसे व्याधिसे पीड़ित होकर रोगी औषधि सेवन करता है उसीप्रकार इंद्रियरूप व्याधिसे दुःखी होकर यह जीव इन्द्रियोंके स्पर्शरसादि विषयरूप औषधका सेवन करता है। इससे सिद्ध हुआ कि परोक्षज्ञानी अत्यंत दुःखी हैं, उनके आत्मीक निश्चयसुख नहीं है ॥ ६३ ॥ आगे कहते हैं कि जबतक इन्द्रियां हैं तबतक स्वाभाविक दुःख ही है;—[**येषां**] जिनजीवोंकी [**विषयेषु**] इंद्रियविषयोंमें [**रतिः**] प्रीति है [**तेषां**] उनके [**दुःखं**] दुःख [**स्वाभावं**] स्वभावसे ही [**विजानीहि**] जानो । क्योंकि [**यदि**] जो [**तत्**] वह इन्द्रियजन्य दुःख [**हि**] निश्चयसे [**स्वभावं**] सहजहीसे उत्पन्न हुआ

च वटाचूर्णावचूर्णनमिव, विनष्टकर्णशूलस्य वस्तमूत्रपूरणमिव, रूढव्रणस्यालेपनदानमिव, विषयव्यापारो न दृश्येत । दृश्यते चासौ । ततः स्वभावभूतदुःखयोगिन एव जीवदिन्द्रियाः परोक्षज्ञानिनः ॥ ६४ ॥

अथ मुक्तात्मसुखप्रसिद्धये शरीरस्य सुखसाधनतां प्रविहन्ति;—

पप्पा इट्ठे विसये फासेहिं समस्सिदे सहावेण ।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो ॥ ६५ ॥

प्राप्येष्टान् विषयान् स्पर्शैः समाश्रितान् स्वभावेन ।
परिणममान आत्मा स्वयमेव सुखं न भवति देहः ॥ ६५ ॥

अस्य खल्वात्मनः सशरीरावस्थायामपि न शरीरं सुखसाधनतामापद्यमानं पश्यामः,

---

तद्दुःखं स्वभावेन नास्ति हि स्फुटं **वावारो णत्थि विसयत्थं** तर्हि विषयार्थं व्यापारो नास्ति न घटते । व्याधिस्थानामौषधेष्विव विषयार्थं व्यापारो दृश्यते चेत्तत एव ज्ञायते दुःखमस्तीत्यभिप्रायः ॥ ६४ ॥ एवं परमार्थेनेन्द्रियसुखस्य दुःखस्थापनार्थं गाथाद्वयं गतम् । अथ मु-

---

[**न**] न होता तो [**विषयार्थं**] विषयोंके सेवनेके लिये [**व्यापारः**] इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति भी [**नास्ति**] नहीं होती । **भावार्थ**—जिन जीवोंके इंद्रियां जीवित हैं उनके अन्य (दूसरी) उपाधियोंसे कोई दुःख नहीं है सहजसे येही महान् दुःख हैं, क्योंकि इंद्रियां अपने विषयोंको चाहती हैं । और विषयोंकी चांहसे आत्माको दुःख उत्पन्न होता प्रत्यक्ष देखाजाता है । जैसे—हाथी स्पर्शन इंद्रियके विषयसे पीड़ित होकर कुट्टनी (कपटनी) हथिनीके वशमें पड़के पकड़ा जाता है । रसना इंद्रियके विषयसे पीड़ित होकर मछली बडिश (लोहेका कांटा) के मांसके चाखनेके लोभसे प्राण खोदेती है । भौंरा घ्राण इंद्रियके विषयसे सताया हुवा संकोच हुए कमलमें गंधके लोभसे कैद होकर दुःखी होता है । पतङ्गजीव नेत्रइंद्रियके विषयसे पीड़ित हुआ दीपकमें जलमरता है । और हरिन श्रोत्र इंद्रियके विषयवश वीणाकी आवाजके वशीभूत हो व्याधाके हाथसे पकड़ा जाता है । यदि इंद्रियां दुःखरूप न होतीं तो विषयकी इच्छा भी नहीं होती, क्योंकि शीतज्वरके दूर होनेपर अग्निके सेककी आवश्यकता नहीं रहती, दाहज्वरके न रहनेपर कांजीसे सेचन व्यर्थ होता है, इसीप्रकार नेत्रपीडाकी निवृत्ति होनेपर खपरियाके संग मिश्री आदि औषध, कर्णशूलरोगके नाश होनेपर बकरेका मूत्र आदि, व्रण (घाव) रोगके अच्छे होनेपर आलेपन (पट्टी) आदि औषधियां निष्प्रयोजन होती हैं, उसीप्रकार जो इंद्रियां दुःखरूप न होवें तो विषयोंकी चांह भी न होवे । परंतु इच्छा देखी जाती है, जोकि रोगके समान है और उसकी निवृत्तिकेलिये विषयभोग औषध तुल्य हैं । सारांश यह हुआ कि परोक्षज्ञानी इंद्रियाधीन स्वभावसे ही दुःखी हैं ॥ ६४ ॥ अब कहते हैं कि मुक्तात्माओंको शरीरके बिना भी सुख है इसलिये शरीर सुखका

यतस्तदापि पीनोन्मत्तकरसैरिव प्रकृष्टमोहवशवर्तिभिरिन्द्रियैरिमेऽस्माकमिष्टा इति क्रमेण विषयानभिपतद्भिरसमीचीनवृत्तितामनुभवन्नुपरुद्धशक्तिसारेणापि ज्ञानदर्शनवीर्यात्मकेन निश्चयकारणतामुपागतेन स्वभावेन परिणममानः स्वयमेवायमात्मा सुखतामापद्यते। शरीरं त्वचेतनत्वादेव सुखत्वपरिणतेर्निश्चयकारणतामनुपागच्छन्न जातु सुखतामुपढौकत इति ॥६५॥

अथैतदेव दृढयति;—

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणइ सग्गे वा ।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा ॥ ६६ ॥

एकान्तेन हि देहः सुखं न देहिनः करोति स्वर्गे वा ।
विषयवशेन तु सौख्यं दुःखं वा भवति स्वयमात्मा ॥ ६६ ॥

अयमत्र सिद्धान्तो यद्दिव्यवैक्रियिकत्वेपि शरीरं न खलु सुखाय कल्प्येतेतीष्टानामनिष्टानां वा विषयाणां वशेन सुखं वा दुःखं वा स्वयमेवात्मा स्यात् ॥ ६६ ॥

त्कात्मनां शरीराभावेपि सुखमस्तीति ज्ञापनार्थं शरीरं सुखकारणं न स्यादिति व्यक्तीकरोति;— **पप्पा** प्राप्य । कान् । **इट्ठे विसये** इष्टपञ्चेन्द्रियविषयान् । कथंभूतान् । **फासेहिं समस्सिदे** स्पर्शनादीन्द्रियरहितशुद्धात्मतत्वविलक्षणैः स्पर्शनादिभिरिन्द्रियैः समाश्रितान् सम्यक् प्राप्यान् ग्राह्यान्, इत्थंभूतान् विषयान् प्राप्य । स कः । **अप्पा** आत्मा कर्ता । किंविशिष्टः । **सहावेण परिणममाणो** अनन्तसुखोपादानभूतशुद्धात्मस्वभावविपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन परिणममानः । इत्थंभूतः सन् **सयमेव सुहं** स्वयमेवेन्द्रियसुखं भवति परिणमति । **ण हवदि देहो** देहः पुनरचेतनत्वात्सुखं न भवतीति । अयमत्रार्थः—कर्मावृतसंसारिजीवानां यदिन्द्रियसुखं तत्रापि जीव उपादानकारणं न च देहः, देहकर्मरहितमुक्तात्मनां पुनर्यदनन्तातीन्द्रियसुखं तत्र विशेषेणात्मैव कारणमिति ॥ ६५ ॥ अथ मनुष्यशरीरं मा भवतु, देवशरीरं

कारण नहीं है;—[**स्पर्शैः**] स्पर्शनादि पांच इंद्रियोंकरके [**समाश्रितान्**] भलेप्रकार आश्रित [**इष्टान् विषयान्**] प्यारे भोगोंको [**प्राप्य**] पाकर [**स्वभावेन**] अशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावसे [**परिणममानः आत्मा**] परिणमन करता हुआ आत्मा [**स्वयमेव**] आपही [**सुखं**] इंद्रियसुखस्वरूप [**भवति**] है [**देहः**] शरीर [**सुखं**] सुखरूप [**न**] नहीं है । **भावार्थ**—इस आत्माके शरीर अवस्थाके होते भी हम यह नहीं देखते हैं कि सुखका कारण शरीर है । क्योंकि यह आत्मा मोह प्रवृत्तिसे मदोन्मत्त इंद्रियोंके वशमें पड़कर निंदनीय अवस्थाको धारण करता हुआ अशुद्ध ज्ञान दर्शन वीर्यस्वभावरूप परिणमन करता है । और उन विषयोंमें आपही सुख मानलेता है । शरीर जड है इसलिये सुखरूप कार्यका उपादान कारण अचेतन शरीर कभी नहीं होसकता । सारांश यह हुआ कि संसार अवस्थामें भी शरीर सुखका कारण नहीं है, आत्मा ही सुखका कारण है ॥ ६५ ॥ आगे "संसार अवस्थामें भी

अथात्मनः स्वयमेव सुखपरिणामशक्तियोगित्वाद्विषयाणामकिञ्चित्करत्वं द्योतयति;—

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कादव्वं ।
तध सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति ॥ ६७ ॥

तिमिरहरा यदि दृष्टिर्जनस्य दीपेन नास्ति कर्तव्यम् ।
तथा सौख्यं स्वयमात्मा विषयाः किं तत्र कुर्वन्ति ॥ ६७ ॥

यथा हि केषांचिन्नक्तंचराणां चक्षुषः स्वयमेव तिमिरविकरणशक्तियोगित्वान्न तदपाकरणप्रवणेन प्रदीपप्रकाशादिना कार्यं, एवमस्यात्मनः संसारे मुक्तौ वा स्वयमेव सुख-

---

दिव्यं तत्किल सुखकारणं भविष्यतीत्याशङ्कां निराकरोति;—**एगंतेण हि देहो सुहण्ण देहिस्स कुणदि** एकान्तेन हि स्फुटं देहः कर्ता सुखं न करोति । कस्य । देहिनः संसारिजीवस्य । क । **सग्गे वा** आस्तां तावन्मनुष्याणां मनुष्यदेहः सुखं न करोति, स्वर्गे वा यासौ दिव्यो देवदेहः सोप्युपचारं विहाय सुखं न करोति । **विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा** किन्तु निश्चयेन निर्विषयामूर्तस्वाभाविकसदानन्दैकसुखस्वभावोपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशाद्विषयाधीनत्वेन परिणम्य सांसारिकसुखं दुःखं वा स्वयमात्मैव भवति, न च देह इत्यभिप्रायः ॥ ६६ ॥ एवं मुक्तात्मनां देहाभावेपि सुखमस्तीति परिज्ञानार्थं संसारिणामपि देहः सुखकारणं न भवतीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथात्मनः स्वयमेवसुखस्वभावत्वान्निश्चयेन यथा देहः सुखकारणं न भवति तथा विषया अपीति प्रतिपादयति;—**जइ** यदि **दिट्ठी** नक्तंचरजनस्य दृष्टिः **तिमिरहरा** अन्धकारहरा भवति **जणस्स** जनस्य **दीवेण णत्थि का-**

आत्मा ही सुखका कारण है" इसी बातको फिर दृढ करते हैं;—**[एकान्तेन]** सब तरहसे **[हि]** निश्चयकर **[देहः]** शरीर **[देहिनः]** देहधारी आत्माको **[स्वर्गे वा]** स्वर्गमें भी **[सुखं]** सुखरूप **[न करोति]** नहीं करता **[तु]** किंतु **[विषयवशेन]** विषयोंके आधीन होकर **[आत्मा स्वयं]** यह आत्मा आपही **[सौख्यं वा दुःखं]** सुखरूप अथवा दुःखरूप **[भवति]** होता है । **भावार्थ**—सब गतियोंमें स्वर्गगति उत्कृष्ट है परंतु उसमें भी उत्तम वैक्रियिकशरीर सुखका कारण नहीं है, औरोंकी तो बात क्या है । क्योंकि इस आत्माका एक ऐसा स्वभाव है कि वह इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके वश होकर आपही सुख दुःखकी कल्पना कर लेता है । यथार्थमें शरीर सुखदुःखका कारण नहीं है ॥ ६६ ॥ अब कहते हैं कि आत्माका स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियोंके विषयभी सुखके कारण नहीं हैं;—**[यदि]** जो **[जनस्य]** चौरआदि जीवकी **[दृष्टिः]** देखनेकी शक्ति **[तिमिरहरा]** अंधकारके दूर करनेवाली हो **[तदा]** तो उसे **[दीपेन]** दीपकसे **[कर्तव्यं]** कुछ कार्य करना **[नास्ति]** नहीं है **[तथा]** उसीप्रकार **[आत्मा]** जीव

तथा परिणममानस्य सुखसाधनधिया अबुधैर्मुधाध्यास्यमाना अपि विषयाः किं हि नाम कुर्युः ॥ ६७ ॥

अथात्मनः सुखस्वभावत्वं दृष्टान्तेन दृढयति;—

सयमेव जधादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि ।
सिद्धोवि तधा णाणं सुहं च लोगे तधा देवो ॥ ६८ ॥

स्वयमेव यथादित्यस्तेजः उष्णश्च देवता नभसि ।
सिद्धोपि तथा ज्ञानं सुखं च लोके तथा देवः ॥ ६८ ॥

यथा खलु नभसि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव प्रभाकरः प्रभूतप्रभाभारभास्वरस्वरूपविकस्वरप्रकाशशालितया तेजः । यथा च कादाचित्कौष्ण्यपरिणतायःपिण्डवन्नित्यमेवौष्ण्यपरिणामापन्नत्वादुष्णः । यथा च देवगतिनाम कर्मोदयानुवृत्तिवशवर्तिस्वभावतया

यच्च दीपेन नास्ति कर्तव्यं तस्य प्रदीपादीनां यथा प्रयोजनं नास्ति **तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति** तथा निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति न किमपीति भावः ॥ ६७ ॥ अथात्मनः सुखस्वभावत्वं ज्ञानस्वभावत्वं च पुनरपि दृष्टान्तेन दृढयति;—**सयमेव जहाइच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि** कारणान्तरं निरपेक्ष्य स्वयमेव यथादित्यः स्वपरप्रकाशरूपं तेजो भवति, तथैव च स्वयमेवोष्णो भवति, तथा चाज्ञानिजनानां देवता भवति । क्व स्थितः । नभसि आकाशे **सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोये** सिद्धोपि भगवांस्तथैव कारणान्तरं

[**स्वयं**] आपही [**सौख्यं**] सुखस्वरूप है [**तत्र**] वहां [**विषयाः**] इंद्रियोंके विषय [**किं कुर्वन्ति**] क्या करते हैं? कुछभी नहीं। **भावार्थ**—जैसे सिंह, सर्प, राक्षस, चोर आदि रात्रिमें विचरनेवाले जीव अंधेरेमें भी पदार्थोंको अच्छीतरह देखसकते हैं, उनकी दृष्टि अंधकारमें भी प्रकाश करती है, अन्य दीपक आदि प्रकाशकरनेवाले सहायक कारणोंकी अपेक्षा नहीं रखती; इसी प्रकार आत्मा आपही सुखस्वभाववाला है, उसके सुखानुभवकरनेमें विषयवगैरः कारण नहीं होसकते। विषयोंसे सुख अज्ञानीजनोंने व्यर्थ मानरखा है; यह मानना मोहका विलास है, मिथ्या भ्रम है। इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि जैसे शरीर सुखका कारण नहीं है वैसे इंद्रियोंके विषय भी सुखके कारण नहीं हैं ॥ ६७ ॥ अब आत्माके ज्ञान–सुख दृष्टान्तसे दृढ करते हैं;–[**यथा**] जैसे [**नभसि**] आकाशमें [**आदित्यः**] सूर्य [**स्वयमेव**] आपही अन्यकारणोंके विना [**तेजः**] बहुत प्रभाके समूहसे प्रकाशमान है, [**उष्णः**] तपायमान लोहपिंडकी तरह हमेशा गरम है [**च**] और [**देवता**] देवगति नामकर्मके उदयसे देवपदवीको धारण करनेवाला है। [**तथा**] वैसे ही [**लोके**] इस जगतमें [**सिद्ध अपि**] शुद्धात्मा भी [**ज्ञानं**]

देवः । तथैव लोके कारणान्तरमनपेक्ष्यैव स्वयमेव भगवानात्मापि स्वपरप्रकाशनसमर्थनिर्वितथानन्तशक्तिसहजसंवेदनतादात्म्यात् ज्ञानं, तथैव चात्मतृप्तिसमुपजातपरिनिर्वृत्तताना कुलत्वसुस्थितत्वात् सौख्यं, तथैव चासन्नात्मतत्त्वोपलम्भलब्धवर्णजनमानसशिलास्तम्भोत्कीर्णसमुदीर्णद्युतिस्तुतियोगैर्दिव्यात्मस्वरूपत्वाद्देवः । ततोऽस्यात्मनः सुखसाधनाभासैर्विषयैः पर्याप्तम् ॥६८॥ इति आनन्दप्रपञ्चः । इतः शुभपरिणामाधिकारप्रारम्भः ।

निरपेक्ष्य स्वभावेनैव स्वपरप्रकाशकं केवलज्ञानं, तथैव परमतृप्तिरूपमनाकुलत्वलक्षणं सुखं । क । **लोगे** जगति **तहा देवो** निजशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्नसुन्दरानन्दस्यन्दिसुखामृतपानपिपासितानां गणधरदेवादिपरमयोगिनां देवेन्द्रादीनां चासन्नभव्यानां मनसि निरन्तरं परमाराध्यं, तथैवानन्तज्ञानादिगुणस्तवनेन स्तुत्यं च यद्दिव्यमात्मस्वरूपं तत्स्वभावत्वात्तथैव देवश्चेति । ततो ज्ञायते मुक्तात्मनां विषयैरपि प्रयोजनं नास्तीति ॥ ६८ ॥ एवं स्वभावेनैव सुखस्वभावत्वाद्विषया अपि मुक्तात्मनां सुखकारणं न भवन्तीतिकथनरूपेण गाथाद्वयं गतम् । अथेदानीं श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवाः पूर्वोक्तलक्षणानन्तसुखाधारभूतं सर्वज्ञं वस्तुस्तवेन नमस्कुर्वन्ति;—

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं ।
तिहुवणपहाणदइयं माहप्पं जस्स सो अरिहो ॥ १ ॥

तेजो दिट्ठी णाणं इड्ढी सोक्खं तहेव ईसरियं तिहुवणपहाणदइयं तेजः-प्रभामण्डलं, जगत्त्रयकालत्रयवस्तुगतयुगपत्सामान्यास्तित्वग्राहकं केवलदर्शनं, तथैव समस्तविशेषास्तित्वग्राहकं केवलज्ञानं, ऋद्धिशब्देन समवसरणादिलक्षणा विभूतिः, सुखशब्देनाव्याबाधानन्तसुखं, तत्पदाभिलाषेण इन्द्रादयोऽपि भृत्यत्वं कुर्वन्तीत्येवं लक्षणमैश्वर्यं, त्रिभुवनाधीशानामपि वल्लभत्वं दैवं भण्यते **माहप्पं जस्स सो अरिहो** इत्थंभूतं माहात्म्यं यस्य सोऽर्हन् भण्यते । इति वस्तुस्तवनरूपेण नमस्कारं कृतवन्तः ॥ १ ॥ अथ तस्यैव भगवतः सिद्धावस्थायां गुणस्तवनरूपेण नमस्कारं कुर्वन्ति;—

ज्ञानस्वरूप है [**सुखं**] सुखस्वरूप है [**च**] और [**देवः**] देव अर्थात् पूज्य है । **भावार्थ**—जिस प्रकार सूर्य अपने सहज स्वभावसे ही अन्य कारणोंके विना तेजवान् है, उष्ण है और देवता है; उसीप्रकार यह भगवान् आत्मा अन्यकारणोंके विना सहजसे सिद्ध अपने—परके प्रकाशकरनेवाले अनंत शक्तिमय चैतन्यप्रकाशसे ज्ञानस्वरूप है, अपनी तृप्तिरूप अनाकुलस्थिरतासे सुखरूप है और इसीप्रकार आत्माके रसके आस्वादी कोईएक सम्यग्दृष्टि निकटभव्य चतुर जन हैं उनके चित्तरूपी पत्थरके खंभ (थंभे) में सिद्धस्वरूप चित्रित होनेसे पूज्य तथा स्तुतियोग्य देव है । सारांश—आत्मा स्वभावसे ही ज्ञान सुख और पूज्य इन गुणोंकर सहित है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि सुखके कारण जो इंद्रियोंके विषय कहे जाते हैं उनसे आत्माको सुख नहीं होता, वह आपही सुखस्वभावरूप है ॥ ६८ ॥ इस प्रकार अतीन्द्रियसुखाधिकार पूर्ण हुआ ।

अथेन्द्रियसुखस्वरूपविचारमुपक्रममाणस्तत्साधनस्वरूपमुपन्यस्यति;—

तं गुणदो अधिगदरं अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं ।
अपुणब्भावणिबद्धं पणमामि पुणो पुणो सिद्धं ॥ २ ॥

पणमामि नमस्करोमि **पुणो पुणो** पुनः पुनः । कं । **तं सिद्धं** परमागमप्रसिद्धं सिद्धं। कथंभूतं । **गुणदो अधिगदरं** अव्याबाधानन्तसुखादिगुणैरधिकतरं समधिकतरगुणं । पुनरपि कथंभूतं । **अविच्छिदं मणुवदेवपदिभावं** यथा पूर्वमर्हदवस्थायां मनुजदेवेन्द्रादयः समवशरणे समागत्य नमस्कुर्वन्ति तेन प्रभुत्वं भवति, तदतिक्रान्तत्वादतिक्रान्तमनुजदेवपतिभावं । पुनश्च किं विशिष्टं । **अपुणब्भावणिबद्धं** द्रव्यक्षेत्रादिपञ्चप्रकारभवाद्विलक्षणशुद्धबुद्धैकस्वभावनिजात्मोपलम्भलक्षणो योसौ मोक्षस्तस्याधीनत्वादपुनर्भावनिबद्धमिति भावः ॥ २ ॥ एवं नमस्कारमुख्यत्वेन गाथाद्वयं गतम् । इति गाथाष्टकेन पञ्चमस्थलं ज्ञातव्यं । एवमष्टादशगाथाभिः स्थलपञ्चकेन "सुखप्रपञ्च"नामान्तराधिकारो गतः । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "एस सुरासुर" इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पीठिका गता, तदनन्तरं सप्तगाथाभिः सामान्यसर्वज्ञसिद्धिः, तदनन्तरं त्रयस्त्रिंशद्गाथाभिः ज्ञानप्रपञ्चः, तदनन्तरमष्टादशगाथाभिः सुखप्रपञ्च इति समुदायेन द्वासप्ततिगाथाभिरन्तराधिकारचतुष्टयेन **शुद्धोपयोगाधिकारः** समाप्तः ॥ इत ऊर्द्ध्वं पञ्चविंशतिगाथापर्यन्तं ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानोऽधिकारः प्रारभ्यते, तत्र पञ्चविंशतिगाथामध्ये प्रथमं तावच्छुभाशुभविषये मूढत्वनिराकरणार्थं "देवदजदिगुरु"इत्यादि दशगाथापर्यन्तं प्रथमज्ञानकण्ठिका कथ्यते। तदनन्तरमात्मात्मस्वरूपपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं "चत्ता पावारम्भं" इत्यादि सप्तगाथापर्यन्तं द्वितीयज्ञानकण्ठिका, अथानन्तरं द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं "दव्वादीएसु" इत्यादि षट्गाथापर्यन्तं तृतीयज्ञानकण्ठिका । तदनन्तरं स्वपरतत्त्वपरिज्ञानविषये मूढत्वनिराकरणार्थं "णाणप्पगं" इत्यादि गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्ठिका । इति चतुष्टयाभिधानाधिकारे समुदायपातनिका । अथेदानीं प्रथमज्ञानकण्ठिकायां स्वतन्त्रव्याख्यानेन गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरं पुण्यं जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयतीति कथनरूपेण गाथाचतुष्टयं, तदनन्तरमुपसंहाररूपेण गाथाद्वयं, इति स्थलत्रयपर्यन्तं क्रमेण व्याख्यानं क्रियते । तद्यथा—अथ यद्यपि पूर्वं गाथाषट्केनेन्द्रियसुखस्वरूपं भणितं तथापि पुनरपि तदेव विस्तरेण कथयन् सन् तत्साधकं शुभोपयोगं प्रतिपादयति, अथवा द्वितीयपातनिका—पीठिकायां यच्छुभोपयोगस्वरूपं सूचितं तस्येदानीमिन्द्रियसुखविशेषविचारप्रस्तावे तत्साधकत्वेन विशेष-

---

आगे इस अधिकारमें इंद्रियजनित सुखका विचार किया जावेगा, उसमें भी पहले इंद्रियसुखका कारण शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[**यः**] जो आत्मा [**देवतायतिगुरुपूजासु**] देव, यति, तथा गुरुकी पूजामें [**च**] और [**दाने**] दानमें [**वा**] अथवा [**सुशीलेषु**] गुणव्रत महाव्रत आदि उत्तम शीलोंमें

देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु ।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा ॥ ६९ ॥

देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु ।
उपवासादिषु रक्तः शुभोपयोगात्मक आत्मा ॥ ६९ ॥

यदायमात्मा दुःखस्य साधनीभूतां द्वेषरूपामिन्द्रियार्थानुरागरूपां चाशुभोपयोगभूमिकामतिक्रम्य देवगुरुयतिपूजादानशीलोपवासप्रीतिलक्षणं धर्मानुरागमङ्गीकरोति तदेन्द्रियसुखस्य साधनीभूतां शुभोपयोगभूमिकामधिरूढोऽभिलप्येत ॥ ६९ ॥

अथ शुभोपयोगसाध्यत्वेनेन्द्रियसुखमाख्याति;—

जुत्तो सुहेण आदा तिरियो वा माणुसो व देवो वा ।
भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इंदियं विविहं ॥ ७० ॥

विवरणं करोति;—**देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु** देवतायतिगुरुपूजासु चैव दाने वा सुशीलेषु **उववासादिसु रत्तो** तथैवोपवासादिषु च रक्त आसक्तः **अप्पा** जीवः **सुहोवओगप्पगो** शुभोपयोगात्मको भण्यते इति । तथाहि—देवता निर्दोषिपरमात्मा, इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नपरो यतिः, स्वयं भेदाभेदरत्नत्रयाराधकस्तदर्थिनां भव्यानां जिनदीक्षादायको गुरुः पूर्वोक्तदेवतायतिगुरूणां तत्प्रतिबिम्बादीनां च यथासम्भवं द्रव्यभावरूपा पूजा, आहारादिचतुर्विधदानं च, आचारादिकथितशीलव्रतानि तथैवोपवासा जिनगुणसंपत्त्यादिविधिविशेषाश्च । एतेषु शुभानुष्ठानेषु योसौ रतः, द्वेषरूपे विषयानुरागे चाशुभानुष्ठाने विरतः, स जीवः शुभोपयोगी भवतीति सूत्रार्थः ॥ ६९ ॥ अथ पूर्वोक्तशुभोपयोगेन साध्यमिन्द्रियसुखं कथयति;—**सुहेण जुत्तो आदा** यथा निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धोपयोगेन युक्तो

(स्वभावों) में **[उपवासादिषु]** आहार आदिके त्यागोंमें **[एव]** निश्चयसे **[रक्तः]** लवलीन है **['स' आत्मा]** वह जीव **[शुभोपयोगात्मकः]** शुभोपयोगी अर्थात् शुभ परिणामवाला है । **भावार्थ**—जो जीव धर्ममें अनुराग (प्रीति) रखते हैं उन्हें इंद्रियसुखकी साधनेवाली शुभोपयोगरूपी भूमिमें प्रवर्तमान कहते हैं ॥ ६९ ॥ आगे शुभोपयोगसे इंद्रियसुख होता है ऐसा कहते हैं;—**[शुभेन युक्तः]** शुभोपयोगकर सहित **[आत्मा]** जीव **[तिर्यक्]** उत्तम तिर्यंच **[वा]** अथवा **[मानुषः]** उत्तम मनुष्य **[वा]** अथवा **[देवः]** उत्तम देव **[भूतः]** होता हुआ **[तावत्कालं]** उतने कालतक अर्थात् तिर्यंच आदिकी जितनी स्थिति है उतने समयतक **[विविधं]** नाना प्रकारके **[ऐन्द्रियं सुखं]** इंद्रिय जनित सुखोंको **[लभते]** पाता है । **भावार्थ**—यह जीव शुभपरिणामोंसे तिर्यंच—मनुष्य और देव—इन तीन गतियोंमें उत्पन्न होता है, वहां पर अपनी २ कालकी स्थिति तक अनेक

युक्तः शुभेन आत्मा तिर्यग्वा मानुषो वा देवो वा।
भूतस्तावत्कालं लभते सुखमैन्द्रियं विविधम् ॥ ७० ॥

अयमात्मेन्द्रियसुखसाधनीभूतस्य शुभोपयोगस्य सामर्थ्यात्तदधिष्ठानभूतानां तिर्यग्मानुषदेवत्वभूमिकानामन्यतमां भूमिकामवाप्य यावत्कालमवतिष्ठते, तावत्कालमनेकप्रकारमिन्द्रियसुखं समासादयतीति ॥ ७० ॥

अथैवमिन्द्रियसुखमुत्क्षिप्य दुःखत्वे प्रक्षिपति;—

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणंपि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु ॥ ७१ ॥

सौख्यं स्वभावसिद्धं नास्ति सुराणामपि सिद्धमुपदेशे।
ते देहवेदनार्ता रमन्ते विषयेषु रम्येषु ॥ ७१ ॥

इन्द्रियसुखभाजनेषु हि प्रधाना दिवौकसः, तेषामपि स्वाभाविकं न खलु सुखमस्ति

मुक्तो भूत्वाऽयं जीवोऽनन्तकालमतीन्द्रियसुखं लभते, तथा पूर्वसूत्रोक्तलक्षणशुभोपयोगेन युक्तः परिणतोऽयमात्मा **तिरियो वा माणुसो व देवो वा भूदो** तिर्यग्मनुष्यदेवरूपो भूत्वा **तावदि कालं** तावत्कालं स्वकीयायुःपर्यन्तं **लहदि सुहं इंदियं विविहं** इन्द्रियजं विविधं सुखं लभते, इति सूत्राभिप्रायः ॥ ७० ॥ अथ पूर्वोक्तमिन्द्रियसुखं निश्चयनयेन दुःखमेवेत्युपदिशति;—**सोक्खं सहावसिद्धं** रागाद्युपाधिरहितं चिदानन्दैकस्वभावेनोपादानकारणभूतेन सिद्धमुत्पन्नं यत्स्वाभाविकसुखं तत्स्वभावसिद्धं भण्यते। तच्च **णत्थि सुराणंपि** आस्तां मनुष्यादीनां सुखं देवेन्द्रादीनामपि नास्ति **सिद्धमुवदेसे** इति सिद्धमुपदिष्टमुपदेशे परमागमे। **ते देहवेदणत्ता रमंति विसएसु रम्मेसु** तथाभूतसुखाभावात्ते देवादयो देहवेदनार्ताः पीडिताः कदर्थिताः सन्तो रमन्ते विषयेषु रम्याभासेष्विति। अथ विस्तरः—अधोभागे सप्तनरकस्थानीयमहाऽजगरप्रसारितमुखे, कोणचतुष्के तु क्रोधमानमायालोभस्थानीयसर्पचतुष्कप्रसारितवदने देहस्थानीयमहान्धकूपे पतितः सन् कश्चित् पुरुषविशेषः, संसारस्थानीयमहारण्ये मिथ्यात्वादिकुमार्गे नष्टः पतितः सन् मृत्युस्थानीयहस्तिभयेनायुष्कर्मस्थानीये साटिकविशेषे शुक्लकृष्णपक्षस्थानीयशुक्लकृष्णमूषकद्वयछेद्यमानमूले व्याधिस्थानीयमधुमक्षिकावेष्टिते लग्नस्तेनैव हस्तिना हन्य-

---

तरहके इंद्रियजनित सुखोंको भोगता है ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि इंद्रियजनित सुख यथार्थमें दुःख ही हैं;—[**सुराणामपि**] देवोंकेभी [**स्वभावसिद्धं सौख्यं**] आत्माके निजस्वभावसे उत्पन्न अतींद्रिय सुख [**नास्ति**] नहीं है [**'इति'**] इसप्रकार [**उपदेशे**] भगवानके परमागममें [**सिद्धं**] अच्छी तरह युक्तिसे कहा है। [**यतः**] क्योंकि [**ते**] वे देव [**देहवेदनार्ताः**] पंचेन्द्रियस्वरूप शरीरकी पीडासे दुःखी हुए [**रम्येषु विषयेषु**] रमणीक इंद्रियविषयोंमें [**रमन्ति**] क्रीडा करते

प्रत्युत तेषां स्वाभाविकं दुःखमेवावलोक्यते । यतस्ते पञ्चेन्द्रियात्मकशरीरपिशाचपीडया परवशा भृगुप्रपातस्थानीयान्मनोज्ञविषयानभिपतन्ति ॥ ७१ ॥

अथैवमिन्द्रियसुखस्य दुःखतायां युक्त्यावतारितायामिन्द्रियसुखसाधनीभूतपुण्यनिर्वर्तकशुभोपयोगस्य दुःखसाधनीभूतपापनिर्वर्तकाशुभोपयोगविशेषादविशेषत्वमवतारयति;—

णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं ।
किध सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं ॥ ७२ ॥

नरनारकतिर्यक्सुरा भजंति यदि देहसंभवं दुःखम् ।
कथं स शुभो वाऽशुभ उपयोगो भवति जीवानाम् ॥ ७२ ॥

माने सति विषयसुखस्थानीयमधुबिन्दुसुस्वादेन यथा सुखं मन्यते, तथा संसारसुखम् । पूर्वोक्तमोक्षसुखं तु तद्विपरीतमिति तात्पर्यम् ॥ ७१ ॥ अथ पूर्वोक्तप्रकारेण शुभोपयोगसाध्यस्येन्द्रियसुखस्य निश्चयेन दुःखत्वं ज्ञात्वा तत्साधकशुभोपयोगस्याप्यशुभोपयोगेन सह समानत्वं व्यवस्थापयति;— **णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं** सहजातीन्द्रियामूर्तसदानन्दैकलक्षणं वास्तवसुखमेव सुखमलभमानाः सन्तो नरनारकतिर्यक्सुरा यदि चेदविशेषेण पूर्वोक्तपरमार्थसुखाद्विलक्षणं पञ्चेन्द्रियात्मकशरीरोत्पन्नं निश्चयनयेन दुःखमेव भजन्ते सेवन्ते **किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं** व्यवहारेण विशेषेपि निश्चयेन सः प्रसिद्धः शुद्धोपयोगाद्विलक्षणः शुभाशुभोपयोगः कथं भिन्नत्वं लभते ? न कथमपीति

हैं । **भावार्थ**—सब संसारीक सुखोंमें अणिमादि आठ ऋद्धिसहित देवोंके सुख प्रधान हैं परंतु वे यथार्थ आत्मीक सुख नहीं हैं । स्वाभाविक दुःख ही हैं, क्योंकि जब पंचेंद्रियरूप पिशाच उनके शरीरमें पीडा उत्पन्न करता है तब ही वे देव मनोज्ञविषयोंमें गिरपड़ते हैं अर्थात् जिस प्रकार कोई पुरुष किसी वस्तु विशेषसे पीडित होकर पर्वतसे पड़कर मरता है, इसीप्रकार इंद्रियजनित दुःखोंसे पीड़ित होकर उनके विषयोंमें यह आत्मा रमण (मौज) करता है । इसलिये इन्द्रियजनित सुख दुःखरूप ही हैं । अज्ञानबुद्धिसे सुखरूप मालूम पड़ते हैं, एक दुःखके ही सुख और दुःख ये दोनों भेद हैं ॥ ७१ ॥ आगे इंद्रियसुखका साधक पुण्यका हेतु शुभोपयोग और दुःखका साधन पापका कारण अशुभोपयोग इन दोनोंमें समानपना दिखाते हैं;—[**यदि**] जो [**नरनारकतिर्यक्सुराः**] मनुष्य, नारकी, तिर्यंच (पशु) तथा देव, ये चारों गतिके जीव [**देहसंभवं दुःखं**] शरीरसे उत्पन्न हुई पीडाको [**भजन्ति**] भोगते हैं [**तदा**] तो [**जीवानां**] जीवोंके [**स उपयोगः**] वह चैतन्यरूप परिणाम [**शुभः**] अच्छा [**वा**] अथवा [**अशुभः**] बुरा [**कथं भवति**] कैसे होसकता है ? । **भावार्थ**—शुभोपयोगका फल देवताओंकी संपदा है और अशुभोपयोगका

यदि शुभोपयोगजन्यसमुदीर्णपुण्यसंपदस्त्रिदशादयोऽशुभोपयोगजन्यपर्यागतपातकापदो वा नारकादयश्च, उभयेपि स्वाभाविकसुखाभावादविशेषेण पञ्चेन्द्रियात्मशरीरप्रत्ययं दुःखमेवानुभवन्ति । ततः परमार्थतः शुभाशुभोपयोगयोः पृथक्त्वव्यवस्था नावतिष्ठते ॥ ७२ ॥

अथ शुभोपयोगजन्यं फलवत्पुण्यं विशेषेण दूषणार्थमभ्युपगम्योत्थापयति;—

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगेहिं ।
देहादीणं विद्धिं करेंति सुहिदा इवाभिरदा ॥ ७३ ॥

कुलिशायुधचक्रधराः शुभोपयोगात्मकैः भोगैः ।
देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति सुखिता इवाभिरताः ॥ ७३ ॥

यतो हि शक्राश्चक्रिणश्च स्वेच्छोपगतैर्भोगैः शरीरादीन् पुष्णन्तस्तेषु दुष्टशोणित इव जलौकसोऽत्यन्तमासक्ताः सुखिता इव प्रतिभासन्ते । ततः शुभोपयोगजन्यानि फलवन्ति पुण्यान्यवलोक्यन्ते ॥ ७३ ॥

भावः ॥ ७२ ॥ एवं स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन प्रथमस्थलं गतम् । अथ पुण्यानि देवेन्द्रचक्रवर्त्यादिपदं प्रयच्छन्ति इति पूर्वं प्रशंसां करोति । किमर्थं । तत्फलाधारेणाग्रे तृष्णोत्पत्तिरूपदुःखदर्शनार्थम्;—देवेन्द्राश्चक्रवर्तिनश्च कर्तारः शुभोपयोगजन्यभोगैः कृत्वा विकुर्वणारूपेण देहपरिवारादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति । कथंभूताः सन्तः । सुखिता इवाभिरता आसक्ता इति । अयमत्रार्थः—यत्परमातिशयतृप्तिसमुत्पादकं विषयतृष्णाविच्छित्तिकारक च स्वाभाविकसुखं तदलभमाना दुष्टशोणिते जलयूका इवासक्ताः सुखाभासेन देहादीनां वृद्धिं कुर्वन्ति । ततो ज्ञायते तेषां

नारकादिकी आपदा है, परंतु इन दोनोंमें आत्मीक सुख नहीं है, इसलिये इन दोनों स्थानोंमें दुःखही है । सारांश यह है कि जो परमार्थदृष्टिसे विचारा जावे तो शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनोंमें कुछ भेद नहीं है । कार्यकी समानता होनेसे कारणकीभी समानता है ॥ ७२ ॥ आगे शुभोपयोगसे उत्पन्न हुए फलवान पुण्यको विशेषपनेसे दूषणकेलिये दिखलाकर निषेध करते हैं;—[**सुखिताः इव**] सुखियोंके समान [**अभिरताः**] लवलीन हुए [**कुलिशायुधचक्रधराः**] वज्रायुधधारी इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदिक [**शुभोपयोगात्मकैः**] शुभ उपयोगसे उत्पन्न हुए [**भोगैः**] भोगोंसे [**देहादीनां**] शरीर इंद्रियादिकोंकी [**वृद्धिं**] बढ़ती [**कुर्वन्ति**] करते हैं । **भावार्थ**—यद्यपि शुभोपयोगसे इंद्र चक्रवर्ती आदि विशेष फल मिलते हैं, परंतु वे इंद्रादिक मनोवांछित भोगोंसे शरीरादिका पोषणही करते हैं, सुखी नहीं है, सुखीसे देखनेमें आते हैं । जैसे जोंक बिकारवाले लोहीको बडी प्रीतिसे पीती हैं और उसीमें सुख मानती हैं, परंतु यथार्थमें वह पीना दुःखका कारण है । इसीप्रकार वे इंद्र वगैरः

अथैवमभ्युपगतानां पुण्यानां दुःखबीजहेतुत्वमुद्भावयति;—

जदि संति हि पुण्णाणि य परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि ।
जणयंति विसयतण्हं जीवाणं देवदंताणं ॥ ७४ ॥

यदि सन्ति हि पुण्यानि च परिणामसमुद्भवानि विविधानि ।
जनयन्ति विषयतृष्णां जीवानां देवतान्तानाम् ॥ ७४ ॥

यदि नामैव शुभोपयोगपरिणामकृतसमुत्पत्तीन्यनेकप्रकाराणि पुण्यानि विद्यन्त इत्यभ्युपगम्यते, तदा तानि सुधाशनानामप्यवधिं कृत्वा समस्तसंसारिणां विषयतृष्णामवश्यमेव समुत्पादयन्ति । न खलु तृष्णामन्तरेण दुष्टशोणित इव जलूकानां समस्तसंसारिणां विषयेषु प्रवृत्तिरवलोक्यते, अवलोक्यते च सा । ततोऽस्तु पुण्यानां तृष्णायतनत्वमबाधितमेव ॥ ७४ ॥

स्वाभाविकं सुखं नास्तीति ॥ ७३ ॥ अथ पुण्यानि जीवस्य विषयतृष्णामुत्पादयन्तीति प्रतिपादयति;—**जदि संति हि पुण्णाणि य** यदि चेन्निश्चयेन पुण्यपापरहितपरमात्मनो विपरीतानि पुण्यानि सन्ति । पुनरपि किंविशिष्टानि । **परिणामसमुब्भवाणि** निर्विकारस्वसंवित्तिविलक्षणशुभपरिणामसमुद्भवानि **विविहाणि** स्वकीयानन्तभेदेन बहुविधानि । तदा तानि किं कुर्वन्ति । **जणयंति विसयतण्हं** जनयन्ति । कां । विषयतृष्णां । केषां । **जीवाणं देवदंताणं** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपनिदानबन्धप्रभृतिनानामनोरथहयरूपविकल्पजालरहितपरमसमाधिसमुत्पन्नसुखामृतरूपां सर्वात्मप्रदेशेषु परमाह्लादोत्पत्तिभूतामेकाकारपरमसमरसीभावरूपां विषयाकाङ्क्षाग्निजनितपरमदाहविनाशिकां स्वरूपतृप्तिमलभमानानां देवेन्द्रप्रभृतिबहिर्मुखसंसारिजीवानामिति । इदमत्र तात्पर्यम्—यदि तथाविधा विषयतृष्णा नास्ति तर्हि दुष्टशोणिते जलयूका इव कथं ते विषयेषु प्रवृत्तिं कुर्वन्ति । कुर्वन्ति चेत् पुण्यानि तृष्णोत्पादकत्वेन दुःखकारणानि

भी तृष्णासे दुखमान रहे हैं ॥ ७३ ॥ आगे शुभोपयोगजनित पुण्यकोभी दुःखका कारण प्रगट दिखलाते हैं;-[**यदि**] जो [**हि**] निश्चयसे [**विविधानि**] नानाप्रकारके [**पुण्यानि**] पुण्य [**परिणामसमुद्भवानि**] शुभोपयोगरूप परिणामोंसे उत्पन्न [**सन्ति**] हैं । [**तदा**] तो वे [**देवतान्तानाम्**] स्वर्गवासी देवोंतक [**जीवानां**] सब संसारी जीवोंके [**विषयतृष्णां**] विषयोंकी अत्यंत अभिलाषाको [**जनयन्ति**] उत्पन्न करते हैं । **भावार्थ**—यदि शुभोपयोगसे अनेक तरहके पुण्य उत्पन्न होते हैं तो भलेही उत्पन्न होवो कुछ विशेषता नहीं है, क्योंकि वे पुण्य देवताओंसे लेकर सब संसारी जीवोंको तृष्णा उपजाते हैं, और जहां तृष्णा है वहां ही दुःख है, क्योंकि तृष्णाके विना इन्द्रियोंके रूपादि विषयोंमें प्रवृत्तिही नहीं होती । जैसे जोंक (जलका जंतुविशेष) तृष्णाके विना विकारयुक्त (खराब) रुधिरका पान नहीं

अथ पुण्यस्य दुःखबीजविजयमाघोषयति;—

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहि विसयसोक्खाणि ।
इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७५ ॥

ते पुनरुदीर्णतृष्णाः दुःखितास्तृष्णाभिर्विषयसौख्यानि ।
इच्छन्त्यनुभवन्ति च आमरणं दुःखसंतप्ताः ॥ ७५ ॥

अथ ते पुनस्त्रिदशावसानाः कृत्स्नसंसारिणः समुदीर्णतृष्णाः पुण्यनिर्वर्तिताभिरपि तृष्णाभिर्दुःखबीजतयाऽत्यन्तदुःखिताः सन्तो मृगतृष्णाभ्य इवाम्भांसि विषयेभ्यः सौख्यान्यभिलषन्ति । तद्दुःखसंतापवेगमसहमाना अनुभवन्ति च विषयान् जलयूका इव, तावद्यावत् क्षयं यान्ति । यथा हि जलयूकास्तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखाङ्कुरेण क्रमतः समाक्रम्यमाणा दुष्टकीलालमभिलषन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्च प्रलयात् क्लिश्यन्ते । एवममी अपि पुण्यशालिनः पापशालिन इव तृष्णाबीजेन विजयमानेन दुःखाङ्कुरेण क्रमतः समाक्रम्य-

---

इति ज्ञायन्ते ॥ ७४ ॥ अथ पुण्यानि दुःखकारणानीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;— **ते पुण उदिण्णतण्हा** सहजशुद्धात्मतृप्तेरभावात्ते निखिलसंसारिजीवाः पुनरुदीर्णतृष्णाः सन्तः **दुहिदा तण्हाहिं** स्वसंवित्तिसमुत्पन्नपारमार्थिकसुखाभावात्पूर्वोक्ततृष्णाभिर्दुःखिताः सन्तः। किं कुर्वन्ति । **विसयसोक्खाणि इच्छंति** निर्विषयपरमात्मसुखाद्विलक्षणानि विषयसुखानि इच्छन्ति । न केवलमिच्छन्ति **अणुभवंति य** अनुभवन्ति च । किं पर्यन्तम् । **आमरणं** मरणपर्यन्तं । कथंभूताः । **दुक्खसंतत्ता** दुःखसंतप्ता इति । अयमत्रार्थः—यथा तृष्णोद्रेकेण प्रेरिताः जलौकसः कीलालमभिलषन्त्यस्तदेवानुभवन्त्यश्चामरणं दुःखिता भवन्ति, तथा निजशुद्धात्मसंवित्तिपराङ्मुखा जीवा अपि मृगतृष्णाभ्योऽम्भांसीव विषयानभिलषन्तस्तथैवानुभवन्तश्चामरणं दुःखिता भवन्ति । तत एतदायातं तृष्णातङ्कोत्पादकत्वेन पुण्यानि वस्तुतो

करती, इसीप्रकार संसारी जीवोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति तृष्णाके विना नहीं होती । इसकारण पुण्य तृष्णाका घर है ॥ ७४ ॥ आगे पुण्यको दुःखका बीज प्रगट करते हैं;— [**पुनः**] उसके बाद [**उदीर्णतृष्णाः**] उठी है तृष्णा जिनके तथा [**तृष्णाभिः दुःखिताः**] अत्यंत अभिलाषासे पीड़ित और [**दुःखसंतप्ताः**] दुःखोंसे तप्तायमान [**ते**] वे देवोंपर्यंत सब संसारी जीव [**विषयसौख्यानि**] इंद्रियोंके विषयोंसे उत्पन्न सुखोंको [**आमरणं**] मरणपर्यंत [**इच्छन्ति**] चाहते हैं [**च**] और [**अनुभवन्ति**] भोगते हैं । **भावार्थ**—मृगतृष्णासे जलकी अभिलाषाकी नाईं संसारी जीव पुण्यजनित तृष्णाओंसे सुख चाहते हैं । उस तृष्णासे उत्पन्न हुए दुःख संतापको सह नहीं सकते हैं, इसलिये वारंवार विषयोंको मरणपर्यंत भोगते हैं । जैसे जोंक विकारवाले खूनको तृष्णावश क्रमसे तबतक पीती है जब तक कि नाशको प्राप्त

माणा विषयानभिलषन्तस्तानेवानुभवन्तश्च प्रलयात् क्लिश्यन्ते । अतः पुण्यानि सुखाभासस्य दुःखस्यैव साधनानि स्युः ॥ ७५ ॥

अथ पुनरपि पुण्यजन्यस्येन्द्रियसुखस्य बहुधा दुःखत्वमुद्योतयति;—

सपरं बाधासंहिदं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं ।
जं इंदिएहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तधा ॥ ७६ ॥

सपरं बाधासहितं विच्छिन्नं बन्धकारणं विषमम् ।
यदिन्द्रियैर्लब्धं तत्सौख्यं दुःखमेव तथा ॥ ७६ ॥

सपरत्वात् बाधासहितत्वात् विच्छिन्नत्वात् बन्धकारणत्वात् विषमत्वाच्च पुण्यजन्यमपीन्द्रियसुखं दुःखमेव स्यात् । सपरं हि सत् परप्रत्ययत्वात् पराधीनतया, बाधासहितं

दुःखकारणानि इति ॥ ७५ ॥ अथ पुनरपि पुण्योत्पन्नस्येन्द्रियसुखस्य बहुधा दुःखत्वं प्रकाशयति;–**सपरं** सह परद्रव्यापेक्षया वर्तते सपरं भवतीन्द्रियसुखं, पारमार्थिकसुखं तु परद्रव्यनिरपेक्षत्वादात्माधीनं भवति । **बाधासहियं** तीव्रक्षुधातृष्णाद्यनेकबाधासहितत्वाद्बाधासहितमिन्द्रियसुखं, निजात्मसुखं तु पूर्वोक्तसमस्तबाधारहितत्वादव्याबाधं । **विच्छिण्णं** प्रतिपक्षभूतासातोदयेन सहितत्वाद्विच्छिन्नं सान्तरितं भवतीन्द्रियसुखं, अतीन्द्रियसुखं तु प्रतिपक्षभूतासातोदयाभावान्निरन्तरं । **बंधकारणं** दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षाप्रभृत्यनेकापध्यानवशेन भाविनरकादिदुःखोत्पादककर्मबन्धोत्पादकत्वाद्बन्धकारणमिन्द्रियसुखं, अतीन्द्रियसुखं तु सर्वापध्यानरहितत्वादबन्धकारणं । **विसमं** विगतः शमः परमोपशमो यत्र तद्विषममतृप्तिकरं हानिवृद्धिसहितत्वाद्वा विषमं, अतीन्द्रियसुखं तु परमतृप्तिकरं हानिवृद्धिरहितं च । **जं इंदियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा** यदिन्द्रियैर्लब्धं संसारसुखं तत्सुखं यथा पूर्वोक्तपञ्चविशेषणवि-

---

नहीं होती, इसीप्रकार पापी जीवोंकी तरह ये पुण्यवन्तभी तृष्णाबीजसे बढ़ेहुए दुःखरूप अंकुरके वश क्रमसे विषयोंको चाहते हैं, बारंवार भोगते हैं और क्लेशयुक्त होते हैं, जबतक कि मर नहीं जाते । इसलिये पुण्य सुखाभासरूप दुःखके कारण हैं; सब प्रकारसे त्यागने योग्य हैं ॥ ७५ ॥ आगे फिरभी पुण्यजनित इंद्रियसुखोंको बहुत प्रकारसे दुःखरूप कहते हैं;–[**यत्**] जो [**इन्द्रियैः**] पांच इंद्रियोंसे [**लब्धं**] प्राप्त हुआ [**सौख्यं**] सुख है [**तत्**] सो [**तथा**] ऐसे सुखकी तरह [**दुःखमेव**] दुःखरूपही है, क्योंकि जो सुख [**सपरं**] पराधीन है, [**बाधासहितं**] क्षुधा तृषादिबाधा युक्त है, [**विच्छिन्नं**] असाताके उदयसे विनाश होनेवाला है, [**बन्धकारणं**] कर्मबंधका कारण है, क्योंकि जहां इंद्रियसुख होता है वहां अवश्य रागादिक दोषोंकी सेना होती है । उसीके अनुसार अवश्य कर्मधूलि लगती है । और वह सुख [**विषमं**] विषम अर्थात् चंचलपनेसे हानिवृद्धरूप है । **भावार्थ**—सांसारिक-सुख और दुःख वास्तवमें दोनों एकही हैं; क्योंकि जिसप्रकार सुख पराधीन, बाधास-

हि संदशनोदन्यादिभिस्तृष्णाव्यक्तिभिरुपेतत्वात् अत्यन्ताकुलतया, विच्छिन्नं हि सदसद्वेद्योदयप्रच्यावितसद्वेद्योदयप्रवृत्ततयाऽनुभवत्वादुद्भूतविपक्षतया, बन्धकारणं हि सद्विषयोपभोगमार्गानुलग्नरागादिदोषसेनानुसारसंगच्छमानघनकर्मपांसुपटलत्वादुदर्कदुःसहतया, विषमं हि सदभिवृद्धिपरिहाणिपरिणतत्वादत्यन्तविसंस्थुलतया च दुःखमेव भवति । अथैवं पुण्यमपि पापवद्दुःखसाधनमायातम् ॥ ७६ ॥

अथ पुण्यपापयोरविशेषत्वं निश्चिन्वन्नुपसंहरति;—

ण हि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं ।
हिंडदि घोरमपारं संसारं मोहसंछण्णो ॥ ७७ ॥

न हि मन्यते य एवं नास्ति विशेष इति पुण्यपापयोः ।
हिण्डति घोरमपारं संसारं मोहसंछन्नः ॥ ७७ ॥

एवमुक्तक्रमेण शुभाशुभोपयोगद्वैतमिव सुखदुःखद्वैतमिव च न खलु परमार्थतः पुण्यपापद्वैतमवतिष्ठते, उभयत्राप्यनात्मधर्मत्वाविशेषत्वात् । यस्तु पुनरनयोः कल्याणकाला-

---

शिष्टं भवति तथैव दुःखमेवेत्यभिप्रायः ॥ ७६ ॥ एवं पुण्यानि जीवस्य तृष्णोत्पादकत्वेन दुःखकारणानि भवन्तीति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथ निश्चयेन पुण्यपापयोर्विशेषो नास्तीति कथयन् पुण्यपापयोर्व्याख्यानमुपसंहरति;—**ण हि मण्णदि जो एवं** न हि मन्यते य एवं । किं । **णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं** पुण्यपापयोर्निश्चयेन विशेषो नास्ति । स किं करोति । **हिंडदि घोरमपारं संसारं** हिण्डति भ्रमति । कं । संसारं । कथंभूतं । घोरम् अपारं चाभव्यापेक्षया । कथंभूतः । **मोहसंछण्णो** मोहप्रच्छादित इति ।

हित, विनाशीक, बंधकारक तथा विषम इन पांच विशषणोंसे युक्त है, उसीप्रकार दुःखभी पराधीन आदि विशेषणोंसहित है । और इस सुखका कारण पुण्यभी पापकी तरह दुःखका कारण है । इसीकारण सुखदुःखकी नाईं पुण्यपापमेंभी कोई भेद नहीं है ॥ ७६ ॥ आगे पुण्यपापमें कोई भेद नहीं है ऐसा निश्चयकरके इस कथनका संकोच करते हैं;—[**पुण्यपापयोः**] पुण्य और पाप इन दोनोंमें [**विशेषः**] भेद [**नास्ति**] नहीं है [**इति**] ऐसा [**एवं**] इसप्रकार [**यः**] जो पुरुष [**न हि**] नहीं [**मन्यते**] मानता है [**'स'**] वह [**मोहसंछन्नः**] मोहसे आच्छादित हुआ संता [**घोरं**] भयानक और [**अपारं**] जिसका पार नहीं [**संसारं**] ऐसे संसारमें [**हिण्डति**] भ्रमण करता है । **भावार्थ**—जैसे निश्चयसे शुभ और अशुभमें भेद नहीं है तथा सुखदुःखमें भेद नहीं है, इसीप्रकार यथार्थदृष्टिसे पुण्यपापमेंभी भेद नहीं है । दोनोंमें आत्मधर्मका अभाव है । जो कोई पुरुष अहंकार बुद्धिसे पुण्य

---

१ 'सदसनायोदन्याद्यषस्यादि' ऐसा पाठभी मूलप्रतिमें लिखा है ।

वर्तिनोरल्योरिवाहङ्कारिकं विशेषमभिमन्यमानोऽहमिन्द्रपदादिसंपदां निदानमिति निर्भरतरं धर्मानुरागमवलम्बते स खलूपरक्तचित्तभित्तितया तिरस्कृतशुद्धोपयोगशक्तिरासंसारं शारीरं दुःखमेवानुभवति ॥ ७७ ॥

अथैवमवधारितशुभाशुभोपयोगाविशेषः समस्तमपि रागद्वेषद्वैतमपहस्तयन्नशेषदुःखक्षयाय सुनिश्चितमनाः शुद्धोपयोगमधिवसति;—

एवं विदिदत्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा ।
उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुःक्खं ॥ ७८ ॥

एवं विदितार्थो यो द्रव्येषु न रागमेति द्वेषं वा ।
उपयोगविशुद्धः सः क्षपयति देहोद्भवं दुःखम् ॥ ७८ ॥

यो हि नाम शुभानामशुभानां च भावानामविशेषदर्शनेन सम्यक्परिच्छिन्नवस्तुस्व-

---

तथाहि—द्रव्यपुण्यपापयोर्व्यवहारेण भेदः, भावपुण्यपापयोस्तत्फलभूतसुखदुःखयोश्चाशुद्धनिश्चयेन भेदः, शुद्धनिश्चयेन तु शुद्धात्मनोऽभिन्नत्वाद्भेदो नास्ति । एवं शुद्धनयेन पुण्यपापयोरभेदं योसौ न मन्यते स देवेन्द्रचक्रवर्तिबलदेववासुदेवकामदेवादिपदनिमित्तं निदानबन्धेन पुण्यमिच्छन्निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वविपरीतदर्शनचारित्रमोहप्रच्छादितः सुवर्णलोहनिगडद्वयसमानपुण्यपापद्वयबद्धः सन् संसाररहितशुद्धात्मनो विपरीतं संसारं भ्रमतीत्यर्थः ॥ ७७ ॥ अथैवं शुभाशुभयोः समानत्वपरिज्ञानेन निश्चितशुद्धात्मतत्त्वः सन् दुःखक्षयाय शुद्धोपयोगानुष्ठानं स्वीकरोति;—**एवं विदिदत्थो जो** एवं चिदानन्दैकस्वभावं परमात्मतत्त्वमेवोपादेयमन्यदशेषं हेयमिति हेयोपादेयपरिज्ञानेन विदितार्थतत्त्वो भूत्वा यः **दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा** निजशुद्धात्मद्रव्यादन्येषु शुभाशुभसर्वद्रव्येषु रागं द्वेषं वा न गच्छति **उवओगविसुद्धो सो** रागादिरहितशुद्धात्मानुभूतिलक्षणेन शुद्धोपयोगेन विशुद्धः सन् सः **खवेदि देहुब्भवं दुक्खं** तप्तलोह-

---

और पापमें भेद मानता है तथा सोने लोहेकी बेड़ियोंके समान अहमिंद्र इन्द्र चक्रवर्ती आदि संपदाओंके कारण अच्छीतरहसे धर्मानुरागका अवलम्बन करता (सहायता लेता) है वह पुरुष सरागभावोंसे शुद्धोपयोगशक्तिसे रहित हुआ संता जबतक संसारमें है तबतक शरीरादि संबंधी दुःखोंका भोगनेवाला होता है ॥ ७७ ॥ आगे कहते हैं कि जो पुरुष शुभ अशुभोपयोगमें एकता मानके समस्त रागद्वेषोंको दूर करता है वह संपूर्ण दुःखोंके नाश होनेके निमित्त निश्चल चित्त होकर शुद्धोपयोगको अंगीकार करता है;—[**एवं**] इसप्रकार [**विदितार्थः**] पदार्थके स्वरूपको जाननेवाला [**यः**] जो पुरुष [**द्रव्येषु**] परद्रव्योंमें [**रागं**] प्रीतिभाव [**वा**] अथवा [**द्वेषं**] द्वेषभावको [**न**] नहीं [**एति**] प्राप्त होता है [**सः**] वह [**उपयोगविशुद्धः**] उपयोगसे निर्मल अर्थात् शुद्धोपयोगी हुआ [**देहोद्भवं दुःखं**] शरीरसे उत्पन्न हुए दुःखको [**क्षपयति**] नष्ट करता है । भावार्थ—जो

रूपः स्वपरविभागावस्थितेषु समग्रेषु ससमग्रपर्यायेषु द्रव्येषु रागं द्वेषं चाशेषमेव परिवर्जयति स किलैकान्तेनोपयोगविशुद्धतया परित्यक्तपरद्रव्यालम्बनोऽग्निरिवायःपिण्डादनुष्ठितायःसारः प्रचण्डघनघातस्थानीयं शारीरं दुःखं क्षपयति, ततो ममायमेवैकः शरणं शुद्धोपयोगः ॥ ७८ ॥

अथ यदि सर्वसावद्ययोगमतीत्य चरित्रमुपस्थितोपि शुभोपयोगानुवृत्तिवशतया मोहादीन्नोन्मूलयामि, ततः कुतो मे शुद्धात्मलाभ इति सर्वारम्भेणोत्तिष्ठते;—

चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ॥ ७९ ॥

त्यक्त्वा पापारम्भं समुत्थितो वा शुभे चरित्रे।
न जहाति यदि मोहादीन्न लभते स आत्मकं शुद्धम् ॥ ७९ ॥

पिण्डस्थानीयदेहादुद्भवं, अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसुखाद्विलक्षणं परमाकुलत्वोत्पादकं लोहपिण्डरहितोऽग्निरिव घनघातपरम्परास्थानीयदेहरहितो भूत्वा शारीरं दुःखं क्षपयतीत्यभिप्रायः ॥ ७८ ॥ एवमुपसंहाररूपेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम्। इति शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं गाथादशकपर्यन्तं स्थलत्रयसमुदायेन **प्रथमज्ञानकण्ठिका** समाप्ता। अथ शुभाशुभोपयोगनिवृत्तिलक्षणशुद्धोपयोगेन मोक्षो भवतीति पूर्वसूत्रे भणितं। अत्र तु द्वितीयज्ञानकण्ठिकाप्रारम्भे शुद्धोपयोगाभावे शुद्धात्मानं न लभते, इति तमेवार्थं व्यतिरेकरूपेण दृढयति,—**चत्ता पावारंभं** पूर्वं गृहवासादिरूपं पापारम्भं त्यक्त्वा **समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्हि** सम्यगुपस्थितो वा पुनः। क। शुभचरित्रे **ण जहदि जदि मोहादी** न त्यजति यदि चेन्मोहरागद्वेषान् **ण लहदि सो अप्पयं सुद्धं** न लभते स आत्मानं शुद्धमिति। इतो

पुरुष शुभ (पुण्यरूप) तथा अशुभभावोंको एकरूप जानकर अपने स्वरूपमें थिर होके परद्रव्योंमें रागद्वेषभाव छोड़ देता है वह पुरुष, शरीरसंबंधी दुःखोंका नाश करता है। जैसे—लोह पिंडमें प्रवेश नहीं कीहुई अग्नि घनकी चोट नहीं सहती है, इसीप्रकार शुद्धोपयोगी दुःखको नहीं सहता है। इसलिये आचार्य कहते हैं कि मुझको एक शुद्धोपयोगकी ही शरण प्राप्त होओ जिससे कि दुःखस्वरूप संसारका अभाव होवे ॥ ७८॥ आगे कहते हैं कि मैं समस्त पापयोगोंको छोड़कर चारित्रको प्राप्त हुआ हूं, यदि मैं शुभोपयोगके वश होकर मोहको दूर न करूंगा तो मेरे शुद्धात्मका लाभ कहांसे होगा? इसलिये मोहके नाश करनेको उद्यमी हूं;—[**पापारम्भं**] पापका कारण आरंभको [**त्यक्त्वा**] छोड़कर [**वा**] अथवा [**शुभे चरित्ते**] शुभ आचरणमें [**समुत्थितः**] प्रवर्तता हुआ ['यः'] जो पुरुष [**यदि**] यदि [**मोहादीन्**] मोह राग द्वेषादिकोंको [**न जहाति**] नहीं छोड़ता है ['तदा'] तो [**सः**] वह [**शुद्धं आत्मकं**] शुद्ध अर्थात् कर्मकलंकरहित शुद्ध जीवद्रव्यको [न ल-

यः खलु समस्तसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणं परमसामायिकं नाम चारित्रं प्रतिज्ञायापि शुभोपयोगवृत्त्याटकाभिसारिकयैवाभिसार्यमाणो न मोहवाहिनीविधेयतामवकिरति स किल समासन्नमहादुःखसंकटः कथमात्मानमविप्लुतं लभते ? अतो मया मोहवाहिनीविजयाय बद्धा कक्षेयम् ॥ ७९ ॥

अथ कथं मया विजेतव्या मोहवाहिनीत्युपायमालोचयति;—

विस्तरः—कोपि मोक्षार्थी परमोपेक्षालक्षणं परमसामायिकं पूर्वं प्रतिज्ञाय पश्चाद्विषयसुखसाधकशुभोपयोगपरिणत्या मोहितान्तरङ्गः सन् निर्विकल्पसमाधिलक्षणपूर्वोक्तसामायिकचारित्राभावे सति निर्मोहशुद्धात्मतत्त्वप्रतिपक्षभूतान् मोहादीन्न त्यजति यदि चेत्तर्हि जिनसिद्धसदृशं निजशुद्धात्मानं न लभत इति सूत्रार्थः ॥७९॥ अथ शुद्धोपयोगाभावे यादृशं जिनसिद्धस्वरूपं न लभते तमेव कथयति;—

तवसंजमप्पसिद्धो सुद्धो सग्गापवग्गमग्गकरो ।
अमरासुरिंदमहिदो देवो सो लोयसिहरत्थो ॥ १ ॥

तवसंजमप्पसिद्धो समस्तरागादिपरभावेच्छात्यागेन स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः, बहिरङ्गेन्द्रियप्राणसंयमबलेन स्वशुद्धात्मनि संयमनात्समरसीभावेन परिणमनं संयमः, ताभ्यां प्रसिद्धो जातस्तपःसंयमप्रसिद्धः **सुद्धो** क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितः **सग्गापवग्गमग्गकरो** स्वर्गः प्रसिद्धः केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयलक्षणोपवर्गो मोक्षस्तयोर्मार्गं करोत्युपदिशति स्वर्गापवर्गमार्गकरः **अमरासुरिंदमहिदो** तत्पदाभिलाषिभिरमरासुरेन्द्रैर्महितः पूजितोऽमरासुरेन्द्रमहितः **देवो सो** स एवं गुणविशिष्टोऽर्हन् देवो भवति । **लोयसिहरत्थो** स एव भगवान् लोकाग्रशिखरस्थः सन् सिद्धो भवतीति जिनसिद्धस्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ १ ॥ अथ तमित्थंभूतं निर्दोषिपरमात्मानं ये श्रद्धति मन्यन्ते तेऽक्षयसुखं लभन्त इति प्रज्ञापयति;—

तं देवदेवदेवं जदिवरवसहं गुरुं तिलोयस्स ।
पणमंति जे मणुस्सा ते सोक्खं अक्खयं जंति ॥ २ ॥

तं देवदेवदेवं देवदेवाः सौधर्मेन्द्रप्रभृतयस्तेषां देव आराध्यो देवदेवदेवस्तं देवदेवदेवं, **जदिवरवसहं** जितेन्द्रियत्वेन निजशुद्धात्मनि यत्नपरास्ते यतयस्तेषां वरा गणधरदेवादयस्तेभ्योऽपि वृषभः प्रधानो यतिवरवृषभस्तं यतिवरवृषभं, **गुरुं तिलोयस्स** अनन्तज्ञानादिगुरुगुणैस्त्रैलोक्यस्यापि गुरुस्तं त्रिलोकगुरुं **पणमंति जे मणुस्सा** तमित्थंभूतं भगवन्तं ये मनुष्यादयो द्रव्यभावनमस्काराभ्यां प्रणमन्त्याराधयन्ति **ते सोक्खं अक्खयं जंति** ते तदाराध-

---

भते] नहीं पाता ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष सब पापक्रियाओंको छोड़कर परम सामायिक नाम चारित्रकी प्रतिज्ञा करके शुभोपयोगक्रियारूप मोहठगकी खोटी स्त्रीके वशमें होजाता है वह, मोहकी सेनाको नहीं जीतसकता, और उसके समीप अनेक दुःख संकट हैं, इसलिये निर्मल आत्माको नहीं पाता । इसीकारण मैंने मोहसेनाके जीतनेको कमर बांधी है ॥ ७९ ॥ आगे मुझसे मोहकी सेना कैसे जीती जावे देखे

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ ८० ॥
यो जानात्यर्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः ।
स जानात्यात्मानं मोहः खलु याति तस्य लयम् ॥ ८० ॥

यो हि नामार्हन्तं द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः परिच्छिनत्ति स खल्वात्मानं परिच्छिनत्ति, उभयोरपि निश्चयेनाविशेषात् । अर्हतोपि पाककाष्ठागतकार्तस्वरस्येव परिस्पष्टमात्मरूपं, ततस्तत्परिच्छेदे सर्वात्मपरिच्छेदः । तत्रान्वयो द्रव्यं, अन्वयविशेषणं गुणः, अन्वयव्यतिरेकाः पर्यायाः । तत्र भगवत्यर्हति सर्वतो विशुद्धे त्रिभूमिकमपि स्वमनसा समयमुत्पश्यन्ति । यश्चेतनोऽयमित्यन्वयस्तद्द्रव्यं, यच्चान्वयाश्रितं चैतन्यमिति विशेषणं स गुणः, ये चैकसमयमात्रावधृतकालपरिमाणतया परस्परपरावृत्ता अन्वयव्यतिरेकास्ते पर्यायाश्चिद्विवर्तनग्रन्थय

नाफलेन परम्परयाऽक्षयानन्तसौख्यं यान्ति लभन्त इति सूत्रार्थः ॥ २ ॥ अथ "चत्तापावारंभं" इत्यादि सूत्रेण यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादिविनाशाभावेन शुद्धात्मलाभो न भवति तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति;—**जो जाणदि अरहंतं** यः कर्ता जानाति । कं । अर्हन्तं । कैः कृत्वा । **दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं** द्रव्यत्वगुणत्वपर्यायत्वैः **सो जाणदि अप्पाणं** स पुरुषोऽर्हत्परिज्ञानात्पश्चादात्मानं जानाति **मोहो खलु जाइ तस्स लयं** तत आत्मपरिज्ञानात्तस्य मोहो दर्शनमोहो लयं विनाशं क्षयं यातीति । तद्यथा—केवलज्ञानादयो विशेषगुणा, अस्तित्वादयः सामान्यगुणाः, परमौदारिकशरीराकारेण यदात्मप्रदेशा[illegible]नामवस्थानं स व्यञ्जनपर्यायः, अगुरुलघुकगुणषड्वृद्धिहानिरूपेण प्रतिक्षणं प्रवर्तमाना अर्थपर्यायाः, एवं लक्षणगुणपर्यायाधारभूतममूर्तमसंख्यातप्रदेशं शुद्धचैतन्यान्वयरूपं द्रव्यं चेति, [illegible] द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं पूर्वमर्हदाभिधाने परमात्मनि ज्ञात्वा पश्चान्निश्चयनयेन तदेवागम[illegible]तयाऽध्यात्मभाषया निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सविकल्पस्वसंवेदज्ञानेन तथैवात्म[illegible]

[illegible] विचार करते हैं;—[यः] जो पुरुष [द्रव्यत्वगुणत्वपर्ययत्वैः] द्रव्य गुण पर्यायोंसे [अर्हन्तं] पूज्य वीतरागदेवको [जानाति] जानता है [सः] वह पुरुष [आत्मानं] अपने स्वरूपको [जानाति] जानता है । और [खलु] निश्चयकर [तस्य] उसीका [मोहः] मोहकर्म [लयं] नाशको [याति] प्राप्त होता है । **भावार्थ**—जैसे पिछली आंचका पकाया हुआ सोना निर्मल होता है उसीप्रकार अरहंतका स्वरूप है । और निश्चयकर जैसा अरहंतका स्वरूप है वैसाही आत्माका शुद्ध स्वरूप है । इसलिये अर्हतके जाननेसे आत्मा जानाजाता है । गुणपर्यायोंके आधारको द्रव्य कहते हैं, तथा द्रव्यके ज्ञानादिक विशेषणोंको गुण कहते हैं और एकसमय मात्र कालके प्रमाणसे चैतन्यादिके परिणति भेदोंको पर्याय कहते हैं । प्रथमही अरहंतके द्रव्य गुण पर्याय अपने ज्ञानमें अवधारण करे, पीछे आपको इन गुण-

इति यावत् । अथैवमस्य त्रिकालमप्येककालमाकलयतो मुक्ताफलानीव प्रलम्बे प्रालम्बे चिद्विवर्तांश्चेतन एव संक्षिप्य विशेषणविशेष्यत्ववासनान्तर्धानाद्धवलिमानमिव प्रालम्बे चेतन एव चैतन्यमन्तर्हितं विधाय केवलं प्रालम्बमिव केवलमात्मानं परिच्छिन्दतस्तदुत्तरोत्तरक्षणक्षीयमानकर्तृकर्मक्रियाविभागतया निःक्रियं चिन्मात्रं भावमधिगतस्य जातस्य मणेरिवाकम्पप्रवृत्तनिर्मलालोकस्यावश्यमेव निराश्रयतया मोहतमः प्रलीयते । यद्येवं लब्धो मया मोहवाहिनीविजयोपायः ॥ ८० ॥

अथैवं प्राप्तचिन्तामणेरपि मे प्रमादो दस्युरिति जागर्ति;—

जीवो ववगदमोहो उवलद्धो तच्चमप्पणो सम्मं ।
जहदि जदि रागदोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥ ८१ ॥

मभाषयाधःप्रवृत्तिकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञदर्शनमोहक्षपणसमर्थपरिणामविशेषबलेन पश्चादात्मनि योजयति । तदनन्तरमविकल्पस्वरूपे प्राप्ते, यथा पर्यायस्थानीयमुक्ताफलानि गुणस्थानीयं धवलत्वं चाभेदनयेन हार एव, तथा पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्याया अभेदनयेनात्मैवेति भावयतो दर्शनमोहान्धकारः प्रलीयते । इति भावार्थः ॥ ८० ॥ अथ प्रमादोत्पादकचारित्रमोहसंज्ञश्चौरोस्तीति मत्वाप्तपरिज्ञानादुपलब्धस्य शुद्धात्मचिन्तामणेः रक्षणार्थं जागर्तीति कथयति;—**जीवो** जीवः कर्ता । किं विशिष्टः । **ववगदमोहो** शुद्धात्मतत्त्वरुचिप्रतिबन्धकविनाशितदर्शनमोहः । पुनरपि किंविशिष्टः । **उवलद्धो** उपलब्धवान् ज्ञातवान् । किं । **तच्चं** परमानन्दैकस्वभावात्मतत्त्वं । कस्य संबन्धि । **अप्पणो** निजशुद्धात्मनः । कथं । **सम्मं** सम्यक् निर्दो-

---

पर्यायोंसे जाने और उसके बाद निजस्वरूपको अभेदरूप अनुभवै । इस आत्माके त्रिकालसंबंधी पर्याय एककालमें अनुभवन करै । जैसे हारमें मोती पोये जाते हैं वह नहीं करते हैं, तैसे ही आत्मामें चित्पर्यायका अभेद करै, जैसे हारमें उज्ज्वलगुणका करते हैं, तैसे ही आत्मामें चेतना गुणको गोपन करै, जैसे पहिरनेवाला पुरुष अभेदरूप हारकी शोभाके सुखको वेदता है, वैसेही केवल ज्ञानसे अभेदरूप आत्मीक सुखको वेदै । ऐसी अवस्थाके होनेपर अगले २ समयोंमें कर्ता कर्म क्रियाका भेद क्षीण होता है, तभी क्रियारहित चैतन्यस्वभावको प्राप्त होता है । जैसे चोखे (खरे) रत्नका अकंप निर्मल प्रकाश है तैसेही चैतन्यप्रकाश जब निर्मल निश्चल होता है तब आश्रयके विना मोहरूपी अंधकारका अवश्यही नाश होता है । आचार्य महाराज कहते हैं जो इस भांति स्वरूपकी प्राप्ति होती है तो मैंने मोहकी सेनाके जीतनेका उपाय पाया ॥ ८० ॥ आगे कहते हैं कि यद्यपि मैंने स्वरूपचिंतामणि पाया है तौभी प्रमादरूप चोर अभी मौजूद हैं इसलिये सावधान होकर मैं जागता हूं;—[व्यपगतमोहः] जिससे मोह दूर होगया है ऐसा [जीवः] आत्मा [आत्मनः] आत्माका [सम्यक् तत्त्वं] यथार्थ स्व-

जीवो व्यपगतमोह उपलब्धवांस्तत्त्वमात्मनः सम्यक् ।
जहाति यदि रागद्वेषौ स आत्मानं लभते शुद्धम् ॥ ८१ ॥

एवमुपवर्णितस्वरूपेणोपायेन मोहमपसार्यापि सम्यगात्मतत्त्वमुपलभ्यापि यदि नाम रागद्वेषौ निर्मूलयति तदा शुद्धमात्मानमनुभवति । यदि पुनः पुनरपि तावनुवर्तेते तदा प्रमादतन्त्रतया लुण्ठितशुद्धात्मतत्त्वोपलम्भचिन्तारत्नोन्तस्ताम्यति । अतो मया रागद्वेषनिषेधायात्यन्तं जागरितव्यम् ॥ ८१ ॥

अथायमेवैको भगवद्भिः स्वयमनुभूयोपदर्शितो निःश्रेयसः पारमार्थिकः पन्था इति मतिं व्यवस्थापयति;—

सव्वेपि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा ।
किच्चा तधोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं ॥ ८२ ॥

संशयादिरहितत्वेन **जहदि जदि रागदोसे** शुद्धात्मानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ **चारित्रमोह**संज्ञौ रागद्वेषौ यदि त्यजति **सो अप्पाणं लहदि सुद्धं** स एवमभेदरत्नत्रयपरिणतो **जीवः** शुद्धबुद्धैकस्वभावमात्मानं लभते मुक्तो भवतीति । किंच पूर्वं ज्ञानकण्ठिकायां "उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुक्खं" इत्युक्तं, अत्र तु "चय (जह) दि जदि रागद्दोसे सो अप्पाणं लहदि सुद्धं" इति भणितम्, उभयत्र मोक्षोस्ति को विशेषः? प्रत्युत्तरमाह—तत्र शुभाशुभयोर्निश्चयेन समानत्वं ज्ञात्वा पश्चाच्छुद्धे शुभरहिते निजस्वरूपे स्थित्वा मोक्षं लभते, तेन कारणेन शुभाशुभमूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्ठिका भण्यते । अत्र तु द्रव्यगुणपर्यायैराप्तस्वरूपं ज्ञात्वा पश्चात्तद्रूपे स्वशुद्धात्मनि स्थित्वा मोक्षं प्राप्नोति, ततः कारणादियमाप्तात्ममूढत्वनिरासार्थं ज्ञानकण्ठिका इत्येतावान् विशेषः ॥ ८१ ॥ अथ पूर्वं द्रव्यगुणपर्यायैराप्तस्वरूपं विज्ञाय पश्चात्तथाभूते स्वात्मनि स्थित्वा सर्वेप्यर्हन्तो मोक्षं गता इति स्वमनसि निश्चयं करोति;—**सव्वेवि य अरहंता** सर्वेपि चार्हन्तः **तेण विधाणेण** द्रव्यगुणपर्यायैः पूर्वमर्ह-

---

रूप [**उपलब्धवान्**] प्राप्त करता हुआ [**यदि**] जो [**रागद्वेषौ**] रागद्वेषरूप प्रमादभाव [**जहाति**] त्यागदेवै [**तदा**] तो [**सः**] वह जीव [**शुद्धं आत्मानं**] निर्मल निजस्वरूपको [**लभते**] प्राप्त होवै । **भावार्थ**—जो कोई भव्यजीव पूर्वे कहे हुए उपायसे मोहका नाश करै, आत्मतत्त्वरूप चिंतामणि रत्नको पावै और पानेके पश्चात् (बाद) रागद्वेषरूप प्रमादके वश न होवे तो शुद्धात्माका अनुभव करसकै । और यदि रागद्वेषके वशीभूत होवै तो प्रमादरूप चोरसे शुद्धात्मअनुभवरूप चिंतामणिरत्नको लुटाके पीछे अंतःकरणमें (चित्तमें) अत्यंत दुःख पावै । इसलिये रागद्वेषके विनाशके निमित्त मुझको सावधान होके जागृतही रहना चाहिये ॥ ८१ ॥ आगे कहते हैं कि भगवंतदेवनेही आप अनुभव कर यही एक मोक्षमार्ग दिखाया है ऐसी बुद्धिकी स्थापना करते हैं;—[**तेन विधानेन**] तिस पूर्वकथित विधानसे [**अर-**

सर्वेपि चार्हन्तस्तेन विधानेन क्षपितकर्मांशाः ।
कृत्वा तथोपदेशं निर्वृतास्ते नमस्तेभ्यः ॥ ८२ ॥

यतः खल्वतीतकालानुभूतक्रमप्रवृत्तयः समस्ता अपि भगवन्तस्तीर्थकराः प्रकारान्तरस्यासंभवादसंभावितद्वैतेनामुनैवैकेन प्रकारेण क्षपणं कर्मांशानां स्वयमनुभूय, परमाप्ततया परेषामप्यायत्यामिदानींत्वे वा मुमुक्षूणां तथैव तदुपदिश्य, निःश्रेयसमध्याश्रिताः । ततो नान्यद्वर्त्म निर्वाणस्येत्यवधार्यते । अलमथवा प्रलपितेन । व्यवस्थिता मतिर्मम, नमो भगवद्भ्यः ॥ ८२ ॥

अथ शुद्धात्मलाभपरिपन्थिनो मोहस्य स्वभावं भूमिकाश्च विभावयति;—

त्परिज्ञानात्पश्चात्तथाभूतस्वात्मावस्थानरूपेण तेन पूर्वोक्तप्रकारेण **खविदकम्मंसा** क्षपितकर्मांशा विनाशितकर्मभेदा भूत्वा **किच्चा तहोवदेसं** अहो भव्या अयमेव निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षमार्गो नान्य इत्युपदेशं कृत्वा **णिव्वादा** निर्वृता अक्षयानन्तसुखेन तृप्ता जाताः, **ते** ते भगवन्तः । **णमो तेसिं** एवं मोक्षमार्गनिश्चयं कृत्वा श्रीकुन्द(ण्ड)कुन्दाचार्यदेवास्तस्मै निजशुद्धात्मानुभूतिस्वरूपमोक्षमार्गाय तदुपदेशकेभ्योऽर्हद्भ्यश्च तदुभयस्वरूपाभिलाषिणः सन्तो 'नमोस्तु तेभ्य' इत्यनेन पदेन नमस्कारं कुर्वन्तीत्यभिप्रायः ॥ ८२ ॥ अथ रत्नत्रयाराधका एव पुरुषा दानपूजागुणप्रशंसानमस्कारार्हा भवन्ति नान्य इति कथयति;—

दंसणसुद्धा पुरिसा णाणपहाणा समग्गचरियत्था ।
पूजासक्काररिहा दाणस्स य हि ते णमो तेसिं ॥ १ ॥

दंसणसुद्धा निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वसाधकेन मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितेन तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणेन दर्शनेन शुद्धा दर्शनशुद्धाः **पुरिसा** पुरुषा जीवाः । पुनरपि कथंभूताः । **णाणपहाणा** निरुपमस्वसंवेदनज्ञानसाधकेन वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमाभ्यासलक्षणज्ञानेन प्रधानाः समर्थाः प्रौढज्ञानप्रधानाः । पुनश्च कथंभूताः । **समग्गचरियत्था** निर्विकारनिश्च-

---

पितकर्मांशा] जिन्होंने कर्मोंके अंश विनाश किये हैं ऐसे [**ते सर्वे अर्हन्त अपि**] वे सब भगवन्त तीर्थंकरदेव भी [**तथा**] उसीप्रकार [**उपदेशं कृत्वा**] उपदेश करके [**निर्वृत्ताः**] मोक्षको प्राप्त हुए । [**तेभ्यः**] उन अरहंत देवोंको [**नमः**] मेरा नमस्कार होवे । **भावार्थ**—भगवान तीर्थंकरदेवने पहले अरहंतका स्वरूप द्रव्यगुण पर्यायसे जाना, पीछे उसीप्रकार अपने स्वरूपका अनुभव करके समस्त कर्मोंका नाश किया । और उसीप्रकार भव्यजीवोंको उपदेश दिया कि, यही मोक्षमार्ग है अन्य नहीं है । तथा आज पंचमकाल (कलियुग) में भी वही उपदेश चला आता है । इसलिये अब बहुत कहांतक कहें, श्रीभगवन्त वीतरागदेव बड़ेही उपकारी हैं उनको तीनों काल नमस्कार होवे ॥ ८२ ॥ आगे शुद्धात्माके लाभका घातक मोहके

दव्वादिएसु मूढो भावो जीवस्स हवदि मोहोत्ति ।
खुब्भदि तेणोच्छण्णो पप्पा रागं व दोसं वा ॥ ८३ ॥

द्रव्यादिकेषु मूढो भावो जीवस्य भवति मोह इति ।
क्षुभ्यति तेनावच्छन्नः प्राप्य रागं वा द्वेषं वा ॥ ८३ ॥

यो हि द्रव्यगुणपर्यायेषु पूर्वमुपवर्णितेषु पीतोन्मत्तकस्येव जीवस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणो मूढो भावः स खलु मोहः तेनावच्छन्नात्मरूपः सन्नयमात्मा, परद्रव्यमात्मद्रव्यत्वेन परगुणमात्मगुणतया परपर्यायानात्मपर्यायभावेन प्रतिपद्यमानः, प्ररूढदृढतरसंस्कारतया परद्रव्यमेवाहरहरुपाददानो दग्धेन्द्रियाणां रुचिवशेनाद्वैतेपि प्रवर्तितद्वैतो रुचितारुचि-

---

लात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रसाधकेनाचारादिशास्त्रकथितमूलोत्तरगुणानुष्ठानादिरूपेण चारित्रेण समग्राः परिपूर्णाः समग्रचारित्रस्थाः **पूजासक्काररिहा** द्रव्यभावलक्षणपूजा गुणप्रशंसा सत्कारस्तयोरर्हा योग्या भवन्ति । **दाणस्स य हि** दानस्य च हि स्फुटं **ते** ते पूर्वोक्तरत्नत्रयाधाराः **णमो तेसिं** नमस्तेभ्य इति नमस्कारस्यापि त एव योग्याः ॥ १ ॥ एवमाप्तात्मस्वरूपविषये मूढत्वनिरासार्थं गाथासप्तकेन द्वितीयज्ञानकण्ठिका गता । अथ शुद्धात्मोपलम्भप्रतिपक्षभूतमोहस्य स्वरूपं भेदांश्च प्रतिपादयति;—**दव्वादिएसु** शुद्धात्मादिद्रव्येषु, तेषां द्रव्याणामनन्तज्ञानाद्यस्तित्वादिविशेषसामान्यलक्षणगुणेषु, शुद्धात्मपरिणतिलक्षणसिद्धत्वादिपर्यायेषु च यथासंभवं पूर्वोपवर्णितेषु वक्ष्यमाणेषु च **मूढो भावो** एतेषु पूर्वोक्तद्रव्यगुणपर्यायेषु विपरीताभिनिवेशरूपेण तत्त्वसंशयजनको मूढो भावः **जीवस्स हवदि मोहोत्ति** इत्थंभूतो भावो जीवस्य दर्शनमोह इति भवति । **खुब्भदि तेणुच्छण्णो** तेन दर्शनमोहेनावच्छन्नो झम्पितः सन्नक्षुभितात्मतत्त्वविपरीतेन क्षोभेण क्षोभं स्वरूपचलनं विपर्ययं गच्छति । किं कृत्वा । **पप्पा रागं व दोसं**

स्वभावको और भूमिकाको कहते हैं;–[**जीवस्य**] आत्माका [**द्रव्यादिकेषु**] द्रव्य, गुण, पर्यायोंमें जो [**मूढः भावः**] विपरीत अज्ञानभाव है सो [**मोहः इति**] मोह ऐसा नाम [**भवति**] होता है अर्थात् जिस भावसे यह जीव धतूरा खानेवाले पुरुषके समान द्रव्य गुण पर्यायोंको यथार्थ नहीं जानता है और न श्रद्धान करता है उस भावको 'मोह' कहते हैं । [**तेन**] उस दर्शनमोह करके [**अवच्छन्नः**] आच्छादित जो यह जीव सो [**रागं वा द्वेषं वा**] रागभाव अथवा द्वेषभावको [**प्राप्य**] पाकर [**क्षुभ्यति**] क्षोभ पाता है । अर्थात् इस दर्शनमोहके उदयसे परद्रव्योंको अपनी द्रव्य जानता है, परगुणको आत्मगुण मानता है और परपर्यायको आत्मपर्याय जानके अंगीकार करता है । **भावार्थ**—यह जीव अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुआ जो परमें आत्मसंस्कार है उससे सदाकाल परद्रव्यको अंगीकार करता है, इंद्रियोंके वश होकर इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष भावोंसे द्वैतभावको

तेषु रागद्वेषावुपश्लिष्य प्रचुरतराम्भोभाररयाहतः सेतुबन्ध इव द्वेधा विदीर्यमाणो नितरां क्षोभमुपैति । अतो मोहरागद्वेषभेदात्रिभूमिको 'मोहः' ॥ ८३ ॥

अथानिष्टकार्यकारणत्वमभिधायत्रिभूमिकस्यापि मोहस्य क्षयमासूत्रयतिः—

मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स ।
जायदि विविहो बंधो तम्हा ते संखवइदव्वा ॥ ८४ ॥

मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य जीवस्य ।
जायते विविधो बन्धस्तस्मात्ते संक्षपयितव्याः ॥ ८४ ॥

एवमस्य तत्त्वाप्रतिपत्तिनिमीलितस्य मोहेन वा रागेण वा द्वेषेण वा परिणतस्य तृणपटलावच्छन्नगर्तसंगतस्य करेणुकुट्टनीगात्रासक्तस्य प्रतिद्विरददर्शनोद्धतप्रविधावितस्य च सि-

---

वा निर्विकारशुद्धात्मनो विपरीतमिष्टानिष्टेन्द्रियविषयेषु हर्षविषादरूपं चारित्रमोहसंज्ञं रागद्वेषं वा प्राप्य चेति । अनेन किमुक्तं भवति । मोहो दर्शनमोहो रागद्वेषद्वयं चारित्रमोहश्चेति त्रिभूमिको मोह इति ॥ ८३ ॥ अथ दुःखहेतुभूतबन्धस्य कारणभूता रागद्वेषमोहा निर्मूलनीया इत्याघोषयतिः—**मोहेण व रागेण व दोसेण व परिणदस्स जीवस्स** मोहरागद्वेषपरिणतस्य मोहादिरहितपरमात्मस्वरूपपरिणतिच्युतस्य बहिर्मुखजीवस्य **जायदि विविहो बंधो** शुद्धोपयोगलक्षणो भावमोक्षस्तद्बलेन जीवप्रदेशकर्मप्रदेशानामत्यन्तविश्लेषो द्रव्यमोक्षः, इत्थंभूतद्रव्यभावमोक्षाद्विलक्षणः सर्वप्रकारोपादेयभूतस्वाभाविकसुखविपरीतस्य नारकादिदुःखस्य कारणभूतो विविधबन्धो जायते । **तम्हा ते संखवइदव्वा** यतो रागद्वेषमोहपरिणतस्य जीवस्येत्थं-

---

प्राप्त होता है । यद्यपि संसारके सर्व विषय एक सरीखे हैं तौभी रागद्वेषरूप भावोंसे उसे भले बुरे लगते हैं । जैसे किसी नदीका बंधा हुआ पुल पानीके अत्यंत प्रवाहसे भंग होकर दो खंडोंमें बँट जाता है उसीप्रकार यह आत्मा मोहके तीव्र उदयसे रागद्वेषभावरूप परिणमन करके द्वैतभावको धारण करता हुआ अत्यंत आकुल रहता है । इसकारण एक मोहके राग, द्वेष और मोह ये तीन भेद जानने चाहिये ॥ ८३ ॥ आगे कहते हैं कि यह मोह अनिष्ट कार्य करनेका कारण है इसलिये पूर्वोक्त तीन प्रकार मोहका क्षय करना योग्य है;—[**मोहेन**] मोहभावसे [**व रागेण**] अथवा रागभावसे [**वा**] अथवा [**द्वेषेण**] दुष्टभावसे [**परिणतस्य जीवस्य**] परिणमते हुए जीवके [**विविधः बन्धः**] अनेक प्रकार कर्मबंध [**जायते**] उत्पन्न होता है [**तस्मात्**] इसलिये [**ते**] वे राग, द्वेष और मोहभाव [**संक्षपयितव्याः**] मूल सत्तासे क्षय करने योग्य हैं । **भावार्थ**—जीवके रागद्वेषमोह इन तीन भावोंसे ज्ञानावरणादि अनेक कर्मबन्ध होते हैं इसलिये इन तीनों भावोंका नाश करना चाहिये । जैसे जंगलका मदोन्मत्त हस्ती (हाथी) मोहसे अज्ञानी होकर सिखलाई हुई कुट्टिनी हस्तिनीके अत्यंत प्रेमभावके वश आलिंगन करता है तथा द्वेषभावसे अन्य हस्तियोंको

न्धुरस्येव भवति नाम नानाविधो बन्धः । ततोमी अनिष्टकार्यकारिणो मुमुक्षुणा मोह-रागद्वेषाः सम्यग्निर्मूलकाषं कषित्वा क्षपणीयाः ॥ ८४ ॥

अथामी अमीभिर्लिङ्गैरुपलभ्योद्भवन्त एव निशुम्भनीया इति विभावयति;—

अट्ठे अजधागहणं करुणाभावो य तिरियमणुएसु ।
विसएसु अप्पसंगो मोहस्सेदाणि लिंगाणि ॥ ८५ ॥

अर्थे अयथाग्रहणं करुणाभावश्च तिर्यङ्मनुजेषु ।
विषयेषु च प्रसङ्गो मोहस्यैतानि लिङ्गानि ॥ ८५ ॥

अर्थानामयाथातथ्यप्रतिपत्त्या तिर्यग्मनुष्येषु प्रेक्षार्हेष्वपि कारुण्यबुद्ध्या च मोहमभीष्टविषयप्रसङ्गेन रागमनभीष्टविषयाप्रीत्या द्वेषमिति त्रिभिर्लिङ्गैरधिगम्य झगिति संभवन्नपि त्रिभूमिकोपि मोहो निहन्तव्यः ॥ ८५ ॥

भूतो बन्धो भवति ततो रागादिरहितशुद्धात्मध्यानेन ते रागद्वेषमोहाः सम्यक् क्षपयितव्या इति तात्पर्यम् ॥ ८४ ॥ अथ स्वकीयस्वकीयलिङ्गैः रागद्वेषमोहान् ज्ञात्वा यथासंभवं त एव विनाशयितव्या इत्युपदिशति;—**अट्ठे अजधागहणं** शुद्धात्मादिपदार्थे यथास्वरूपस्थितेपि विपरीताभिनिवेशरूपेणायथाग्रहणं **करुणाभावो य** शुद्धात्मोपलब्धिलक्षणपरमोपेक्षासंयमाद्विपरीतः करुणाभावो दयापरिणामश्च अथवा व्यवहारेण करुणाया अभावः । केषु विषयेषु । **मणुवतिरिएसु** मनुष्यतिर्यग्जीवेषु, इति दर्शनमोहचिन्हं । **विसयेसु अप्पसंगो** निर्विषयसुखास्वादरहितबहिरात्मजीवानां मनोज्ञामनोज्ञविषयेषु च योसौ प्रकर्षेण सङ्गः संसर्गस्तं दृष्ट्वा प्रीत्यप्रीतिलिङ्गाभ्यां चारित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ च ज्ञायेते विवेकिभिः, ततस्तत्परिज्ञानानन्तरमेव

उस हस्तिनीके पास आते देख लड़नेको सामने दौड़ता है और तृणादिकसे आच्छादित (ढंके हुए) गड्ढेमें पड़कर पकड़नेवाले पुरुषोंसे नाना प्रकार बांधा जाता है । इसीतरह इस जीवके भी मोह राग द्वेषभावोंसे अनेक प्रकार कर्मबंध होता है । इसलिये मोक्षकी इच्छा करनेवालेको अनिष्ट कार्यके कारणरूप मोहादि तीनों भाव मूलसत्तासे ही सर्व प्रकार क्षय करने चाहिये ॥ ८४ ॥ आगे कहते हैं कि ऊपर कहे तीनों भाव इन लक्षणोंसे उत्पन्न होते देखकर नाश करने चाहिये;—[**अर्थे**] पदार्थोंमें [**अयथाग्रहणं**] जैसेका तैसा ग्रहण नहीं करना अर्थात् अन्यका अन्य जानना [**च**] तथा [**तिर्यङ्मनुजेषु**] तिर्यंच और मनुष्योंमें [**करुणाभावः**] ममतासे दयारूप भाव [**च**] और [**विषयेषु**] संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें [**प्रसङ्गः**] लगना [**एतानि**] इतने [**मोहस्य**] मोहके [**लिङ्गानि**] चिन्ह हैं ॥ **भावार्थ**—मोहके तीन भेद हैं—दर्शनमोह, राग, और द्वेष । पदार्थोंको औरका और जानना तथा मनुष्य—तिर्यंचोंमें ममत्वबुद्धिसे दया होना—ये तो दर्शन मोहके चिन्ह हैं । इष्ट विषयोंमें प्रीति यह रागका चिन्ह है । और अनिष्ट (अप्रिय) पदार्थोंमें क्रूर दृष्टि यह द्वेषका

अथ मोहक्षपणोपायान्तरमालोचयति;—

जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा ।
खीयदि मोहोवचयो तम्हा सत्थं समधिदव्वं ॥ ८६ ॥

जिनशास्त्रादर्थान् प्रत्यक्षादिभिर्बुध्यमानस्य नियमात् ।
क्षीयते मोहोपचयः तस्मात् शास्त्रं समध्येतव्यम् ॥ ८६ ॥

यत्किल द्रव्यगुणपर्यायस्वभावेनार्हतो ज्ञानादात्मनस्तथा ज्ञानं मोहक्षपणोपायत्वेन प्राक् प्रतिपन्नं । तत् खलूपायान्तरमिदमपेक्षते । इदं हि विहितप्रथमभूमिकासंक्रमणस्य सर्वज्ञोपज्ञतया सर्वतोप्यबाधितं शाब्दं प्रमाणमाक्रम्य क्रीडतस्तत्संस्कारस्फुटीकृतविशिष्टसंवेदनशक्तिसंपदः सहृदयविद्वज्जनचित्तानन्दप्रकाशदात्रानन्दोद्भेददायिना प्रत्यक्षेणान्येन वा

निर्विकारस्वशुद्धात्मभावनया रागद्वेषमोहा निहन्तव्या इति सूत्रार्थः ॥ ८५ ॥ अथ द्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानाभावे मोहो भवतीति यदुक्तं पूर्वं तदर्थमागमाभ्यासं कारयति; अथवा द्रव्यगुणत्वपर्यायत्वैरर्हत्परिज्ञानादात्मपरिज्ञानं भवतीति यदुक्तं, तदात्मपरिज्ञानमिममागमाभ्यासमपेक्षत इति पातनिकाद्वयं मनसि धृत्वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—**जिणसत्थादो अट्ठे पच्चक्खादीहिं बुज्झदो णियमा** जिनशास्त्रात्सकाशाच्छुद्धात्मादिपदार्थान् प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्बुध्यमानस्य जानतो जीवस्य नियमान्निश्चयात् । किं फलं भवति । **खीयदि मोहोवचओ** दुरभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः **खीयदि** क्षीयते प्रलीयते क्षयं याति । **तम्हा सत्थं समहिदव्वं** तस्माच्छास्त्रं सम्यगध्येतव्यं पठनीयमिति । तद्यथा—वीतरागसर्वज्ञप्रणीतशास्त्रात् "एगो मे सस्सदो अप्पा" इत्यादि परमात्मोपदेशकश्रुतज्ञानेन तावदात्मानं जानीते कश्चिद्भव्यः, तदनन्तरं विशिष्टाभ्यासवशेन परमसमाधिकाले रागादिविकल्परहितमानसप्रत्यक्षेण च तमेवात्मानं परिच्छि-

---

लक्षण है । इन तीन चिन्हों (लक्षणों) से मोहको उत्पन्न होते हुए देखकर उसका नाश अवश्यही करना चाहिये ॥ ८५ ॥ आगे मोहका क्षय करनेके लिये अन्य उपायका विचार करते हैं;—**[प्रत्यक्षादिभिः]** प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणज्ञानों करके **[जिनशास्त्रात्]** वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगमसे **[अर्थान्]** पदार्थोंको **[बुध्यमानस्य]** जाननेवाले पुरुषके **[नियमात्]** नियमसे **[मोहोपचयः]** मोहका समूह अर्थात् विपरीतज्ञान व श्रद्धान **[क्षीयते]** नाशको प्राप्त होता है **[तस्मात्]** इसलिये **[शास्त्रं]** जिनागम **[समध्येतव्यम्]** अच्छीतरह अध्ययन करना अभ्यास चाहिये ॥ **भावार्थ**—पहले मोहके नाश करनेका उपाय अर्हतके द्रव्य गुण पर्यायोंके जाननेसे आत्माका ज्ञान होना बतलाया है, परंतु वह उपाय दूसरे उपायकोभी चाहता है, क्योंकि अर्हतके द्रव्यगुण पर्यायका ज्ञान जिनागमके विना नहीं होता । इसलिये जिनागम मोहके नाशमें एक बलवान् उपाय है । जिन भव्य जीवोंने पहलेही ज्ञान भूमिकामें गमन किया है वे कुनयोंसे अखंडित जिनप्रणीत आगमको प्रमाणकरके

तदविरोधिना प्रमाणजातेन तत्त्वतः समस्तमपि वस्तुजातं परिच्छिन्दता क्षीयत एवातत्त्वाभिनिवेशसंस्कारकारी मोहोपचयः । अतो हि मोहक्षपणे परमं शब्दब्रह्मोपासनं भावज्ञानावष्टम्भदृढीकृतपरिणामेन सम्यगधीयमानमुपायान्तरम् ॥ ८६ ॥

अथ कथं जैनेन्द्रे शब्दब्रह्मणि किलार्थानां व्यवस्थितिरिति वितर्कयति;—

दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया ।
तेसु गुणपज्जयाणं अप्पा दव्वत्ति उवदेसो ॥ ८७ ॥

द्रव्याणि गुणास्तेषां पर्याया अर्थसंज्ञया भणिताः ।
तेषु गुणपर्यायाणामात्मा द्रव्यमित्युपदेशः ॥ ८७ ॥

नत्ति । तथैवानुमानेन वा, तथाहि—अत्रैव देहे निश्चयनयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मास्ति । कस्माद्धेतोः । निर्विकारस्वसंवेदनप्रत्यक्षत्वात् सुखादिवत् इति, तथैवान्येपि पदार्था यथासंभवमागमाभ्यासबलोत्पन्नप्रत्यक्षेणानुमानेन वा ज्ञायन्ते । ततो मोक्षार्थिना भव्येनागमाभ्यासः कर्तव्य इति तात्पर्यम् ॥ ८६ ॥ अथ द्रव्यगुणपर्यायाणामर्थसंज्ञां कथयति;—**दव्वाणि गुणा तेसिं पज्जाया अट्ठसण्णया भणिया** द्रव्याणि गुणास्तेषां द्रव्याणां पर्यायाश्च त्रयोप्यर्थसंज्ञया भणिताः कथिता अर्थसंज्ञा भवन्तीत्यर्थः । **तेसु** तेषु त्रिषु द्रव्यगुणपर्यायेषु मध्ये **गुणपज्जयाणं अप्पा** गुणपर्यायाणां संबन्धी आत्मा स्वभावः । कः इति पृष्टे । **दव्वत्ति उवदेसो**

क्रीडा करते हैं । जिनागमके बलसे उनके आत्मज्ञानशक्तिरूप संपदा प्रगट होती है । तथा प्रत्यक्ष परोक्ष ज्ञानसे सब वस्तुओंके ज्ञाता द्रष्टा होते हैं, और तभी उनकें यथार्थज्ञानसे मोहका नाश होता है । इसलिये मोहनाशके उपायोंमें शास्त्ररूप शब्दब्रह्मकी सेवा करना योग्य है । भावश्रुत ज्ञानके बलसे दृढ परिणाम करके आगमपाठका अभ्यास बड़ा उपाय है ॥ ८६ ॥ अब कहते हैं कि जिन भगवानके कहेहुए शब्दब्रह्ममें सब पदार्थोंके कथनकी यथार्थ स्थिति है;—[**द्रव्याणि**] गुणपर्यायोंके आधाररूप सब द्रव्य [**तेषां**] उन द्रव्योंके [**गुणाः**] सहभावी गुण और [**पर्यायाः**] क्रमवर्ती पर्याय [**अर्थसंज्ञया**] "अर्थ" ऐसे नामसे [**भणिताः**] कहे हैं । [**तेषु**] उन गुणपर्यायोंमें [**गुणपर्यायाणाम्**] गुणपर्यायोंका [**आत्मा**] सर्वस्व [**द्रव्यं**] द्रव्य है । [**इति**] ऐसा [**उपदेशः**] भगवानका उपदेश है । **भावार्थ**—द्रव्य, गुण, पर्याय, इन तीनोंका "अर्थ" ऐसा नाम है । क्योंकि समय २ अपने गुणपर्यायोंके प्रति प्राप्त होते हैं, अथवा गुणपर्यायों करके अपने स्वरूपको प्राप्त होते हैं, इसलिये द्रव्योंका नाम "अर्थ" है । "अर्थ" शब्दका अर्थ गमन अथवा प्राप्त होता है, क्योंकि आधारभूत द्रव्यको प्राप्त होता है अथवा द्रव्यकरके प्राप्त किया जाता है, इसलिये गुणोंका नाम "अर्थ" है । और क्रमसे परिणमन करके द्रव्यको प्राप्त होते हैं अथवा द्रव्यकरके अपने स्वरूपको प्राप्त होते हैं इसलिये पर्या-

द्रव्याणि च गुणाश्च पर्यायाश्च अभिधेयभेदेऽप्यभिधानाभेदेन अर्थाः, तत्र गुणपर्यायान् प्रति गुणपर्यायैरर्यन्त इति वा अर्था द्रव्याणि, द्रव्याण्याश्रयत्वेन प्रतिद्रव्यैराश्रयभूतैरर्यन्त इति वा अर्था गुणाः, द्रव्याणि क्रमपरिणामेनेति द्रव्यैः क्रमपरिणामेनार्यंत इति वा अर्थाः पर्यायाः । यथा हि सुवर्णं पीततादीन् गुणान् कुण्डलादींश्च पर्यायानियर्ति तैरर्यमाणं वा अर्थो द्रव्यस्थानीयं, यथा च सुवर्णमाश्रयत्वेनार्यतस्तेनार्यभूतेनार्यमाणा वा अर्था पीततादयो गुणाः, यथा च सुवर्णं क्रमपरिणामेनेयर्ति तेन क्रमपरिणामेनार्यमाणा वा अर्थाः कुण्डलादयः पर्यायाः । एवमन्यत्रापि । यथा चैतेषु सुवर्णपीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायेषु पीततादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां सुवर्णादपृथग्भावात्सुवर्णमेवात्मा तथा च तेषु द्रव्यगुणपर्यायेषु गुणपर्यायाणां द्रव्यादपृथग्भावाद्द्रव्यमेवात्मा ॥८७॥

अथैवं मोहक्षपणोपायभूतजिनेश्वरोपदेशलाभेपि पुरुषकारोर्थक्रियाकारीति पौरुषं व्यापारयति;—

द्रव्यमेव स्वभाव इत्युपदेशः, अथवा द्रव्यस्य कः स्वभाव ? इति पृष्टे गुणपर्यायाणामात्मा एव स्वभाव इति । अथ विस्तरः—अनन्तज्ञानसुखादिगुणान् तथैवामूर्तत्वातीन्द्रियत्वसिद्धत्वादिपर्यायांश्च इयर्ति गच्छति परिणमत्याश्रयति येन कारणेन तस्मादर्थो भण्यते । किं । शुद्धात्मद्रव्यम् । तच्छुद्धात्मद्रव्यमाधारभूतमियूरति गच्छन्ति परिणमन्त्याश्रयन्ति येन कारणेन ततोर्था भण्यन्ते । के ते । ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाः । ज्ञानत्वसिद्धत्वादिगुणपर्यायाणामात्मा स्वभावः । क इति पृष्टे शुद्धात्मद्रव्यमेव स्वभावः, अथवा शुद्धात्मद्रव्यस्य कः स्वभाव इति पृष्टे पूर्वोक्तगुणपर्याया एव । एवं शेषद्रव्यगुणपर्यायाणामप्यर्थसंज्ञा बोद्धव्येत्यर्थः ॥ ८७ ॥ अथ दुर्लभजैनोपदेशं लब्ध्वापि य एव मोहरागद्वेषान्निहन्ति स एवाशेषदुःखक्षयं प्रामोतीत्यावेदयति;—य

योंका नाम "अर्थ" है । जैसे—सोना अपने पीत आदि गुणोंको और कुंडलादि पर्यायों (अवस्थाओं)को प्राप्त होता है, अथवा गुणपर्यायोंसे सुवर्णपनेको प्राप्त होता है इसलिये सोनेको अर्थ कहते हैं । और जैसे आधारभूत सोनेको पीतत्वादि गुण प्राप्त होते हैं, अथवा सोनेसे प्राप्त होते हैं इसकारण पीततादि गुणोंको अर्थ कहते हैं । और जैसे क्रम परिणामसे कुंडलादि पर्याय सोनेको प्राप्त होते हैं अथवा सोनेसे प्राप्त होते हैं इसलिये कुंडलादि पर्यायोंको अर्थ कहते हैं । इसप्रकार द्रव्य, गुण, पर्यायोंका अर्थ है । तथा जैसे सुवर्ण, पीतत्वादि गुण और कुंडलादि पर्यायोंमें पीततादि कुंडलादि पर्यायोंको सोनेसे जुदापना नहीं है, इसलिये सुवर्ण ही गुणपर्यायोंका सर्वस्व है आधार है । उसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायोंमें गुणपर्यायोंको द्रव्यसे पृथक्पना नहीं है इसलिये द्रव्य अपने गुणपर्यायोंका सर्वस्व है आधार है अर्थात् द्रव्यका गुणपर्यायोंसे अभेद है ॥ ८७ ॥ आगे यद्यपि मोहके नाश करनेका उपाय जिनेश्वरका उपदेश है, परंतु उसके लाभमेंभी पुरुषार्थ करना कार्यकारी है इसलिये

जो मोहरागदोसे णिहणदि उवलद्ध जोण्हमुवदेसं ।
सो सव्वदुक्खमोक्खं पावदि अचिरेण कालेण ॥ ८८ ॥

यो मोहरागद्वेषान्निहन्ति उपलभ्य जैनमुपदेशम् ।
स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥ ८८ ॥

इह हि द्राघीयसि सदाजवं जवपथे कथमप्यमुं समुपलभ्यापि जैनेश्वरं निशिततरवारिधारापथस्थानीयमुपदेशं य एव मोहरागद्वेषाणामुपरि दृढतरं निपातयति स एव निखिलदुःखपरिमोक्षं क्षिप्रमेवाप्नोति, नापरो व्यापारः करवालपाणिरिव । अत एव सर्वारम्भेण मोहक्षपणाय पुरुषकारे निषीदामि ॥ ८८ ॥

अथ स्वपरविवेकसिद्धेरेव मोहक्षपणं भवतीति स्वपरविभागसिद्धये प्रयतते;—

णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहि संबद्धं ।
जाणदि जदि णिच्छयदो जो सो मोहक्खयं कुणदि ॥ ८९ ॥

एव मोहरागद्वेषान्निहन्ति । किं कृत्वा । उपलभ्य प्राप्य । कम् । जैनोपदेशं, स सर्वदुःखमोक्षं प्राप्नोति । केन । स्तोककालेनेति । तद्यथा—एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियादिदुर्लभपरम्परया जैनोपदेशं प्राप्य मोहरागद्वेषविलक्षणं निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिलक्षणं निश्चयसम्यक्त्वज्ञानद्वयाविनाभूतं वीतरागचारित्रसंज्ञं निशितखड्गं य एव मोहरागद्वेषशत्रूनामुपरि दृढतरं पातयति स एव पारमार्थिकानाकुलत्वलक्षणसुखविलक्षणानां दुःखानां क्षयं करोतीत्यर्थः ॥ ८८ ॥ एवं द्रव्यगुणपर्यायविषये मूढत्वनिराकरणार्थं गाथाषट्केन तृतीयज्ञानकण्ठिका गता । अथ स्वपरात्मयोर्भेदज्ञानात् मोहक्षयो भवतीति प्रज्ञापयति;—**णाणप्पगमप्पाणं परं च दव्वत्तणाहि संबद्धं जाणदि जदि** ज्ञानात्मकमात्मानं जानाति यदि । कथंभूतं । स्वकीयशुद्ध-

---

उपायको दिखलाते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**जैनं उपदेशं**] वीतराग प्रणीत आत्मधर्मके उपदेशको [**उपलभ्य**] पाकर [**मोहरागद्वेषान्**] मोह, राग और द्वेषभावोंको [**निहन्ति**] घात करता है [**सः**] वह [**अचिरेण कालेन**] बहुत थोड़े समयसे [**सर्वदुःखमोक्षं**] संपूर्ण दुःखोंसे भिन्न (जुदी) अवस्थाको [**प्राप्नोति**] पाता है । **भावार्थ**—इस अनादि संसारमें किसीएक प्रकारसे तलवारकी धारके समान जिन प्रणीत उपदेशको पाकर जो मोह राग द्वेषरूप शत्रुओंको मारता है वह जीव शीघ्रही सब दुःखोंसे मुक्त होकर (छूटकर) सुखी होता है । जैसे कि सुभट तरवारसे शत्रुओंको मारकर सुखसे बैठता है । इसलिये मैं सब तरह उद्यमी होकर मोहके नाश करनेको पुरुषार्थमें सावधान हुआ बैठा हूं ॥ ८८ ॥ अब स्वपरभेदके विज्ञानकी सिद्धिसे ही मोहका नाश होता है इसलिये स्व तथा परके भेदकी सिद्धिकेलिये प्रयत्न करते हैं;— [**यः**] जो जीव [**यदि**] यदि [**निश्चयतः**] निश्चयसे [**ज्ञानात्मकं**] ज्ञानस्वरूप [**आत्मानं**] परमात्माको [**द्रव्यत्वेन**]

ज्ञानात्मकमात्मानं परं च द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धम् ।
जानाति यदि निश्चयतो यः स मोहक्षयं करोति ॥ ८९ ॥

य एव स्वकीयेन चैतन्यात्मकेन द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धमात्मानं परं च परकीयेन यथोचितेन द्रव्यत्वेनाभिसंबद्धमेव निश्चयतः परिच्छिनत्ति, स एव सम्यगवाप्तस्वपरविवेकः सकलं मोहं क्षपयति । अतः स्वपरविवेकाय प्रयतोस्मि ॥ ८९ ॥

अथ सर्वथा स्वपरविवेकसिद्धिरागमतो विधातव्येत्युपसंहरति;—

तम्हा जिणमग्गादो गुणेहिं आदं परं च दव्वेसु ।
अभिगच्छदु णिम्मोहं इच्छदि जदि अप्पणो अप्पा ॥ ९० ॥

तस्माज्जिनमार्गाद्गुणैरात्मानं परं च द्रव्येषु ।
अभिगच्छतु निर्मोहमिच्छति यद्यात्मन आत्मा ॥ ९० ॥

इह खल्वागमनिगदितेष्वनन्तेषु गुणेषु कैश्चिद्गुणैरन्ययोगव्यवच्छेदकतया साधारण-

---

चैतन्यद्रव्यत्वेनाभिसंबद्धं, न केवलमात्मानं । परं च यथोचितचेतनाचेतनपरकीयद्रव्यत्वेनाभिसंबद्धं । कस्मात् । **णिच्छयदो** निश्चयतः निश्चयनयानुकूलं भेदज्ञानमाश्रित्य । **जो** यः कर्ता **सो** स **मोहक्खयं कुणदि** निर्मोहपरमानन्दैकस्वभाव शुद्धात्मनो विपरीतस्य मोहस्य क्षयं करोतीति सूत्रार्थः ॥ ८९ ॥ अथ पूर्वसूत्रे यदुक्तं स्वपरभेदविज्ञानं तदागमतः सिद्ध्यतीति प्रतिपादयति;—**तम्हा जिणमग्गादो** यस्मादेवं भणितं पूर्वं स्वपरभेदविज्ञानाद् मोहक्षयो भवति, तस्मात्कारणाज्जिनमार्गाज्जिनागमात् **गुणेहिं** गुणैः **आदं** आत्मानं, न केवलमात्मानं परं च परद्रव्यं च । केषु मध्ये । **दव्वेसु** शुद्धात्मादिषड्द्रव्यमध्येषु **अभिगच्छदु** अभिगच्छतु जानातु यदि । किं । **णिम्मोहं इच्छदि जदि** निर्मोहभावमिच्छति यदि

अपने द्रव्यस्वरूपसे [**अभिसंबद्धं**] संयुक्त [**जानाति**] जानता है [**च**] और [**परं**] पर अर्थात् पुद्गलादि अचेतनको जड़स्वरूप कर आत्मासे भिन्न अपने अचेतन द्रव्यस्वरूप संयुक्त जानता है [**सः**] वह जीव [**मोहक्षयं**] मोहका क्षय [**करोति**] करता है । **भावार्थ**—जो जीव अपने चैतन्य स्वभावकर आपको परस्वभावसे भिन्न जानते हैं और परको जड़ स्वभावसे पर (अन्य) जानते हैं वे जीव स्वपरविवेकी हैं और वे ही भेदविज्ञानी मोहका क्षय करते हैं । इसलिये मैं स्वपर विवेकके निमित्त प्रयत्न (उद्योग) करता हूं ॥ ८९ ॥ अब स्वपरविवेककी सब प्रकार सिद्धि जिनभगवान प्रणीत आगमसे करनी चाहिये, ऐसा कहकर इस कथनको संक्षेप करते हैं;—[**तस्मात्**] इसलिये [**यदि**] जो [**आत्मा**] यह जीव [**आत्मनः**] आपको [**निर्मोहं**] मोहरहित वीतरागभावरूप [**इच्छति**] चाहता है, तो [**जिनमार्गात्**] वीतरागदेव कथित आगमसे [**गुणैः**] विशेष गुणोंके द्वारा [**द्रव्येषु**] छह द्रव्योंमेंसे [**आत्मानं**] आपको [**च**] और [**परं**] अन्यद्रव्योंको [**अभिगच्छतु**]

तामुपादाय विशेषणतामुपगतैरनन्तायां द्रव्यसंततौ स्वपरविवेकमुपगच्छन्तु, मोहप्रहाणप्रवणबुद्धयो लब्धवर्णाः। तथाहि—यदिदं सदकारणतया स्वतः सिद्धमन्तर्बहिर्मुखप्रकाशशालितया स्वपरपरिच्छेदकं मदीयं मम नाम चैतन्यमहमनेन तेन समानजातीयमसमानजातीयं वा द्रव्यमन्यदपहाय ममात्मन्येव वर्तमानेनात्मीयमात्मानं सकलत्रिकालकलितध्रौव्यं द्रव्यं जानामि। एवं पृथक्त्ववृत्तस्वलक्षणैर्द्रव्यमन्यदपहाय तस्मिन्नेव च वर्तमानैः सकलत्रिकालकलितध्रौव्यं द्रव्यमाकाशं धर्ममधर्मं कालं पुद्गलमात्मान्तरं च निश्चिनोति। ततो नाहमाकाशं न धर्मो नाधर्मो न च कालो न पुद्गलो नात्मान्तरं च भवामि, यतोमीष्वेकापवरकप्रबोधितानेकदीपप्रकाशेष्विव संभूयावस्थितेष्वपि मच्चैतन्यं स्वरूपादप्रच्युतमेव मां पृथगवगमयति। एवमस्य निश्चितस्वपरविवेकस्यात्मनो न खलु विकारकारिणो मोहाङ्कुरस्य प्रादुर्भूतिः स्यात्॥ ९०॥

चेत्। स कः। **अप्पा** आत्मा। कस्य संबन्धित्वेन **अप्पणो** आत्मन इति। तथाहि—यदिदं मम चैतन्यं स्वपरप्रकाशकं तेनाहं कर्ता शुद्धज्ञानदर्शनभावं स्वकीयमात्मानं जानामि, परं च पुद्गलादिपञ्चद्रव्यरूपं शेषजीवान्तरं च पररूपेण जानामि, ततः कारणादेकापवरकप्रबोधितानेकप्रदीपप्रकाशेष्विव संभूयावस्थितेष्वपि सर्वद्रव्येषु मम सहजशुद्धचिदानन्दैकस्वभावस्य केनापि

जाने। **भावार्थ**—द्रव्योंके गुण दो प्रकारके हैं, एक सामान्य और दूसरे विशेष, इनमेंसे सामान्य गुणोंके द्वारा द्रव्योंका भेद नहीं होसकता, इसलिये बुद्धिवान पुरुषोंको चाहिये कि विशेषगुणोंके द्वारा अनन्त द्रव्यकी संततिमें अपना और परका भेद करें। इसकारण अब उस स्वपरभेदका प्रकार कहते हैं—इस अनादिनिधन, किसीसे उत्पन्न नहीं हुए, अंतर बाहिर दैदीप्यमान, स्वपरके जाननेवाले अपने चैतन्य गुणसे अन्य जीवद्रव्य तथा अजीव द्रव्य इनको जुदे करके मैं आपविषें तीनों काल अविनाशी अपने स्वरूपको जानता हूं। और आकाश, धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल, तथा अन्यजीव जो हैं उनके भेद भिन्न भिन्न (जुदे २) विशेष लक्षणोंसे अपने २ में तीन काल अविनाशी ऐसे इनके स्वरूपकोभी मैं जानता हूं। इसलिये मैं आकाश नहीं हूं, धर्म नहीं हूं, अधर्म नहीं हूं, काल नहीं हूं, पुद्गल नहीं हूं और अन्यजीवभी नहीं हूं। मैं जो हूं सो हूं। जैसे एक घरमें अनेक दीपक जलानेसे उन सबका प्रकाश उस घरमें एक जगह मिला हुआ रहता है, इसीप्रकार ये छह द्रव्य एक क्षेत्रमें रहते हैं परंतु मेरा द्रव्य इन सबसे भिन्न है। जैसे सब दीपकोंका प्रकाश देखनेसे तो मिला हुआ सा दिखाई देता है, परंतु सूक्ष्मदृष्टिसे विचारपूर्वक देखा जावे तो जो जिस दीपकका प्रकाश है वह उसीका है। इसीप्रकार यह मेरा चैतन्यस्वरूप मुझको सबसे पृथक् दिखलाता है। इसप्रकार स्वपर विवेकवाले आत्माके फिर मोहरूपी अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती॥ ९०॥

अथ जिनोदितार्थश्रद्धानमन्तरेण धर्मलाभो न भवतीति प्रतर्कयति;—

सत्तासंबद्धेदे सविसेसे जो हि णेव सामण्णे ।
सद्दहदि ण सो समणो तत्तो धम्मो ण संभवदि ॥ ९१ ॥

सत्तासंबद्धानेतान् सविशेषान् यो हि नैव श्रामण्ये ।
श्रद्दधाति न स श्रमणः ततो धर्मो न संभवति ॥ ९१ ॥

यो हि नामैतानि सादृश्यास्तित्वेन सामान्यमनुव्रजन्त्यपि स्वरूपास्तित्वेनाश्लिष्टविशेषाणि द्रव्याणि स्वपरावच्छेदेनापरिच्छिन्दन्नश्रद्दधानो वा एवमेव श्रामण्येनात्मानं दमयति स खलु न नाम श्रमणः । यतस्ततोपरिच्छिन्नरेणुकनककणिकाविशेषाद्धूलिधावकात्कनकलाभ इव निरुपरागात्मतत्त्वोपलम्भलक्षणो धर्मोपलम्भो न संभूतिमनुभवति ॥ ९१ ॥ अथ "उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती" इति प्रतिज्ञाय "चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो" इति साम्यस्य धर्मं निश्चित्य "परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं तम्हा" इति यदात्मनो धर्मत्वमासूत्रयितुमुपक्रान्तं ।

सह मोहो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ ९० ॥ एवं स्वपरपरिज्ञानविषये मूढत्वनिरासार्थं गाथाद्वयेन चतुर्थज्ञानकण्ठिका गता । इति पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः समाप्तः । अथ निर्दोषिपरमात्मप्रणीतपदार्थश्रद्धानमन्तरेण श्रमणो न भवति, तस्माच्छुद्धोपयोगलक्षणधर्मोपि न संभवतीति निश्चिनोति;—**सत्तासंबंधे** महासत्तासंबन्धेन सहितान् **एदे** एतान् पूर्वोक्तशुद्धजीवादिपदार्थान् । पुनरपि किं विशिष्टान् । **सविसेसे** विशेषसत्तावान्तरसत्तास्वकीयस्वरूपसत्ता तया सहितान् **जो हि णेव सामण्णे सद्दहदि** यः कर्ता द्रव्यश्रामण्ये स्थितोपि न श्रद्धत्ते हि स्फुटं **ण सो समणो** निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वपूर्वकपरमसामायिकसंयमलक्षणश्रामण्याभावात्स श्रमणो न भवति । इत्थंभूतभावश्रामण्याभावात् **तत्तो धम्मो ण संभवदि** तस्मात्पूर्वोक्तद्रव्यश्रमणात्सकाशान्निरुपरागशुद्धात्मानुभूतिलक्षणध-

---

अब कहते हैं कि वीतरागदेव कथित पदार्थोंकी श्रद्धाके विना इस जीवको आत्मधर्मका लाभ नहीं होता;—[**यः**] जो जीव [**हि**] निश्चयसे [**श्रामण्ये**] यति अवस्थामें [**सत्तासंबद्धान्**] सत्ता भावसे सामान्य अस्तिपने सहित और [**सविशेषान्**] अपने २ विशेष अस्तित्वसहित [**एतान्**] इन छह द्रव्योंको [**नैव श्रद्दधाति**] नहीं श्रद्धान करता [**सः**] वह जीव [**श्रमणः**] मुनि [**न**] नहीं है । और [**ततः**] उस द्रव्यलिंगी (बाह्य भेषधारी) मुनिसे [**धर्मः**] शुद्धोपयोगरूप आत्मीक धर्म [**न संभवति**] नहीं होसकता । **भावार्थ**—अस्तित्व दो प्रकारका है, एक सामान्य अस्तित्व दूसरा विशेष अस्तित्व । जैसे वृक्ष जातिसे वृक्ष एक हैं आम–निम्बादि भेदोंसे पृथक् २ हैं, इसीप्रकार द्रव्य सामान्य अस्तित्वसे एक है, विशेष अस्तित्वसे अपने जुदे २ स्वरूपसहित है । इन सामान्य विशेषभावसंयुक्त द्रव्योंको जो जीव मुनि अवस्था धारण करके नहीं जानता है और स्वपरभेद सहित श्रद्धान नहीं करता है

थत्प्रसिद्धये च "धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो पावदि णिव्वाहसुहं" इति निर्वाणसुखसाधनशुद्धोपयोगोऽधिकर्तुमारब्धः, शुभाशुभोपयोगौ च विरोधिनौ निर्ध्वस्तौ, शुद्धोपयोगस्वरूपं चोपवर्णितं, तत्प्रसादजौ चात्मनो ज्ञानानन्दौ सहजौ समुद्योतयता संवेदनस्वरूपं सुखस्वरूपं च प्रपञ्चितम्।

तदधुना कथं कथमपि शुद्धोपयोगप्रसादेन प्रसाध्य परनिस्पृहतामात्मदशां पारमेश्वरीप्रवृत्तिमभ्युपगतः कृतकृत्यतामवाप्य नितान्तमनाकुलो भूत्वा प्रलीनभेदवासनोन्मेषः स्वयं साक्षाद्धर्म एवास्मीत्यवतिष्ठते;—

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्मि।
अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो॥ ९२॥

र्मोपि न संभवतीति सूत्रार्थः॥ ९१॥ अथ "उवसंपयामि सम्मं" इत्यादि नमस्कारगाथायां यत्प्रतिज्ञातं, तदनन्तरं "चारित्तं खलु धम्मो" इत्यादिसूत्रेण चारित्रस्य धर्मत्वं व्यवस्थापितं, अथ "परिणमदि जेण दव्वं" इत्यादिसूत्रेणात्मनो धर्मत्वं भणितमित्यादि। तत्सर्वं शुद्धोपयोगप्रसादात्प्रसाध्येदानीं निश्चयरत्नत्रयपरिणत आत्मैव धर्म इत्यवतिष्ठते। अथवा द्वितीयपातनिका—सम्यक्त्वाभावे श्रमणो न भवति तस्मात् श्रमणाद्धर्मोपि न भवति, तर्हि कथं श्रमणो भवति? इति पृष्टे प्रत्युत्तरं प्रयच्छन् ज्ञानाधिकारमुपसंहरति;—**जो णिहदमोहदिट्ठी** तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणव्यवहारसम्यक्त्वोत्पन्नेन निजशुद्धात्मरुचिरूपेण निश्चयसम्यक्त्वेन परिणतत्वान्निहतमोहदृष्टिर्विध्वंसितदर्शनमोहो यः। पुनश्च किं रूपः। **आगमकुसलो** निर्दोषिपरमात्म-

वह यति नहीं है। सम्यक्त्व भावके विना द्रव्यलिंग अवस्थाको धारण करके व्यर्थही खेदखिन्न होता है, क्योंकि इस अवस्थासे आत्मीक धर्मकी संभावना नहीं है। जैसे धूलका धोनेवाला न्यारिया यदि सोनेकी कणिकाओंको पहचाननेवाला नहीं होवे तो कितनाभी कष्ट क्यों न करै परंतु उसे सुवर्णकी प्राप्ति नहीं होती; इसीप्रकार संयमादि कियामें कितनाही खेद क्यों न करै परंतु लक्षणोंसे स्वपरभेदके विना वीतराग आत्मतत्त्वकी प्राप्तिरूपधर्म इस जीवके उत्पन्न नहीं होता॥ ९१॥ पूर्वेही आचार्यने "उवसंपयामि सम्मं" इत्यादि गाथासे साम्यभाव मोक्षका कारण अंगीकार किया था, और "चारित्तं खलु धम्मो" आदि गाथासे साम्यभावही शुद्धोपयोगरूप धर्म है, ऐसा कहकर "परिणमदि जेण दव्वं" इस गाथासे साम्यभावसे आत्माकी एकता बतलाई थी। इसके वाद साम्यधर्मकी सिद्धि होनेकेलिये "धम्मेण परिणदप्पा" इससे मोक्षसुखका कारण शुद्धोपयोगके अधिकारका आरंभ किया था। उसमें शुद्धोपयोग भलीभांति दिखलाया। और उसके प्रतिपक्षी संसारके कारण शुभाशुभोपयोगको मूलसे नाश करके शुद्धोपयोगके प्रसादसे उत्पन्न हुए अतीन्द्रियज्ञान सुखोंका स्वरूप कहा॥ अब मैं शुद्धोपयोगके प्रसादसे परभावोंसे भिन्न, आत्मीक भावोंकर पूर्ण उत्कृष्ट परमात्मदशाको प्राप्त, कृतकृत्य और अत्यंत आकुलतारहित होकर संसारभेदवासनासे मुक्त आपमें साक्षात् धर्मस्वरूप होकर स्थित होता हूं;—[**यः**] जो [**निहतमोहदृष्टिः**] दर्शनमोहका घात करनेवाला अर्थात् सम्यग्दृष्टि है, तथा [**आगमकुशलः**] जिन प्रणीत सि-

योे निहतमोहदृष्टिरागमकुशलो विरागचरिते ।
अभ्युत्थितो महात्मा धर्म इति विशेषितः श्रमणः ॥ ९२ ॥

यदयं स्वयमात्मा धर्मो भवति स खलु मनोरथ एव, तस्य त्वेका बहिर्मोहदृष्टिरेव विहन्त्री । सा चागमकौशलेनात्मज्ञानेन च निहता, नात्र मम पुनर्भावमापत्स्यते । ततो वीतरागचारित्रसूत्रितावतारो ममायमात्मा स्वयं धर्मो भूत्वा निरस्तसमस्तप्रत्यूहतया नित्यमेव निष्कम्प एवावतिष्ठते । अलमतिविस्तरेण ॥ ९२ ॥ स्वस्ति स्याद्वादमुद्रिताय जैनेन्द्राय शब्दब्रह्मणे । स्वस्ति तन्मूलायात्मतत्त्वोपलम्भाय च, यत्प्रसादादुद्ग्रन्थितो झगित्येवासंसारबद्धो मोहग्रन्थिः । स्वस्ति च परमवीतरागचारित्रात्मने शुद्धोपयोगाय, यत्प्रसादादयमात्मा स्वयमेव धर्मो भूतः ॥ "आत्मा धर्मः स्वयमिति भवन् प्राप्य शुद्धोपयोगं नित्यानन्दप्रसरसरसं ज्ञानतत्त्वे निलीय । प्राप्स्यत्युच्चैरविचलतया निःप्रकम्पप्रकाशां स्फूर्जज्ज्योतिः सहजविलसद्रत्नदीपस्य लक्ष्मीम् ॥ १ ॥" "निश्चित्यात्मन्यधिकृतमिति

प्रणीतपरमागमाभ्यासेन निरुपाधिस्वसंवेदनज्ञानकुशलत्वादागमकुशल आगमप्रवीणः । पुनश्च किंरूपः । **विरागचरियम्हि अब्भुट्ठिदो** व्रतसमितिगुप्त्यादिबहिरङ्गचारित्रानुष्ठानवशेन स्वशुद्धात्मनि निश्चलपरिणतिरूपवीतरागचारित्रपरिणतत्वात् परमवीतरागचारित्रे सम्यगभ्युत्थितः उद्यतः । पुनरपि कथंभूतः । **महप्पा** मोक्षलक्षणमहार्थसाधकत्वेन महात्मा **धम्मोत्ति विसेसिदो समणो** जीवितमरणलाभालाभादिसमताभावनापरिणतात्मा स श्रमणएवाभेदनयेन धर्म इति विशेषितो मोहक्षोभविहीनात्मपरिणामरूपो निश्चयधर्मो भणित इत्यर्थः ॥ ९२ ॥ अथैवंभूतनिश्चयरत्नत्रयपरिणतमहातपोधनस्य योसौ भक्तिं करोति तस्य फलं दर्शयति;—

जो तं दिट्ठा तुट्ठो अब्भुट्ठित्ता करेदि सक्कारं ।
वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि ॥ १ ॥

जो तं दिट्ठा तुट्ठो यो भव्यवरपुण्डरीको निरुपरागशुद्धात्मोपलम्भलक्षणनिश्चयधर्मपरिणतं पूर्वसूत्रोक्तं मुनीश्वरं दृष्ट्वा तुष्टो निर्भरगुणानुरागेण संतुष्टः सन् । किं करोति । **अब्भुट्ठित्ता करेदि सक्कारं** अभ्युत्थानं कृत्वा मोक्षसाधकसम्यक्त्वादिगुणानां सत्कारं प्रशंसां करोति **वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि** "तवसिद्धे णयसिद्धे" इत्यादि वंदना भण्यते, नमोस्त्विति नमस्कारो भण्यते, तत्प्रभृतिभक्तिविशेषैः तस्माद्यतिवरात्स भव्यः पुण्यमा-

---

द्धान्तमें प्रवीण अर्थात् सम्यग्ज्ञानी है और [**विरागचारित्रे**] रागभावरहित चारित्रमें [**अभ्युत्थितः**] सावधान है तथा [**महात्मा**] श्रेष्ठ मोक्षपदार्थके साधनेमें प्रधान है । [**स श्रमणः**] वह मुनीश्वर [**धर्म इति**] धर्म है ऐसा [**विशेषितः**] विशेष लक्षणोंसे कहा गया है । **भावार्थ**—यह आत्मा वीतरागभावरूप परिणमन करके साक्षात् आपही धर्मरूप है । इस आत्माकी घातक जो एक मोहदृष्टि है वह तो आगमकुशलता और आत्मज्ञानसे विनाशको प्राप्त हुई है इसकारण मेरे फिर उत्पन्न होनेवाली नहीं है । इसलिये वीतरागचारित्रसे यह मेरा आत्मा धर्मरूप होकर सब शत्रुओंसे रहित सदाकालही निश्चल स्थित है । अधिक कहनेसे क्या "स्यात्"

ज्ञानतत्त्वं यथावत्तत्सिद्ध्यर्थं प्रशमविषयं ज्ञेयतत्त्वं बुभुत्सुः । सर्वानर्थान् कलयति गुण-द्रव्यपर्याययुक्त्या प्रादुर्भूतिर्न भवति यथा जातु मोहाङ्कुरस्य ॥ २ ॥"

इति प्रवचनसारवृत्तौ तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापनो नाम प्रथमः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ १ ॥

दत्ते पुण्यं गृह्णाति इत्यर्थः ॥ १ ॥ अथ तेन पुण्येन भवान्तरे किं फलं भवतीति प्रतिपादयति;—

तेण णरा व तिरिच्छा देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा ।
विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति ॥ २ ॥ ([1]१०१)

तेण णरा व तिरिच्छा तेन पूर्वोक्तपुण्येनात्र वर्तमानभवे नरा वा तिर्यञ्चो वा **देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा** भवान्तरे दैवीं वा मानुषीं वा गतिं प्राप्य **विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति** राजाधिराजरूपलावण्यसौभाग्यपुत्रकलत्रादिपरिपूर्णविभूतिर्विभवो भण्यते, आज्ञाफलमैश्वर्यं भण्यते, ताभ्यां विभवैश्वर्याभ्यां संपूर्णमनोरथा भवन्तीति । तदेव पुण्यं भोगादिनिदानरहितत्वेन यदि सम्यक्त्वपूर्वकं भवति तर्हि तेन परम्परया मोक्षं लभत इति भावार्थः ॥

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तप्रकारेण "एस सुरासुरमणुसिंदवंदियं" इतीमां गाथामादिं कृत्वा द्वासप्ततिगाथाभिः शुद्धोपयोगाधिकारः, तदनन्तरं "देवदजदिगुरुपूजासु" इत्यादि पञ्चविंशतिगाथाभिर्ज्ञानकण्ठिकाचतुष्टयाभिधानो द्वितीयोऽधिकारः, ततश्च "सत्तासंबंधेदे" इत्यादि सम्यक्त्वकथनरूपेण प्रथमा गाथा, रत्नत्रयाधारपुरुषस्य धर्मः संभवतीति "जो णिहदमोहदिट्ठी" इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयम्, तस्य निश्चयधर्मसंज्ञतपोधनस्य योसौ भक्तिं करोति तत्फलकथनेन "जो तं दिट्ठा" इत्यादि गाथाद्वयम् । इत्यधिकारद्वयेन पृथग्भूतगाथाचतुष्टयसहितेनैकोत्तरशतगाथाभि**र्ज्ञानतत्त्वप्रतिपादक** नामा प्रथमो महाधिकारः समाप्तः ॥ १ ॥

पदगर्भित जिनप्रणीत शब्द ब्रह्म जयवंत होओ ! जिसके प्रसादसे आत्मतत्त्वकी प्राप्ति हुई और उस आत्मतत्त्वकी प्राप्तिसे अनादिकालकी मोहरूपी गांठि छूटकर परम वीतरागचारित्र प्राप्त हुआ, इसीलिये शुद्धोपयोग संयमभी जयवंत होवै ! जिसके प्रसादसे यह आत्मा आप धर्मरूप हुआ ॥

इति श्री**पांडे हेमराजकृत** श्रीप्रवचनसार सिद्धान्तकी बालावबोध भाषाटीकामें **ज्ञानतत्त्वका** अधिकार पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

---

१ इस टीकामें १०१ गाथाकी रचना है और दूसरी श्रीप्रभाचन्द्रजीकृत सरोजभास्करटीकामेंभी १०१ हीका वर्णन है । श्रीमदमृतचंद्राचार्यने ९ गाथाओंका व्याख्यान नहीं किया, न मालूम क्या कारण है । बुद्धिमान इस बातका विचार कर लेवें । इसी तरह आगे भी कुछ गाथा ऐसे हैं कि क्षेपककी तरह टीकाकारने छोडदिये हैं ।

अथ ज्ञेयतत्त्वाधिकारः ॥ २ ॥

अथ ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनं, तत्र पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति;—

इतः ऊर्द्ध्वं "सत्तासंबंधेदे" इत्यादि गाथासूत्रेण पूर्वं संक्षेपेण यद्व्याख्यातं सम्यग्दर्शनं तस्येदानीं विषयभूतपदार्थव्याख्यानद्वारेण त्रयोदशाधिकशतप्रमितगाथापर्यन्तं विस्तरव्याख्यानं करोति । अथवा द्वितीयपातनिका—पूर्वं यद्व्याख्यातं ज्ञानं तस्य ज्ञेयभूतपदार्थान् कथयति । तत्र त्रयोदशाधिकशतगाथासु मध्ये प्रथमस्तावत् "तम्मा तस्स णमाइं" इमां गाथामादिं कृत्वा पाठक्रमेण पञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं, तदनन्तरं "दव्वं जीवमजीवं" इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं विशेषज्ञेयव्याख्यानं, अथानन्तरं "सपदेसेहिं समग्गो लोगो" इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना, ततश्च "अत्थित्तणिच्छिदस्स हि" इत्याद्येकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेति, द्वितीयमहाधिकारे समुदायपातनिका । अथेदानीं सामान्यज्ञेयव्याख्यानमध्ये प्रथमा नमस्कारगाथा, द्वितीया द्रव्यगुणपर्यायव्याख्यानगाथा, तृतीया स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा, चतुर्थी द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति पीठिकाभिधाने प्रथमस्थले स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयं । तदनन्तरं "सब्भावो हि सहावो" इत्यादिगाथाचतुष्टयपर्यन्तं सत्तालक्षणव्याख्यानमुख्यत्वं, तदनन्तरं "ण भवो भंगविहीणो" इत्यादिगाथात्रयपर्यन्तमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणकथनमुख्यता, ततश्च "पाडुब्भवदि य अण्णो" इत्यादि गाथाद्वयेन द्रव्यपर्यायनिरूपणमुख्यता । अथानन्तरं "ण हवदि जदि सद्दव्वं" इत्यादि गाथाचतुष्टयेन सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये युक्तिं कथयति, तदनन्तरं "जो खलु दव्वसहाओ" इत्यादि सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिकथनेन प्रथमगाथा, द्रव्येण सह गुणपर्याययोरभेदमुख्यत्वेन "णत्थि गुणोत्ति य कोई" इत्यादि द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयं, तदनन्तरं द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकनयेन सदुत्पादो भवति, पर्यायार्थिकनयेनासदित्यादिकथनरूपेण "एवंविहं" इतिप्रभृति गाथाचतुष्टयं, ततश्च "अत्थित्ति य" इत्याद्येकसूत्रेण नयसप्तभङ्गीव्याख्यानमिति समुदायेन चतुर्विंशतिगाथाभिरष्टभिः स्थलैर्द्रव्यनिर्णयं करोति । तद्यथा—अथ सम्यक्त्वं कथयति;—

तम्हा तस्स णमाइं किच्चा णिच्चंपि तं मणो होज्ज ।
वोच्छामि संगहादो परमट्ठविणिच्छयाधिगमं ॥ १ ॥

तम्मा तस्स णमाइं किच्चा यस्मात्सम्यक्त्वं विना श्रमणो न भवति तस्मात्कारणात्तस्य सम्यक्त्वचारित्रयुक्तस्य पूर्वोक्ततपोधनस्य नमस्यां नमस्क्रियां नमस्कारं कृत्वा **णिच्चंपि तम्मणो होज्ज** नित्यमपि तद्गतमना भूत्वा **वोच्छामि** वक्ष्याम्यहं कर्ता **संगहादो** संग्रहात्संक्षेपात्संक्षेपात्सकाशात् । किं । **परमट्ठविणिच्छयाधिगमं** परमार्थविनिश्चयाधिगमं सम्यक्त्वमिति परमार्थविनिश्चयाधिगमशब्देन सम्यक्त्वं कथं भण्यत इति चेत्—परमोर्थः परमार्थः शुद्धबुद्धैकस्वभावः परमात्मा, परमार्थस्य विशेषेण संशयादिरहितत्वेन निश्चयः परमार्थनिश्चयरूपोऽधिगमः

आगे ज्ञेयतत्त्वका कथन करते हुए उसमें भी पहले पदार्थोंको द्रव्यगुणपर्यायस्वरूप

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि ।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥ १ ॥

अर्थः खलु द्रव्यमयो द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि ।
तैस्तु पुनः पर्यायाः पर्ययमूढा हि परसमयाः ॥ १ ॥

इह हि किल यः कश्चन परिच्छिद्यमानः पदार्थः स सर्व एव विस्तारायतसामान्यसमुदायात्मना द्रव्येणाभिनिर्वृत्तत्वाद्द्रव्यमयः । द्रव्याणि तु पुनरेकाश्रयविस्तारविशेषात्मकैरभिनिर्वृत्तत्वाद्गुणात्मकानि । पर्यायास्तु पुनरायतविशेषात्मका उक्तलक्षणैर्द्रव्यैरपि गुणैरप्यभिनिर्वृत्तत्वाद्द्रव्यात्मका अपि गुणात्मका अपि । तत्रानेकद्रव्यात्मकैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो द्रव्यपर्यायः । स द्विविधः, समानजातीयोऽसमानजातीयश्च । तत्र समानजातीयो नाम यथा अनेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकस्त्र्यणुक इत्यादि, असमानजातीयो नाम यथा जीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यादि । गुणद्वारेणायतानैक्यप्रतिपत्तिनिबन्धनो गुणपर्यायः । सोपि द्विविधः स्वभावपर्यायो विभावपर्यायश्च । तत्र स्वभावपर्यायो नाम समस्तद्रव्याणामात्मीयात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमानषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः, विभावपर्यायो नाम रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिः । अथेदं दृष्टान्तेन दृढयति—यथैव हि सर्व एव पटोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावतायतसामान्यसमुदायेन चाभिनिर्वर्त्य-

---

शङ्काद्यष्टदोषरहितश्च यः परमार्थतोऽर्थावबोधो यस्मात्सम्यक्त्वात्तत् परमार्थविनिश्चयाधिगमं । अथवा परमार्थविनिश्चयोऽनेकान्तात्मकपदार्थसमूहस्तस्याधिगमो यस्मादिति (१) अथ पदार्थस्य द्रव्यगुणपर्यायस्वरूपं निरूपयति,—**अत्थो खलु दव्वमओ** अर्थो ज्ञानविषयभूतः पदार्थः खलु स्फुटं द्रव्यमयो भवति । कस्मात् । तिर्यक्सामान्योर्द्धतासामान्यलक्षणेन द्रव्येण निष्पन्नत्वात्।

कहते हैं;—[**खलु**] निश्चयसे [**अर्थः**] ज्ञेयपदार्थ [**द्रव्यमयः**] सामान्यस्वरूप वस्तुमय है [**तु**] तथा [**द्रव्याणि**] समस्त द्रव्य [**गुणात्मकानि**] अनन्तगुणस्वरूप [**भणितानि**] कहे हैं । [**पुनः**] और [**तैः**] उन द्रव्यगुणोंके परिणमन करनेसे [**पर्यायाः**] पर्याय हैं अर्थात् द्रव्यपर्याय और गुणपर्याय ये दो भेदसहित पर्याय हैं । और [**पर्ययमूढा**] अशुद्ध पर्यायोंमें मूढ अर्थात् आत्मबुद्धिसे पर्यायकोही द्रव्य माननेवाले अज्ञानी [**हि**] निश्चयकर [**परसमयाः**] मिथ्यादृष्टि हैं । **भावार्थ**—जितने ज्ञेयपदार्थ हैं वे समस्त गुण पर्यायसहित हैं, इसलिये द्रव्य एक आधारभूत अनन्तगुणस्वरूप है । गुणका नाम **विस्तार** है और पर्यायका नाम **आयत** है । विस्तार चौड़ाईको कहते हैं और आयत लम्बाईको कहते हैं । गुण चौड़ाईरूप अविनाशी सदा सहभूत (साथ रहनेवाले) हैं और पर्याय लम्बाईरूप हैं

मानस्तन्मय एव, तथैव हि सर्व एव पदार्थोऽवस्थायिना विस्तारसामान्यसमुदायेनाभिधावतायतसामान्यसमुदायेन च द्रव्यनाम्नाभिनिर्वर्त्यमानो द्रव्यमय एव। यथैव च पटेऽवस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव, तथैव च पदार्थेष्ववस्थायी विस्तारसामान्यसमुदायोऽभिधावन्नायतसामान्यसमुदायो वा द्रव्यनामा गुणैरभिनिर्वर्त्यमानो गुणेभ्यः पृथगनुपलम्भाद्गुणात्मक एव। यथैव चानेकपटात्मको द्विपटिका त्रिपटिकेति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तैथव चानेकपुद्गलात्मको द्व्यणुकत्र्यणुक इति समानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव चानेककौशेयककार्पासमयपटात्मको द्विपटिकात्रिपटिकेत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः, तथैव चानेकजीवपुद्गलात्मको देवो मनुष्य इत्यसमानजातीयो द्रव्यपर्यायः। यथैव च क्वचित्पटे स्थूलात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण कालक्रमप्रवृत्तेन नानाविधेन परिणमनान्नानात्वप्रतिपत्तिर्गुणात्मकः स्वभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि

तिर्यक्सामान्योर्द्ध्वतासामान्यलक्षणं कथ्यते–एककाले नानाव्यक्तिगतोन्वयस्तिर्यक्सामान्यं भण्यते, तत्र दृष्टान्तो यथा–नानासिद्धजीवेषु सिद्धोयं सिद्धोऽयमित्यनुगताकारः सिद्धजातिप्रत्ययः। नानाकालेष्वेकव्यक्तिगतोन्वय ऊर्ध्वतासामान्यं भण्यते। तत्र दृष्टान्तः यथा–य एव केवलज्ञानोत्पत्तिलक्षणे मुक्तात्मा द्वितीयादिलक्षणेष्वपि स एवेतिप्रतीतिः, अथवा नाना गोशरीरेषु

जिससे कि अतीत अनागत वर्तमान कालमें क्रमवर्ती हैं। पर्यायके दो भेद हैं—एक द्रव्यपर्याय और दूसरे गुणपर्याय। इनमेंसे अशुद्ध द्रव्यपर्यायका लक्षण कहते हैं—अनेक द्रव्य मिलकर जो एक पर्यायका होता है सो **द्रव्यपर्याय** है। यह द्रव्यपर्याय दो प्रकार है, एक समान जातीय, दूसरा असमान जातीय। समान जातीय जैसे—अनेक जातिके पुद्गलरूप द्व्यणुक त्रिअणुक आदि, और असमान जातीय जैसे—जीव पुद्गल मिलकर देव मनुष्यादि पर्याय, और भिन्न जातीय द्रव्यके संयोगसे गुणकी परिणतिरूप गुणपर्याय होती है सो भी दो प्रकार है, एक स्वभाव गुणपर्याय, दूसरी विभाव गुणपर्याय। स्वभाव गुणपर्याय वह है जो समस्त द्रव्य अपने २ अगुरुलघुगुणोंसे समय २ षट्गुणी हानि वृद्धिरूप परिणमन करें। और विभावगुण पर्याय वह है जो वर्णादिगुण पुद्गलस्कंधोंमें ज्ञानादिगुण जीवमें पुद्गलके संयोगके पहले आगामी दशामें हीनाधिक होकर परिणमन करें। आगे इसीको उदाहरणसे दृढ करते हैं—जैसे वस्त्र शुक्लादिगुणोंसे अपनी परिणतिरूप पर्यायसे सिद्ध है, इसलिये गुणपर्यायमय वस्त्र है। इसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायमय है। और जैसे वस्त्र शुक्लादिगुणपर्यायोंसे जुदा नहीं है, इसीप्रकार द्रव्य गुणपर्यायोंसे जुदा नहीं है। जैसे वस्त्रके दो तीन पाट मिलकर समानजातीय पर्याय होता है, उसीप्रकार पुद्गलके द्व्यणुक त्र्यणुकादि अनेक समानजातीय पर्याय होते हैं। जैसे वस्त्रके रेशम कपासके दो तीन पाट मिलके अस-

द्रव्येषु सूक्ष्मात्मीयागुरुलघुगुणद्वारेण प्रतिसमयसमुदीयमाणषट्स्थानपतितवृद्धिहानिनानात्वानुभूतिः गुणात्मकः स्वभावपर्यायः । यथैव च पटे रूपादीनां स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः, तथैव च समस्तेष्वपि द्रव्येषु रूपादीनां ज्ञानादीनां वा स्वपरप्रत्ययप्रवर्तमानपूर्वोत्तरावस्थावतीर्णतारतम्योपदर्शितस्वभावविशेषानेकत्वापत्तिर्गुणात्मको विभावपर्यायः । इयं हि सर्वपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायस्वभावप्रकाशिका पारमेश्वरी व्यवस्था साधीयसी, न पुनरितरा; यतो हि बहवोपि पर्यायमात्रमेवावलम्ब्य तत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणं मोहमुपगच्छन्तः परसमया भवन्ति ॥ १ ॥

गौरयं गौरयमिति गोजातिप्रतीतिस्तिर्यक्सामान्यं । यथैव चैकस्मिन् पुरुषे बालकुमाराद्यवस्थासु स एवायं देवदत्त इतिप्रत्यय ऊर्ध्वतासामान्यम् । **दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि** द्रव्याणि गुणात्मकानि भणितानि, अन्वयिनो गुणा अथवा सहभुवो गुणा इति गुणलक्षणं । यथा अनन्तज्ञानसुखादिविशेषगुणेभ्यस्तथैवागुरुलघुकादिसामान्यगुणेभ्यश्चाभिन्नत्वाद्गुणात्मकं भवति सिद्धजीवद्रव्यं, तथैव स्वकीयविशेषसामान्यगुणेभ्यः सकाशादभिन्नत्वात् सर्वद्रव्याणि गुणात्मकानि भवन्ति । **तेहिं पुणो पज्जाया** तैः पूर्वोक्तलक्षणैर्द्रव्यगुणैश्च पर्याया भवन्ति, व्यतिरेकिणः पर्याया, अथवा क्रमभुवः पर्याया इति पर्यायलक्षणं । यथैकस्मिन् मुक्तात्मद्रव्ये किञ्चिदूनचरमशरीराकारगतिमार्गणविलक्षणसिद्धगतिपर्यायः तथागुरुलघुकगुणषड्वृद्धिहानिरूपाः साधारणस्वभावगुणपर्यायाश्च, तथा सर्वद्रव्येषु स्वभावद्रव्यपर्यायाः स्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाश्च, तथैव स्वभावविभावगुणपर्यायाश्च "जेसिं अत्थसहाओ" इत्यादिगाथायां, तथैव "भावा जीवादीया" इत्यादिगाथायां च पञ्चास्तिकाये पूर्वं कथितक्रमेण यथासंभवं ज्ञातव्याः । **पज्जयमूढा हि परसमया** यस्मादित्थंभूतद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानमूढा अथवा नारकादिपर्यायरूपो न भ-

---

मानजातीय द्रव्यपर्याय होता है उसीप्रकार जीव पुद्गल मिलकर देव मनुष्यादि असमानजातीय द्रव्यपर्याय होते हैं । और जैसे किसी वस्त्रमें स्थूल अपने अगुरुलघुगुणद्वारा कालके क्रमसे नाना प्रकारके परिणमन होनेसे एक अनेकता लिये शुक्लादि गुणोंका गुणस्वरूप स्वभावपर्याय है, उसीप्रकार सभी द्रव्योंमें सूक्ष्म अपने २ अगुरुलघुगुणोंसे समय २ षट्गुणी हानि वृद्धिसे नाना स्वभावगुणपर्याय हैं । और जैसे वस्त्रमें अन्यद्रव्यके संयोगसे वर्णादि गुणोंकी कृष्णपीततादि भेदोंसे पूर्व उत्तर अवस्थामें हीन अधिकरूप विभावगुणपर्याय होते हैं, उसीप्रकार पुद्गलमें वर्णादि गुणोंकी तथा आत्मामें ज्ञानादिगुणोंकी परसंयोगसे पूर्व उत्तर (पहली-आगेकी) अवस्थामें हीन अधिक विभावगुणपर्याय हैं । इसप्रकार संपूर्ण द्रव्योंके गुणपर्याय भगवानकी वाणी ही दिखलानेमें समर्थ है, अन्यमती नहीं दिखासक्ते । क्योंकि वे सब एक नयका ही अवलंबन लेते हैं और एक नयसे सब द्रव्य गुण पर्यायके स्वरूप नहीं कहे जासक्ते । ऐसे अनेक जीव

अथानुषङ्गिकीमिमामेव स्वसमयपरसमयव्यवस्थां प्रतिष्ठाप्योपसंहरति;—

जे पज्जयेसु णिरदा जीवा परसमयिगत्ति णिद्दिट्ठा ।
आदसहावम्मि ठिदा ते सगसमया मुणेदव्वा ॥ २ ॥

ये पर्यायेषु निरता जीवाः परसमयिका इति निर्दिष्टाः ।
आत्मस्वभावे स्थितास्ते स्वकसमया मन्तव्याः ॥ २ ॥

ये खलु जीवपुद्गलात्मकमसमानजातीयद्रव्यपर्यायं सकलाविद्यानामेकमूलमुपगता यथोदितात्मस्वभावसंभावनक्लीवास्तस्मिन्नेवाशक्तिमुपव्रजन्ति, ते खलूच्छलितनिरर्गलैकान्तदृष्टयो मनुष्य एवाहमेष ममैवेतन्मनुष्यशरीरमित्यहङ्कारममकाराभ्यां विप्रलभ्यमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रादात्मव्यवहारात् प्रच्युत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमाश्रित्य रज्यन्तो द्विषन्तश्च परद्रव्येण कर्मणा संगतत्वात्परसमया जायन्ते ।

वाम्यहमिति भेदविज्ञानमूढाश्च परसमया मिथ्यादृष्टयो भवन्तीति । तस्मादियं पारमेश्वरी द्रव्यगुणपर्यायव्याख्या समीचीना भद्रा भवतीत्यभिप्रायः ॥ १ ॥ अथ प्रसंगायातां परसमयस्वसमयव्यवस्थां कथयति;—**जे पज्जयेसु णिरदा जीवा** ये पर्यायेषु निरताः जीवाः **परसमयिगंति णिद्दिट्ठा** ते परसमया इति निर्दिष्टाः कथिताः । तथाहि—मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहङ्कारो भण्यते, मनुष्यादिशरीरं तच्छरीराधारोत्पन्नपञ्चेन्द्रियविषयसुखस्वरूपं च ममेति ममकारो भण्यते, ताभ्यां परिणताः ममकाराहङ्काररहितपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतेश्च्युता ये ते कर्मोदयजनितपरपर्यायनिरतत्वात्परसमया मिथ्यादृष्टयो भण्यन्ते । **आदसहावम्मि ठिदा** ये पुनरात्मस्वरूपे स्थितास्ते **सगसमया मुणेदव्वा** स्वसमया मन्तव्या ज्ञातव्या इति ।

अशुद्धपर्याय मात्रका अवलंबन करते हुए मिथ्या मोहको प्राप्त होकर परसमयी होते हैं ॥१॥

अब इस व्याख्यानका संयोग पाकर स्वसमय तथा परसमयका स्वरूप प्रगट करते हैं;—

[ये जीवाः] जो अज्ञानी संसारी जीव **[पर्यायेषु]** मनुष्यादि पर्यायोंमें **[निरताः]** लवलीन हैं वे **[परसमयिकाः]** परसमयमें रागयुक्त हैं **[इति]** ऐसा **[निर्दिष्टाः]** भगवंतदेवने दिखाया है। और जो सम्यग्दृष्टी जीव **[आत्मस्वभावे]** अपने ज्ञानदर्शन स्वभावमें **[स्थिताः]** मौजूद हैं **[ते]** वे **[स्वकसमयाः]** स्वसमयमें रत **[ज्ञातव्याः]** जानने योग्य हैं । **भावार्थ**—जो जीव सब अविद्याओंका एक मूलकारण जीवपुद्गलस्वरूप असमान जातिवाले द्रव्यपर्यायको प्राप्त हुए हैं, और आत्मस्वभावकी भावनामें नपुंसकके समान अशक्ति (निर्बलपने) को धारण करते हैं वे निश्चयकरके निरर्गल एकान्तदृष्टी ही हैं । 'मैं मनुष्य हूं यह मेरा शरीर है' इसप्रकार नाना अहंकार ममकारभावोंसे विपरीतज्ञानी हुए अविचलित चेतनाविलासरूप आत्मव्यवहारसे च्युत होकर समस्त निंद्य क्रियासमूहके अंगीकार करनेसे पुत्रस्त्रीमित्रादि मनुष्यव्यवहारको आश्रयकरके रागी द्वेषी होते हैं, और

ये तु पुनरसंकीर्णद्रव्यगुणपर्यायसुस्थितं भगवन्तमात्मनः स्वभावं सकलविद्यानामेकमूलमुपगम्य यथोदितात्मस्वभावसंभावनसमर्थतया पर्यायमात्राशक्तिमत्यस्यात्मनः स्वभाव एव स्थितिमासूत्रयन्ति, ते खलु सहजविजृम्भितानेकान्तदृष्टिप्रक्षपितसमस्तैकान्तदृष्टिपरिग्रहग्रहा मनुष्यादिगतिषु तद्विग्रहेषु चाविहिताहङ्कारममकारा अनेकापवरकसंचारितरत्नप्रदीपमिवैकरूपमेवात्मानमुपलभमाना अविचलितचेतनाविलासमात्रमात्मव्यवहारमुररीकृत्य क्रोडीकृतसमस्तक्रियाकुटुम्बकं मनुष्यव्यवहारमनाश्रयन्तो विश्रान्तरागद्वेषोन्मेषतया परममौदासीन्यमवलम्ब्यमाना निरस्तसमस्तपरद्रव्यसंगतितया स्वद्रव्येणैव केवलेन संगतत्वात्स्वसमया जायन्ते । अतः स्वसमय एवात्मनस्तत्त्वम् ॥ २ ॥

अथ द्रव्यलक्षणमुपलक्षयति;—

अपरिच्चत्तसहावेणुप्पादव्वयधुवत्तसंबद्धं ।
गुणवं च सपज्जायं जत्तं दव्वत्ति वुच्चंति ॥ ३ ॥

तद्यथा–अनेकापवरकसंचारितैकरत्नप्रदीप इवानेकशरीरेष्वप्येकोहमिति दृढसंस्कारेण निजशुद्धात्मनि स्थिता ये ते कर्मोदयजनितपर्यायपरिणतिरहितत्वात्स्वसमया भवन्तीत्यर्थः ॥ २ ॥ अथ द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयं सूचयति;—**अपरिच्चत्तसहावं** अपरित्यक्तस्वभावमस्तित्वेन सहाभिन्नं **उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं** उत्पादव्ययध्रौव्यैः सह संयुक्तं **गुणवं च सपज्जायं** गुणवत्पर्यायसहितं च **जं** यदित्थंभूतं सत्तादिलक्षणत्रयसंयुक्तं **तं दव्वत्ति वुच्चंति** तं द्रव्य-

---

परद्रव्यकर्मोंसे मिलते हैं, इसकारण परसमयरत होते हैं । और जो जीव अपने द्रव्यगुणपर्यायोंकी अभिन्नतासे स्थिर हैं, समस्त विद्याओंके मूलभूत भगवंत आत्माके स्वभावको प्राप्त हुए हैं, आत्मस्वभावकी भावनासे पर्यायरत नहीं हैं और आत्मस्वभावमेंही स्थिरता बढ़ाते हैं वे जीव स्वाभाविक अनेकान्त दृष्टीसे एकांतदृष्टिरूप परिग्रहको दूर करनेवाले हैं । मनुष्यादि गतियोंमें शरीरसंबंधी अहंकार ममकारभावोंसे रहित हैं । जैसे अनेक गृहोंमें संचार करनेवाला रत्नदीपक एक है, उसीप्रकार एकरूप आत्माको प्राप्त हुए हैं । अचलित चैतन्य विलासरूप आत्मव्यवहारको अंगीकार करते हैं । असमीचीन क्रियाओंके मूलकारण मनुष्यव्यवहारके आश्रित नहीं होते । रागद्वेषके अभावसे परम उदासीन हैं और समस्त परद्रव्योंकी संगति दूरकरके केवल स्वद्रव्यमें प्राप्त हुए हैं इसीकारण स्वसमय हैं । स्वसमय आत्मस्वभाव है । आत्मस्वभावमें जो लीन रहते हैं वे धन्य हैं ॥ २ ॥ अब द्रव्यका लक्षण कहते हैं;–**[यत्]** जो **[अपरित्यक्तस्वभावेन]** नहीं छोड़े हुए अपने अस्तित्वस्वभावसे **[उत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धं]** उत्पाद व्यय तथा ध्रौव्य संयुक्त है । **[च]** और **[गुणवत्]** अनंतगुणात्मक है **[सपर्यायं]** पर्यायसहित है **[तत्]** उसे **[द्रव्यं इति]**

अपरित्यक्तस्वभावेनोत्पादव्ययध्रुवत्वसंबद्धम् ।
गुणवच्च सपर्यायं यत्तद्द्रव्यमिति ब्रुवन्ति ॥ ३ ॥

इह खलु यदनारब्धस्वभावभेदमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण गुणपर्यायद्वयेन च यल्लक्ष्यते तद्द्रव्यं । तत्र हि द्रव्यस्य स्वभावोस्तित्वसामान्यान्वयः, अस्तित्वं हि वक्ष्यति द्विविधं, स्वरूपास्तित्वं सादृश्यास्तित्वं चेति । तत्रोत्पादः प्रादुर्भावः, व्ययः प्रच्यवनं, ध्रौव्यमवस्थितिः । गुणा विस्तारविशेषाः, ते द्विविधाः सामान्यविशेषात्मकत्वात् । तत्रास्तित्वं नास्तित्वमेकत्वमन्यत्वं द्रव्यत्वं पर्यायत्वं सर्वगतत्वमसर्वगतत्वं सप्रदेशत्वमप्रदेशत्वं मूर्तत्वममूर्तत्वं सक्रियत्वमक्रियत्वं चेतनत्वमचेतनत्वं कर्तृत्वमकर्तृत्वं भोक्तृत्वमभोक्तृत्वमगुरुलघुत्वं चेत्यादयः सामान्यगुणाः । अवगाहहेतुत्वं गतिनिमित्तता स्थितिकारणत्वं वर्तनायतनत्वं रूपादिमत्ता चेतनत्वमित्यादयो विशेषगुणाः । पर्याया आयतविशेषाः, ते पूर्वमेवोक्ताश्चतुर्विधाः । न च तैरुत्पादादिभिर्गुणपर्यायैर्वा सह द्रव्यं लक्ष्यलक्षणभेदेपि स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव द्रव्यस्य तथाविधत्वादुत्तरीयवत् । यथा खलूत्तरी-

---

मिति ब्रुवन्ति सर्वज्ञाः । इदं द्रव्यमुत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह लक्ष्यलक्षणभेदे अपि सति सत्ताभेदं न गच्छति । तर्हि किं करोति । स्वरूपतयैव तथाविधत्वमवलम्बते । कोर्थः । उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपं गुणपर्यायरूपं च परिणमति शुद्धात्मवदेव । तथाहि—केवलज्ञानोत्पत्तिप्रस्तावे शुद्धात्मरूपपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपकारणसमयसारपर्यायस्य विनाशे सति शुद्धात्मोपलम्भव्यक्तिरूपकार्यसमयसारस्योत्पादः कारणसमयसारस्य व्ययस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यं च । तथानन्तज्ञानादिगुणाः, गतिमार्गणविपक्षभूतसिद्धगतिः, इन्द्रियमार्गणाविपक्षभूतातीन्द्रियत्वादिलक्षणाः शुद्धपर्यायाश्च भवन्तीति । यथा शुद्धसत्तया सहाभिन्नं परमा-

---

द्रव्य ऐसा [**ब्रुवन्ति**] कहते हैं । **भावार्थ**—जो अपने अस्तित्वसे किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ होवे उसे द्रव्य कहते हैं । अस्तित्व दो प्रकारका हैं–एक स्वरूपास्तित्व और दूसरा सामान्यास्तित्व, इन दोनों अस्तित्वोंका वर्णन आगे करेंगे । यहां द्रव्यके लक्षण दो हैं सो बतलाते हैं; एक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, और दूसरा गुणपर्याय । उत्पाद उत्पन्न होनेको, व्यय विनाश होनेको और ध्रौव्य स्थिर रहनेको कहते हैं । गुण दो प्रकारका है, एक सामान्यगुण दूसरा विशेषगुण । अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अन्यत्व, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, सर्वगतत्व, असर्वगतत्व, सप्रदेशत्व, अप्रदेशत्व, मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुरुलघुत्व, इत्यादि सामान्यगुण हैं । अवगाहहेतुत्व, गतिनिमित्तता, स्थितिहेतुत्व, वर्तनायतनत्व, रूपादिमत्त्व, चेतनत्व, इत्यादि विशेषगुण हैं । द्रव्यगुणकी परिणतिके भेदको पर्याय कहते हैं । इन उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुणपर्यायोंसे द्रव्य लक्षित होता (पहिचाना जाता) है, इसलिये द्रव्य "लक्ष्य" है । और जिनसे लक्षित

यमुपात्तमलिनावस्थं प्रक्षालितममलावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते। न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथा द्रव्यमपि समुपात्तप्राक्तनावस्थं समुचितबहिरङ्गसाधनसन्निधिसद्भावे विचित्रबहुतरावस्थानं स्वरूपकर्तृकरणसामर्थ्यस्वभावेनान्तरङ्गसाधनतामुपागतेनानुग्रहीतमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं तेनोत्पादेन लक्ष्यते। न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथा च तदेवोत्तरीयममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते। न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथा तदेव द्रव्यमप्युत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानं तेन व्ययेन लक्ष्यते। न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। यथैव च तदेवोत्तरीयमेककालममलावस्थयोत्पद्यमानं मलिनव्यवस्थया व्ययमानमवस्थायिन्योत्तरीयत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्ब्यमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते। न च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमप्येककालमुत्तरावस्थयोत्पद्यमानं प्राक्तनावस्थया व्ययमानमवस्थायिन्या द्रव्यत्वावस्थया ध्रौव्यमालम्ब्यमानं ध्रौव्येण लक्ष्यते। न

त्मद्रव्यं पूर्वोक्तोत्पादव्ययध्रौव्यैर्गुणपर्यायैश्च सह संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि सति तैः सह सत्तादिभेदं न करोति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते। तथाविधत्वं कोर्थः ? उत्पादव्ययध्रौव्यगुणपर्यायस्वरूपेण परिणमन्ति, तथा सर्वद्रव्याणि स्वकीयस्वकीययथोचितोत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव गुणपर्यायैश्च सह यद्यपि संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभिर्भेदं कुर्वन्ति तथापि सत्तास्वरूपेण भेदं न कुर्वन्ति, स्वभावत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथाविधत्वं कोर्थ ? उत्पादव्ययादिस्व-

---

होता है वे लक्षण हैं, इसलिये उत्पादव्ययादि "लक्षण" हैं । लक्ष्य लक्षण भेदसे यद्यपि इनमें भेद है तथापि स्वरूपसे द्रव्यमें भेद नहीं है अर्थात् स्वरूपसे लक्ष्य लक्षण एकही हैं। जैसे—कोई वस्त्र पहले मलिन था पीछेसे धोकर उज्ज्वल किया, तब उज्ज्वलतासे उत्पन्न हुआ कहलाया। परंतु उस वस्त्रका उत्पादसे पृथक्पना नहीं है, क्योंकि पूर्ववस्त्रही उज्ज्वलभावसे परिणत हुआ है। इसीप्रकार बहिरंग-अंतरंग निमित्त पाकर द्रव्य एकपर्यायसे उत्पन्न होता है, परंतु उत्पादसे जुदा नहीं है, स्वरूपसेही उस पर्यायरूप परिणमन करता है। वही वस्त्र उज्ज्वलावस्थासे तो उत्पन्न हुआ है और मलिनपर्यायसे व्यय (नाश) को प्राप्त हुआ है परंतु उस व्ययसे वस्त्र पृथक् नहीं है, क्योंकि आपही मलिनभावके नाशरूप परिणत हुआ है। इसीप्रकार द्रव्य आगामी पर्यायमें तो उत्पद्यमान है और प्रथम अवस्थासे नष्ट होता है परंतु उस व्ययसे पृथक् नहीं है, व्ययस्वरूप परिणत हुआ है। और वही वस्त्र जैसे एक समयमें निर्मल अवस्थाकी अपेक्षासे तो उत्पद्यमान है, मलिनावस्थाकी अपेक्षासे व्यय (नाश) वाला है और वस्त्रपनेकी अपेक्षा ध्रुव है; परंतु ध्रुवपनेसे स्वरूपभेदको धारण नहीं करता है, आपही

च तेन सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथैव च तदेवोत्तरीयं विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमपि विस्तारविशेषात्मकैर्गुणैर्लक्ष्यते। न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । यथैव च तदेवोत्तरीयमायतविशेषात्मकैः पर्यायवर्तिभिस्तन्तुभिर्लक्ष्यते ।न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते । तथैव तदेव द्रव्यमप्यायतविशेषात्मकैः पर्यायैर्लक्ष्यते । न च तैः सह स्वरूपभेदमुपव्रजति, स्वरूपत एव तथाविधत्वमवलम्बते ॥ ३ ॥

अथ क्रमेणास्तित्वं द्विविधमभिदधाति तत्रेदं स्वरूपास्तित्वाभिधानम्;—

सब्भावो हि सहावो गुणेहिं सगपज्जएहिं चित्तेहिं ।
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्वयधुवत्तेहिं ॥ ४ ॥

रूपेण परिणमन्ति । अथवा यथा वस्त्रं निर्मलपर्यायेणोत्पन्नं मलिनपर्यायेण विनष्टं तदुभयाधारभूतवस्त्ररूपेण ध्रुवमविनश्वरं, तथैव शुक्लवर्णादिगुणनवजीर्णादिपर्यायसहितं च सत् तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैस्तथैव च स्वकीयगुणपर्यायैः सह संज्ञादिभेदेपि सति सत्तारूपेण भेदं न करोति । तर्हि किं करोति । स्वरूपत एवोत्पादादिरूपेण परिणमति, तथा सर्वद्रव्याणीत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥ एवं नमस्कारगाथा द्रव्यगुणपर्यायकथनगाथा स्वसमयपरसमयनिरूपणगाथा सत्तादिलक्षणत्रयसूचनगाथा चेति स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन **पीठिका**भिधानं प्रथमस्थलं गतम् । अथ प्रथमं तावत्स्वरूपास्तित्वं प्रतिपादयति;—**सब्भावो हि** स्वभावः स्वरूपं भवति हि स्फुटं । कः कर्ता । **सहावो** सद्भावः शुद्धसत्ता शुद्धास्तित्वं । कस्य स्वभावो भवति। **दव्वस्स** मुक्तात्मद्रव्यस्य तच्च स्वरूपास्तित्वं यथा मुक्तात्मनः सकाशात्पृथग्भूतानां पुद्गलादि पञ्चद्र-

उसस्वरूप परिणमता है । इसीप्रकार द्रव्य हरएक समयमें उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्थासे विनाशको प्राप्त होता है और द्रव्यपने स्वभावसे ध्रुव रहता है; ध्रुवपनेसे पृथक् नहीं रहता, आपही ध्रौव्यको अवलंबन करता है । और इसीप्रकार जैसे वही वस्त्र उज्ज्वलकोमलादि गुणोंकी अपेक्षा देखते हैं कि वह उन गुणोंसे स्वरूपभेद धारण नहीं करता, स्वरूपसे गुणात्मक है; इसीतरह प्रत्येक द्रव्य निजगुणोंसे भिन्न नहीं है, स्वरूपसेही गुणात्मक है ऐसा देखते हैं । जैसे वस्त्र तंतुरूप पर्यायोंसे देखाजाता है परंतु उन पर्यायोंसे जुदा नहीं है, स्वरूपसेही उनरूप है । इसीप्रकार द्रव्य निजपर्यायोंसे देखते हैं परंतु स्वरूपसेही पर्यायपनेको अवलम्बन करता है । इसतरह द्रव्यका उत्पादव्ययध्रौव्य लक्षण और गुणपर्याय लक्षण जानने योग्य है ॥ ३ ॥ अब दो प्रकारके अस्तित्वमेंसे पहले स्वरूपास्तित्वको दिखलाते हैं;—**[गुणैः]** अपने गुणोंकरके **[चित्रैः स्वकपर्यायैः]** नाना प्रकारकी अपनी पर्यायोंकरके और **[उत्पादव्ययध्रुवत्वैः]** उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्यकरके **[द्रव्यस्य]** गुणपर्याय-

सद्भावो हि स्वभावो गुणैः स्वकपर्ययैश्चित्रैः ।
द्रव्यस्य सर्वकालमुत्पादव्ययध्रुवत्वैः ॥ ४ ॥

अस्तित्वं हि किल द्रव्यस्य स्वभावः, तत्पुनरन्यसाधननिरपेक्षत्वादनाद्यनन्ततया हेतुकयैकरूपया वृत्त्या नित्यप्रवृत्तत्वाद्विभावधर्मवैलक्षण्याच्च भावभाववद्भावान्नानात्वेपि प्रदेशभेदाभावाद्द्रव्येण सहैकत्वमवलम्बमानं द्रव्यस्य स्वभाव एव कथं न भवेत् । तत्तु द्रव्यान्तराणामिव द्रव्यगुणपर्यायाणां न प्रत्येकं परिसमाप्यते । यतो हि परस्परसाधितसिद्धियुक्तत्वात्तेषामस्तित्वमेकमेव, कार्तस्वरवत् । यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात् पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण पीतादिगुणानां कुण्डलादिपर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः

व्याणां शेषजीवानां च भिन्नं भवति न च तथा । कैः सह । **गुणेहिं सह पज्जएहिं** केवलज्ञानादिगुणैः किञ्चिदूनचरमशरीराकारादिस्वकीयपर्यायैश्च सह । कथंभूतैः । **चित्तेहिं** सिद्धगतित्वमतीन्द्रियत्वमकायत्वमयोगत्वमवेदत्वमित्यादिबहुभेदभिन्नैर्न केवलं गुणपर्यायैः सह भिन्नं भवति । **उप्पादव्वयधुवत्तेहिं** शुद्धात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्योत्पादो रागादिविकल्परहितपरमसमाधिरूपमोक्षमार्गपर्यायस्य व्ययस्तथा मोक्षमार्गाधारभूतान्वयद्रव्यत्वलक्षणं ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यैश्च सह भिन्न न भवति । कथं । **सव्वकालं** सर्वकालपर्यन्तं यथा भवति । कस्मात्तैः सह भिन्नं न भवतीति चेत् । यतः कारणाद्गुणपर्यायोस्तित्वेनोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वेन च कर्तृभूतेन शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वं साध्यते, शुद्धात्मद्रव्यास्तित्वेन च गुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यास्तित्वं साध्यत इति । तद्यथा—यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः सुवर्णादभिन्नानां पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णस्य सद्भावः, तथा स्वकीय-

---

स्वरूप द्रव्यका [**सर्वकालं**] तीनों कालमें [**सद्भावः**] अस्तित्व है, वही [**हि**] निश्चयकरके [**स्वभावः**] मूलभूत स्वभाव है । **भावार्थ**—निश्चयकरके अस्तित्वही द्रव्यका स्वभाव है, क्योंकि अस्तित्व किसी अन्यनिमित्तसे उत्पन्न नहीं हुआ है। अनादि अनंत एकरूप प्रवृत्तिसे अविनाशी है । विभावभावरूप नहीं, किंतु स्वाभाविकभाव है । और गुणगुणीके भेदसे यद्यपि द्रव्यसे अस्तित्वगुण पृथक् कहा जाता है, परंतु वह प्रदेशभेदके विना द्रव्यसे एकरूप है । एक द्रव्यसे दूसरे द्रव्यकी नाई पृथक् नहीं है, क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वसे गुणपर्यायोंका अस्तित्व है और गुणपर्यायोंके अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है । यह कथन नीचे लिखे हुए सोनेके दृष्टांतसे समझाते हैं । जैसे—पीततादि गुण तथा कुंडलादिपर्याय जो कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा सोनेसे पृथक् नहीं हैं उनका कर्ता, साधन और आधार सोना है; क्योंकि

कर्तृकरणाधिकरणरूपेण गुणानां पर्यायाणां च स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः । यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा पीततादिगुणेभ्यः कुण्डलादिपर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः पीततादिगुणैः कुण्डलादिपर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा गुणेभ्यः पर्यायेभ्यश्च पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैर्गुणैः पर्यायैश्च निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः । किंच—यथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कार्तस्वरात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कुण्डलाङ्ग-

---

द्रव्यक्षेत्रकालभावैः परमात्मद्रव्यादभिन्नानां केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिदूनचरमशरीराकारादिपर्यायाणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्य सद्भावः । यथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य सम्बन्धि यदस्तित्वं स एव पीतत्वादिगुणकुण्डलादिपर्यायाणां स्वभावो भवति, तथा स्वकीयद्रव्यक्षेत्रकालभावैः केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिदूनचरमशरीराकारपर्यायेभ्यः सकाशादभिन्नस्य मुक्तात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव केवलज्ञानादिगुणकिञ्चिदूनचरमशरीराकारपर्यायाणां स्वभावो ज्ञातव्यः । अथेदानीमुत्पादव्ययध्रौव्याणामपि द्रव्येण सहाभिन्नास्तित्वं कथ्यते । यथा स्वकीयद्रव्यादिचतुष्टयेन सुवर्णादभिन्नानां कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायविनाशसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव सुवर्णसद्भावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन परमात्मद्रव्यादभिन्नानां मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्या-

---

सोनेके अस्तित्वसेही उनका अस्तित्व है । जो सोना न होवे तो पीततादिगुण तथा कुंडलादिपर्यायेंभी न होवें । सोना स्वभाववंत है और वे स्वभाव हैं । इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंकी अपेक्षा द्रव्यसे अभिन्न जो उसके गुणपर्याय हैं उनका कर्ता साधन और आधार द्रव्य है, क्योंकि द्रव्यके अस्तित्वसेही गुणपर्यायोंका अस्तित्व है । जो द्रव्य न होवे तो गुणपर्यायभी न होवें । द्रव्य स्वभाववंत है और गुणपर्याय स्वभाव हैं । और जैसे द्रव्य क्षेत्र काल भावोंसे पीततादि गुण तथा कुंडलादि पर्यायोंसे अपृथक्भूत (जो जुदे नहीं) सोनेके कर्म पीततादि गुण तथा कुंडलादिपर्याय हैं, इसलिये पीततादिगुण और कुंडलादिपर्यायोंके अस्तित्वसे सोनेका अस्तित्व है । यदि पीततादिगुण तथा कुंडलादिपर्यायें न हों तो सोनाभी न होवे । इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंसे गुणपर्यायोंसे अपृथग्भूत द्रव्यके कर्म गुणपर्याय हैं, इसलिये गुणपर्यायोंके अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है । जो गुणपर्यायें न हों तो द्रव्यभी न होवे । और जैसे—द्रव्यक्षेत्रकालभावोंसे सोनेसे अपृथग्भूत ऐसा जो कंकनका उत्पाद, कुंडलका

दपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य कार्तस्वरास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं कार्तस्वरस्य स स्वभावः, तथा हि द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा द्रव्यात्पृथगनुपलभ्यमानैः कर्तृकरणाधिकरणरूपेणोत्पादव्ययध्रौव्याणां स्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तस्य द्रव्यास्तित्वेन निष्पादितनिष्पत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्यदस्तित्वं द्रव्यस्य स स्वभावः। यथा वा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण कार्तस्वरस्वरूपमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैः कुण्डलाङ्गदपीतताद्युत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य कार्तस्वरस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः, तथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वोत्पादव्ययध्रौव्येभ्यः पृथगनुपलभ्यमानस्य कर्तृकरणाधिकरणरूपेण द्रव्यस्वरू-

---

यव्ययतदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां संबन्धि यदस्तित्वं स एव मुक्तात्मद्रव्यस्वभावः। यथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य सुवर्णस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव कटकपर्यायोत्पादकङ्कणपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतसुवर्णत्वलक्षणध्रौव्याणां सद्भावः, तथा स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्येभ्यः सकाशादभिन्नस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धि यदस्तित्वं स एव मोक्षपर्यायोत्पादमोक्षमार्गपर्यायव्ययतदुभयाधारभूतमुक्तात्मद्रव्यत्वलक्षणध्रौव्याणां स्वभाव इति। एवं यथा मुक्तात्मद्रव्यस्य स्वकीयगुणपर्यायोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह स्वरूपास्ति-

---

व्यय तथा पीतत्वादिका ध्रौव्य इन तीन भावोंका कर्ता, साधन, और आधार सोना है, इसलिये सोनेके अस्तित्वसे इनका अस्तित्व है। क्योंकि जो सोना न होवे तो कंकणका उत्पाद कुंडलका व्यय पीतत्वादिका ध्रौव्य ये तीन भाव भी न होवें। इसीप्रकार द्रव्यक्षेत्रकालभावोंकरके द्रव्यसे अपृथग्भूत ऐसे जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीन भावोंका कर्ता, साधन तथा आधार द्रव्य है; इसलिये द्रव्यके अस्तित्वसे उत्पादादिका अस्तित्व है। जो द्रव्य न होवे तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये तीन भाव न होवें॥ और जैसे द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकर कंकणादि पर्यायका उत्पाद कुंडलादिका व्यय, पीतत्वादिका ध्रौव्य इन तीन भावोंसे अपृथग्भूत जो सोना है उसके कर्ता, साधन और आधार कंकणादि उत्पाद, कुंडलादि व्यय, पीतत्वादि ध्रौव्य ये तीन भाव हैं; इसलिये इन तीन भावोंके अस्तित्वसे सोनेका अस्तित्व है। यदि ये तीन भाव न होवें तो सोनाभी न होवै। इसीप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भावोंकरके उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे अपृथग्भूत द्रव्यके कर्ता, साधन और आधार उत्पाद व्यय ध्रौव्य ये तीन भाव हैं, क्योंकि इन तीनोंके अस्तित्वसे द्रव्यका अस्तित्व है। यदि ये तीन भाव न होवें तो द्रव्यभी न होवे। इससे यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्य, गुण और पर्यायोंका अस्तित्व

पमुपादाय प्रवर्तमानप्रवृत्तियुक्तैरुत्पादव्ययध्रौव्यैर्निष्पादितनिष्पत्तियुक्तस्य द्रव्यस्य मूलसाधनतया तैर्निष्पादितं यदस्तित्वं स स्वभावः ॥ ४ ॥

इदं तु सादृश्यास्तित्वाभिधानम् 'अस्तीति कथयति;'—

इह विविहलक्खणाणं लक्खणमेगं सदित्ति सव्वगयं।
उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं ॥ ५ ॥

इह विविधलक्षणानां लक्षणमेकं सदिति सर्वगतम्।
उपदिशता खलु धर्मं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तम् ॥ ५ ॥

इह किल प्रपञ्चितवैचित्र्येण द्रव्यान्तरेभ्यो व्यावृत्य वृत्तेन प्रतिद्रव्यं सीमानमासूत्रयता विशेषलक्षणभूतेन च स्वरूपास्तित्वेन लक्ष्यमाणानामपि सर्वद्रव्याणामस्तमितवैचित्र्यप्रपञ्चं प्रवृत्य वृत्तं प्रतिद्रव्यमासूत्रितं सीमानं भिन्दत्सदिति सर्वगतं सामान्यलक्षणभूतं सादृश्यास्तित्वमेकं खल्ववबोद्धव्यम्। एवं सदित्यभिधानं सदिति परिच्छेदनं च सर्वार्थ-

---

त्वाभिधानमवान्तरास्तित्वमभिन्न व्यवस्थापितं, तथैव समस्तशेषद्रव्याणामपि व्यवस्थापनीयमित्यर्थः ॥ ४ ॥ अथ सादृश्यास्तित्वशब्दाभिधेयां महासत्तां प्रज्ञापयति;—**इह विविहलक्खणाणं** इह लोके प्रत्येकसत्ताभिधानेन स्वरूपास्तित्वेन विविधलक्षणानां भिन्नलक्षणानां चेतनाचेतनमूर्तामूर्तपदार्थानां **लक्खणमेगं तु** एकमखण्डलक्षणं भवति। किं कर्तृ **सदिति** सर्वं सदिति महासत्तारूपं। किंविशिष्टं। **सव्वगयं** संकरव्यतिकरपरिहाररूपस्वजात्यविरोधेन शुद्धसंग्रहनयेन सर्वगतं सर्वपदार्थव्यापकं। इदं केनोक्तं। **उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पण्णत्तं** धर्मं वस्तुस्वभावसंग्रहमुपदिशता खलु स्फुटं जिनवरवृषभेण प्रज्ञप्तमिति।

एक है। और जो द्रव्य है सो अपने गुण पर्यायस्वरूपको लिये हुए है, अन्य द्रव्यसे कभी नहीं मिलता। इसीको स्वरूपास्तित्व कहते हैं ॥ ४ ॥ आगे सादृश्यास्तित्व बतलाते हैं;—[**इह**] इस लोकमें [**धर्मं उपदिशता**] वस्तुके स्वभावका उपदेश देनेवाले [**जिनवरवृषभेण**] गणधरादिदेवोंमें श्रेष्ठ श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवने [**प्रज्ञप्तं**] ऐसा कहा है कि [**विविधलक्षणानां**] नानाप्रकारके लक्षणोंवाले अपने स्वरूपास्तित्वसे जुदे २ द्रव्योंका [**सत् इति**] 'सत्' ऐसा [**सर्वगतं**] सब द्रव्योंमें पानेवाला [**एकं लक्षणं**] एक लक्षण है। **भावार्थ—**स्वरूपास्तित्व विशेषलक्षणरूप है, क्योंकि वह द्रव्योंकी विचित्रताका विस्तार करता है। तथा अन्यद्रव्यसे भेद करके प्रत्येक द्रव्यकी मर्यादा करता है। और 'सत्' ऐसा जो सादृश्यास्तित्व है, सो द्रव्योंमें भेद नहीं करता है सब द्रव्योंमें प्रवर्तता है, प्रत्येक द्रव्यकी मर्यादाको दूर करता है और सर्वगत है, इसलिये सामान्यलक्षणरूप है। 'सत्' शब्द सब पदार्थोंका ज्ञान करता है, क्योंकि यदि ऐसा न मानें तो कुछ पदार्थ सत् हों कुछ असत् हों और कुछ अवक्तव्य हों। परंतु ऐसा नहीं है, संपूर्ण पदार्थ सत्रूप ही हैं असद्वा-

परामर्शि स्यात्। यदि पुनरिदमेव न स्यात्तदा किञ्चित्सदिति किञ्चिदसदिति किञ्चित्सच्चासच्चेति किञ्चिदवाच्यमिति च स्यात्। तत्तु विप्रतिषिद्धमेवाप्रसाध्यं चैतदनोकहवत्। यथा हि बहूनां बहुविधानामनोकहानामात्मीयस्यात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति। तथा बहूनां बहुविधानां द्रव्याणामात्मीयात्मीयस्य विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वं, सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितमेकत्वं तिरियति। यथा च तेषामनोकहानां सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिनानोकहत्वेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति, तथा सर्वद्रव्याणामपि सामान्यलक्षणभूतेन सादृश्योद्भासिना सदित्यस्य भावेनोत्थापितेनैकत्वेन तिरोहितमपि विशेषलक्षणभूतस्य स्वरूपास्तित्वस्यावष्टम्भेनोत्तिष्ठन्नानात्वमुच्चकास्ति ॥ ५ ॥

अथ द्रव्यैर्द्रव्यान्तरस्यारम्भं द्रव्यादर्थान्तरत्वं च सत्तायाः प्रतिहन्ति;—

तद्यथा-यथा सर्वे मुक्तात्मनः सन्तीत्युक्ते सति परमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादभरितावस्थलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयात्मप्रदेशैस्तथा किञ्चिदूनचरमशरीराकारादिपर्यायैश्च संकरव्यतिकरपरिहाररूपजातिभेदेन भिन्नानामपि सर्वेषां सिद्धजीवानां ग्रहणं भवति, तथा "सर्वं सत्" इत्युक्ते संग्रहनयेन सर्वपदार्थानां ग्रहणं भवति। अथवा सेनेयं वनमिदमित्युक्ते अश्वहस्त्यादिपदार्थानां निम्बाम्रादिवृक्षाणां स्वकीयस्वकीयजातिभेदभिन्नानां युगपद्ग्रहणं भवति, तथा सर्वं सदित्युक्ते सति सादृश्यसत्ताभिधानेन महासत्तारूपेण शुद्धसंग्रहनयेन सर्वपदार्थानां स्वजात्यविरोधेन ग्रहणं भवतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ अथ यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा सदसदपि स्वभावत

दिरूप नहीं है। जैसे–वृक्ष अपने २ स्वरूपास्तित्वसे आम, नीमादि भेदोंसे अनेक प्रकार हैं और सादृश्यास्तित्वसे वृक्ष जातिकी अपेक्षा एक हैं। इसीप्रकार द्रव्य अपने २ स्वरूपास्तित्वसे ६ प्रकार हैं और सादृश्यास्तित्वसे सत्की अपेक्षा सब एक हैं। सत्के कहनेमें छहों द्रव्य गर्भित हो जाते हैं। जैसे जब वृक्षोंमें स्वरूपास्तित्वसे भेद करते हैं तब सादृश्यास्तित्वरूप वृक्षकी जातिकी एकता मिटजाती है, और जब सादृश्यास्तित्वरूप वृक्षजातिकी एकता करते हैं तब स्वरूपास्तित्वसे उत्पन्न नानाप्रकारके भेद मिटजाते हैं; इसीप्रकार द्रव्योंमें स्वरूपास्तित्वकी अपेक्षा सत्रूप एकता मिटजाती है, और सादृश्यास्तित्वकी अपेक्षा नानाप्रकारके भेद मिट जाते हैं। भगवानका मत अनेकान्त है, जिस पक्षकी विवक्षा (कहनेकी इच्छा) करते हैं वह पक्ष मुख्य होता है, और जिस पक्षकी विवक्षा नहीं करते हैं वह पक्ष गौण होता है। नय संपूर्ण प्रमाण हैं विवक्षाकी अपेक्षा मुख्य गौण हैं ॥ ५ ॥ आगे द्रव्योंसे अन्य द्रव्यकी उत्पत्तिका निषेध करते हैं और द्रव्यसे सत्ताकी जुदाईका निषेध करते हैं;—

दव्वं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो ।
सिद्धं तध आगमदो णेच्छदि जो सो हि परसमओ ॥ ६ ॥

द्रव्यं स्वभावसिद्धं सदिति जिनास्तत्त्वतः समाख्यातवन्तः ।
सिद्धं तथा आगमतो नेच्छति यः स हि परसमयः ॥ ६ ॥

न खलु द्रव्यैर्द्रव्यान्तराणामारम्भः, सर्वद्रव्याणां स्वभावसिद्धत्वात् । स्वभावसिद्धत्वं तु तेषामनादिनिधनत्वात् । अनादिनिधनं हि न साधनान्तरमपेक्षते । गुणपर्यायात्मानमात्मनः स्वभावमेव मूलसाधनमुपादाय स्वयमेव सिद्धसिद्धिमद्भूतं वर्तते । यत्तु द्रव्यैरारभ्यते न तद्द्रव्यान्तरं कादाचित्कत्वात् स पर्यायः । द्व्यणुकादिवन्मनुष्यादिवच्च । द्रव्यं पुनरनवधि त्रिसमयावस्थायि न तथा स्यात् । अथैवं यथा सिद्धं स्वभावत एव द्रव्यं तथा सदित्यपि तत्स्वभावत एव सिद्धमित्यवधार्यतां । सत्तात्ममात्मनः स्वभावेन निष्पन्ननिष्पत्तिमद्भावयुक्तत्वात् । न च द्रव्यादर्थान्तरभूता सत्तोपपत्तिमभिप्रपद्यते, यतस्तत्समवायात्तत्सदिति स्यात् । सतः सत्तायाश्च न तावद्युतसिद्धत्वेनार्थान्तरत्वं, तयोर्दण्ड-

---

एवेत्याख्याति;—**दव्वं सहावसिद्धं** द्रव्यं परमात्मद्रव्यं स्वभावसिद्धं भवति । कस्मात् । अनाद्यनन्तेन परहेतुनिरपेक्षेण स्वतः सिद्धेन केवलज्ञानादिगुणाधारभूतेन सदानन्दैकरूपसुखसुधारसपरमसमरसीभावपरिणतसर्वशुद्धात्मप्रदेशभरितावस्थेन शुद्धोपादानभूतेन स्वकीयस्वभावेन निष्पन्नत्वात् । यच्च स्वभावसिद्धं न भवति तद्द्रव्यमपि न भवति । द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धपर्यायवत् मनुष्यादिजीवपर्यायवच्च । **सदिति** यथा स्वभावतः सिद्धं तद्द्रव्यं तथा सदिति सत्तालक्षणमपि स्वभावत एव भवति, न च भिन्नसत्तासमवायात् । अथवा यथा द्रव्यं स्वभावतः सिद्धं तथा तस्य योसौ सत्तागुणः सोपि स्वभावसिद्ध एव । कस्मादिति चेत् । सत्ताद्र-

---

[द्रव्यं] गुणपर्यायरूप वस्तु **[स्वभावसिद्धं]** अपने स्वभावसे निष्पन्न है । और वह **[सत् इति]** सत्तास्वरूप है ऐसा **[जिनाः]** जिन भगवान् **[तत्त्वतः]** स्वरूपसे **[समाख्यातवन्तः]** भले प्रकार कहते हैं । **[यः]** जो पुरुष **[आगमतः]** शास्त्रसे **[तथा सिद्धं]** उक्तप्रकार सिद्ध **[न इच्छति]** नहीं मानता है **[हि]** निश्चयकरके **[सः]** वह **[परसमयः]** मिथ्यादृष्टि है । **भावार्थ**—द्रव्य अनादिनिधन है, वह किसीका कारण पाके उत्पन्न नहीं हुआ है इसकारण स्वयं सिद्ध है । अपने गुणपर्यायस्वरूपको मूलसाधन अंगीकार करके आपही सिद्ध है । और जो द्रव्योंसे उत्पन्न होते हैं वे कोई अन्य द्रव्य नहीं, पर्याय होते हैं; परंतु पर्याय स्थायी नहीं होते नाशमान होते हैं । जैसे परमाणुओंसे द्व्यणुकादि स्कंध तथा जीव पुद्गलसे मनुष्यादि होते हैं । ये सब द्रव्यके पर्याय हैं, कोई नवीन द्रव्य नहीं हैं । इससे सिद्ध हुआ कि द्रव्य त्रिकालिक स्वयंसिद्ध है, वही सत्ता स्वरूप है । जैसे द्रव्य स्वभावसिद्ध

दण्डिवद्युतसिद्धस्यादर्शनात् । अयुतसिद्धत्वेनापि न तदुपपद्यते । इहेदमितिप्रतीतेरुत्पद्यत इति चेत् किंनिबन्धना हीहेदमितिप्रतीतिः । भेदनिबन्धनेतिचेत् को नाम भेदः? प्रादेशिक अताद्भाविको वा । न तावत्प्रादेशिकः, पूर्वमेव युतसिद्धत्वस्यापसारणात् । अताद्भाविकश्चेत् उपपन्न एव यद्द्रव्यं तन्न गुण इति वचनात् । अयं तु न खल्वेकान्तेनेहेदमितिप्रतीतेर्निबन्धनं, स्वयमेवोन्मग्ननिमग्नत्वात् । तथाहि—यदेव पर्यायेणार्प्यते द्रव्यं तदेव गुणवदिदं द्रव्यमयमस्य गुणः, शुभ्रमिदमुत्तरीयमयमस्य शुभ्रो गुण इत्यादिवदताद्भाविको भेद उन्मज्जति । यदा तु द्रव्येणार्प्यते द्रव्यं तदास्तमितसमस्तगुणवासनोन्मेषस्य तथाविधं द्रव्यमेव शुभ्रमुत्तरीयमित्यादिवत्प्रपश्यतः समूल एवाताद्भाविको भेदो निमज्जति । एवं हि भेदे निमज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिर्निमज्जति । तस्यां निमज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वं निमज्जति । ततः समस्तमपि द्रव्यमेवैकं भूत्वावतिष्ठते । यदा तु भेद उन्मज्जति,

---

व्ययोः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेऽपि दण्डदण्डिवद्भिन्नप्रदेशाभावात् । इदं के कथितवन्तः । **जिणा तच्चदो समक्खादा** जिनाः कर्तारः तत्त्वतः सम्यगाख्यातवन्तः कथितवन्तः **सिद्धं तह आगमदो** सन्तानापेक्षया द्रव्यार्थिकनयेनानादिनिधनागमादपि तथा सिद्धं **णेच्छदि जो सो हि परसमओ** नेच्छति न मन्यते य इदं वस्तुस्वरूपं स हि स्फुटं परसमयो

है वैसेही सत्ता स्वभावसिद्ध है । परंतु सत्ता द्रव्यसे कोई जुदी वस्तु नहीं है, सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है । इस सत्तागुणके संबंधसे द्रव्य 'सत्' कहा जाता है । सत्ता और द्रव्यमें यद्यपि गुणगुणीके भेदसे भेद है तौभी जैसे दंड और दंडीपुरुषमें भेद है वैसा भेद नहीं है । भेद दो प्रकारका है—एक प्रदेशभेद और दूसरा गुणगुणीभेद । इनमेंसे सत्ता और द्रव्यमें प्रदेश भेद तो हैं नहीं, जैसे कि दंड और दंडीमें होता है । क्योंकि सत्ताके और द्रव्यके जुदे २ प्रदेश नहीं, हैं गुणगुणीभेद है । क्योंकि जो द्रव्य है सो गुण नहीं है और जो गुण है सो द्रव्य नहीं है, इसप्रकार संज्ञा संख्या लक्षणादिसे भेद करते हैं । द्रव्य—सत्तामें सर्वथा भेद नहीं है । कथंचित्प्रकार भेद है, किसी एक प्रकारसे अभेद है । इस भेदाभेदको द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके भेदसे दिखलाते हैं—जब पर्यायार्थिकनयसे द्रव्यका कथन करते हैं तब द्रव्य गुणवाला है यह उसका गुण है । जैसे वस्त्र द्रव्य है यह उसका उज्ज्वलपना गुण है । इसप्रकार गुणगुणीभेद प्रगट होता है । और जब द्रव्यार्थिकनयसे द्रव्यका कथन करते हैं तब समस्त गुणभेदकी वासना मिटजाती है, एक द्रव्यही रहता है गुणगुणी भेद नष्ट होजाता है । और इसप्रकार भेदके नष्ट होनेसे गुणगुणीभेदरूप ज्ञानभी नष्ट होता है, तथा ज्ञानके नष्ट होनेसे वस्तु अभेदभावसे एकरूप होकर ठहरती है । पर्याय कथनसे जब द्रव्यमें भेद उछलते हैं तब उसके निमित्तसे भेदरूप ज्ञान प्रगट होता है, और उस

तस्मिन्नुन्मज्जति तत्प्रत्यया प्रतीतिरुन्मज्जति । तस्यामुन्मज्जत्यामयुतसिद्धत्वोत्थमर्थान्तरत्वमुन्मज्जति । तदापि तत्पर्यायत्वेनोन्मज्जज्जलराशेर्जलकल्लोल इव द्रव्यान्न व्यतिरिक्तं स्यात् । एवं सति स्वयमेव सद्द्रव्यं भवति । यस्त्वेवं नेच्छति स खलु परसमय एव द्रष्टव्यः ॥ ६ ॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्वेपि सद्द्रव्यं भवतीति विभावयति;—

सदवट्ठियं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो ।
अत्थेसु सो सहावो ठिदिसंभवणाससंबद्धो ॥ ७ ॥

सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यस्य यो हि परिणामः ।
अर्थेषु स स्वभावः स्थितिसंभवनाशसंबद्धः ॥ ७ ॥

मिथ्यादृष्टिर्भवति । एवं यथा परमात्मद्रव्यं स्वभावतः सिद्धमवबोद्धव्यं तथा सर्वद्रव्याणीति । अत्र द्रव्यं केनापि पुरुषेण न क्रियते । सत्तागुणोपि द्रव्याद्भिन्नो नास्तीत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्यत्वे सति सत्तैव द्रव्यं भवतीति प्रज्ञापयति;—**सदवट्ठिदं सहावे दव्वं** द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं भवति । किं कर्तृ । सदिति शुद्धचेतनान्वयरूपमस्तित्वं । किं विशिष्टं । अवस्थितं । क्व । स्वभावे । स्वभावं कथयति—**दव्वस्स जो हि परिणामो** तस्य परमात्मद्रव्यस्य संबन्धी हि स्फुटं यः परिणामः । केषु विषयेषु । **अत्थेसु** परमात्मपदार्थस्य धर्मत्वादभेदनयेनार्था भण्यन्ते । के ते । केवलज्ञानादिगुणाः सिद्धत्वादिपर्यायाश्च, तेष्वर्थेषु विषयेषु योसौ परिणामः । **सो सहाओ** केवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वादिपर्यायरूपस्तस्य परमात्मद्रव्यस्य स्वभावो भवति । स च कथंभूतः । **ठिदिसंभवणाससंबंधो** स्वात्मप्राप्तिरूपमोक्षपर्यायस्य

भेदरूप ज्ञानके उछलनेसे गुणोंका भेद उछलता है । जिसतरह समुद्रमें उछलते हुए जलके कल्लोल समुद्रसे जुदे नहीं हैं, उसीप्रकार पर्याय कथनसे द्रव्यसे ये भेद जुदे नहीं हैं । इससे सिद्ध हुआ कि द्रव्यसे सत्तागुण पृथक् नहीं है, द्रव्य उस स्वरूपही है । गुणगुणीके भेदसे भेद है स्वरूपसे भेद नहीं है । जो ऐसा नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टी हैं ॥ ६ ॥ आगे कहते हैं कि उत्पादव्ययध्रौव्यके होनेपर ही सत् द्रव्य होता है;— **[स्वभावे]** अपनी परिणतिमें **[अवस्थितं]** ठहरा हुआ जो **[सत्]** सत्तारूप वस्तु सो **[द्रव्यं]** द्रव्य है । और **[द्रव्यस्य]** द्रव्यका **[अर्थेषु]** गुणपर्यायोंमें **[यः]** जो **[स्थितिसंभवनाशसंबद्धः]** ध्रौव्य, उत्पाद और व्ययसहित **[परिणामः]** परिणाम है **[सः]** वह **[हि]** ही **[स्वभावः]** स्वभाव है । **भावार्थ**—द्रव्यके गुणपर्यायरूप परिणमनेको स्वभाव कहते हैं । और वह स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसहित है । जैसे एक द्रव्यके चौड़ाईरूप सूक्ष्मप्रदेश अनेक हैं, उसीप्रकार समस्त द्रव्योंकी परिणतिके प्रवाह क्रमसे लम्बाईरूप सूक्ष्मपरिणामभी अनेक हैं । द्रव्यकी चौड़ाई प्रदेश हैं । और लम्बाई परिणति है । प्रदेश सदाकाल स्थायी हैं

इह हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति द्रव्यं। स्वभावस्तु द्रव्यस्य ध्रौव्योत्पादोच्छेदैक्यात्मकपरिणामः। यथैव हि द्रव्यवास्तुनः सामस्त्येनैकस्यापि विष्कम्भक्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः प्रदेशाः, तथैव हि द्रव्यवृत्तेः सामस्त्येनैकस्यापि प्रवाहक्रमप्रवृत्तिवर्तिनः सूक्ष्मांशाः परिणामाः। यथा च प्रदेशानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनो विष्कम्भक्रमः, तथा परिणामानां परस्परव्यतिरेकनिबन्धनः प्रवाहक्रमः। यथैव च ते प्रदेशाः स्वस्थाने स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहवास्तुतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति, तथैव ते परिणामाः स्वावसरे स्वरूपपूर्वरूपाभ्यामुत्पन्नोच्छन्नत्वात्सर्वत्र परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतयानुत्पन्नप्रलीनत्वाच्च संभूतिसंहारध्रौव्यात्मकमात्मानं धारयन्ति। यथैव च य एव हि पूर्वप्रदेशोच्छेदनात्मको वास्तुसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकवास्तुतया तदुभयात्मक इति; तथैव य एव हि पूर्वपरिणामोच्छेदात्मकः प्रवाहसीमान्तः स एव हि तदुत्तरोत्पादात्मकः, स एव च परस्परानुस्यूतिसूत्रितैकप्रवाहतया तदुभयात्मक इति। एवमस्य स्वभावत एव त्रिलक्षणायां परिणामपद्धतौ दुर्ललितस्य स्वभावानतिक्रमात्त्रिलक्षणमेव सत्त्वमनुमोदनीयं। मुक्ताफलदामवत्। यथैव हि परिगृहीतद्राघिम्नि प्रलम्बमाने मुक्ताफलदामनि समस्तेष्वपि स्वधामसूच्चकासत्सु मुक्ताफलेषूत्तरोत्तरेषु धामसूत्तरोत्तरमुक्ताफलानामुदयनात्पूर्वपूर्वमुक्ताफलानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य सूत्रकस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति, तथैव हि परिग्रहीतनि-

---

संभवस्तस्मिन्नेव क्षणे परमागमभाषयैकत्ववितर्कविचारद्वितीयशुक्लध्यानसंज्ञस्य शुद्धोपादानभूतस्य समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितस्वसंवेदनज्ञानपर्यायस्य नाशस्तस्मिन्नेव समये तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यस्य स्थितिरित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेण संबन्धो भवतीति। एवमुत्पादव्ययध्रौव्यत्रयेणैकसमये यद्यपि पर्यायार्थिकनयेन परमात्मद्रव्यं परिणतं, तथापि द्रव्यार्थिकनयेन

इसीकारण चौड़ाई हैं, और परिणति प्रवाहरूप क्रमसे है इसीलिये लम्बाई है। जैसे द्रव्यके प्रदेश पृथक् २ हैं उसीप्रकार तीन कालसंबंधी परिणामभी जुदे २ हैं। और जैसे वे प्रदेश अपने २ स्थानोंमें अपने पूर्व २ प्रदेशोंकी अपेक्षा उत्पन्न हैं, उत्तर २ (आगे २) प्रदेशोंकी अपेक्षा व्यय हैं। एक द्रव्य संपूर्ण प्रदेशोंमें है, इस अपेक्षासे न उत्पन्न होते हैं न नाश होते हैं, ध्रौव्य हैं। इसीकारण प्रदेश उत्पाद, व्यय और ध्रुवताको धारण किये हुए हैं। इसीप्रकार परिणाम अपने कालमें पूर्व उत्तर परिणामोंकी अपेक्षा उत्पाद व्ययरूप है, सदा एक परिणतिप्रवाहकी अपेक्षा ध्रौव्य है, इसकारण परिणामभी उत्पाद-व्यय-ध्रुवता संयुक्त है। जो परिणाम है वही स्वभाव है और द्रव्य स्वभावके साथ है, इसकारण द्रव्यभी पूर्वोक्त तीन लक्षण युक्त है। जैसे मोतियोंकी मालामें अपनी प्रभासे शोभायमान जो मोती हैं वे पहले २ मोतियोंकी

त्यवृत्तिनिवर्तमाने द्रव्ये समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरेषूत्तरोत्तरपरिणामानामुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामानामनुदयनात् सर्वत्रापि परस्परानुस्यूतिसूत्रकस्य प्रवाहस्यावस्थानात्त्रैलक्षण्यं प्रसिद्धिमवतरति ॥ ७ ॥

अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्पराविनाभावं दृढयति;—

ण भवो भंगविहीणो भंगो वा णत्थि संभवविहीणो ।
उप्पादोवि य भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥ ८ ॥

न भवो भङ्गविहीनो भङ्गो वा नास्ति संभवविहीनः ।
उत्पादोपि च भङ्गो न विना ध्रौव्येणार्थेन ॥ ८ ॥

न खलु सर्गः संहारमन्तरेण, न संहारो वा सर्गमन्तरेण, न सृष्टिसंहारौ स्थितिमन्तरेण, न स्थितिः सर्गसंहारमन्तरेण । य एव हि सर्गः स एव संहारः, य एव संहारः स

सत्तालक्षणमेव भवति । त्रिलक्षणमपि सत्सत्तालक्षणं कथं भण्यत इति चेत् "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति वचनात् । यथेदं परमात्मद्रव्यमेकसमयेनोत्पादव्ययध्रौव्यैः परिणतमेव सत्तालक्षणं भण्यते, तथा सर्वद्रव्याणीत्यर्थः ॥ ७ ॥ एवं स्वरूपसत्तारूपेण प्रथमगाथा, महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वतःसिद्धं तथा सत्तागुणोपीति कथनेन तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेपि सत्तैव द्रव्यं भण्यत इति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरणमुख्यतया द्वितीयस्थलं गतम् । अथोत्पादव्ययध्रौव्याणां परस्परसापेक्षत्वं दर्शयति;—**ण भवो भंगविहीणो** निर्दोषपरमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वपर्यायस्य भव उत्पादः, तद्विपरीतमिथ्यात्वपर्यायस्य भङ्गं विना न भवति । कस्मात् । उपादानकारणाभावात्, मृत्पिण्डभङ्गाभावे घटोत्पाद इव । द्वितीयं च कारणं मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वपर्यायरूपेण प्रतिभासनात् । तदपि कस्मात् ।

मोतियों [illegible] के मोती उत्पादरूप हैं पिछले २ व्ययरूप हैं और सबमें सूत एक है, इस अपेक्षासे ध्रौव्य है । इसीप्रकार द्रव्यमें उत्तर परिणामोंकी अपेक्षा उत्पाद पूर्वपरिणामोंकी अपेक्षा व्यय और द्रव्य प्रवाहकी अपेक्षा ध्रौव्य है । इसतरह द्रव्य तीन लक्षणसहित है ॥ ७ ॥ अब कहते हैं कि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये आपसमें पृथक् नहीं हैं एकही हैं;—[**भङ्गविहीनः**] व्ययरहित [**भवः**] उत्पाद [**न**] नहीं होता [**वा**] तथा [**संभवविहीनः**] उत्पादरहित [**भङ्गः**] व्यय [**नास्ति**] नहीं होता [**च**] और [**उत्पादः**] उत्पाद [**अपि**] तथा [**भङ्गः**] व्यय ये दोनों [**विना ध्रौव्येण अर्थेन**] नित्य स्थिररूप पदार्थके विना [**न**] नहीं होते । **भावार्थ**—उत्पाद व्ययके विना नहीं होता, व्यय उत्पादके विना नहीं होता, उत्पाद और व्यय ये दोनों ध्रौव्यके विना नहीं होते, तथा ध्रौव्य उत्पाद-व्ययके विना नहीं होता । इसकारण जो उत्पाद है वही व्यय है जो व्यय है वही उत्पाद है जो उत्पाद-व्यय है वही ध्रुवता है । इस कथनको दृष्टान्तसे दिखाते हैं—जैसे जो घड़ेका

एव सर्गः, यावेव सर्गसंहारौ सैव स्थितिः, यैव स्थितिस्तावेव सर्गसंहाराविति। तथाहि— य एव कुम्भस्य सर्ग स एव मृत्पिण्डस्यः संहारः, भावस्य भावान्तराभावस्वभावेनावभासनात्। य एव च मृत्पिण्डस्य संहारः स एव कुम्भस्य सर्गः, अभावस्य भावान्तरभावस्वभावेनावभासनात्। यौ च कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ सैव मृत्तिकायाः स्थितिः, व्यतिरेकमुखेनैवान्वयस्य प्रकाशनात्। यैव च मृत्तिकायाः स्थितिस्तावेव कुम्भपिण्डयोः सर्गसंहारौ, व्यतिरेकाणामन्वयानतिक्रमणात्। यदि पुनर्नेदमेवमिष्येत तदान्यः सर्गोऽन्यः संहारः अन्या स्थितिरित्यायाति। तथा सति हि केवलं सर्गं मृगयमाणस्य कुम्भस्योत्पादनकारणाभावादभवनिरेव भवेत्, असदुत्पाद एव वा। तत्र कुम्भस्याभवनौ सर्वेषामेव भावानामभवनिरेव भवेत्। असदुत्पादो वा व्योमप्रसवादीनामप्युत्पादः स्यात्। तथा केवलं संहरमाणस्य मृत्पिण्डस्य संहारकारणाभावादसंहरणिरेव भवेत्, सदुच्छेद एव वा। तत्र

"भावान्तरस्वभावरूपो भवत्यभाव" इति वचनात्। घटोत्पादरूपेण मृत्पिण्डभङ्ग इव। यदि पुनर्मिथ्यात्वपर्यायभङ्गस्य सम्यक्त्वोपादानकारणभूतस्याभावेऽपि शुद्धात्मानुभूतिरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादो भवति, तर्ह्युपादानकारणरहितानां खपुष्पादीनामप्युत्पादो भवतु? न च तथा। **भंगो वा णत्थि संभवविहीणो** परद्रव्योपादेयरूपमिथ्यात्वस्य भङ्गो नास्ति। कथंभूतः। पूर्वोक्तसम्यक्त्वपर्यायसंभवरहितः। कस्मादिति चेत्। भङ्गकारणाभावात्, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डस्येव। द्वितीयं च कारणं सम्यक्त्वपर्यायोत्पादस्य मिथ्यात्वपर्यायाभावरूपेण दर्शनात्। तदपि कस्मात्। पर्यायस्य पर्यायान्तराभावरूपत्वाद्, घटपर्यायस्य मृत्पिण्डाभावरूपेणेव। यदि पुनः सम्यक्त्वोत्पादनिरपेक्षो भवति मिथ्यात्वपर्यायाभावस्तर्ह्यभाव एव न स्यात्। कस्मात्। अभा-

---

उत्पाद है वही मट्टीके पिंडका व्यय (नाश) है, क्योंकि एक पर्यायका [illegible] (उत्पन्न होना) दूसरे पर्यायके नाशसे होता है। जो घड़े और पिंडका उत्पाद वही मट्टीकी ध्रुवता है क्योंकि पर्यायके विना द्रव्यकी स्थिति देखनेमें नहीं आती। जो माटीकी ध्रुवता है वही घड़े और पिंडका उत्पाद-व्यय है, क्योंकि द्रव्यकी थिरताके विना पर्याय हो नहीं सकते। इसकारण ये तीनों एक हैं। ऐसा न मानें तो वस्तुका स्वभाव तीन लक्षणवाला सिद्ध नहीं होसकता। जो केवल उत्पादही माना जाय तो दो दोष लगते हैं— एक तो कार्यकी उत्पत्ति न होवे दूसरे असत्का उत्पाद होजाय। यही दिखाते हैं— घड़ेका जो उत्पाद है वह मृत्पिण्डके व्ययसे है, यदि केवल उत्पादही माना जावे व्यय न मानें तो उत्पादके कारणके अभावसे घड़ेकी उत्पत्तिही न हो सकै और जिसतरह घटकार्य नहीं होसकता वैसे सब पदार्थभी उत्पन्न नहीं होसकते। यह पहला दूषण है॥ दूसरा दोष दिखाते हैं—जो ध्रुवपनासहित वस्तुके विना उत्पाद हो सकै तो असत् वस्तुका उत्पाद हो जाना चाहिये, ऐसा होनेपर आकाशके फूलभी उत्पन्न होने

मृत्पिण्डस्यासंहरणौ सर्वेषामेव भावानामसंहरणिरेव भवेत् । सदुच्छेदे वा संविदादीनामप्युच्छेदः स्यात् । तथा केवलां स्थितिमुपगच्छन्त्या मृत्तिकाया व्यतिरेकाक्रान्तस्थित्यन्वयाभावादस्थानिरेव भवेत्, क्षणिकनित्यत्वमेव वा । तत्र मृत्तिकाया अस्थानौ सर्वेषामेव भावानामस्थानिरेव भवेत् । क्षणिकनित्यत्वे वा चित्तक्षणानामपि नित्यत्वं स्यात् । तत उत्तरोत्तरव्यतिरेकाणां सर्गेण पूर्वपूर्वव्यतिरेकाणां संहारेणान्वयस्यावस्थानेनाविनाभूतमुद्योतमाननिर्विघ्नत्रैलक्षण्यलाञ्छनं द्रव्यमवश्यमनुमन्तव्यम् ॥ ८ ॥

अथोत्पादादीनां द्रव्यादर्थान्तरत्वं संहरति;—

उप्पादट्ठिदिभंगा विज्जंते पज्जएसु पज्जाया ।
दव्वं हि संति णियदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥ ९ ॥

वकारणाभावादिति, घटोत्पादाभावे मृत्पिण्डाभावस्य इव । **उप्पादोवि य भंगो ण विणा दव्वेण अत्थेण** परमात्मरुचिरूपसम्यक्त्वस्योत्पादस्तद्विपरीतमिथ्यात्वस्य भङ्गो वा नास्ति । कं विना । तदुभयाधारभूतपरमात्मरूपद्रव्यपदार्थं विना । कस्मात् । द्रव्याभावे व्ययोत्पादाभावान्मृत्तिकाद्रव्याभावे घटोत्पादमृत्पिण्डभङ्गाभावादिति । यथा सम्यक्त्वमिथ्यात्वपर्यायद्वये परस्परसापेक्षमुत्पादादित्रयं दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेषु द्रष्टव्यमित्यर्थः ॥ ८ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्येण सह परस्पराधाराधेयभावत्वादन्वयद्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यमेव भवतीत्युपदिशति;—**उप्पादट्ठिदिभंगा** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावात्मतत्त्वनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे स्वसंवेदनज्ञानविलक्षणाज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गः, तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपेण स्थितिरित्यु-

---

आवेंगे । और जो केवल व्यय ही मानेंगे तौभी दो दूषण आवेंगे । एक तो नाशहीका अभाव हो[illegible] क्योंकि मृत्पिडका नाश घड़ेके उत्पन्न होनेसे है, अर्थात् यदि केवल नाशही मान[illegible] नाशका अभाव सिद्ध होगा क्योंकि नाश उत्पादके विना नहीं होता। दूसरे सत्का नाश होवेगा और सत्के नाश होनेसे ज्ञानादिककाभी नाश होकर धारणा न होगी । और केवल ध्रुवके नाश माननेसेभी दो. दूषण लगते हैं । एक तो पर्यायका नाश होता है दूसरे अनित्यको नित्यपना होता है । जो पर्यायका नाश होगा तो पर्यायके विना द्रव्यका अस्तित्व नहीं है इसलिये द्रव्यके नाशका प्रसंग आता है, जैसे मृत्तिकाका पिंड घटादि पर्यायोंके विना नहीं होता । और जो अनित्यको नित्यत्व होगा तो मनकी गतिकोभी नित्यता होगी । इसलिये इन सब कारणोंसे यह बात सिद्ध हुई कि केवल एकके माननेसे वस्तु सिद्ध नहीं होती है । इसलिये आगामी पर्यायका उत्पाद, पूर्वपर्यायका व्यय, मूलवस्तुकी स्थिरता इन तीनोंकी एकतासे ही द्रव्यका लक्षण निर्विघ्न सधता है ॥ ८ ॥ आगे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य इन तीनों भावोंको द्रव्यसे अभेदरूप सिद्ध करते हैं;—[**उत्पादस्थितिभङ्गाः**] उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य [**पर्यायेषु**] द्रव्यके पर्यायोंमें [**विद्यन्ते**] रहते हैं और [**हि**] निश्चय-

उत्पादस्थितिभङ्गा विद्यन्ते पर्यायेषु पर्यायाः ।
द्रव्यं हि सन्ति नियतं तस्माद्द्रव्यं भवति सर्वम् ॥ ९ ॥

उत्पादव्ययध्रौव्याणि हि पर्यायानालम्बन्ते, ते पुनः पर्याया द्रव्यमालम्बन्ते । ततः समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं न पुनर्द्रव्यान्तरं । द्रव्यं हि तावत्पर्यायैरालम्ब्यते । समुदायिनः समुदायात्मकत्वात् पादपवत् । यथा हि समुदायी पादपः स्कन्धमूलशाखासमुदायात्मकः स्कन्धमूलशाखाभिरालम्बित एव प्रतिभाति, तथा समुदायि द्रव्यं पर्यायसमुदायात्मकं पर्यायैरालम्बितमेव प्रतिभाति । पर्यायास्तूत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्ते उत्पादव्ययध्रौव्याणामंशधर्मत्वात् बीजाङ्कुरपादपवत् । यथा किलांशिनः पादपस्य बीजाङ्कुरपादपत्वलक्षणास्त्रयोऽशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति, तथांशिनो द्रव्यस्योच्छिद्यमानोत्पद्यमानावतिष्ठमानभावलक्षणास्त्रयोंशा भङ्गोत्पादध्रौव्यलक्षणैरात्मधर्मैरालम्बिताः सममेव प्रतिभान्ति । यदि पुनर्भङ्गोत्पादध्रौव्याणि द्रव्यस्यैवेष्यन्ते

क्तलक्षणास्त्रयो भङ्गाः कर्तारः **विज्जंते** विद्यन्ते तिष्ठन्ति । केषु । **पज्जएसु** सम्यक्त्वपूर्वकनिर्विकारस्वसंवेदनज्ञानपर्याये तावदुत्पादस्तिष्ठति स्वसंवेदनज्ञानपर्यायरूपेण भङ्गस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण ध्रौव्यं चेत्युक्तलक्षणस्वकीयस्वकीयपर्यायेषु **पज्जाया दव्वं हि संति** ते चोक्तलक्षणज्ञानाज्ञानतदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्याया हि स्फुटं द्रव्यं सन्ति **णियदं** निश्चितं प्रदेशाभेदेपि स्वकीयस्वकीयसंज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेन **तम्हा दव्वं हवदि सव्वं** यतो निश्चयाधाराधेयभावेन तिष्ठन्त्युत्पादादयस्तस्मात्कारणादुत्पादादित्रयं स्वसंवेदनज्ञानादिपर्या-

---

करके वे [**पर्यायाः**] पर्याय [**द्रव्ये**] द्रव्यमें [**सन्ति**] रहते हैं । [**तस्मात्**] इस कारणसे [**नियतं**] यह निश्चय है कि [**सर्वं**] उत्पा[illegible] सब [**द्रव्यं**] द्रव्य ही [**भवति**] हैं जुदे नहीं हैं । **भावार्थ**—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यभाव पर्यायके आश्रित हैं और वे पर्याय द्रव्यके आधार हैं पृथक् नहीं हैं । क्योंकि द्रव्य पर्यायात्मक है । जैसे वृक्ष स्कंध (पींड), शाखा और मूलादिरूप है परन्तु ये स्कन्ध-मूल-शाखादि वृक्षसे जुदे पदार्थ नहीं हैं । इसीप्रकार उत्पादादिकसे द्रव्य पृथक् नहीं है एकही है । द्रव्य अंशी है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य अंश हैं । जैसे वृक्ष अंशी है बीज-अंकुर-वृक्षत्व अंश हैं । ये तीनों अंश उत्पाद-व्यय और ध्रुवपनेको लिये हुए हैं, बीजका नाश अंकुरका उत्पाद और वृक्षत्वका ध्रुवपना है । इसीप्रकार अंशी द्रव्यके उत्पद्यमान विनाशीक और स्थिरतारूप-ये तीन पर्यायरूप अंश हैं सो उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वसे संयुक्त हैं । उत्पाद व्यय ध्रुवभाव पर्यायोंमें होते हैं । जो द्रव्यमें होवें तो सबका ही नाश होजावे । इसीको स्पष्टरीतिसे दिखाते हैं—जो द्रव्यका नाश होवे तो सब शून्य होजावे, जो द्रव्यका उत्पाद होवे तो समय २ में एक २ द्रव्यके उत्पन्न होनेसे अनन्त द्रव्य होजावें, और जो द्रव्य ध्रौव्य होवे तो पर्यायका नाश होवे और पर्यायके नाशसे द्र-

तदा समग्रमेव विप्लवते। तथाहि भङ्गे तावत् क्षणभङ्गकटाक्षितानामेकक्षण एव सर्वद्रव्याणां संहरणाद्द्रव्यशून्यतावतारः समुच्छेदो वा। उत्पादे तु प्रतिसमयोत्पादमुद्रितानां प्रत्येकं द्रव्याणामानन्त्यमसदुत्पादो वा। ध्रौव्ये तु क्रमभुवां भावानामभावाद्द्रव्यस्याभावः क्षणिकत्वं वा। अत उत्पादव्ययध्रौव्यैरालम्ब्यन्तां पर्यायाः पर्यायैश्च द्रव्यमालम्ब्यतां, येन समस्तमप्येतदेकमेव द्रव्यं भवति॥ ९॥

अथोत्पादादीनां क्षणभेदमुदस्य द्रव्यत्वं द्योतयति;—

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं।
एकम्मि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं॥ १०॥

समवेतं खलु द्रव्यं संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः।
एकस्मिन् चैव समये तस्माद्द्रव्यं खलु तत्रितयम्॥ १०॥

यत्रयं चान्वयद्रव्यार्थिकनयेन सर्वं द्रव्यं भवति। पूर्वोक्तोत्पादादित्रयस्य तथैव स्वसंवेदनज्ञानादिपर्यायत्रयस्य चानुगताकारेणान्वयरूपेण यदाधारभूतं तदन्वयद्रव्यं भण्यते, तद्विषयो यस्य स भवत्यन्वयद्रव्यार्थिकनयः। यथेदं ज्ञानाज्ञानपर्यायद्वये भङ्गत्रयं व्याख्यातं तथापि सर्वद्रव्यपर्यायेषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः॥ ९॥ अथोत्पादादीनां पुनरपि प्रकारान्तरेण द्रव्येण सहाभेदं समर्थयति समयभेदं च निराकरोति;—**समवेदं खलु दव्वं** समवेतमेकीभूतमभिन्नं भवति खलु स्फुटं। किं। आत्मद्रव्यं। कैः सह **संभवठिदिणाससण्णिदट्ठेहिं** सम्यक्त्वज्ञानपूर्वकनिश्चलनिर्विकारनिजात्मानुभूतिलक्षणवीतरागचारित्रपर्यायेणोत्पादः तथैव रागादिपरद्रव्यैकत्वपरिणतिरूपचारित्रपर्यायेण नाशस्तदुभयाधारात्मद्रव्यत्वावस्थारूपपर्यायेण स्थितिरित्युक्तलक्षणसंज्ञोत्पादव्ययध्रौव्यैः सह। तर्हि किं बौद्धमतवद्भिन्नभिन्नसमये त्रयं भविष्यति। नैवं।

व्यकाभी नाश होजावे। इसलिये उत्पादादि द्रव्यके आश्रित नहीं हैं पर्यायके आश्रित हैं। पर्याय उत्पन्नभी होते हैं, नष्टभी होते हैं और वस्तुकी अपेक्षा स्थिरभी रहते हैं। इसकारण वे पर्यायमें हैं पर्याय द्रव्यसे जुदे नहीं हैं द्रव्यही हैं। पर्यायकी अपेक्षा द्रव्योंमें उत्पादादिक तीन भाव जानना चाहिये॥ ९॥ आगे इन उत्पादादिकोंमें समय भेद नहीं है, एकही समयमें द्रव्यसे अभेदरूप होते हैं यह प्रगट करते हैं;—[**द्रव्यं**] वस्तु [**संभवस्थितिनाशसंज्ञितार्थैः**] उत्पादव्ययध्रौव्य नामक भावोंसे [**खलु**] निश्चयकर [**समवेतं**] एकमेक है जुदी नहीं है [**च**] और वह [**एकस्मिन् एव समये**] एकही समयमें उनसे अभेदरूप परिणमन करती है। [**तस्मात्**] इसकारण [**खलु**] निश्चयकरके [**तत् त्रितयं**] वह उत्पादादिकत्रिक [**द्रव्यं**] द्रव्य स्वरूप है—एकही है। **भावार्थ**—यहां कोई वितर्क करै कि उत्पादव्यय-ध्रौव्य एक समयवर्ती हैं—यह सिद्धान्त ठीक नहीं हैं, इन तीनोंका समय जुदा२ है,

इह हि यो नाम वस्तुनो जन्मक्षणः स जन्मनैव व्याप्तत्वात् स्थितिक्षणो नाशक्षणश्च न भवति । यश्च स्थितिक्षणः स खलूभयोरन्तरालदुर्ललितत्वाज्जन्मक्षणो नाशक्षणश्च न भवति । यश्च नाशक्षणः स तूत्पाद्यावस्थया च नश्यतो जन्मक्षणः स्थितिक्षणश्च न भवति । इत्युत्पादादीनां वितर्क्यमाणः क्षणभेदो हृदयभूमिमवतरति, अवतरत्येवं यदि द्रव्यमात्मनैवोत्पद्यते आत्मनैवावतिष्ठते आत्मनैव नश्यतीत्यभ्युपगम्यते । तत्तु नाभ्युपगतं । पर्यायाणामेवोत्पादादयः कुतः क्षणभेदः । तथाहि–यथा कुलालदण्डचक्रचीवरारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः । तथा अन्तरङ्गबहिरङ्गसाधनारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एवोत्तरपर्यायस्य जन्मक्षणः स एव प्राक्तनपर्यायस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य द्रव्यत्वस्य स्थितिक्षणः । यथा च वर्धमानमृत्पिण्डमृत्तिकात्वेषु प्रत्येकवर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिन्यां मृत्तिकायां सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते, तथा उत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्वेषु प्रत्येकवर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौ-

---

एकम्मि चेव समये अङ्गुलिद्रव्यस्य वक्रपर्यायवत्संसारिजीवस्य मरणकाले ऋजुगतिवत् क्षीणकषायचरमसमये केवलज्ञानोत्पत्तिवदयोगिचरमसमये मोक्षवच्चेत्येकस्मिन्समय एव । **तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं** यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेणैकसमये भङ्गत्रयेण परिणमति तस्मात्संज्ञालक्षणप्रयोजना-

---

क्योंकि जो समय उत्पादका है वह उत्पादहीसे व्याप्त है वह ध्रौव्य व्ययका समय नहीं है। जो ध्रौव्यका समय है वह उत्पाद व्ययके मध्य है इससेभी जुदा ही समय है। और जो नाशका समय है उस समय उत्पाद ध्रौव्य नहीं होसक्ते । इसकारण यह समयभी पृथक् है । इसप्रकार इनके समय पृथक् २ संभव होते हैं; सो इस कुतर्कका समाधान आचार्य महाराज इसप्रकार करते हैं कि, "जो द्रव्य आपही उत्पन्न होता, आपही स्थिर होता और आपही नष्ट होता तो अवश्यही तीन समय होते परंतु ऐसा नहीं है" । पर्यायसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य होते हैं इसकारण एकही समयमें सधते हैं । जैसे दंड चक्र सूत कुंभकारादिके निमित्तसे घटके उत्पन्न होनेका जो समय है वही मृत्पिण्डके नाशका समय है और इन दोनों अवस्थाओंमें मृत्तिका अपने स्वभावको नहीं छोड़ती है इसलिये उसीसमय ध्रुवपनाभी है । इसीप्रकार अंतरंग–बहिरंग कारणोंके होनेपर आगामी पर्यायके उत्पन्न होनेका जो समय है वही पूर्व पर्यायके नाशका समय है और इन दोनों अवस्थाओंमें द्रव्य अपने स्वभावको छोड़ता नहीं है इसलिये उसीसमय ध्रौव्य है । जैसे मृत्तिका द्रव्यमें घट, मृत्पिंड और मृत्तिकाभाव इन पर्यायोंसे एकही समयमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हैं; उसीप्रकार पर्यायोंके द्वारा द्रव्यमेंभी जानना चाहिये । पूर्व पर्यायका नाश, उत्तर पर्यायका उत्पाद और द्रव्यत्वसे ध्रुवता-ये तीन भाव एकही समयमें सधते हैं । हां ! यदि द्रव्यही उपजता विनशता तो एक समय अवश्यही नहीं

व्याणि त्रिस्वभावस्पर्शिनि द्रव्ये सामस्त्येनैकसमय एवावलोक्यन्ते । यथैव च वर्द्धमानपिण्डमृत्तिकात्ववर्तीन्युत्पादव्ययध्रौव्याणि मृत्तिकैव न वस्त्वन्तरं, तथैवोत्तरप्राक्तनपर्यायद्रव्यत्ववर्तीन्यप्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्यमेव न खल्वर्थान्तरम् ॥ १० ॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्यनेकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति;—

पाडुब्भवदि य अण्णो पज्जाओ पज्जओ वयदि अण्णो ।
दव्वस्स तंपि दव्वं णेव पणट्ठं ण उप्पण्णं ॥ ११ ॥

प्रादुर्भवति चान्यः पर्यायः पर्यायो व्येति अन्यः ।
द्रव्यस्य तदपि द्रव्यं नैव प्रणष्टं नोत्पन्नम् ॥ ११ ॥

इह हि यथा किलैकस्त्र्यणुकः समानजातीयोनेकद्रव्यपर्यायो विनश्यत्यन्यश्चतुरणुकः प्रजायते, ते तु त्रयश्चत्वारो वा पुद्गला अविनष्टानुत्पन्ना एवावतिष्ठन्ते; तथा सर्वेपि

दिभेदेपि प्रदेशानामभेदात्त्रयमपि खु स्फुटं द्रव्यं भवति । यथेदं चारित्राचारित्रपर्यायद्वये भङ्गत्रयमभेदेन दर्शितं तथा सर्वद्रव्यपर्यायेष्ववबोद्धव्यमित्यर्थः ॥ १० ॥ एवमुत्पादव्ययध्रौव्यरूपलक्षणव्याख्यानमुख्यतया गाथात्रयेण तृतीयस्थलं गतम् । अथ द्रव्यपर्यायेणोत्पादव्ययध्रौव्याणि दर्शयति;—**पाडुब्भवदि य** प्रादुर्भवति च जायते **अण्णो** अन्यः कश्चिदपूर्वानन्तज्ञानसुखादिगुणास्पदभूतः शाश्वतिकः । स कः । **पज्जाओ** परमात्मावाप्तिरूपः स्वभावद्रव्यपर्याय **पज्जओ वयदि अण्णो** पर्यायो व्येति विनश्यति । कथंभूतः । अन्यः पूर्वोक्तमोक्षपर्यायाद्भिन्नो निश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिरूपस्यैव मोक्षपर्यायस्योपादानकारणभूतः । कस्य संबन्धी पर्यायः । **दव्वस्स** परमात्मद्रव्यस्य **तंपि दव्वं** तदपि परमात्मद्रव्यं **णेव य णट्ठं ण उप्पण्णं** शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन नैव नष्टं न चोत्पन्नम् । अथवा संसारिजीवापेक्षया देवादि-

---

सधता परंतु पर्यायकी अपेक्षा अच्छीतरह सधते हैं, कोई शंका नहीं रहती । और जैसे घट, मृत्पिण्ड, मृत्तिकाभावरूप उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य मृत्तिकासे जुदे पदार्थ नहीं हैं मृत्तिकारूपही हैं; उसीप्रकार उत्पाद व्यय ध्रौव्य-ये द्रव्यसे जुदे नहीं हैं द्रव्यस्वरूपही हैं ॥ १० ॥ आगे अनेक द्रव्योंके संयोगसे जो पर्याय होते हैं उनके द्वारा उत्पाद-व्यय ध्रौव्यका निरूपण करते हैं;—[**द्रव्यस्य**] समानजातिवाले द्रव्यका [**अन्यः पर्यायः**] अन्यपर्याय [**प्रादुर्भवति**] उत्पन्न होता है [**च**] और [**अन्यः पर्यायः**] दूसरा पर्याय [**व्येति**] विनष्ट होता है [**तदपि**] तौभी [**द्रव्यं**] समान तथा असमानजातीय द्रव्य [**नैव प्रणष्टं**] न तो नष्टही हुआ है और [**न उत्पन्नं**] न उत्पन्न हुआ है, द्रव्यपनेसे ध्रुव है । **भावार्थ**—संयोगवाले द्रव्यपर्याय दो प्रकारके हैं, एक समानजातीय और दूसरे असमान जातीय । जैसे तीन परमाणुओंका समानजातीय स्कंध (पिंड) पर्याय नष्ट होता है और चार परमाणुओंका स्कन्ध उत्पन्न होता है, परंतु परमाणुओंसे न उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है, ध्रुव है ।

समानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च । समानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । यथा चैको मनुष्यत्वलक्षणोऽसमानजातीयो विनश्यत्यन्यस्त्रिदशत्वलक्षणः प्रजायते तौ च जीवपुद्गलौ अविनष्टानुत्पन्नावेवावतिष्ठेते, तथा सर्वेऽप्यसमानजातीया द्रव्यपर्याया विनश्यन्ति प्रजायन्ते च असमानजातीनि द्रव्याणि त्वविनष्टानुत्पन्नान्येवावतिष्ठन्ते । एवमात्मना ध्रुवाणि द्रव्यपर्यायद्वारेणोत्पादव्ययीभूतान्युत्पादव्ययध्रौव्याणि द्रव्याणि भवन्ति ॥ ११ ॥

अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण चिन्तयति;—

परिणमदि सयं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदविसिट्ठं ।
तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेवत्ति ॥ १२ ॥

परिणमति स्वयं द्रव्यं गुणतश्च गुणान्तरं सदविशिष्टम् ।
तस्माद्गुणपर्याया भणिताः पुनः द्रव्यमेवेति ॥ १२ ॥

रूपो विभावद्रव्यपर्यायो जायते मनुष्यादिरूपो विनश्यति तदेव जीवद्रव्यं निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टं, पुद्गलद्रव्यं वा द्व्यणुकादिस्कन्धरूपस्वजातीयविभावद्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि निश्चयेन न चोत्पन्नं न च विनष्टमिति । ततः स्थितं यतः कारणादुत्पादव्ययध्रौव्यरूपेण द्रव्यपर्यायाणां विनाशोत्पादेपि द्रव्यस्य विनाशो नास्ति, ततः कारणाद्द्रव्यपर्याया अपि द्रव्यलक्षणं भवन्तीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ अथ द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यादिगुणपर्यायमुख्यत्वेन प्रतिपादयति;—**परिणमदि सयं दव्वं** परिणमति स्वयं स्वयमेवोपादानकारणभूतं जीवद्रव्यं कर्तृ । कं परिणमति । **गुणदो य गुणंतरं** निरुपमरागस्वसंवेदनगुणात्केवलज्ञानोत्पत्तिवीजभूतात्सकाशात्सकलविमलकेवलज्ञानगुणान्तरं । कथंभूतं सत्परिणमति । **सदविसिट्ठं** स्वकीयस्वरूपत्वाच्चिद्रूपास्तित्वादविशिष्टमभिन्नं । **तम्हा गुणपज्जाया भणिया पुण दव्वमेवेति** तस्मात्का-

---

इसीप्रकार सब जातिके द्रव्यपर्याय उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । और जैसे जीव पुद्गलके संयोगसे असमान जातिका मनुष्यरूप द्रव्यपर्याय नष्ट होता है और देवरूप द्रव्यपर्याय उत्पन्न होता है, परंतु द्रव्यत्वकी अपेक्षासे जीव-पुद्गल न उत्पन्न होते हैं और न नष्ट होते हैं, ध्रुव हैं, इसीप्रकार औरभी असमानजातीय द्रव्यपर्यायोंको उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप जानना चाहिये । 'द्रव्य' पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद-व्ययस्वरूप है और द्रव्यपनेकी अपेक्षा ध्रुवरूप है । उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, ये तीनों द्रव्यसे अभेदरूप हैं इसलिये द्रव्यही हैं अन्य वस्तुरूप नहीं हैं ॥ ११ ॥ आगे एक द्रव्यपर्यायद्वारसे उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य दिखलाते हैं;—[**सदविशिष्टं**] अपने स्वरूपास्तित्वसे अभिन्न [**द्रव्यं**] सत्तारूप वस्तु [**स्वयं**] आपही [**गुणतः**] एक गुणसे [**गुणान्तरं**] अन्यगुणरूप [**परिणमति**] परिणमन करती है । [**तस्मात्**] इस कारण [**च पुनः**] फिर [**गुणपर्यायाः**] गुणोंके पर्याय [**द्रव्यमेव**] द्रव्यही

एकद्रव्यपर्याया हि गुणपर्यायाः, गुणपर्यायाणामेकद्रव्यत्वात् । एकद्रव्यत्वं हि तेषां सहकारफलवत् । यथा किल सहकारफलं स्वयमेव हरितभावात् पाण्डुभावं परिणमत्पूर्वोत्तरप्रवृत्तहरितपाण्डुभावाभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं हरितपाण्डुभावाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव वस्तु न वस्त्वन्तरं, तथा द्रव्यं स्वयमेव पूर्वावस्थावस्थितगुणादुत्तरावस्थावस्थितगुणं परिणमत्पूर्वोत्तरावस्थावस्थितगुणाभ्यां ताभ्यामनुभूतात्मसत्ताकं पूर्वोत्तरावस्थितगुणाभ्यां सममविशिष्टसत्ताकतयैकमेव द्रव्यं न द्रव्यान्तरं । यथैव चोत्पद्यमानं पाण्डुभावेन, व्ययमानं हरितभावेनावतिष्ठमानं सहकारफलत्वेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकवस्तुपर्यायद्वारेण सहकारफलं; तथैवोत्पद्यमानमुत्तरावस्थावस्थितगुणेन, व्ययमानं पूर्वावस्थावस्थितगुणेनावतिष्ठमानं द्रव्यत्वगुणेनोत्पादव्ययध्रौव्याण्येकद्रव्यपर्यायद्वारेण द्रव्यं भवति ॥ १२ ॥

अथ सत्ताद्रव्ययोरनर्थान्तरत्वे युक्तिमुपन्यस्यति;—

ण हवदि जदि सद्दव्वं असद्धुवं हवदि तं कधं दव्वं ।
हवदि पुणो अण्णं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥ १३ ॥

रणान्न केवलं पूर्वसूत्रोदिताः द्रव्यपर्यायाः द्रव्यं भवन्ति, गुणरूपपर्याया गुणपर्याया भण्यन्ते तेपि द्रव्यमेव भवन्ति । अथवा संसारिजीवद्रव्यं मतिस्मृत्यादिविभावगुणं त्यक्त्वा श्रुतज्ञानादिविभावगुणान्तरं परिणमति, पुद्गलद्रव्यं वा पूर्वोक्तशुक्लवर्णादिगुणं त्यक्त्वा रक्तादिगुणान्तरं परिणमति हरितगुणं त्यक्त्वा पाण्डुरगुणान्तरमाम्रफलमिवेति भावार्थः ॥ १२ ॥ एवं स्वभावविभावरूपा द्रव्यपर्याया गुणपर्यायाश्च नयविभागेन द्रव्यलक्षणं भवन्ति इतिकथनमुख्यतया

हैं [**इति भणिताः**] ऐसें भगवान्ने कहे हैं । **भावार्थ**—एक द्रव्यके जो पर्याय हैं वे गुणपर्याय हैं । जैसे आमका जो फल हरे गुणरूप परिणमन करता है वही अन्यकालमें पीतभावरूपमें परिणम जाता है, परंतु वह आम अन्य द्रव्य नहीं होजाता गुणरूप परिणमनसे भेद युक्त होता है । इसीप्रकार द्रव्य पूर्व अवस्थामें रहनेवाले गुणसे अन्य अवस्थाके गुणरूप परिणमन करता है, परंतु उक्त पूर्व-उत्तर अवस्थासे द्रव्य अन्यरूप नहीं होता, गुणके परिणमनसे भेद होता है, द्रव्य तो दोनों अवस्थाओंमें एकही है । और जैसे आम पीलेपनेसे उत्पन्न होता है, हरेपनेसे नष्ट होता है तथा आम्रपनेसे ध्रुव है परंतु ये उत्पादव्ययध्रौव्य एकद्रव्यपर्यायरूप आमसे जुदे नहीं हैं आमही हैं । इसीप्रकार द्रव्य उत्तर अवस्थासे उत्पन्न होता है, पूर्व अवस्थासे नष्ट होता है तथा द्रव्यपनेसे ध्रुव है; परंतु ये उत्पादव्ययध्रौव्य एक द्रव्यपर्यायके द्वारा द्रव्यसे जुदे नहीं हैं द्रव्यही हैं । ये गुणपर्यायमें उत्पादव्ययध्रौव्य जानने चाहिये ॥ १२ ॥ आगे सत्ता और द्रव्यके अभेद दिखलाते हैं;—[**यदि**] जो [**द्रव्यं**] गुणपर्यायात्मक वस्तु [**सत्**] अस्तित्वरूप [**न भवति**] नहीं हो [**तदा**] तो [**ध्रुवं**]

न भवति यदि सद्द्रव्यमसद्ध्रुवं भवति तत्कथं द्रव्यम् ।
भवति पुनरन्यद्वा तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता ॥ १३ ॥

यदि हि द्रव्यं स्वरूपत एव सन्न स्यात्तदा द्वितयी गतिः असद्वा भवति, सत्तातः पृथग्वा भवति । तत्रासद्भवद्ध्रौव्यस्यासंभवादात्मानमधारयद्द्रव्यमेवास्तं गच्छेत् । सत्तातः पृथग्भवत् सत्तामन्तरेणात्मानं धारयत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामेवास्तं गमयेत् । स्वरूपतस्तु सद्भवद्ध्रौव्यस्य संभवादात्मानं धारयद्द्रव्यमुद्गच्छेत् । सत्तातोऽपृथग्भूत्वा चात्मानं

गाथाद्वयेन चतुर्थस्थलं गतम् । अथ सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये पुनरपि प्रकारान्तरेण युक्तिं दर्शयति;—**ण हवदि जदि सद्दव्वं** परमचैतन्यप्रकाशरूपेण स्वरूपेण स्वरूपसत्तास्तित्वगुणेन यदि चेत् सन्न भवति । किं कर्तृ । परमात्मद्रव्यं तदा **असद्धुवं होदि** असदविद्यमानं भवति ध्रुवं निश्चितं । अविद्यमानं सत् **तं कहं दव्वं** तत्परमात्मद्रव्यं कथं भवति ? किन्तु नैव । स च प्रत्यक्षविरोधः । कस्मात् । स्वसंवेदनज्ञानेन गम्यमानत्वात् । अथाविचारितरमणीयन्यायेन सत्तागुणाभावेप्यस्तीति चेत् तत्र विचार्यते—यदि केवलज्ञानदर्शनगुणाविनाभूतस्वकीयस्वरूपास्तित्वात्पृथग्भूता तिष्ठति तदा स्वरूपास्तित्वं नास्ति स्वरूपास्तित्वाभावे द्रव्यमपि नास्ति । अथवा स्वकीयस्वरूपास्तित्वात्संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदेपि प्रदेशरूपेणाभिन्न तिष्ठति तदा संमतमेव । अत्रावसरे सौगतमतानुसारी कश्चिदाह—सिद्धपर्यायसत्तारूपेण शुद्धात्मद्रव्यमुपचारेणास्ति, न च मुख्यवृत्त्येति, । परिहारमाह—सिद्धपर्यायोपादानकारणभूतपरमात्मद्रव्याभावे सिद्धपर्यायसत्तैव न संभवति वृक्षाभावे फलमिव । अत्र प्रस्तावे नैयायिकमतानुसारी कश्चिदाह—**हवदि पुणो**

ध्रुव अर्थात् निश्चितसत्तारूप वस्तु [**असत्**] अवस्तुरूप [**भवति**] होजावे, तथा [**तत्**] वह सत्तारहितवस्तु [**द्रव्यं**] द्रव्यस्वरूप [**कथं**] कैसे [**भवति**] होवे [**वा**] अथवा [**पुनः**] फिर [**अन्यत्**] सत्तासे भिन्न द्रव्य [**भवति**] होवे । [**तस्मात्**] इसकारण [**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्वयं सत्ता**] आपही सत्तास्वरूप है, भेद नहीं है । **भावार्थ**—जो द्रव्य सत्तारूप न होवे तो दो दोष आते हैं । या तो द्रव्य असत् होता है या सत्तासे जुदा होता है । परंतु जो द्रव्य असत् होगा तो सत्ताके विना ध्रुव नहीं होगा, जिससेकि द्रव्यके नाशका प्रसंग आजावेगा । और यदि सत्तासे द्रव्य पृथक् हो तो द्रव्य सत्ताके विनाभी अपने स्वरूपको धारण करै जिससे कि सत्ताका कुछ प्रयोजनही न रहै, क्योंकि सत्ताका कार्य यही है कि द्रव्यके स्वरूपका अस्तित्व करै सो यदि द्रव्यही अपने स्वरूपको जुदा धारण करेगा तो सत्ताका फिर प्रयोजनही क्या रहेगा इस न्यायसे सत्ताका नाश होगा । परंतु जो द्रव्य सत्तारूप होगा तो द्रव्य ध्रुव होगा, जिसके कि होनेसे द्रव्यका नाश न होगा । यदि सत्तासे

भारवत्तावन्मात्रप्रयोजनां सत्तामुद्गमयेत्। ततः स्वयमेव द्रव्यं सत्त्वेनाभ्युपगन्तव्यं, भाव-भाववतोरपृथक्त्वेनानन्यत्वात् ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वान्यत्वलक्षणमुन्मुद्रयति;—

पविभत्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स ।
अण्णत्तमतब्भावो ण तब्भवं भवदि कधमेगं ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं पृथक्त्वमिति शासनं हि वीरस्य ।
अन्यत्वमतद्भावो न तद्भवत् भवति कथमेकम् ॥ १४ ॥

प्रविभक्तप्रदेशत्वं हि पृथक्त्वस्य लक्षणं। तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्न संभाव्यते, गुणगुणिनोः प्रविभक्तप्रदेशत्वाभावात् शुक्लोत्तरीयवत्। तथाहि—यथा य एव शुक्लस्य गुणस्य प्रदेशास्त एवोत्तरीयस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, तथा ययेव सत्ताया गुणस्य प्रदेशास्त-येव द्रव्यस्य गुणिन इति तयोर्न प्रदेशविभागः, । एवमपि तयोरन्यत्वमस्ति तल्लक्षण-सद्भावात्। अतद्भावो ह्यन्यत्वस्य लक्षणं, तत्तु सत्ताद्रव्ययोर्विद्यत एव गुणगुणिनोस्तद्भा-

---

अण्णं वा तत्परमात्मद्रव्यं भवति पुनः किन्तु सत्तायाः सकाशादन्यद्भिन्नं भवति पश्चात्सत्ता-समवायात्सद्भवति । आचार्याः परिहारमाहुः—सत्तासमवायात्पूर्वं द्रव्यं सदसद्वा? यदि सत्तदा सत्तासमवायो वृथा पूर्वमेवास्तित्वं तिष्ठति; अथासत्तर्हि खपुष्पवदविद्यमानद्रव्येण सह कथं सत्ता-समवायं करोति, करोतीति चेत्तर्हि खपुष्पेणापि सह सत्ताकर्तृसमवायं करोतु न च तथा। **तम्हा दव्वं सयं सत्ता** तस्मादभेदनयेन शुद्धचैतन्यस्वरूपसत्तैव परमात्मद्रव्यं भवतीति। यथेदं परमात्मद्रव्येण सह शुद्धचेतनासत्ताया अभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वेषां चेतनद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयसत्तया सहाभेदव्याख्यानं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

अथ पृथक्त्वलक्षणं किमन्यत्वलक्षणं च किमिति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—**पविभ-त्तपदेसत्तं पुधत्तं** पृथक्त्वं भवति पृथक्त्वाभिधानो भवति। किंविशिष्टं? प्रकर्षेण विभक्त-प्रदेशत्वं भिन्नप्रदेशत्वं। किंवत्। दण्डदण्डिवत्। इत्थम्भूतं पृथक्त्वं शुद्धात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोर्न

द्रव्य पृथक् नहीं होगा तो द्रव्य अपने स्वरूपको धारण करता हुआ सत्ताके प्रयोज-नको प्रगट करेगा और सत्ताका नाश न होगा। इसलिये द्रव्य सत्‌रूप है। द्रव्य गुणी है। सत्ता गुण है। गुण-गुणीमें प्रदेश भेद नहीं है। एकही हैं ॥ १३ ॥

सिद्धान्तमें भेद दो प्रकारके हैं एक पृथक्त्व एक अन्यत्व। आगे इन दोनोंका लक्षण कहते हैं;—[**हि**] निश्चयसे [**वीरस्य**] महावीर भगवान्‌का [**इति**] ऐसा [**शासनं**] उपदेश है कि [**प्रविभक्तप्रदेशत्वं**] जिसमें द्रव्यके प्रदेश अत्यन्त भिन्न हों वह [**पृथक्त्वं**] पृथक्त्व नामका भेद है। और [**अतद्भावः**] प्रदेश

वस्त्राभावात् शुक्लोत्तरीयवदेव । तथाहि—यथा यः किलैकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तेतरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवति, न खलु तदखिलेन्द्रियग्राम-गोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, यच्च किलाखिलेन्द्रियग्रामगोचरीभूतमुत्तरीयं भवति, न खलु स एकचक्षुरिन्द्रियविषयमापद्यमानः समस्तेतरेन्द्रियग्रामगोचरमतिक्रान्तः शुक्लो गुणो भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः । तथा या किलाश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशे-षणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा सत्ता भवति, न खलु तदनाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुण-समुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति; यत्तु किलानाश्रित्य वर्ति गुणवदनेकगुणसमुदितं विशेष्यं विधीयमानं वृत्तिमत्स्वरूपं च द्रव्यं भवति, न खलु

घटते, कस्माद्धेतोर्भिन्नप्रदेशाभावात् । कयोरिव ? शुक्लवस्त्रशुक्लगुणयोरिव **इदि सासणं हि वीरस्स** इति शासनमुपदेश आज्ञेति । कस्य । वीरस्य वीराभिधानान्तिमतीर्थकरपरमदेवस्य **अण्णत्तं** तथापि प्रदेशाभेदेऽपि मुक्तात्मद्रव्यशुद्धसत्तागुणयोरन्यत्वं भिन्नत्वं भवति । कथम्भूतं । **अतब्भावो** अतद्भावरूपं संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदस्वभावम् । यथा प्रदेशरूपेणाभेदस्तथा संज्ञादिलक्षणरूपेणाप्यभेदो भवतु को दोष इति चेत् । नैवम् । **ण तब्भवं होदि** तन्मुक्तात्मद्रव्यं शुद्धात्मसत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदेऽपि संज्ञादिरूपेण तन्मयं न भवति **कहमेक्कं** तन्मयत्वं हि किलै-कत्वलक्षणं संज्ञादिरूपेण तन्मयं स्वभावमेकत्वं किन्तु नानात्वमेव । यथेदं मुक्तात्मद्रव्ये प्रदेशाभे-देऽपि संज्ञादिरूपेण नानात्वं कथितं तथैव सर्वद्रव्याणां स्वकीयस्वकीयस्वरूपास्तित्वगुणेन सह

भेदके विना संज्ञा संख्या लक्षणादिसे जो गुणगुणी भेद है सो [अन्यत्वं] अन्यत्व है । परंतु सत्ता और द्रव्य [तद्भवं] उसी भाव अर्थात् एक ही स्वरूप [न भवति] नहीं है फिर [कथं एकं] दोनों एक कैसे हो सक्ते हैं ? नहीं हो सकते । **भावार्थ**—जिसप्रकार दंड और दंडीमें प्रदेशभेद है उसप्रकारके प्रदेशभेदको **पृथक्त्व** कहते हैं । यह "पृथक्त्व" सत्तामें नहीं है क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है । जैसे वस्त्र और उसके शुक्लगुणमें प्रदेशभेद नहीं है अभेद है उसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें अभेद है, परंतु संज्ञा संख्या लक्षणादिके भेदसे जो द्रव्यका स्वरूप है वह सत्ताका स्वरूप नहीं है और जो सत्ताका स्वरूप है वह द्रव्यका स्वरूप नहीं है । इस प्रकारके गुणगुणी भेदको **अन्यत्व** कहते हैं । यह अन्यत्व भेद सत्ता और द्रव्यमें रहता है । यहां प्रश्न होता है कि, जैसे सत्ता और द्रव्यमें प्रदेशभेद नहीं है वैसेही सत्ता—द्रव्यमें स्वरूप-भेदभी नहीं है, फिर अन्यत्व भेदके कहनेकी क्या आवश्यकता है ? सो इसका समा-धान यह है कि, " सत्ता और द्रव्यमें स्वरूपभेद नहीं है एक ही भाव है " ऐसा कहना बन नहीं सक्ता, क्योंकि सत्ता और द्रव्यमें संज्ञा संख्या लक्षणादिसे स्वरूपभेद अवश्य ही है फिर दोनों एक कैसे हो सक्ते हैं । अन्यत्व भेद मानना ही पड़ेगा ।

साश्रित्य वर्तिनी निर्गुणैकगुणसमुदिता विशेषणं विधायिका वृत्तिस्वरूपा च सत्ता भवतीति तयोस्तद्भावस्याभावः । अत एव च सत्ताद्रव्ययोः कथञ्चिदनर्थान्तरत्वेपि सर्वथैकत्वं न शङ्कनीयं, तद्भावो ह्येकत्वस्य लक्षणं । यत्तु न तद्भवद्विभाव्यते तत्कथमेकं स्यात्? अपि तु गुणगुणिरूपेणानेकमेवेत्यर्थः ॥ १४ ॥

अथातद्भावमुदाहृत्य प्रथयति;—

सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओत्ति वित्थारो ।
जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतब्भावो ॥ १५ ॥

सद्द्रव्यं सच्च गुणः सच्चैव च पर्याय इति विस्तारः ।
यः खलु तस्याभावः स तदभावोऽतद्भावः ॥ १५ ॥

ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ १४ ॥ अथातद्भावं विशेषेण विस्तार्य कथयति:—**सद्दव्वं सच्च गुणो सच्चेव य पज्जओत्ति वित्थारो** सद्द्रव्यं संश्च गुणः संश्चैव पर्याय इति सत्तागुणस्य द्रव्यगुणपर्या-

---

जैसे वस्त्र और शुक्लगुणमें अन्यत्वभेद है उसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें है, क्योंकि वस्त्रमें जो शुक्लगुण है सो एक नेत्र इंद्रियके द्वारा ग्रहण होता है अन्य नासिकादि इंद्रियोंके द्वारा नहीं होता इस कारण वह शुक्लगुण वस्त्र नहीं है। और जो वस्त्र है सो नेत्र इंद्रियके सिवाय अन्य नासिकादि इंद्रियोंसेभी जानाजाता है इसकारण वह वस्त्र शुक्लगुण नहीं है। शुक्लगुणको एक नेत्र इंद्रियसे जानते हैं और वस्त्रको नासिकादि अन्य सब इंद्रियोंसे जानते हैं। इसलिये यह सिद्ध है कि, वस्त्र और शुक्लगुणमें अन्यत्व अवश्य ही है। जो भेद न होता तो जैसे नेत्र इंद्रियसे शुक्लगुणका ज्ञान हुआ था वैसे ही स्पर्श-रस–गंधरूप वस्त्रका भी ज्ञान होता, परंतु ऐसा नहीं है। इस कारण इंद्रियभेदसे भेद अवश्य ही है। इसीप्रकार सत्ता और द्रव्यमें अन्यत्व भेद है। सत्ता द्रव्यके आश्रय रहती है, अन्यगुणरहित एक गुणरूप है और द्रव्यके अनंतविशेषणोंमें एक अपने भेदको दिखाती है तथा एक पर्यायरूप है। और द्रव्य है सो किसीके आधार नहीं रहता है अनंत गुण सहित है अनेक विशेषणोंसे विशेष्य है और अनेक पर्यायोंवाला है। इसीकारण सत्ता और द्रव्यमें संज्ञा संख्या लक्षणादि भेदसे अवश्य अन्यत्वभेद है। जो सत्ताका स्वरूप है वह द्रव्यका नहीं है और जो द्रव्यका स्वरूप है वह सत्ताका नहीं है। इसप्रकार गुणगुणी भेद है, परंतु प्रदेशभेद नहीं है ॥ १४ ॥ आगे अन्यत्वका लक्षण विशेषतासे दिखलाते हैं;—[**सत् द्रव्यं**] सत्तारूप द्रव्य है [**च**] और [**सत् गुणः**] सत्तारूप गुण है [**च**] तथा [**सत् एव पर्यायः**] सत्तारूप ही पर्याय है [**इति**] इसप्रकार सत्ताका [**विस्तारः**] विस्तार है। और [**खलु**]

यथा खल्वेकं मुक्ताफलस्रग्दाम, हार इति सूत्रमिति मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तीर्यते; तथैकं द्रव्यं द्रव्यमिति गुण इति पर्याय इति त्रेधा विस्तीर्यते। यथा चैकस्य मुक्ताफलस्रग्दाम्नः शुक्लो गुणः शुक्लो हारः शुक्लं सूत्रं शुक्लं मुक्ताफलमिति त्रेधा विस्तीर्यते, तथैकस्य द्रव्यस्य सत्तागुणः सद्द्रव्यं सद्गुणः सत्पर्याय इति त्रेधा विस्तार्यते। यथा चैकस्मिन् मुक्ताफलस्रग्दाम्नि यः शुक्लो गुणः स न हारो न सूत्रं न मुक्ताफलं यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं स न शुक्लो गुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभावलक्षणोऽतद्भावोऽन्यत्वनिबन्ध-

---

येषु विस्तारः। तथाहि—यथा मुक्ताफलहारे सत्तागुणस्थानीयो योऽसौ शुक्लगुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते। शुक्लो हार इति शुक्लं सूत्रमिति शुक्लं मुक्ताफलमिति भण्यते, यश्च हारः सूत्रं मुक्ताफलं वा तैस्त्रिभिः प्रदेशाभेदेन शुक्लो गुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदं। तद्भावस्येति कोऽर्थः। हारसूत्रमुक्ताफलानां शुक्लगुणेन सह तन्मयत्वं प्रदेशाभिन्नत्वमिति तथा मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ शुद्धसत्तागुणः स प्रदेशाभेदेन किं किं भण्यते सत्तालक्षणः परमात्मपदार्थ इति, सत्तालक्षणः केवलज्ञानादिगुण इति, सत्तालक्षणः सिद्धपर्याय इति भण्यते। यश्च परमात्मपदार्थः केवलज्ञानादिगुणः सिद्धत्वपर्याय इति तैश्च त्रिभिः शुद्धसत्तागुणो भण्यत इति तद्भावस्य लक्षणमिदम्। तद्भावस्येति कोऽर्थः। परमात्मपदार्थकेवलज्ञानादिगुणसिद्धत्वपर्यायाणां शुद्धसत्तागुणेन संज्ञादिभेदेपि प्रदेशैस्तन्मयत्वमपि **जो खलु तस्स अभावो** यस्तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्य खलु स्फुटं संज्ञादिभेदविवक्षायामभावः **सो तदभावो** स पूर्वोक्तलक्षणस्तदभावो भण्यते। स च तदभावः किं भण्यते? **"अतब्भावो"** तदभावस्तन्मयत्वं। किन्त्वतद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदः इत्यर्थः। तद्यथा—यथा मुक्ताफलहारे योऽसौ शुक्लगुणस्तद्वाचकेन शुक्लमित्यक्षरद्वयेन हारो वाच्यो न भवति सूत्रं वा मुक्ताफलं वा, हारसूत्रमुक्ताफलशब्दैश्च शुक्लगुणो वाच्यो न भवति। एवं परस्परं प्रदेशाभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः स तस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्याभावस्तद्भावो भण्यते। स च तद्भावः पुनरपि किं भण्यते। अतद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेद

निश्चयकरके [**यः**] जो [**तस्य**] उस सत्ता–द्रव्य–गुण–पर्यायकी एकताका [**अभावः**] परस्परमें अभाव है [**सः**] वह [**तदभावः**] उस एकताका अभाव [**अतद्भावः**] "अन्यत्व" नामा भेद है। **भावार्थ**—जैसे एक मोतीकी माला, हार सूत्र और मोती इन भेदोंसे तीन प्रकार है उसी प्रकार एक द्रव्य, द्रव्य गुण और पर्याय भेदोंसे तीन प्रकार है। और जैसे एक मोतीकी मालाका शुक्ल (सफेद) गुण, श्वेतहार श्वेतसूत और श्वेतमोती इन भेदोंसे तीन प्रकार है; उसीप्रकारसे द्रव्यका एक सत्ता गुण, सत् द्रव्य सत् गुण और सत्पर्याय इन भेदोंसे तीन प्रकार है। यह सत्ताका विस्तार है। और जैसे एक मोतीकी मालामें भेद विवक्षासे जो श्वेत गुण है सो हार नहीं है सूत नहीं है और मोती नहीं है। तथा जो हार सूत मोती हैं वे श्वेतगुण नहीं हैं ऐसा परस्पर भेद है, उसीप्रकार एक द्रव्यमें जो सत्ता गुण है वह द्रव्य नहीं गुण नहीं

नभूतः; तथैकस्मिन् द्रव्ये यः सत्तागुणस्तन्न द्रव्यं नान्यो गुणो न पर्यायो यच्च द्रव्यमन्यो गुणः पर्यायो वा स न सत्तागुण इतीतरेतरस्य यस्तस्याभावः स तदभावलक्षणोऽतद्भावोऽन्यत्वनिबन्धनभूतः ॥ १५ ॥

अथ सर्वथाऽभावलक्षणत्वमतद्भावस्य निषेधयति;—

जं दव्वं तण्ण गुणो जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो ।
एसो हि अतब्भावो णेव अभावोत्ति णिद्दिट्ठो ॥ १६ ॥

यद्द्रव्यं तन्न गुणो योपि गुणः स न तत्त्वमर्थात् ।
एष ह्यतद्भावो नैव अभाव इति निर्दिष्टः ॥ १६ ॥

एकस्मिन्द्रव्ये यद्द्रव्यं गुणो न तद्भवति,यो गुणः सः द्रव्यं न भवतीत्येवं यद्द्रव्यस्य गुणरूपेण गुणस्य वा द्रव्यरूपेण तेनाभवनं सोऽतद्भावः । एतावतैवान्यत्वव्यवहारसिद्धेर्न पुनर्द्रव्यस्याभावो गुणो गुणस्याभावो द्रव्यमित्येवंलक्षणोऽभावोऽतद्भाव, एवं सत्येकद्रव्यस्यानेकत्वमुभयशून्यत्वमपोहरूपत्वं वा स्यात् । तथाहि—यथा खलु चेतनद्रव्यस्याभावोऽचेतनद्रव्यमचेतनद्रव्यस्याभावश्चेतनद्रव्यमिति तयोरनेकत्वं, तथा द्रव्यस्याभावो गुणो गुणस्याभावो द्रव्यमित्येकस्यापि द्रव्यस्यानेकत्वं स्यात्। यथा सुवर्णस्याभावे सुवर्णत्वस्याभावः सुवर्णत्वस्याभावे सुवर्णस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं, तथा द्रव्यस्याभावे गुणस्याभावो गुण-

---

इति । तथा मुक्तजीवे योऽसौ शुद्धसत्तागुणस्तद्वाचकेन सत्ताशब्देन मुक्तजीवो वाच्यो न भवति केवलज्ञानादिगुणो वा सिद्धपर्यायो वा मुक्तजीवकेवलज्ञानादिगुणसिद्धपर्यायैश्च शुद्धसत्तागुणो वाच्यो न भवति । इत्येवं परस्परं प्रदेशभेदेऽपि योऽसौ संज्ञादिभेदः सतस्य पूर्वोक्तलक्षणतद्भावस्याभावस्तद्भावो भण्यते । स च तदभावः पुनरपि किं भण्यते? अतद्भावः संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेद इत्यर्थः । यथात्र शुद्धात्मनि शुद्धसत्तागुणेन सहाभेदः स्थापितस्तथा यथासम्भवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्य इत्यभिप्रायः ॥ १५ ॥ अथ गुणगुणिनोः प्रदेशभेदनिषेधेन तमेव संज्ञादिभेदरूपमतद्भावं दृढयति;—**जं दव्वं तण्ण गुणो**

और पर्याय नहीं है, तथा जो द्रव्य गुण पर्याय हैं सो सत्ता नहीं है ऐसा आपसमें भेद है । सारांश यह है कि सत्ताके स्वरूपका अभाव द्रव्यगुणपर्यायोंमें है और द्रव्यगुणपर्यायके स्वरूपका अभाव सत्तामें है । इस प्रकार गुणगुणी भेद है प्रदेशभेद नहीं है । यही अन्यत्व नामक भेद है ॥ १५ ॥ आगे सर्वथा अभावरूप गुणगुणी भेदका निषेध करते हैं;—[यद्] जो [द्रव्यं] द्रव्य है [तत्] सो [गुणः न] गुण नहीं है और [यः] जो [अपि] निश्चयसे [गुणः] गुण है [सः] वह [अर्थात्] स्वरूपके भेदसे [तत्त्वं न] द्रव्य नहीं है । [एषः हि] यह गुणगुणी भेद स्पष्टी

स्याभावे द्रव्यस्याभाव इत्युभयशून्यत्वं स्यात्। यथा पटाभावमात्रमेव घटो घटाभावमात्रमेव पट इत्युभयोरपोहरूपत्वं तथा द्रव्याभावमात्रमेव गुणो गुणाभावमात्रमेव द्रव्य-

---

यद्द्रव्यं स न गुणः यन्मुक्तजीवद्रव्यं स शुद्धः सन् गुणो न भवति। मुक्तजीवद्रव्यशब्देन शुद्धसत्तागुणो वाच्यो न भवतीत्यर्थः। **जोवि गुणो सो ण तच्चमत्थादो** योऽपि गुणः स न तत्त्वं द्रव्यमर्थतः परमार्थतः, यः शुद्धसत्तागुणः स मुक्तात्मद्रव्यं न भवति; शुद्धसत्ताशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवतीत्यर्थः। **एसो हि अतब्भावो** एष उक्तलक्षणो हि स्फुटमतद्भावः। उक्तलक्षण इति कोऽर्थः। गुणगुणिनोः संज्ञादिभेदेऽपि प्रदेशभेदाभावः **णेव अभावोत्ति णिद्दिट्ठो** नैवाभाव इति निर्दिष्टः। नैव अभाव इति कोऽर्थः? यथा सत्तावाचकशब्देन मुक्तात्मद्रव्यं वाच्यं न भवति तथा यदि सत्ताप्रदेशैरपि सत्तागुणात्सकाशाद्भिन्नं भवति तदा यथा जीवप्रदेशेभ्यः पुद्गलद्रव्यं भिन्नं सद्द्रव्यान्तरं भवति तथा सत्तागुणप्रदेशेभ्यो मुक्तजीवद्रव्यं सत्तागुणाद्भिन्नं सत्पृथग्द्रव्यान्तरं प्राप्नोति। एवं किं सिद्धं। सत्तागुणरूपं पृथग्द्रव्यं मुक्तात्मद्रव्यं च पृथगिति द्रव्यद्वयं जातं, न च तथा। द्वितीयं च दूषणं प्राप्नोति—यथा सुवर्णत्वगुणप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सुवर्णस्याभावस्तथैव सुवर्णप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सुवर्णत्वगुणस्याप्यभावः, तथा सत्तागुणप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य मुक्तजीवद्रव्यस्याभावस्तथैव मुक्तजीवद्रव्यप्रदेशेभ्यो भिन्नस्य सत्तागुणस्याप्यभावः इत्युभयशून्यत्वं प्राप्नोति। यथेदं मुक्तजीवद्रव्ये

[**अतद्भावः**] स्वरूपभेद है [**अभावः**] सर्वथा अभाव [**नैव**] निश्चयसे नहीं है। [**इति**] ऐसा [**निर्दिष्टः**] सर्वज्ञदेवने दिखाया है। **भावार्थ**—एक द्रव्यमें जो द्रव्य है वह गुण नहीं है और जो गुण है वह द्रव्य नहीं है। इस प्रकार जो द्रव्यको गुणरूप न होना है वह अन्यत्व भेद व्यवहारसे कहा जाता है न कि द्रव्यका अभाव गुण और गुणका अभाव द्रव्य—ऐसा सर्वथा अभावरूप भेद, क्योंकि इस-तरहका अभाव माननेसे द्रव्यका अनेकपना होना१ दोनों(द्रव्य-गुणों) का नाश होना२ और अपोहरूपत्वदोषका प्रसंग३ इसप्रकार तीन दोष उपस्थित होते हैं। वे इसप्रकार हैं कि,—जैसे जीवका अभाव अजीव है और अजीवका अभाव जीव है इसलिये इन दोनोंमें अनेकत्व है, उसीप्रकार द्रव्यका अभाव गुण और गुणका अभाव द्रव्य माननेसे एक-त्वके अनेकत्व द्रव्यका प्रसंग आवेगा १। जैसे सोनेके अभावसे सोनेके गुणका अभाव होता है और सोनेके गुणके अभावसे सोनेका नाश सिद्ध होता है, उसीतरह द्रव्यके अभावसे गुणका अभाव होगा और फिर गुणके अभावसे द्रव्यका अभाव हो जावेगा। इसप्रकार दोनोंके नाशका प्रसंग आवेगा २। तीसरे जैसे घटका अभाव मात्र पट है और पटका अभावमात्र घट है इन दोनोंमें किसीका रूप किसीमें नहीं है, उसीप्रकार द्रव्यका अभाव अभावमात्र गुण होगा और गुणका अभावमात्र द्रव्य होगा इस तरह अपोहरूपत्व दोषका प्रसंग आवेगा३। इसलिये जो द्रव्य-गुणकी एकता

मित्यत्राप्यपोहरूपत्वं स्यात् । ततो द्रव्यगुणयोरेकत्वमशून्यत्वमनपोहत्वं चेच्छता यथोदित एवातद्भावोऽभ्युपगन्तव्यः ॥ १६ ॥

अथ सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिभावं साधयति;—

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुणो सदविसिट्ठो ।
सदवट्ठियं सहावे दव्वत्ति जिणोवदेसोयं ॥ १७ ॥

यः खलु द्रव्यस्वभावः परिणामः स गुणः सदविशिष्टः ।
सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति जिनोपदेशोऽयम् ॥ १७ ॥

द्रव्यं हि स्वभावे नित्यमवतिष्ठमानत्वात्सदिति प्राक् प्रतिपादितं । स्वभावस्तु द्रव्यस्य परिणामोऽभिहितः । य एव द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः, स एव सदविशिष्टो गुण इतीह साध्यते । यदेव हि द्रव्यस्वरूपवृत्तिभूतमस्तित्वं द्रव्यप्रधाननिर्देशात्सदिति संशब्द्यते तदविशिष्टगुणभूत एव द्रव्यस्य स्वभावभूतपरिणामः द्रव्यवृत्तेर्हि त्रिकोटिसमयस्पर्शिन्याः प्रतिक्षणं तेन स्वभावेन परिणमनाद्द्रव्यस्वभावभूत एव तावत्परिणामः । स

संज्ञादिभेदभिन्नस्यातद्भावस्तस्य सत्तागुणेन सह प्रदेशाभेदव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ १६ ॥ एवं द्रव्यस्यास्तित्वकथनरूपेण प्रथमगाथा पृथक्त्वलक्षणातद्भावविधानान्यत्वलक्षणयोः कथनेन द्वितीया संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदरूपस्यातद्भावस्य विवरणरूपेण तृतीया तस्यैव दृढीकरणार्थं च चतुर्थी द्रव्यगुणयोरभेदविषये युक्तिकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन पञ्चमस्थलं गतम् । अथ सत्ता गुणो भवति द्रव्यं च गुणी भवतीति प्रतिपादयति;— **जो खलु दव्वसहाओ परिणामो** यः खलु स्फुटं द्रव्यस्य स्वभावभूतः परिणामः पञ्चेन्द्रियविषयानुभवरूपमनोव्यापारोत्पन्नसमस्तमनोरथरूपविकल्पजालाभावे सति यश्चिदानन्दैकानुभूतिरूपः स्वस्थभावस्तस्योत्पादः, पूर्वोक्तविकल्पजालविनाशो व्ययः, तदुभयाधारभूतं जीवत्वं ध्रौव्यमित्युक्तलक्षणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकजीवद्रव्यस्य स्वभावभूतो योऽसौ परिणामः **सो गुणो** स गुणो भवति स परिणामः । कथम्भूतः सन्गुणो भवति । **सदविसिट्ठो** सतोऽस्तित्वादविशिष्टोऽभिन्नस्तदुत्पादादित्रयं तिष्ठत्यस्तित्वं चैकं तिष्ठत्यस्तित्वेन सह कथमभिन्नो

चाहते हैं, दोनोंका नाश नहीं चाहते हैं और अपोहरूपत्व दोषसे जुदा रहना चाहते हैं उन्हें भगवान् वीतराग देवने जो गुणगुणीमें व्यवहारसे अन्यत्व भेद दिखलाया है उसे अंगीकार करना चाहिये, सर्वथा अभावरूप मानना योग्य नहीं है ॥ १६ ॥ आगे सत्ता और द्रव्यका गुणगुणीभाव दिखलाते हैं;—[**यः**] जो [**खलु**] निश्चयसे [**द्रव्यस्वभावः**] द्रव्यका स्वभावभूत [**परिणामः**] उत्पाद व्यय ध्रुवरूप त्रिकाल संबंधी परिणाम है [**सः**] वह [**सदविशिष्टः**] सत्तासे अभिन्न अस्तित्वरूप [**गुणः**] गुण है । और [**स्वभावे**] अस्तित्वरूप सत्तास्वभावमें [**अवस्थितं द्रव्यं**] तिष्ठता हुआ द्रव्य [**सत्**] सत्ता कहलाता है [**इति**] इसप्रकार [**अयम्**]

त्वस्तित्वभूतद्रव्यवृत्त्यात्मकत्वात्सदविशिष्टो द्रव्यविधायिको गुण एवेति सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिभावः सिद्ध्यति ॥ १७ ॥

अथ गुणगुणिनोर्नानात्वमुपहन्ति;—

णत्थि गुणोत्ति व कोई पज्जाओत्तीह वा विणा दव्वं।
दव्वत्तं पुणभावो तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥ १८ ॥

नास्ति गुण इति वा कश्चित् पर्याय इतीह वा विना द्रव्यम्।
द्रव्यत्वं पुनर्भावस्तस्माद्द्रव्यं स्वयं सत्ता ॥ १८ ॥

न खलु द्रव्यात्पृथग्भूतो गुण इति वा पर्याय इति वा कश्चिदपि स्यात्। यथा सुवर्णात्पृथग्भूतं तत्पीतत्वादिकमिति वा तत्कुण्डलादिकत्वमिति वा। अथ तस्य तु

भवतीतिचेत्। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" इति वचनात्। एवं सति सत्तैव गुणो भवतीत्यर्थः। इति गुणव्याख्यानं गतम्। **सदवट्ठिदं सहावे दव्वत्ति** सदवस्थितं स्वभावे द्रव्यमिति द्रव्यं परमात्मद्रव्यं भवति। किं कर्तृ। सदिति। केन। अभेदनयेन। कथम्भूतं। सत् अवस्थितं। क। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकस्वभावे **जिणोवदेसोयं** अयं जिनोपदेश इति "सदवट्ठिदं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हु परिणामो" इत्यादिपूर्वसूत्रे यदुक्तं तदेवेदं व्याख्यानं, गुणकथनं पुनरधिकमिति तात्पर्यम्। यथेदं जीवद्रव्ये गुणगुणिनोर्व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति ॥ १७ ॥

अथ गुणपर्यायाभ्यां द्रव्यस्याभेदं दर्शयति;—**णत्थि** नास्ति न विद्यते। स कः। **गुणोत्ति य कोई** गुण इति कश्चित्। न केवलं गुणः **पज्जाओत्तीह वा** पर्यायो वेतीह। कथं। **विणा** विना। किं विना। **दव्वं** द्रव्यमिदानीं द्रव्यं कथ्यते **दव्वत्तं पुण भावो** द्रव्यत्वमस्तित्वं। तत्पुनः किं भण्यते। भावः। कोऽर्थः। उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकसद्भावः **तम्हा दव्वं सयं सत्ता** तस्मादभेदनयेन सत्ता स्वयमेव द्रव्यं भवतीति। तद्यथा—मुक्तात्मद्रव्ये परमावाप्तिरूपो मोक्षपर्यायः केवल-

---

यह [**जिनोपदेशः**] जिन भगवानका उपदेश है। **भावार्थ**—द्रव्यका जो अस्तित्वरूप स्वभावभूत परिणाम है उसको सत्ता नामका गुण कहते हैं। यह अस्तित्वरूप सत्तागुण द्रव्यसे अभिन्न द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है। और यह सत्तागुण द्रव्यमें प्रधान है। सत्तामें द्रव्य स्थित रहता है। इसीकारण सत्तागुणकी प्रधानतासे द्रव्यको सत् कहते हैं, और इस सत्तागुणसे सत्स्वरूप गुणी द्रव्य जानाजाता है। इसकारण सत्ता गुण है और द्रव्य गुणी है ॥ १७ ॥ आगे गुणगुणीका भेद दूरकरते हैं;— [**इह**] इस जगत्में [**द्रव्यं विना**] द्रव्यके विना [**गुण इति**] गुण ऐसा [**वा**] अथवा [**पर्यायः इति**] पर्याय ऐसा [**कश्चित्**] कोई पदार्थ [**नास्ति**] नहीं है। [**पुनः**] और [**द्रव्यत्वं**] द्रव्यका अस्तित्व [**भावः**] उसका स्वभावभूत गुण है [**तस्मात्**] इसलिये [**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्वयं**] आपही [**सत्ता**] अस्तित्वरूप सत्ता है। **भावार्थ**—ऐसा कोई गुण नहीं है जो द्रव्यके विना पृथक् रहता

द्रव्यस्य स्वरूपवृत्तिभूतमस्तित्वाख्यं यद्द्रव्यत्वं स खलु तद्भावाख्यो गुण एव भवन् किं हि द्रव्यात्पृथग्भूतत्वेन वर्तते? न वर्तत एव । तर्हि द्रव्यं सत्ताऽस्तु, स्वयमेव ॥ १८ ॥

अथ द्रव्यस्य सदुत्पादासदुत्पादयोरविरोधं साधयति;—

एवंविहं सहावे दव्वं दव्वत्थपज्जयत्थेहिं ।
सदसब्भावणिबद्धं पाडुब्भावं सदा लभदि ॥ १९ ॥

एवंविधं स्वभावे द्रव्यं द्रव्यार्थपर्यायार्थाभ्याम् ।
सदसद्भावनिबद्धं प्रादुर्भावं सदा लभते ॥ १९ ॥

एवमेतद्यथोदितप्रकारसाकल्याकलङ्कलाञ्छनमनादिनिधनं सत्स्वभावे प्रादुर्भावमास्कन्दति द्रव्यं । स तु प्रादुर्भावो द्रव्यस्य द्रव्याभिधेयतायां सद्भावनिबद्ध एव स्यात् । पर्यायाभिधेयतायां त्वसद्भावनिबद्ध एव । तथाहि—यदा द्रव्यमेवाभिधीयते न पर्यायास्तदा प्रभवावसानवर्जिताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्द्रव्यनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः प्रभवावसानलाञ्छनाः क्रमप्रवृत्ताः पर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः संक्रामतो द्रव्यस्य सद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः हेमवत् । तथाहि—यदा हेमैवाभिधीयते नाङ्गदादयः

ज्ञानादिरूपो गुणसमूहश्च येन कारणेन तद्द्वयमपि परमात्मद्रव्यं विना नास्ति न विद्यते । कस्मात्प्रदेशाभेदादिति उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकशुद्धसत्तारूपं मुक्तात्मद्रव्यं भवति । तस्मादभेदेन सत्तैव द्रव्यमित्यर्थः । यथा मुक्तात्मद्रव्ये गुणपर्यायाभ्यां सहाभेदव्याख्यानं कृतं तथा यथासम्भवं सर्वद्रव्येषु ज्ञातव्यमिति ॥ १८ ॥ एवं गुणगुणिव्याख्यानरूपेण प्रथमगाथा द्रव्यस्य गुणपर्यायाभ्यां सह भेदो नास्तीति कथनरूपेण द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयेन षष्ठस्थलं गतम् ॥ अथ द्रव्यस्य द्रव्यार्थिकपर्यायार्थकनयाभ्यां सदुत्पादासदुत्पादौ दर्शयति;-**एवंविहसब्भावे** एवंविधसद्भावे सत्तालक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षण गुणपर्यायलक्षणं द्रव्यं चेत्येवंविधपूर्वोक्तसद्भावे, अथवा **एवंविहं सहावे** इति पाठान्तरम् । तत्रैवंविधं पूर्वोक्तलक्षणं स्वकीयसद्भावे स्थित । किं । **दव्वं** द्रव्यं कर्तृ । किं करोति । **सदा लहदि** सदा सर्वकालं लभते । किं कर्मतापन्नं । **पादुब्भावं**

हो, इसीप्रकार ऐसा कोई पर्यायभी नहीं है जो द्रव्यसे पृथक् हो । द्रव्यहीमें गुण और पर्याय होते हैं, द्रव्यसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं है । अतः गुणपर्याय द्रव्यसे अभेदरूप हैं । जैसे सोनेसे पीतत्वादि गुण, कुंडलादि पर्याय पृथक् नहीं पाये जाते; उसीप्रकार द्रव्यसे गुणपर्याय पृथक् नहीं हैं और सत्ता है सो वस्तुसे अभिन्न उसका गुण है । इसकारण अस्तित्वरूप सत्तागुण द्रव्यसे पृथक् नहीं है, द्रव्य स्वयं सत्तास्वरूप है ॥ १८ ॥ आगे द्रव्यके द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे "सत् उत्पाद" और "असत् उत्पाद" ऐसा दो प्रकारका उत्पाद होता है सो उन दोनोंमें अविरोध दिखलाते हैं;—[**एवंविधं**] इसप्रकारसे [**द्रव्यं**] द्रव्य [**स्वभावे**] स्वभावमें [**द्रव्यार्थपर्यायार्थाभ्यां**] द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयोंकी विवक्षासे [**सदस-**

पर्यायास्तदा हेमसमानजीविताभिर्यौगपद्यप्रवृत्ताभिर्हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिरङ्गदादिपर्यायसमानजीविताः क्रमप्रवृत्ता अङ्गदादिपर्यायनिष्पादिका व्यतिरेकव्यक्तीस्तास्ताः संक्रामतो हेम्नः सद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः। यदा तु पर्याया एवाभिधीयन्ते न द्रव्यं तदा प्रभवावसानलाञ्छनाभिः क्रमप्रवृत्ताभिः पर्यायनिष्पादिकाभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिः प्रभवावसानवर्जिता यौगपद्यप्रवृत्ता द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तीः संक्रामतो द्रव्यस्यासद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः हेमवदेव । तथाहि—यदाङ्गदादिपर्याया एवाभिधीयन्ते न हेम तदाङ्गदादिपर्यायसमानजीविताभिः क्रमप्रवृत्ताभिरङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिस्ताभिस्ताभिर्हेमसमानजीविता यौगपद्यप्रवृत्ता हेमनिष्पादिका अन्वयशक्तीः संक्रामतो हेम्नोऽसद्भावनिबद्ध एव प्रादुर्भावः । अथ पर्यायाभिधेयतायामप्यसदुत्पत्तौ

प्रादुर्भावमुत्पादं । कथम्भूतं । **सदसब्भावणिबद्धं** सद्भावनिबद्धमसद्भावनिबद्ध च । काभ्यां कृत्वा । **दव्वत्थपज्जयत्थेहिं** द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिकनयाभ्यामिति । तथाहि—यथा यदा काले द्रव्यार्थिकनयेन विवक्षा क्रियते यदेव कटकपर्याये सुवर्णं तदेव कङ्कणपर्याये नान्यदिति, तदा काले सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत्? द्रव्यस्य द्रव्यरूपेणाविनष्टत्वात् । यदा पुनः पर्यायविवक्षा क्रियते कटकपर्यायात् सकाशादन्यो यः कङ्कणपर्यायः सुवर्णसम्बन्धी स एव न भवति । तदा पुनरसदुत्पादः कस्मादिति चेत्? पूर्वपर्यायस्य विनष्टत्वात् ।

द्भावनिबद्धं] सत् और असत् इन दो भावोंसे संयुक्त [**प्रादुर्भावं**] उत्पादको [**सदा**] हमेशा [**लभते**] प्राप्त होता है । **भावार्थ**—अनादि अनंत द्रव्य अपने परिणाम स्वभावमें निरंतर उत्पन्न होता है इसको 'उत्पाद' कहते हैं । इसे जब द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्यजो २ पर्याय धारण करता है उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पूर्वमें था, इसका नाम "सद्भाव उत्पाद" है । और जब पर्यायकी अपेक्षासे कहते हैं तब यों कहते हैं कि द्रव्य जो २ पर्याय धारण करता है उन २ पर्यायोंमें वही द्रव्य अवस्थाके पलटनेसे अन्य कहाजाता है, इसका नाम "असद्भाव उत्पाद" है । इन दोनों प्रकारके उत्पादको नीचे लिखे दृष्टान्तसे समझना चाहिये । जैसे—सोना अपने अविनाशी पीत स्निग्ध (चिकने) गुरुत्वादि गुणोंसे नाना कंकण कुंडलादि पर्यायोंको प्राप्त होता है । जो यहां पर द्रव्यार्थिकनयसे विचार करें तो कंकण कुंडलादि जितने पर्याय हैं उन सबमें वही सोना उत्पन्न होता है जो कि पहले था न कि दूसरा । यह सोनेका सद्भाव उत्पाद है । और जो उन्हीं कंकण कुंडलादि पर्यायोंमें सोनेको पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहें तो जितने कंकण कुंडलादि पर्याय हैं सबके सब क्रम लियेहुए हैं । इसकारण ऐसा कहा जावेगा कि कंकण उत्पन्न हुआ कुंडल उत्पन्न हुआ मुद्रिका (अंगूठी) उत्पन्न हुई । ऐसा दूसरा दूसरा उत्पाद होता है अर्थात् जो पूर्वमें नहीं था वह उत्पन्न होता है, यह असद्भाव उत्पाद

पर्यायनिष्पादिकास्तास्ता व्यतिरेकव्यक्तयो यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाः पर्यायान् द्रवीकुर्युः, तथाङ्गदादिपर्यायनिष्पादिकाभिस्ताभिस्ताभिर्व्यतिरेकव्यक्तिभिर्यौगपद्यप्रवृत्तिमासाद्यान्वयशक्तित्वमापन्नाभिरङ्गदादिपर्यायानपि हेमीक्रियेरन् । द्रव्याभिधेयतायामपि सदुत्पत्तौ द्रव्यनिष्पादिका अन्वयशक्तयः क्रमप्रवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकव्यक्तित्वमापन्ना द्रव्यं पर्यायीकुर्युः । तथा हेमनिष्पादिकाभिरन्वयशक्तिभिः क्रमवृत्तिमासाद्य तत्तद्व्यतिरेकमापन्नाभिर्हेमाङ्गदादिपर्यायमात्री क्रियेत । ततो द्रव्यार्थादेशात्सदुत्पादः, पर्यायार्थादेशादसत् इत्यनवद्यम् ॥ १९ ॥

तथा यदा द्रव्यार्थिकनयविवक्षा क्रियते य एव पूर्वं गृहस्थावस्थायामेवमेवं गृहव्यापारं कृतवान् पश्चाज्जिनदीक्षां गृहीत्वा स एवेदानीं रामादिकेवलीपुरुषो निश्चयरत्नत्रयात्मकपरमात्मध्यानेनानन्तसुखामृततृप्तो जातः, न चान्य इति । तदा सद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पुरुषत्वेनाविनष्टत्वात् । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते । पूर्वं सरागावस्थायाः सकाशादन्योऽयं भरतसगररामपाण्डवादिकेवलिपुरुषाणां सम्बन्धी निरुपमरागपरमात्मपर्यायः स एव न भवति । तदा पुनरसद्भावनिबद्ध एवोत्पादः । कस्मादिति चेत् । पूर्वपर्यायादन्यत्वादिति । यथेदं जीवद्रव्ये सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्य-

---

है । इसीप्रकार द्रव्य अपने अविनाशी गुणोंसे युक्त रहकर अनेक पर्याय धारण करता है । सो उसे यदि द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय हैं उन सब पर्यायोंमें वही द्रव्य उत्पन्न होता है जो पहले था, अन्य नहीं । ये सत् उत्पाद है । और यदि पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे कहते हैं तो जितने पर्याय उत्पन्न होते हैं वे सब अन्य अन्य ही हैं । पहले जो थे वे नहीं हैं—यह असत् उत्पाद है ॥ और जैसे पर्यायार्थिककी विवक्षामें जो असत्रूप कंकण कुंडलादि पर्याय उत्पन्न होते हैं उनके उत्पन्नकरनेवाली जो सुवर्णमें शक्ति है वह कंकण कुंडलादि पर्यायोंको सुवर्ण द्रव्य करती है । सोनाकी पर्यायभी सोना ही है, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसीप्रकार पर्याय विवक्षामें द्रव्यके जो असद्रूप पर्याय हैं उनकी उत्पन्न करनेवाली शक्ति जो द्रव्यमें है वह पर्यायको द्रव्य करती है । जिस द्रव्यके जो पर्याय हैं वे उसी द्रव्यरूप हैं, क्योंकि पर्यायसे द्रव्य अभिन्न है । इसलिये पर्याय और द्रव्य दो वस्तु नहीं हैं, जो पर्याय है वही द्रव्य है । और द्रव्यार्थिककी विवक्षासे जैसे सोना अपनी पीततादि शक्तियोंसें कंकण कुंडलादि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है सो सोना ही कंकण कुंडलादि पर्यायमात्र होता है । अर्थात् जो सोना है वही कंकण कुंडलादि पर्याय हैं, उसीप्रकार द्रव्य अपनी शक्तियोंसे अपने पर्यायोंमें क्रमसे उत्पन्न होता है । जब जो पर्याय धारण करता है तब उसी पर्यायमात्र होता है अर्थात् जो द्रव्य है वही पर्याय है । इसलिये सिद्ध हुआ कि असत् उत्पादमें जो पर्याय हैं वे द्रव्य ही हैं,

अथ सदुत्पादमनन्यत्वेन निश्चिनोति;—

जीवो भवं भविस्सदि णरोऽमरो वा परो भवीय पुणो।
किं दव्वत्तं पजहदि ण जहं अण्णो कहं होदि॥ २०॥

जीवो भवन् भविष्यति नरोऽमरो वा परो भूत्वा पुनः।
किं द्रव्यत्वं प्रजहाति न जहदन्यः कथं भवति॥ २०॥

द्रव्यं हि तावद्द्रव्यत्वभूतामन्वयशक्तिं नित्यमप्यपरित्यजद्भवति सदेव। यस्तु द्रव्यस्य पर्यायभूताया व्यतिरेकव्यक्तेः प्रादुर्भावः तस्मिन्नपि द्रव्यत्वभूताया अन्वयशक्तेरप्रच्यवनात् द्रव्यमनन्यदेव। ततोऽनन्यत्वेन निश्चीयते द्रव्यस्य सदुत्पादः। तथाहि—जीवो द्रव्यं भवन्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वानामन्यतमेन पर्यायेण द्रव्यस्य पर्यायदुर्ललितवृत्तित्वादवश्यमेव भविष्यति। स हि भूत्वा च तेन किं द्रव्यभूतामन्वयशक्तिमुज्झति?

मिति॥ १९॥ अथ पूर्वोक्तमेव सदुत्पादं द्रव्यादभिन्नत्वेन विवृणोति;—**जीवो** जीवः कर्ता **भवं** भवन् परिणमन् सन् **भविस्सदि** भविष्यति तावत्। किं किं भविष्यति। निर्विकारशुद्धोपयोगविलक्षणाभ्यां शुभाशुभोपयोगाभ्यां परिणम्य **णरोऽमरो वा परो** नरो देवो परस्तिर्यङ्नारकरूपो वा निर्विकारशुद्धोपयोगेन सिद्धो वा भविष्यति **भवीय पुणो** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण पुनर्भवीय भूत्वापि। अथवा द्वितीयव्याख्यानं। भवन् वर्तमानकालापेक्षया भविष्यति भाविकालापेक्षया भूत्वा भूतकालापेक्षया चेति कालत्रये चैवं भूत्वापि **किं दव्वत्तं पचयदि** किं द्रव्यत्वं परित्यजति **ण चयदि** द्रव्यार्थिकनयेन द्रव्यत्वं न त्यजति द्रव्याद्भिन्नो न भवति। **अण्णो कहं हवदि** अन्यो भिन्नः कथं भवति? किन्तु द्रव्यान्वयशक्ति-

---

और सदुत्पादमें जो द्रव्य है सो पर्याय ही हैं। द्रव्य और पर्याय आपसमें अभेदरूप हैं, परंतु नयके भेदसे भेदरूप हैं॥ १९॥ आगे सदुत्पादको पर्यायसे अभेदरूप बतलाते हैं;—**[जीवः]** आत्मा **[भवन्]** द्रव्यस्वभावरूप परिणमन करता हुआ **[नरः]** मनुष्य वा **[अमरः]** देव **[वा]** अथवा **[परः]** अन्य अर्थात् नारकी, तिर्यंच, सिद्ध इन सब पर्यायरूप **[भविष्यति]** होवेगा **[पुनः]** और **[भूत्वा]** पर्यायस्वरूप होकर **[किं]** क्या **[द्रव्यत्वं]** अपनी द्रव्यत्वशक्तिको **[प्रजहाति]** छोड़ सक्ता है? कभी नहीं। और जब **[न जहत्]** अपने द्रव्यत्वस्वभावको नहीं छोड़ सक्ता तो **[अन्यः कथं भवति]** अन्य स्वरूप कैसे होसक्ता है? कदापि नहीं हो सकता। **भावार्थ—**यह जीवद्रव्य नारकी तिर्यंच देवता मनुष्य सिद्ध—इन सबकी अनंत पर्यायोंको धारण करता है। यद्यपि यह जीव पर्यायोंसे अनेक स्वरूप होगया है तौभी अपने द्रव्यपने स्वभावको नहीं छोड़ता है। और जब अनेक पर्यायोंके धारण करने पर भी अपनी द्रव्यत्व शक्तिको नहीं छोड़ता तो अन्यरूप कभी नहीं हो सकता, जो नारकी था वही तिर्यंच पर्यायमें है वोही मनुष्य हो जाता है वही देवता तथा सिद्ध

नोज्झति । यदि नोज्झति कथमन्यो नाम स्यात्, येन प्रकटितत्रिकोटिसत्ताकः स एव न स्यात् ॥ २० ॥

अथासदुत्पादमन्यत्वेन निश्चिनोति;—

मणुओ ण होदि देवो देवो वा माणुसो व सिद्धो वा ।
एवं अहोज्जमाणो अणण्णभावं कधं लहदि ॥ २१ ॥

मनुजो न भवति देवो देवो वा मानुषो वा सिद्धो वा ।
एवमभवन्ननन्यभावं कथं लभते ॥ २१ ॥

पर्याया हि पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः काल एव सत्त्वात्ततोऽन्यकालेषु भवन्त्यसन्त एव । यश्च पर्यायाणां द्रव्यत्वभूतयान्वयशक्त्यानुस्यूतः क्रमानुपाती स्वकाले प्रादुर्भावः तस्मिन्पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः पूर्वमसत्त्वात्पर्याया अन्य एव । ततः पर्यायाणामन्यत्वेन निश्चीयते पर्यायस्वरूपकर्तृकरणाधिकरणभूतत्वेन पर्यायेभ्यो पृथग्भूतस्य द्रव्यस्यासदुत्पादः । तथाहि—न हि मनुजस्त्रिदशो वा सिद्धो वा स्यात् न

रूपेण सद्भावनिबद्धोत्पादः स एवेति द्रव्यादभिन्न इति भावार्थः ॥ २० ॥ अथ द्रव्यस्यासदुत्पादं पूर्वपर्यायादन्यत्वेन निश्चिनोति;—**मणुवो ण हवदि देवो** आकुलत्वोत्पादकमनुजः देवादिविभावपर्यायविलक्षणमनाकुलत्वरूपस्वभावपरिणतिलक्षणं परमात्मद्रव्यं यद्यपि निश्चयेन मनुष्यपर्याये देवपर्याये च समानं तथापि मनुजो देवो न भवति । कस्माद्देवपर्यायकाले मनुष्यपर्यायस्यानुपलम्भात् । **देवो वा माणुसो व सिद्धो वा** देवो वा मनुष्यो न भवति स्वात्मोपलब्धिरूपसिद्धपर्यायो वा न भवति । कस्मात् । पर्यायाणां परस्परं भिन्नकालत्वात्, सुवर्णद्रव्ये कुण्डलादिपर्यायाणामिव ।

आदि पर्यायरूप हो जाता है। इन सब अवस्थाओंमें अविनाशी द्रव्य वही एक है दूसरा नहीं । इसलिये सत् उत्पादकी अपेक्षा सब पर्यायोंमें वही अविनाशी वस्तु है ऐसा सिद्ध हुआ ॥ २० ॥ आगे, असत् उत्पादको अन्यरूपसे दिखाते हैं;—[**मनुजः**] जो मनुष्य है वह [**देवः**] देव [**वा**] अथवा [**देवः**] देव है वह [**मानुषः**] मनुष्य [**वा**] अथवा [**सिद्धः**] सिद्ध अर्थात् मोक्षपर्याय रूप [**न भवति**] नहीं हो सक्ता [**एवं अभवन्**] इसप्रकार नहीं होता हुआ [**अनन्यभावं**] अभिन्नपनेको [**कथं**] किसतरह [**लभते**] प्राप्त हो सक्ता है ? । **भावार्थ**—जो देव मनुष्यादि पर्याय हैं वे सब एक कालमें नहीं होते किंतु जुदे २ समयमें होते हैं । जिससमय देव पर्याय है उससमय मनुष्यादि पर्याय नहीं है एक ही पर्याय हो सकती है। इसकारण जो एक पर्याय होती है वह अन्यरूप नहीं हो सक्ती, सब जुदे २ ही पर्याय होते हैं । इसलिये पर्यायका कर्ता करण द्रव्य आधार है सो द्रव्य, पर्यायसे जुदा नहीं है पर्यायके पलटनेसे द्रव्य भी व्यवहारसे अन्य कहा जाता है । जैसे—मनुष्यपर्यायरूप जीव देवतापर्यायरूप वा सिद्धपर्याय रूप नहीं होता और देवपर्यायरूप जीव मनुष्यपर्यायरूप

हि त्रिदशो मनुजो वा सिद्धो वा स्यात् । एवमसत्कथमनन्यो नाम स्यात् ? येनान्य एव न स्यात् । येन च निष्पद्यमानमनुजादिपर्यायं जायमानवलयादिविकारं काञ्चनमिव जीवद्रव्यमपि प्रतिपदमन्यन्न स्यात् ॥ २१ ॥

अथैकद्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वविप्रतिषेधमुद्धुनोति;—

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्कालं तम्मयत्तादो ॥ २२ ॥

द्रव्यार्थिकेन सर्वं द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुनः ।
भवति चान्यदनन्यत्तत्कालं तन्मयत्वात् ॥ २२ ॥

सर्वस्य हि वस्तुनः सामान्यविशेषात्मकत्वात्तत्स्वरूपमुत्पश्यतां यथाक्रमं सामान्यविशेषौ परिच्छिन्दती द्वे किल चक्षुषी, द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं चेति । तत्र पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकेषु विशेषेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यमेकमवलोकयतामनवलोकितविशेषाणां तत्सर्वं जीवद्रव्यमिति प्रतिभाति । यदा तु द्रव्यार्थिकमेकान्तनिमीलितं केवलोन्मी-

---

एवं अहोज्ज माणो एवमभवन्सन् **अण्णभावं कहं लहदि** अनन्यभावमेकत्वं कथं लभते ? न कथमपि । तत एतावदायाति असद्भावनिबद्धोत्पादः पूर्वपर्यायाद्भिन्नो भवतीति ॥२१॥ अथैकद्रव्यस्य पर्यायैस्सहानन्यत्वाभिधानमेकत्वमन्यत्वाभिधानमनेकत्वं च नयविभागेन दर्शयति, अथवा पूर्वोक्तसद्भावनिबद्धासद्भावमुत्पादद्वयं प्रकारान्तरेण समर्थयति;—**हवदि** भवति । किं कर्तृ । **सव्वं दव्वं** सर्वं विवक्षिताविवक्षितजीवद्रव्यं । किं विशिष्टं भवति । **अणण्णं** अनन्यमभिन्नमेकं तन्मयमिति । केन सह । तेन नारकतिर्यग्मनुष्यदेवरूपविभावपर्यायसमूहेन केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयशक्तिरूपसिद्धपर्यायेण च । केन कृत्वा । **दव्वट्ठियेण** शुद्धान्वयद्रव्यार्थिकनयेन । कस्मात् । कुण्डलादिपर्यायेषु सुवर्णस्येव भेदाभावात् **तं पज्जयट्ठियेण पुणो** तद्द्रव्यं पर्यायार्थिकनयेन

वा सिद्धपर्यायरूप नहीं होता, इसतरह पर्यायके भेदसे द्रव्य भी अन्य कहा जाता है । इसकारण पर्यायार्थिकनयसे द्रव्य अन्यरूप अवश्य कहना चाहिये । जैसे सोना कंकण कुंडलादि पर्यायोंके भेदसे "कंकणका सोना कुंडलका सोना" इसरीतिसे अन्य अन्यरूप कहा जाता है, उसीप्रकार मनुष्यजीव—देवजीव—सिद्धजीव इसतरह अन्य अन्यरूप कहनेमें आता है । इसकारण असत् उत्पादमें द्रव्यको अन्यरूप कहना चाहिये यह सिद्ध हुआ ॥ २१ ॥ आगे एक द्रव्यके अन्यत्व—अनन्यत्व ये दो भेद हैं वे परस्पर विरोधी एक जगह किसतरह रह सकते हैं ? इसका समाधान आचार्यमहाराज कहते हैं;— **[द्रव्यार्थिकेन]** द्रव्यार्थिकनयकी विवक्षासे **[तत् सर्वं]** वह समस्त वस्तु **[अनन्यत्]** अन्य नहीं है वही है अर्थात् नर नरकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य रहता है **[पुनः]** और **[पर्यायार्थिकेन]** पर्यायार्थिकनयकी विवक्षासे **[अन्यत्]**

लितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान् विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थितं जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वमनन्यत्वं च न विप्रतिषिध्यते ॥ २२ ॥

पुनः अन्यद्भिन्नमनेकं पर्यायैः सह पृथग्भवति । कस्मादिति चेत् । **तक्काले तम्मयत्तादो** तृणाग्निकाष्ठाग्निपत्राग्निवत् स्वकीयपर्यायैः सह तत्काले तन्मयत्वादिति । एतावता किमुक्तं भवति । द्रव्यार्थिकनयेन यदा वस्तुपरीक्षा क्रियते तदा पर्यायसन्तानरूपेण सर्वं पर्यायकदम्बकं द्रव्यमेव प्रतिभाति । यदा तु पर्यायनयविवक्षा क्रियते तदा द्रव्यमपि पर्यायरूपेण भिन्नं भिन्नं प्रतिभाति । यदा च परस्परसापेक्षया नयद्वयेन युगपत्समीक्ष्यते, तदैकत्वमनेकत्वं च युगपत्प्रतिभातीति । यथेदं जीवद्रव्ये व्याख्यानं कृतं तथा सर्वद्रव्येषु यथासम्भवं ज्ञातव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥ एवं सदु-

---

अन्यरूप द्रव्य होता है अर्थात् नर नारकआदि पर्यायोंसे जुदा २ कहा जाता है । क्योंकि [**तत्कालं**] नर नरकादि पर्यायोंके होनेके समय वह द्रव्य [**तन्मयत्वात्**] उस पर्यायस्वरूप ही होजाता है । **भावार्थ**—वस्तु सामान्य—विशेषरूप दो प्रकारसे है । इन दोनोंके देखनेवाले हैं उनके दो नेत्र कहे हैं—एक तो द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । इन दोनों नेत्रोंमेंसे जो पर्यायार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद करके एक द्रव्यार्थिक नेत्रसे ही देखे तब नारक तिर्यंच मनुष्य देव सिद्ध पर्यायोंमें स्थित जो सामान्य एक जीव उसके देखनेवाले पुरुषोंको सब जगह जीव ही प्रतिभासता (दीखता) है भेद नहीं माल्रम होता । और जब द्रव्यार्थिक नेत्रको सर्वथा बंद कर एक पर्यायार्थिक नेत्रसे ही देखाजावे तब जीवद्रव्यमें नर नारकादि पर्यायोंके देखनेवाले पुरुषोंको नर नारकादि पर्याय जुदे २ माल्रम होते हैं । जिसकालमें जो पर्याय होता है उस पर्यायमें जीव उसीस्वरूप परिणमता है । जैसे कि आग, गोबरके छाने—तृण—पत्ता—काठ आदि अनेक ईंधनके आकार हो जाती है, उसीप्रकार जीव भी अनेक पर्यायोंको धारण करता हुआ अनेक आकाररूप होजाता है । तथा जब द्रव्यार्थिक—पर्यायार्थिक दोनोंही नेत्रोंसे इधर उधर सब जगह देखाजाय तो एक ही समय नर नारकादि पर्यायोंमें वही एक द्रव्य देखनेमें आता है और अन्य २ रूप भी दीखता है । इसकारण एक नयरूप नेत्रसे देखना एक अंगका देखना है तथा दो नयरूप नेत्रोंसे देखना सब अंगोंका देखना कहा जाता है । इसलिये सर्वांग द्रव्यके देखनेमें अन्यरूप और अनन्यरूप—इसतरह दो स्वरूप कहनेका निषेध नहीं हो

अथ सर्वविप्रतिषेधनिषेधिकां सप्तभङ्गीमवतारयति;—

अत्थित्ति य णत्थित्ति य हवदि अवत्तव्वमिदि पुणो दव्वं।
पज्जाएण दु केणवि तदुभयमादिट्ठमण्णं वा ॥ २३ ॥

अस्तीति च नास्तीति च भवत्यवक्तव्यमिति पुनर्द्रव्यम्।
पर्यायेण तु केनापि तदुभयमादिष्टमन्यद्वा ॥ २३ ॥

स्यादस्त्येव १ स्यान्नास्त्येव २ स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादस्तिनास्त्येव ४ स्यादस्त्यवक्तव्यमेव ५ स्यान्नास्त्यवक्तव्यमेव ६ स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यमेव ७, स्वरूपेण १ पररूपेण

त्पादकथनेन प्रथमा सदुत्पादविशेषविवरणरूपेण द्वितीया तथैवासदुत्पादविशेषविवरणरूपेण तृतीया द्रव्यपर्याययोरेकत्वानेकत्वप्रतिपादनेन चतुर्थीति सदुत्पादासदुत्पादव्याख्यानमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन सप्तमस्थलं गतम्। अथ समस्तदुर्नयैकान्तरूपविवादनिषेधिकां नयसप्तभङ्गीं विस्तारयति;—**अत्थित्ति य** स्यादस्त्येव। स्यादिति कोऽर्थः कथंचित्कोऽर्थः? विवक्षितप्रकारेण स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन तच्चतुष्टयं, शुद्धजीवविषये कथ्यते। शुद्धगुणपर्यायाधारभूतं शुद्धात्मद्रव्यं द्रव्यं भण्यते, लोकाकाशप्रमिताः शुद्धासंख्येयप्रदेशाः क्षेत्रं भण्यते, वर्तमानशुद्धपर्यायरूपपरिणतो वर्तमानसमयः कालो भण्यते, शुद्धचैतन्यं भावश्चेत्युक्तलक्षणद्रव्यादिचतुष्टयेन इति प्रथमभङ्गः १। **णत्थित्ति य** स्यान्नास्त्येव स्यादिति कोऽर्थः कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण परद्रव्यादिचतुष्टयेन **हवदि** भवति २। कथम्भूत। **अवत्तव्वमिति** स्यादवक्तव्यमेव ३ स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन स्यादस्ति स्यान्नास्ति, स्यादवक्तव्यं, स्यादस्तिनास्ति, स्यादस्त्येवावक्तव्यम्, स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्यम्। "**पुणो**" पुनः इत्थंभूतं। किं भवति। **दव्वं** परमात्मद्रव्य कर्तृ। पुनरपि कथम्भूतं भवति। **तदुभयं** स्यादस्तिनास्त्येव। स्यादिति कोऽर्थः? कथंचिद्विवक्षितप्रकारेण क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन ४। कथम्भूतं सदित्थमित्थं भवति। **आदिट्ठं**

सकता ॥ २२ ॥ अब सब तरहके विरोधोंको दूरकरनेवाली सप्तभङ्गी वाणीको कहते हैं;—[**द्रव्यं**] जो वस्तु है वह [**केनचित्पर्यायेण**] किसी एक पर्यायसे [**अस्तीति**] अस्तिरूप [**भवति**] है [**च**] और किसी एक पर्यायसे [**नास्तीति**] वही द्रव्य नास्तिरूप है [**च**] तथा [**अवक्तव्यं इति**] किसी एक प्रकारसे वचनगोचर नहीं है [**तु पुनः**] और [**तत् उभयं**] किसी एक पर्यायसे वही द्रव्य अस्तिनास्तिरूप है [**वा**] अथवा किसी एक पर्यायसे [**अन्यत्**] अन्य तीन भंगस्वरूप [**आदिष्टं**] कहा गया है। **भावार्थ**—द्रव्यकी सिद्धि सप्तभंगोंसे होती है वे इसप्रकार हैं—स्वद्रव्य–स्वक्षेत्र–स्वकाल–स्वभाव, इसतरह अपने चतुष्टयकी अपेक्षा द्रव्य **अस्तिरूप है** १ परद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा **नास्तिरूप** है २ एक कालमें 'अस्ति नास्ति' कह नहीं सकते इसकारण वह **अवक्तव्य** है ३ क्रमसे वचनद्वारा **अस्तिनास्तिरूप** है ४ तथा द्रव्यमें **स्यात् अस्त्यवक्तव्य** चौथा भंग है क्योंकि

२ स्वपररूपयौगपद्येन ३ स्वपररूपक्रमेण ४ स्वरूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां ५ पररूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां ६ स्वरूपपररूपस्वपररूपयौगपद्यैरादिश्यमानस्य स्वरूपेण सतः, पररूपेणासतः, स्वपररूपाभ्यां युगपद्वक्तुमशक्यस्य, स्वपररूपाभ्यां क्रमेण सतोऽसतश्च, स्वरूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यां सतो वक्तुमशक्यस्य च, पररूपस्वपररूपयौगपद्याभ्यामसतो वक्तुमशक्यस्य च, स्वरूपपररूपस्वपररूपयौगपद्यैः सतोऽसतो वक्तुमशक्यस्य चानन्तधर्मणो द्रव्यस्यैकैकं धर्ममाश्रित्य विवक्षिताविवक्षितविधिप्रतिषेधाभ्यामवतरन्ती सप्तभङ्गिकैवकारविश्रान्तमश्रान्तसमुच्चार्यमाणस्यात्कारामोघमन्त्रपदेन समस्तमपि विप्रतिषेधमोहमुदस्यति ॥ २३ ॥

अथ निर्द्धार्यमाणत्वेनोदाहरणीकृतस्य जीवस्य मनुष्यादिपर्यायाणां क्रियाफलत्वेनान्यत्वं द्योतयति;—

एसोत्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता ।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो ॥ २४ ॥

एष इति नास्ति कश्चिन्न नास्ति क्रिया स्वभावनिर्वृत्ता ।
क्रिया हि नास्त्यफला धर्मो यदि निःफलः परमः ॥ २४ ॥

आदिष्टं विवक्षितं सत् । केन कृत्वा । **पज्जायेण दु** पर्यायेण तु प्रश्नोत्तररूपनयविभागेन तु । कथम्भूतेन । **केणवि** केनापि विवक्षितेन नैगमादिनयरूपेण **अण्णं वा** अन्यद्वा संयोगभङ्गत्रयरूपेण । तत्कथ्यते—स्यादस्त्येवावक्तव्यं स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ५ । स्यान्नास्त्येवावक्तव्यं परद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ६ । स्यादस्तिनास्त्येवावक्तव्यं क्रमेण स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन युगपत्स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयेन च ७ । पूर्वं पञ्चास्तिकाये स्यादस्तीत्यादिप्रमाणवाक्येन प्रमाणसप्तभङ्गी व्याख्याता, अत्र तु स्यादस्त्येव यदेवकारग्रहणं तन्नयसप्तभङ्गीज्ञापनार्थमिति भावार्थः । यथेदं सप्तभङ्गीव्याख्यानं शुद्धात्मद्रव्ये दर्शितं तथा यथासम्भवं सर्वपदार्थेषु द्रष्टव्यमिति ॥ २३ ॥ एवं नयसप्तभङ्गी व्याख्यानगाथयाष्टमस्थलं

किसी एक प्रकार स्वचतुष्टयसे अस्तिरूप होता हुआ भी एकही कालमें स्वपरचतुष्टयसे वचनद्वारा कहा नहीं जाता ५ और कथंचित् प्रकार परचतुष्टयसे नास्तिरूप हुआ भी एकही समय स्वपरचतुष्टयकर वचनगोचर न होनेसे **स्यान्नास्त्यवक्तव्य** ६ है । और किसी एक प्रकार स्वरूपसे अस्तिरूप—पररूपसे नास्तिरूप होता हुआ भी एक ही समयमें स्वपररूपकर वचनसे कह नहीं सकते, इसकारण **स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य** भंगरूप ७ है ॥ इसप्रकार अनंतगुणात्मक द्रव्य सप्तभंगसे सिद्ध हुआ । विधि निषेधकी मुख्यता—गौणता करके यह सप्तभंगी वाणी "स्यात्" पदरूप सत्यमंत्रसे एकांतरूप खोटेनयरूपी विषमोहको दूरकरती है ॥ २३ ॥ आगे जीवके जो ये असद्भूत मनुष्यादि पर्याय दिखलाते हैं वे मोहक्रियाके फल हैं इसकारण वस्तु स्वभा-

इह हि संसारिणो जीवस्यानादिकर्मपुद्गलोपाधिसन्निधिप्रत्ययप्रवर्तमानप्रतिक्षणविवर्तनस्य क्रिया किल स्वभावनिर्वृत्तितास्ति । ततस्तस्य मनुष्यादिपर्यायेषु च न कश्चनाप्येष एवेति टङ्कोत्कीर्णोऽस्ति, तेषां पूर्वपूर्वोपमर्दप्रवृत्तक्रियाफलत्वेनोत्तरोत्तरोपमर्द्यमानत्वात् फलमभिलष्येत वा मोहसंवलनाविलयनात् क्रियायाः । क्रिया हि तावच्चेतनस्य पूर्वोत्तरदशाविशिष्ट-

---

गतम् । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण प्रथमा नमस्कारगाथा, द्रव्यगुणपर्यायकथनरूपेण द्वितीया, स्वसमयपरसमयप्रतिपादनेन तृतीया, द्रव्यस्य सत्तादिलक्षणत्रयसूचनरूपेण चतुर्थीति, स्वतन्त्रगाथाचतुष्टयेन पीठिकास्थलं तदनन्तरमवान्तरसत्ताकथनरूपेण प्रथमा महासत्तारूपेण द्वितीया, यथा द्रव्यं स्वभावसिद्धं तथा सत्तागुणोऽपीति कथनरूपेण तृतीया, उत्पादव्ययध्रौव्यत्वेऽपि सत्तैव द्रव्यं भवतीति कथनेन चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्तालक्षणविवरणमुख्यता । तदनन्तरमुत्पादव्ययध्रौव्यलक्षणविवरणमुख्यत्वेन गाथात्रयं, तदनन्तरं द्रव्यपर्यायकथनेन गुणपर्यायकथनेन च गाथाद्वयं, ततश्च द्रव्यस्यास्तित्वस्थापनारूपेण प्रथमा, पृथक्त्वलक्षणस्यातद्भावाभिधान्यत्वलक्षणस्य च कथनरूपेण द्वितीया, संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदरूपस्यातद्भावस्य विवरणरूपेण तृतीया, तस्यैव दृढीकरणार्थं चतुर्थीति गाथाचतुष्टयेन सत्ताद्रव्ययोरभेदविषये युक्तिकथनमुख्यता । तदनन्तरं सत्ताद्रव्ययोर्गुणगुणिकथनेन प्रथमा, गुणपर्यायाणां द्रव्येण सहाभेदकथनेन द्वितीया चेति स्वतन्त्रगाथाद्वयं । तदनन्तरं द्रव्यस्य सदुत्पादासदुत्पादयोः सामान्यव्याख्यानेन विशेषव्याख्यानेन च गाथाचतुष्टयं, ततश्च सप्तभङ्गीकथनेन गाथैका चेति समुदायेन चतुर्विंशतिगाथाभिरष्टभिः स्थलैः सामान्यज्ञेयव्याख्यानमध्ये सामान्यद्रव्यप्ररूपणं समाप्तम् । अतः परं तत्रैव सामान्यद्रव्यनिर्णयमध्ये सामान्यभेदभावनामुख्यत्वेनैकादशगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्र क्रमेण पञ्चस्थानानि भवन्ति । प्रथमस्तावद्वार्तिकव्याख्यानाभिप्रायेण सांख्यैकान्तनिराकरणं, अथवा शुद्धनिश्चयनयेन कर्मफलं भवति, न च शुद्धात्मस्वरूपमिति तस्यैवाधिकारसूत्रस्य विवरणार्थं "कम्मं णामसमक्खं" इत्यादिपाठक्रमेण गाथा चतुष्टयं, ततः परं रागादिपरिणाम एव द्रव्यकर्मकारणत्वाद्भावकर्म्म भण्यत इति परिणाममुख्यत्वेन "आदा कम्ममलिमसो" इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनन्तरं कर्मफलचेतना कर्मचेतना ज्ञानचेतनेति त्रिविधचेतनाप्रतिपादनरूपेण "परिणमदि चेदणाए" इत्यादिसूत्रद्वयं तदनन्तरं शुद्धात्मभेदभावनाफलं कथयन् सन् "कत्ताकरणं" इत्याद्येकसूत्रेणोपसंहरति । एवं भेदभावनाधि-

---

वसे जुदे हैं ऐसा दिखलाते हैं;—[**एषः**] यह पर्याय टंकोत्कीर्ण अविनाशी है [**इति**] ऐसा [**कश्चित्**] नरनारकादि पर्यायोंमें कोईभी पर्याय [**नास्ति**] नहीं है । और [**स्वभावनिर्वृत्ता**] रागादि अशुद्ध परिणतिरूप विभाव स्वभावकर उत्पन्न हुई जो [**क्रिया**] जीवकी अशुद्ध कर्तव्यता [**नास्ति न**] वह नहीं है ऐसा भी नहीं अर्थात् क्रिया तो अवश्य है । [**यदि**] जो [**परमः धर्मः**] उत्कृष्ट वीतराग भाव [**निष्फलः**] नरनारकादि पर्यायरूप फलकरके रहित है तो [**हि**] निश्चयसे [**क्रिया**] रागादि परणमनरूप क्रिया [**अफला**] फलरहित [**नास्ति**] नहीं है अर्थात् क्रिया फलवती

चैतन्यपरिणामात्मिका । सा पुनरणोरण्वन्तरसंगतस्य परिणतिरिवात्मनो मोहसंवलितस्य द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्य निष्पादकत्वात्सफलैव । सैव मोहसंवलनविलयने पुनर-

कारे स्थलपञ्चकेन समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ नरकादिपर्यायाः कर्माधीनत्वेन विनश्वरत्वादिति शुद्धनिश्चयनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावनां कथयति;—**एसोत्ति णत्थि कोई** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मद्रव्यवत्संसारे मनुष्यादिपर्यायेषु मध्ये सर्वदैवैक एकरूप एव नित्यः कोऽपि नास्ति । तर्हि मनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तिका संसारक्रिया सापि न भविष्यति? **ण णत्थि किरिया** न नास्ति क्रिया मिथ्यात्वरागादिपरिणतिस्संसारः कर्मेति यावत् इति पर्यायनामचतुष्टयरूपा क्रियास्त्येव । सा च कथम्भूता । **सभावणिव्वत्ता** शुद्धात्मस्वभावाद्विपरीतापि नरनारकादिविभावपर्यायस्वभावेन निर्वृत्ता । तर्हि किं निष्फला भविष्यति । **किरिया हि णत्थि अफला** क्रिया हि नास्त्यफला सा मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपा क्रिया यद्यप्यनन्तसुखादिगुणात्मकमोक्षकार्यं प्रति निष्फला तथापि नानादुःखदायकस्वकीयकार्यभूतमनुष्यादिपर्यायनिर्वर्तकत्वात्सफलेति मनुष्यादिपर्यायनिष्पत्तिरेवास्याः फलं । कथं ज्ञायत इति चेत्? **"धम्मो जदि णिप्फलो परमो** धर्मो यदि निष्फलः परमः नीरागपरमात्मोपलम्भपरिणतिरूपः आगमभाषया परमयथाख्यातचारित्ररूपो वा योऽसौ परमो धर्मः, स केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपस्य कार्यसमयसारस्योत्पादकत्वात्सफलोऽपि नरनारकादिपर्यायकारणभूतं ज्ञानावरणादिकर्मबन्धं नोत्पादयति, ततः कारणान्निष्फलः । ततो ज्ञायते नरनारकादिसंसारकार्यं मिथ्यात्वरागादिक्रियायाः फलमिति । अथवास्य सूत्रस्य द्वितीयव्याख्यानं क्रियते—यथा शुद्धनयेन रागादिविभावेन परिणमत्ययं जीवस्तथैवाशुद्धनयेनापि न परिणमतीति[1] यदुक्तं सांख्येन तन्निराकृतं । कथमिति चेत्?

है ॥ भावार्थ—संसारमें कोई पर्याय नित्य नहीं है । यहां कोई यह कहै कि नरनारकादि पर्याय नित्य नहीं मानोगे तो रागादि परिणतिरूप क्रिया भी नहीं हो सकती? ऐसा कहना ठीक नहीं है । क्योंकि आत्मा अनादिकालसे पुद्गलकर्मके निमित्तसे नानारूप परणमन करता है इसकारण रागादि परिणतिरूप क्रिया है । उसी क्रियाके फल नरनारकादि पर्याय हैं, तथा पूर्वपर्याय आगेकी पर्यायसे विनाशीक हैं । जैसे स्निग्धरूखे गुणोंकर परिणत हुई परमाणुओंकी क्रिया द्व्यणुकादि स्कंधरूप कार्यको उत्पन्न करती है, उसीप्रकार मोहसे मिली हुई आत्माकी क्रिया अवश्य ही मनुष्यादि पर्यायोंको उत्पन्न करती है; इसकारण क्रिया फलवती समझना चाहिये । दूसरा प्रमाण फलवती क्रिया होनेमें यह है कि, वीतरागभाव नरनारकादि पर्यायरूप फल रहित है तो ऊपरसे यह बातसिद्ध ही है कि रागादिपरिणतिरूप क्रिया नरनारकादि पर्यायरूप फलवाली है । जैसे बंधयोग्यस्निग्धरूक्षभावरहित परमाणू द्व्यणुकादि बंधको नहीं उत्पन्न करसकते उसीतरह परमवीतरागभाव मनुष्या-

1 ख पुस्तके " परिणमति रागादिभावेन जीवः सांख्येन यदुक्तं " इति वर्तते ।

णोरुच्छिन्नाण्वन्तरसंगमस्य परिणतिरिव द्व्यणुककार्यस्येव मनुष्यादिकार्यस्यानिष्पादकत्वात् परमद्रव्यस्वभावभूततया परमधर्माख्या भवत्यफलैव ॥ २४ ॥

अथ मनुष्यादिपर्यायाणां जीवस्य क्रियाफलत्वं व्यनक्ति;—

कम्मं णामसमक्खं सभावमध अप्पणो सहावेण ।
अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥ २५ ॥

कर्म नामसमाख्यं स्वभावमथात्मनः स्वभावेन ।
अभिभूय नरं तिर्यञ्चं नैरयिकं वा सुरं करोति ॥ २५ ॥

क्रिया खल्वात्मना प्राप्यत्वात्कर्म, तन्निमित्तप्राप्तपरिणामः पुद्गलोपि कर्म, तत्कार्यभूता मनुष्यादिपर्याया जीवस्य क्रियाया मूलकारणभूतायाः प्रवृत्तत्वात् क्रियाफलमेव स्युः । क्रियाऽभावे पुद्गलानां कर्मत्वाभावात्तत्कार्यभूतानां तेषामभावात् । अथ कथं ते कर्मणः कार्यभावमायान्ति ? कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिभूय क्रियमाणत्वात् तु प्रदीपवत् ।

अशुद्धनयेन मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणतजीवानां नरनारकादिपर्यायपरिणतिदर्शनादिति । एवं प्रथमस्थले सूत्रगाथा गता ॥ २४ ॥ अथ मनुष्यादिपर्यायाः कर्मजनिता इति विशेषेण व्यक्तीकरोति;—**कम्मं** कर्मरहितपरमात्मनो विलक्षणं कर्म कर्तृ । किं विशिष्टं । **णामसमक्खं** निर्नामनिर्गोत्रमुक्तात्मनो विपरीतं नामेति सम्यगाख्या संज्ञा यस्य तद्भवति नामसमाख्यं, नामकर्मेत्यर्थः । **सहावं** शुद्धबुद्धैकपरमात्मस्वभावं **अह** अथ **अप्पणो सहावेण** आत्मीयेन ज्ञानावरणादिस्वकीयस्वभावेन करणभूतेन **अभिभूय** तिरस्कृत्य प्रच्छाद्य तं पूर्वोक्तमात्मस्वभावं । पश्चात्किं करोति । **णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि** नरतिर्यग्नारकसुररूपं करोतीति । अयमत्रार्थः–यथाग्निः कर्ता तैलस्वभावं कर्मतापन्नमभिभूय तिरस्कृत्य वर्त्याधारेण दीपशिखारू-

---

दिपर्यायोंको कारण नहीं है । इसलिये यह सारांश निकला कि मोहसे मिलीहुई क्रिया संसारका कारण है । मोहरहित क्रिया वस्तुका स्वभाव है वही परमधर्मरूप है तथा संसारका नाश इसी क्रियासे होता है ॥ २४ ॥ आगे जीवके मनुष्यादि पर्याय क्रियाके फल हैं ऐसा प्रगट दिखाते हैं;—[**अथ**] इसके बाद जो [**नामसमाख्यं**] नामकर्म संज्ञावाला [**कर्म**] नरनरकादिरूप नामकर्म है वह [**स्वभावेन**] अपने नरनारकादि गतिरूप परिणमन स्वभावसे [**आत्मनः**] जीवके [**स्वभावं**] शुद्धनिष्क्रियपरिणामको [**अभिभूय**] आच्छादित करके जीवको [**नरं**] मनुष्य [**तिर्यञ्चं**] तिर्यंच [**नैरयिकं**] नारकी [**वा**] अथवा [**सुरं**] देव [**करोति**] इन चारों गतियोंरूप करता है ॥ **भावार्थ**—रागादि परिणतिरूप क्रिया आत्मासे होती है इसलिये इस क्रियाका नाम " भावकर्म" है । उसके निमित्तको पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मरूप परिणमन करता है, इसकारण पुद्गलकोभी कर्म कहते हैं । उस कर्मके फल मनुष्यादि पर्याय हैं । वास्तवमें [illegible] तो जीवकी रागादिरूप क्रिया है उसीकी

तथाहि—यथा खलु ज्योतिःस्वभावेन तैलस्वभावमभिभूय क्रियमाणः प्रदीपो ज्योतिःकार्यं तथा कर्मस्वभावेन जीवस्वभावमभिभूय क्रियमाणमनुष्यादिपर्यायाः कर्मकार्यम्॥ २५॥

अथ कुतो मनुष्यादिपर्यायेषु जीवस्य स्वभावाभिभवो भवतीति निर्धारयति;—

णरणारयतिरियसुरा जीवा खलु णाम कम्मणिव्वत्ता ।
ण हि ते लद्धसहावा परिणममाणा सकम्माणि ॥ २६ ॥

नरनारकतिर्यक्सुरा जीवाः खलु नामकर्मनिर्वृत्ताः ।
न हि ते लब्धस्वभावाः परिणममानाः स्वकर्माणि ॥ २६ ॥

अमी मनुष्यादयः पर्याया नामकर्मनिर्वृत्ताः सन्ति तावत्। न पुनरेतावतापि तत्र जीवस्य स्वभावाभिभवोस्ति। यथा कनकबद्धमाणिक्यकङ्कणेषु माणिक्यस्य। यत्तत्र नैव जीवस्वभावमुपलभते तत् स्वकर्मपरिणमनात् पयःपूरवत्। यथा खलु पयःपूरः प्रदेशस्वादाभ्यां पिचु-

---

पेण परिणमयति, तथा कर्माग्निः कर्ता तैलस्थानीयं शुद्धात्मस्वभावं तिरस्कृत्य वर्तिस्थानीयशरीराधारेण दीपशिखास्थानीयनरनारकादिपर्यायरूपेण परिणमयति। ततो ज्ञायते मनुष्यादिपर्यायाः निश्चयनयेन कर्मजनिता इति ॥ २५ ॥ अथ नरनारकादिपर्यायेषु कथं जीवस्य स्वभावाभिभवो जातस्तत्र किं जीवाभाव इति प्रश्ने ? प्रत्युत्तरं ददाति;—**णरणारयतिरियसुरा जीवा** नरनारकतिर्यक्सुरनामानो जीवाः सन्ति तावत् खलु स्फुटं। कथम्भूताः। **णामकम्मणिव्वत्ता** नरनारकादिस्वकीयस्वकीयनामकर्मणा निर्वृत्ताः **ण हि ते लद्धसहावा** किन्तु यथा माणिक्यबद्धसुवर्णकङ्कणेषु माणिक्यस्य हि मुख्यता नास्ति, तथा ते जीवाश्चिदानन्दैकशुद्धात्मस्वभावमलभमानाः सन्तो लब्धस्वभावा न भवन्ति, तेन कारणेन स्वभावाभिभवो भण्यते, न च जीवाभावः। कथम्भूताः सन्तो लब्धस्वभावा न भवन्ति। **परिणममाणा सकम्माणि** स्वकीयोदयागतकर्माणि सुखदुःखरूपेण परिणममाना इति।' अयमत्रार्थः—यथा वृक्षसेचनविषये जल-

---

मुख्यतासे इन मनुष्यादि पर्यायोंकी प्रवृत्ति होती है इसीलिये ये पर्याय क्रियाके फल कहे गये हैं। यदि रागादि क्रिया न हो तो पुद्गल कर्मरूप परिणमन नहीं कर सकता, कर्मरूप परिणमन न होनेसे नरनारकादि पर्यायभी नहीं हो सकते। जैसे दीपक अग्निस्वभावसे तेलस्वभावको दूरकरके प्रकाशरूप कार्य करता है, उसीप्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीवस्वभावको घातकर मनुष्यादि पर्यायरूप नानाप्रकारके कार्यको करता है ॥२५॥ आगे निश्चयसे मनुष्यादि पर्यायोंमें जीवके स्वभावका नाश कदापि नहीं होता ऐसा दिखाते हैं;—[**नरनारकतिर्यक्सुराः**] मनुष्य, नारकी, तिर्यंच और देव [**जीवाः**] इसप्रकार चारगतियों स्वरूप जीव [**खलु**] निश्चयसे [**नामकर्मनिर्वृत्ताः**] नामकर्मसे रचे गये हैं [**हि**] इसीकारणसे [**ते**] वे जीव [**स्वकर्माणि**] अपने २ उपार्जित कर्मोंरूप [**परिणममानाः**] परणमन करते हुए [**लब्धस्वभावाः न**] चिदानंद स्वभावको नहीं प्राप्त होते ॥ भावार्थ—ये मनुष्यादि पर्याय नाम-

मन्दचन्दनादिवनराजीं परिणमन्न द्रव्यत्वस्वादुत्वस्वभावमुपलभते, तथात्मापि प्रदेशभावाभ्यां कर्मपरिणमनान्नामूर्तत्वनिरुपरागविशुद्धिमत्त्वस्वभावमुपलभते ॥ २६ ॥

अथ जीवस्य द्रव्यत्वेनावस्थितत्वेपि पर्यायैरनवस्थितत्वं द्योतयति;—

जायदि णेव ण णस्सदि खणभंगसमुब्भवे जणे कोई ।
जो हि भवो सो विलओ संभवविलयत्ति ते णाणा ॥ २७ ॥

जायते नैव न नश्यति क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कश्चित् ।
यो हि भवः स विलयः संभवविलयाविति तौ नाना ॥ २७ ॥

इह तावन्न कश्चिज्जायते न म्रियते च । अथ च मनुष्यदेवतिर्यङ्नारकात्मको जीवलोकः प्रतिक्षणपरिणामित्वादुत्संगितक्षणभङ्गोत्पादः । न च विप्रतिषिद्धमेतत्, संभवविलययोरेक-

---

प्रवाहश्चन्दनादिवनराजिरूपेण परिणतः सन्स्वकीयकोमलशीतलनिर्मलस्वभावं न लभते, तथायं जीवोऽपि वृक्षस्थानीयकर्मोदयपरिणतः सन्परमाह्लादैकलक्षणसुखामृतास्वादनैर्मल्यादिस्वकीयगुणसमूहं न लभत इति ॥ २६ ॥ अथ जीवस्य द्रव्येण नित्यत्वेऽपि पर्यायेण विनश्वरत्वं दर्शयति;—**जायदि णेव ण णस्सदि** जायते नैव न नश्यति द्रव्यार्थिकनयेन । क्व । **खणभंगसमुब्भवे जणे कोई** क्षणभङ्गसमुद्भवे जने कोऽपि । क्षणं क्षणं प्रति भङ्गसमुद्भवो यत्र सम्भवति क्षणभङ्गसमुद्भवस्तस्मिन्क्षणभङ्गसमुद्भवे विनश्वरे पर्यायार्थिकनयेन जने लोके जगति कश्चिदपि, तस्मान्नैव जायते न चोत्पद्यत इति हेतुं वदति **जो हि भवो सो विलओ** द्रव्यार्थिकन-

---

कर्मसे उत्पन्न होते हैं परंतु इनसे जीवके स्वभावका नाश नहीं होता । जैसे—सोनेमें जड़ा हुआ माणिकरत्नका नाश नहीं होता है उसीप्रकार जीवका भी नाश नहीं होता। किंतु उन पर्यायोंमें अपने २ कर्मोंके परिणमनसे यह जीव अपने चिदानंद शुद्धस्वभावको नहीं पाता है । जैसे जलका प्रवाह वनमें अपने प्रदेशों और स्वादसे नींब चंदनादि वृक्षरूप होके परिणमन करता है वहांपर वह जल अपने द्रव्यस्वभाव और स्वादस्वभावको नहीं पाता, उसीप्रकार यह आत्माभी जब अपने प्रदेश और भावोंसे कर्मरूप होके परिणमता है तब यही अमूर्तिल और वीतराग चिदानंद स्वभावको नहीं पाता । इसलिये यह सिद्ध हुआ कि यह जीव परिणमनके दोषसे अनेकरूप हो जाता है लेकिन उसके स्वभावका नाश नहीं होता ॥ २६ ॥ आगे जीव यद्यपि द्रव्यपनेसे एक अवस्थारूप है तौभी पर्यायोंसे अनवस्थित (नानारूप) है ऐसा प्रगट करते हैं;—[**क्षणभङ्गसमुद्भवे**] समय २ विनाश होनेवाले [**जने**] इस जीवलोकमें [**कश्चित्**] कोईभी जीव [**नैव जायते**] न तो उत्पन्न होता है [**न नश्यति**] और न नष्ट होता है । [**यः**] जो द्रव्य [**हि**] निश्चयसे [**भवः**] उत्पत्तिरूप है [**सः**] वही वस्तु [**विलयः**] नाशरूप है । [**इति**] इसलिये [**तौ**] वे [**संभवविलयौ**] उत्पाद और नाश वे दोनों पर्याय [**नाना**] भेद

त्वनानात्वाभ्यां। यदा खलु भङ्गोत्पादयोरेकत्वं तदा पूर्वपक्षः, यदा तु नानात्वं तदोत्तरः। तथाहि—यथा य एव घटस्तदेव कुण्डमित्युक्ते घटकुण्डस्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूता मृत्तिका संभवति, तथा य एव संभव स एव विलय इत्युक्ते संभवविलयस्वरूपयोरेकत्वासंभवात्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं संभवति। ततो देवादिपर्याये संभवति मनुष्यादिपर्याये विलीयमाने च य एव संभवः स एव विलय इति कृत्वा तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यवज्जीवद्रव्यं संभाव्यत एव। ततः सर्वदा द्रव्यत्वेन जीवंष्टङ्कोत्कीर्णोऽवतिष्ठते। अपि च यथाऽन्यो घटोऽन्यत्कुण्डमित्युक्ते तदुभयाधारभूताया मृत्तिकाया अन्यत्वासंभवात् घटकुण्डस्वरूपे संभवतः, तथान्यः संभवोऽन्यो विलय इत्युक्ते तदुभयाधारभूतस्य ध्रौव्यस्यान्यत्वासंभवात्संभवविलयस्वरूपे संभवतः। ततो देवादिपर्यायैः संभवति देवादिपर्यायै-

---

येन यो हि भवस्स एव विलयो यतः कारणात्। तथाहि—मुक्तात्मनां य एव सकलविमलकेवलज्ञानादिरूपेण मोक्षपर्यायेण भव उत्पादः स एव निश्चयरत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गपर्यायेण विलयो विनाशस्तौ च मोक्षपर्यायमोक्षमार्गपर्यायौ कार्यकारणरूपेण भिन्नौ, तदुभयाधारभूतं यत्परमात्मद्रव्यं तदेव मृत्पिण्डघटाधारभूतमृत्तिकाद्रव्यवत् मनुष्यपर्यायदेवपर्यायाधारभूतसंसारिजीवद्रव्यवद्वा। क्षणभङ्गसमुद्भवे हेतुः कथ्यते। **संभवविलओत्ति ते णाणा** सम्भवविलयौ द्वाविति तौ नाना भिन्नौ यतः कारणात्ततः पर्यायार्थिकनयेन भङ्गोत्पादौ। तथाहि—य एव पूर्वोक्तमो-

---

लिये हुए हैं॥ **भावार्थ**—इस विनाशीक संसारमें जो द्रव्यदृष्टिसे देखाजाय तो न तो कोई वस्तु उत्पन्न होती है और न विनाशको प्राप्त होती है इसकारण द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद और व्यय इन दोनों अवस्थाओंमें द्रव्य एक नित्य ही है पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा उत्पाद–व्यय जुदे २ हैं, इसतरह उत्पाद और व्ययमें एकता और अनेकता ये दो भेद होते हैं। जो द्रव्यत्वकर देखाजाय तो एकता है और पर्यायार्थिकसे अनेकता देखनेमें आती है। यही दृष्टांतसे दिखाते हैं—जैसे जो घड़ा है वही कूंड़ा है ऐसा कहनेसे घड़े और कूंड़ेमें एकता नहीं होसकती इसकारण उन दोस्वरूपोंका आधार मट्टीकी जो अपेक्षा ली जावे तो एकता होसकती है, उसीप्रकार उत्पाद–व्ययमेंभी द्रव्यपनेसे दोनोंका आधार ध्रौव्य द्रव्य आता है। इसलिये जीवके देवादिपर्यायके उत्पाद होनेपर और मनुष्यादि पर्यायके विनाश होनेपर जो उत्पन्न होता है वही विनाश पाता है इन दोनों अवस्थाओंका आधार ध्रौव्य जीवद्रव्य ही सिद्ध होता है। इसकारण जीव द्रव्य हमेशा द्रव्यपनेसे टंकोत्कीर्ण रहता है। इसतरह सब अवस्थाओंमें एकता सिद्ध हुई। अब भेद दिखाते हैं—जैसे घड़ा अन्य है और कूंड़ा अन्य ही है ऐसा कहनेपर जो उन दोनोंका आधार मृतिकाकी अपेक्षालें तो भेद हो नहीं सकता इसलिये यहां घट–कुंड पर्यायोंके भेदसे ही भेद हो सकता है, उसीप्रकार अन्य ही उत्पन्न होता है और दूसराही नाशको पाता है ऐसा कहनेपर यदि इन दोनोंका आधार

विलीयमाने वान्यः संभवोऽन्यो विलय इति कृत्वा संभवविलयवन्तौ देवादिमनुष्यादिपर्यायौ संभाव्येते। ततः प्रतिक्षणं पर्यायैर्जीवोऽनवस्थितः॥ २७॥

अथ जीवस्यानवस्थितत्वहेतुमुद्योतयति;—

तम्हा दु णत्थि कोई सहावसमवट्ठिदोत्ति संसारे।
संसारो पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वस्स॥ २८॥

तस्मात्तु नास्ति कश्चित् स्वभावसमवस्थित इति संसारे।
संसारः पुनः क्रिया संसरतो द्रव्यस्य॥ २८॥

यतः खलु जीवो द्रव्यत्वेनावस्थितोपि पर्यायैरनवस्थितः, ततः प्रतीयते न कश्चिदपि संसारे स्वभावेनावस्थित इति। यच्चात्रानवस्थितत्वं तत्र संसार एव हेतुः। तस्य मनुष्यादि-

क्षपर्यायस्योत्पादो मोक्षमार्गपर्यायस्य विनाशस्तावेव भिन्नौ न च तदाधारभूतपरमात्मद्रव्यमिति। ततो ज्ञायते द्रव्यार्थिकनयेन नित्यत्वेऽपि पर्यायरूपेण विनाशोऽस्तीति॥ २७॥ अथ विनश्वरत्वे कारणमुपन्यस्यति, अथवा प्रथमस्थलेऽधिकारसूत्रेण मनुष्यादिपर्यायाणां कर्मजनितत्वेन यद्विनश्वरत्वं सूचितं तदेव गाथात्रयेण विशेषेण व्याख्यातमिदानीं तस्योपसंहारमाह;—**तम्हा दु णत्थि कोई सहावसमवट्ठिदोत्ति** तस्मान्नास्ति कश्चित्स्वभावसमवस्थित इति। यस्मात्पूर्वोक्तप्रकारेण मनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वव्याख्यानं कृतं तस्मादेव ज्ञायते परमानन्दैकलक्षणपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतशुद्धात्मस्वभाववदवस्थितो नित्यः कोऽपि नास्ति। क। **संसारे** निस्संसारशुद्धात्मनो विपरीते संसारे। संसारस्वरूपं कथयति—**संसारो पुण किरिया** संसारः पुनः क्रिया निष्क्रियनिर्विकल्पशुद्धात्मपरिणतेर्विसदृशा मनुष्यादिविभावपर्यायपरिणतिरूपा क्रिया संसारस्वरूपं। सा च कस्य भवति। **संसरमाणस्स जीवस्स** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावमुक्तात्मनो विलक्षणस्य संसरतः परिभ्रमतः संसारिजीवस्येति। ततः स्थितं मनुष्यादिपर्या-

द्रव्य लिया जाय तो भेद बनता ही नहीं इसकारण उत्पाद और व्यय पर्यायके भेदसेही भेद होता है। इसलिये देवादि पर्यायोंके उत्पन्न होनेपर और मनुष्यादि पर्यायोंके विनाश होनेसे अन्य ही उत्पन्न होता है और दूसरा ही विनाश पाता है ऐसा भेद देवमनुष्यादि पर्यायोंसे कहा जाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि समय २ में पर्यायोंसे ही जीव अनवस्थित है॥ २७॥ आगे जीवके अथिर भाव दिखलाते हैं—**[तस्मात् तु]** इस पूर्वोक्तरीतिसे **[संसारे]** संसारमें **[कश्चित्]** कोईभी वस्तु **[स्वभावसमवस्थितः]** स्वभावसे थिर है **[इति]** ऐसा **[नास्ति]** नहीं है **[पुनः]** और जो **[संसरतो द्रव्यस्य]** चारों गतियोंमें भटकनेवाले जीवद्रव्यकी **[क्रिया]** अन्य अन्य अवस्थारूप परिणति है वही **[संसारः]** संसार है॥ **भावार्थ**—यह जीव द्रव्यपनेसे यद्यपि टंकोत्कीर्ण थिररूप है तो भी पर्यायोंसे अथिर है इसलिये इस संसारमें, मनुष्यादिरूप कोईभी पर्याय अविनाशी नहीं है, स्वभावहीसे

पर्यायात्मकत्वात् स्वरूपेणैव तथाविधत्वात् । अथ यस्तु परिणममानस्य द्रव्यस्य पूर्वोत्तरदशापरित्यागोपादानात्मकः क्रियाख्यः परिणामस्तत्संसारस्य स्वरूपम् ॥ २८ ॥

अथ परिणामात्मके संसारे कुतः पुद्गलश्लेषो येन तस्य मनुष्यादिपर्यायात्मकत्वमित्यत्र समाधानमुपवर्णयति;—

आदा कम्ममलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥ २९ ॥

आत्मा कर्ममलीमसः परिणामं लभते कर्मसंयुक्तम् ।
ततः श्लिष्यति कर्म तस्मात् कर्म तु परिणामः ॥ २९ ॥

यो हि नाम संसारनामायमात्मनस्तथाविधः परिणामः स एव द्रव्यकर्मश्लेषहेतुः । अथ तथाविधपरिणामस्यापि को हेतुः ? द्रव्यकर्म हेतुः तस्य, द्रव्यकर्मसंयुक्तत्वेनेवोपलम्भात् । एवं सतीतरेतराश्रयदोषः । न हि । अनादिप्रसिद्धद्रव्यकर्माभिसंबद्धस्यात्मनः प्राक्तनद्रव्यकर्मणस्तत्र हेतुत्वेनोपादानात् । एवं कार्यकारणभूतनवपुराणद्रव्यकर्मत्वादा-

---

यात्मकः संसार एव विनश्वरत्वे कारणमिति ॥ २८ ॥ एवं शुद्धात्मनो भिन्नानां कर्मजनितमनुष्यादिपर्यायाणां विनश्वरत्वकथनमुख्यतया गाथाचतुष्टयेन द्वितीयस्थलं गतम् । अथ संसारस्य कारणं ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म तस्य तु कारणं मिथ्यात्वरागादिपरिणाम इत्यावेदयति;— **आदा** निर्दोषिपरमात्मा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावोऽपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशात् **कम्ममलिमसो** कर्ममलीमसो भवति । तथा भवन्सन् किं करोति । **परिणामं लहदि** परिणामं लभते । कथम्भूतं । **कम्मसंजुत्तं** कर्मरहितपरमात्मनो विसदृशकर्मसंयुक्तं मिथ्यात्वरागादिविभावपरिणामं **तत्तो सिलिसदि कम्मं** ततः परिणामात् श्लिष्यति बध्नाति । किं । कर्म । यदि पुनर्निर्मलविवेकज्योतिःपरिणामेन परिणमति तदा तु कर्म मुञ्चति **तम्हा कम्मं तु परिणामो** तस्मात् कर्म तु परिणामः । यस्माद्रागादिपरिणामेन कर्म बध्नाति, तस्माद्रागादिविकल्प-

---

सब अथिररूप हैं। और चारों गतियोंमें भ्रमण करते हुए जीवका पूर्व अवस्थाको त्यागके आगेकी अवस्थाका जो ग्रहण करना है वही संसारका स्वरूप है ॥ २८ ॥ आगे कहते हैं कि, अशुद्ध परिणतिरूप संसारमें पुद्गलका संबंध किस तरह हुआ ? जिससे कि मनुष्यादि पर्याय होते हैं;—[**आत्मा**] यह जीव [**कर्ममलीमसः**] पुद्गलकर्मोंसे अनादिकालसे मलीन हुआ [**कर्मसंयुक्तं**] मिथ्यात्वरागादिरूप कर्म सहित [**परिणामं**] अशुद्ध विभाव (विकार) रूप परिणामको [**लभते**] पाता है [**ततः**] और उस रागादिरूप विभाव परिणामसे [**कर्म**] पुद्गलीक द्रव्यकर्म [**श्लिष्यति**] जीवके प्रदेशोंमें आकर बंधको प्राप्त होता है। [**तु**] और [**तस्मात्**] इसीकारणसे [**परिणामः**] रागादि विभावपरिणाम [**कर्म**] पुद्गलीक बंधको कारणरूप भावकर्म हैं। भावार्थ—जो आत्माके रागादिरूप अशुद्ध परिणाम हैं वे द्रव्य-

त्ततस्तथाविधपरिणामो द्रव्यकर्मैव । तथात्मा चात्मपरिणामकर्तृत्वाद्द्रव्यकर्मकर्ता-प्युपचारात् ॥ २९ ॥

अथ परमार्थादात्मनो द्रव्यकर्माकर्तृत्वमुद्योतयति;—

परिणामो सयमादा सा पुण किरियत्ति होइ जीवमया।
किरिया कम्मत्ति मदा तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता ॥ ३० ॥

परिणामः स्वयमात्मा सा पुनः क्रियेति भवति जीवमयी।
क्रिया कर्मेति मता तस्मात्कर्मणो न तु कर्ता ॥ ३० ॥

आत्मपरिणामो हि तावत्स्वयमात्मैव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादानन्यत्वात् । यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा जीवमय्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परिणामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात् । या च क्रिया सा पुनरात्मना स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म । ततस्तस्य परमार्थादात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मण एव कर्ता, न

रूपो भावकर्मस्थानीयः सरागपरिणाम एव कर्मकारणत्वादुपचारेण कर्मेति भण्यते । ततः स्थितं रागादिपरिणामः कर्मबन्धकारणमिति ॥ २९ ॥ अथात्मा निश्चयेन स्वकीयपरिणामस्यैव कर्ता न च द्रव्यकर्मण इति प्रतिपादयति । अथवा द्वितीयपातनिका—शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धनयेन यथैवाकर्ता तथैवाशुद्धनयेनापि सांख्येन यदुक्तं तन्निषेधार्थमात्मनो बन्धमोक्षसिद्ध्यर्थं कथंचित्परिणामित्वं व्यवस्थापयतीति पातनिकाद्वयं मनसि संप्रधार्य सूत्रमिदं निरूपयति;—**परिणामो सयमादा** परिणामः स्वयमात्मा आत्मपरिणामस्तावदात्मैव । कस्मात्परिणामपरिणामिनोस्तन्मयत्वात् **सा पुण किरियत्ति होदि** सा पुनः क्रियेति भवति स च परिणामः क्रिया परिणतिरिति भवति । कथम्भूता । **जीवमया** जीवेन निर्वृत्तत्वाज्जीवमयी

कर्मबंधके कारण हैं और रागादिविभावपरिणामका कारण द्रव्यकर्म है क्योंकि द्रव्यकर्मके उदय होनेसे भावकर्म होता है। यहां पर कोई यह प्रश्न करै कि ऐसा होनेसे **इतरेतराश्रय** दोष आता है क्योंकि रागादि विभावपरिणामोंसे द्रव्यकर्म और द्रव्यकर्मसे विभावपरिणाम होते हैं ? इसका उत्तर इसप्रकार है कि—यह आत्मा अनादिकालसे द्रव्यकर्मोंकर बंधा हुआ है इसकारण पूर्वबंधे द्रव्यकर्म उस रागादिविभावपरिणामके कारण होते हैं और विभावपरिणाम नवीन द्रव्यकर्मके कारण होते हैं, इसलिये एक दूसरेके आश्रय रूप इतरेतराश्रय दोष नहीं हो सकता ॥ इसतरह नवीन प्राचीन कर्मका भेद होनेसे कार्यकारणभाव सिद्ध होता है। आत्मा नियमसे अपने विभावरूप रागादिभावकर्मोंका कर्ता है और व्यवहारसे द्रव्यकर्मोंकाभी कर्ता कहा जाता है ॥२९॥ आगे निश्चयनयसे 'आत्मा द्रव्यकर्मका अकर्ता है' यह कहते हैं;—
[**परिणामः**] जो आत्माका परिणाम है वह [**स्वयं**] आप [**आत्मा**] जीव ही है [**पुनः**] और सो [**क्रिया**] वह परिणामरूप क्रिया [**जीवमयी**] जीवकर

तु पुद्गलपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मणः । अथ द्रव्यकर्मणः कः कर्तेति चेत् ? पुद्गलपरिणामो हि तावत्स्वयं पुद्गल एव, परिणामिनः परिणामस्वरूपकर्तृत्वेन परिणामादनन्यत्वात् । यश्च तस्य तथाविधः परिणामः सा पुद्गलमय्येव क्रिया, सर्वद्रव्याणां परिणामलक्षणक्रियाया आत्ममयत्वाभ्युपगमात् । या च क्रिया सा पुनः पुद्गलेन स्वतन्त्रेण प्राप्यत्वात्कर्म । ततस्तस्य परमार्थात् पुद्गलात्मा आत्मपरिणामात्मकस्य द्रव्यकर्मण एव कर्ता, न त्वात्मपरिणामात्मकस्य भावकर्मणः । तत आत्मात्मस्वरूपेण परिणमति न पुद्गलस्वरूपेण परिणमति ॥ ३० ॥

किरिया कम्मत्ति मदा जीवेन स्वतन्त्रेण स्वाधीनेन शुद्धाशुद्धोपादानकारणभूतेन प्राप्यत्वात्सा क्रिया कर्मेति मता संमता । कर्मशब्देनात्र यदेव चिद्रूपं जीवादभिन्नं भावकर्मसंज्ञं निश्चयकर्म तदेव ग्राह्यं । तस्यैव कर्ता जीवः **तम्हा कम्मस्स ण दु कत्ता** तस्माद्द्रव्यकर्मणो न कर्तेति । अत्रैतदायाति–यद्यपि कथंचित् परिणामित्वे सति जीवस्य कर्तृत्वं जातं तथापि निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता पुद्गलकर्मणां व्यवहारेणेति । तत्र तु यदा शुद्धोपादानकारणरूपेण शुद्धोपयोगेन परिणमति तदा मोक्षं साधयति, अशुद्धोपादानकारणेन तु बन्धमिति । पुद्गलोऽपि

की जाती है इससे जीवमयी [**इति**] ऐसी [**भवति**] होती है अर्थात् कही जाती है । [**क्रिया**] जो क्रिया है वही [**कर्म इति**] 'कर्म' ऐसी संज्ञासे [**मता**] मानीगई है [**तस्मात्**] इसकारण आत्मा [**कर्मणः**] द्रव्यकर्मका [**न तु कर्ता**] करनेवाला नहीं है ॥ **भावार्थ**—परिणामी अपने परिणामका कर्ता होता है क्योंकि परिणामी और परिणामका आपसमें भेद नहीं है इसलिये जो जीवका परिणाम है वह जीव ही हुआ । और जो परिणाम है वह आत्माकी क्रिया होनेसे जीवमयी क्रिया कही जाती है, क्योंकि जिस द्रव्यके जो परिणामरूप क्रिया है उससे द्रव्य तन्मय है इसकारण जीव भी तन्मय होनेसे जीवमयी क्रिया कहलाई । जो क्रिया है वह आत्माने स्वाधीन होकर की है इसलिये उसी क्रियाको कर्म कहते हैं । इससे यह सारांश निकला कि आत्माके रागादि विभाव परिणाम आत्माकी क्रिया (कारंवाई) है, उस क्रियासे जीव तन्मय हो जाता है ये ही जीवके भावकर्म हैं। इसलिये निश्चयसे आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है । जब आत्मा अपने भावकर्मोंका कर्ता है तब तो पुद्गल परिणामरूप द्रव्यकर्मका कर्ता कभी नहीं हो सकता । यदि कोई ऐसा प्रश्न करै कि द्रव्यकर्मका कर्ता कौन है ? तो उसका उत्तर यह है कि पुद्गलका जो परिणाम वह पुद्गल ही है और परिणामी अपने परिणामोंका कर्ता है, परिणाम–परिणामी एक ही हैं । जो पुद्गलपरिणाम है वही पुद्गलमयी क्रिया है, क्योंकि सब द्रव्योंकी परिणामरूप क्रियाको तन्मयपना सिद्ध है । जो क्रिया है वह कर्म है । पुद्गलने भी स्वाधीन होके की है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गल अपने द्रव्यकर्मरूप परिणामोंका कर्ता है

अथ किं तत्स्वरूपं येनात्मा परिणमतीति तदावेदयति;—

परिणमदि चेयणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा ।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥ ३१ ॥

परिणमति चेतनया आत्मा पुनः चेतना त्रिधाभिमता ।
सा पुनः ज्ञाने कर्मणि फले वा कर्मणो भणिता ॥ ३१ ॥

यतो हि नाम चैतन्यमात्मनः स्वधर्मव्यापकत्वं, ततश्चेतनैवात्मनः स्वरूपं तया खल्वात्मा परिणमति । यः कश्चनाप्यात्मनः परिणामः स सर्वोपि चेतनां नातिवर्तेत इति तात्पर्यं । चेतना पुनर्ज्ञानकर्मकर्मफलत्वेन त्रेधा । तत्र ज्ञानपरिणतिर्ज्ञानचेतना, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतना ॥ ३१ ॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपमुपवर्णयति;—

णाणं अत्थवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं ।
तमणेगविधं भणिदं फलत्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ ३२ ॥

जीववन्निश्चयेन स्वकीयपरिणामानामेव कर्ता जीवपरिणामानां व्यवहारेणेति ॥ ३० ॥ एवं रागादिपरिणामाः कर्मबन्धकारणं तेषामेव कर्ता जीव इतिकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ येन परिणामेनात्मा परिणमति तं परिणामं कथयति;— **परिणमदि चेदणाए आदा** परिणमति चेतनया करणभूतया । स कः । आत्मा । यः कोऽप्यात्मनः शुद्धाशुद्धपरिणामः स सर्वोऽपि चेतनां न त्यजति इत्यभिप्रायः । **पुण चेदणा तिहाहिमदा सा** सा चेतना पुनस्त्रिधाभिमता । कुत्र कुत्र । **णाणे** ज्ञानविषये **कम्मे** कर्मविषये **फलम्मि वा** फले वा । कस्य फले । **कम्मणो** कर्मणः **भणिदा** भणिता कथितेति । ज्ञानपरिणतिः ज्ञानचेतना अग्रे वक्ष्यमाणा, कर्मपरिणतिः कर्मचेतना, कर्मफलपरिणतिः कर्मफलचेतनेति भावार्थः ॥ ३१ ॥ अथज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण त्रिधां चेतनां विशेषेण

परंतु जीवके भावकर्मरूप परिणामोंका कर्ता नहीं है । इसकारण पुद्गल आत्मास्वरूप परिणमन नहीं करनेसेही द्रव्यकर्मका कर्ता नहीं हो सकता ॥ ३० ॥ आगे जिस स्वरूप आत्मा परिणमन करता है उसीको कहते हैं;–[**आत्मा**] जीव [**चेतनया**] चेतना स्वभावसे [**परिणमति**] परिणमन करता है [**पुनः**] और [**सा चेतना**] वह चैतन्य परिणति [**अभिमता**] सर्वज्ञ देव कर मानीहुई [**ज्ञाने**] ज्ञानपरिणतिमें [**कर्मणि**] कर्मपरिणतिमें [**कर्मणः फले**] कर्मकी फलपरिणतिमें [**त्रिधा**] तीनतरहकी [**भणिता**] कही गई है । **भावार्थ**—जीवका स्वरूप चेतना है इसकारण जीवके परिणाम भी चेतनाको छोड़ते नहीं, इसलिये जीव चेतनभावोंसे परिणमन करता है । वह चेतना ज्ञानचेतना १ कर्मचेतना २ कर्मफलचेतनाके ३ भेदसे तीन प्रकार जिनेन्द्रदेवने कही है ॥ ३१ ॥ आगे इस तीन तरहकी चेतनाका स्वरूप कहते

ज्ञानमर्थविकल्पः कर्म जीवेन यत्समारब्धम्।
तदनेकविधं भणितं फलमिति सौख्यं वा दुःखं वा ॥ ३२ ॥

अर्थविकल्पस्तावत् ज्ञानं। तत्र कः खल्वर्थः? स्वपरविभागेनावस्थितं विश्वं, विकल्पस्तदाकारावभासनं। यस्तु मुकुरुन्दहृदयाभोग इव युगपदवभासमानस्वपराकारार्थविकल्पस्तद् ज्ञानं। क्रियमाणमात्मना कर्म, क्रियमाणः खल्वात्मा प्रतिक्षणं तेन तेन भावेन भवता यः सद्भावः स एव कर्मात्मना प्राप्यत्वात्। तत्त्वेकविधमपि द्रव्यकर्मोपाधिसन्निधिसद्भावासद्भावाभ्यामनेकविधं। तस्य कर्मणो यन्निष्पाद्यं सुखदुःखं तत्कर्मफलं। तत्र द्रव्यकर्मोपाधिसान्निध्यसद्भावात्कर्म तस्य फलमनाकुलत्वलक्षणं प्रकृतिभूतं सौख्यं, यत्तु द्रव्य-

---

विचारयति;—**णाणं अट्ठवियप्पं** ज्ञानं मत्यादिभेदेनाष्टविकल्पं भवति। अथवा पाठान्तरं **णाणं अट्ठवियप्पो** ज्ञानमर्थविकल्पः तथाह्यर्थः परमात्मादिपदार्थ अनन्तज्ञानसुखादिरूपोऽहमिति, रागाद्यास्रवास्तु मत्तो भिन्ना इति स्वपराकारावभासेनादर्श इवार्थपरिच्छित्तिसमर्थो विकल्पः विकल्पलक्षणमुच्यते। स एव ज्ञानं ज्ञानचेतनेति। **कम्मं जीवेण जं समारद्धं** कर्म जीवेन यत्समारब्धं बुद्धिपूर्वकमनोवचनकायव्यापाररूपेण जीवेन यत्सम्यक्कर्तुमारब्धं तत्कर्म भण्यते। सैव कर्मचेतनेति **तमणेगविहं भणियं** तच्च कर्म शुभाशुभशुद्धोपयोगभेदेनानेकविधं त्रिविधं भणितमिदानीं फलचेतना कथ्यते—**फलंति सोक्खं च दुःखं वा** फलमितिसुखं च दुःखं वा विषयानुरागरूपं यदशुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलमाकुलत्वोत्पादकं नारकादिदुःखं, यच्च धर्मानुरागरूपं शुभोपयोगलक्षणं कर्म तस्य फलं चक्रवर्त्यादिपञ्चेन्द्रियभोगानुभवरूपं, तच्चाशुद्धनिश्चयेन सुखमप्याकुलोत्पादकत्वात् शुद्धनिश्चयेन दुःखमेव। यच्च रागादिविकल्परहित-

---

हैं—[**अर्थविकल्पः**] स्वपरका भेदलिये हुए जीवादिक पदार्थोंको भेदसहित तदाकार जानना वह [**ज्ञानं**] ज्ञानभाव है अर्थात् आत्माका ज्ञानभावरूप परिणमना उसे ज्ञानं चेतना कहते हैं। और [**जीवेन**] आत्माने [**यत् समारब्धं**] अपने कर्तव्यसे समय २में जो भाव किये हैं [**तत्कर्म**] वह भावरूप कर्म है [**अनेकविधं**] वह शुभादिकके भेदसे अनेक प्रकार है उसीको कर्मचेतना कहते हैं। [**वा**] और [**सौख्यं**] सुखरूप [**वा**] अथवा [**दुःखं**] दुःखरूपं [**फलं**] उस कर्मका फल है [**इति भणितं**] ऐसा जिनेन्द्रदेवने कहा है ॥ **भावार्थ**—जैसे दर्पण तदाकाररूप हुआ भेदसहित घटपटादि पदार्थोंको प्रतिबिम्बित करता है उसीप्रकार ज्ञान एकही कालमें स्वपरपदार्थोंको प्रगट करता है। इसतरह ज्ञानभावरूप आत्माके परिणमनको ज्ञानचेतना कहते हैं। जो समय समयमें पुद्गलकर्मके निमित्तसे जैसे जैसे परिणाम करता है उन परिणामोंको भावकर्म अथवा कर्मचेतना कहते हैं। वह कर्म पुद्गलके निमित्तसे ही शुभ अशुभरूप अनेकभेदोंवाला हो जाता है। और शुभ द्रव्यकर्मके संबंधसे जो आत्माके साताका उदय होना वह अनाकुलरूप इंद्रियाधीन सुखरूप

कर्मौपाधिसान्निध्यासद्भावात्कर्म तस्य फलं सौख्यलक्षणाभावाद्विकृतिभूतं दुःखं । एवं ज्ञानकर्मकर्मफलस्वरूपनिश्चयः ॥ ३२ ॥

अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यात्मत्वेन निश्चिनोति;—

अप्पा परिणामप्पा परिणामो णाणकम्मफलभावी ।
तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेदव्वो ॥ ३३ ॥

आत्मा परिणामात्मा परिणामो ज्ञानकर्मफलभावी ।
तस्मात् ज्ञानं कर्म फलं चात्मा मन्तव्यः ॥ ३३ ॥

आत्मा हि तावत्परिणामात्मैव, परिणामः स्वयमात्मेति स्वयमुक्तत्वात् । परिणामस्तु चेतनात्मत्वेन ज्ञानं कर्म कर्मफलं वा भवितुं शीलः, तन्मयत्वाच्चेतनायाः । ततो ज्ञानं कर्म

शुद्धोपयोगपरिणतिरूपं कर्म तस्य फलमनाकुलत्वोत्पादकं परमानन्दैकरूपसुखामृतमिति । एवं ज्ञानकर्मकर्मफलचेतनास्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ ३२ ॥ अथ ज्ञानकर्मकर्मफलान्यभेदनयेनात्मैव भवतीति प्रज्ञापयति;—**अप्पा परिणामप्पा** आत्मा भवति । कथम्भूतः। परिणामात्मा परिणामस्वभावः । कस्मादिति चेत्? "परिणामो सयमादा" इति पूर्वं स्वयमेव भणितत्वात् । परिणामः कथ्यते **परिणामो णाणकम्मफलभावी** परिणामो भवति । किंविशिष्टः । ज्ञानकर्म्मफलभावी ज्ञानकर्मकर्मफलरूपेण भवितुं शील इत्यर्थः **तम्हा** तस्मादेव तस्मात्कारणात् **णाणं** पूर्वसूत्रोक्ता ज्ञानचेतना **कम्मं** तत्रैवोक्तलक्षणा कर्मचेतना **फलं च** पूर्वोक्तलक्षणफलचेतना च **आदा मुणेदव्वो** इयं चेतना त्रिविधाप्यभेदनयेनात्मैव मन्तव्यो ज्ञातव्य

कर्मफल है, तथा जो अशुभद्रव्यकर्मके संबंधसे असाताका उदय होना वह सुखभावसे रहित विकाररूप दुःखनामा कर्मफल है। इस प्रकार कर्मफलके वेदनेरूप जो आत्माका परिणमन वह कर्मफल चेतना है। ऐसे ज्ञानचेतना १ कर्मचेतना २ कर्मफलचेतना ३ ये तीन भेद चेतनाके कहे गये हैं ॥ ३२ ॥ आगे ज्ञान—कर्म—कर्मफल ये अभेद नयसे आत्मा ही हैं ऐसा दिखलाते हैं;—[**आत्मा**] जीव [**परिणामात्मा**] परिणामस्वभाववाला है [**परिणामः**] और परिणाम [**ज्ञानकर्मफलभावी**] ज्ञानरूप—कर्मरूप—कर्मफलरूप होनेको समर्थ है [**तस्मात्**] इसकारण [**ज्ञानं**] ज्ञान [**कर्म**] कर्मपरिणाम [**च**] और [**फलं**] कर्मफल परिणाम ये ही [**आत्मा**] जीवस्वरूप [**मन्तव्यः**] जानने चाहिये । **भावार्थ**—आत्मा परिणामस्वभाववाला सदाकालसे है। वह परिणाम ज्ञानपरिणाम—कर्मपरिणाम—कर्मफलपरिणाम, इसतरह तीनभेदयुक्त है। परिणाम और परिणामीमें एकता होनेसे परिणामसे जुदा आत्मा नहीं है इसलिये अभेदनयकी अपेक्षासे तीनपरिणामोंरूप आत्मा ही है। अशुद्ध द्रव्यके कथनकी अपेक्षा तो कर्मपरिणाम और कर्मफलपरिणामसे एकता है तथा जब शुद्धद्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा लीजावे तब आत्माके परद्रव्यका संबंध होना असंभव

कर्मफलं चात्मैव । एवं हि शुद्धद्रव्यनिरूपणायां परद्रव्यसंपर्कासंभवात्पर्यायाणां द्रव्यान्तःप्रलयाच्च शुद्धद्रव्य एवात्मावतिष्ठते ॥ ३३ ॥

अथैवमात्मनो ज्ञेयतामापन्नस्याशुद्धत्वनिश्चयात् ज्ञानतत्त्वासिद्धौ शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भो भवतीति तमभिनन्दन् द्रव्यसामान्यवर्णनामुपसंहरति;—

कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो ।
परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं ॥ ३४ ॥

कर्ता करणं कर्म फलं चात्मेति निश्चितः श्रमणः ।
परिणमति नैवान्यद्यदि आत्मानं लभते शुद्धम् ॥ ३४ ॥

यो हि नामैवं कर्तारं करणं कर्म कर्मफलं चात्मानमेव निश्चित्य न खलु परद्रव्यं परिणमति स एव विश्रान्तपरद्रव्यसंपर्कं द्रव्यान्तःप्रलीनपर्यायं च शुद्धमात्मानमुपलभते, न पुनरन्यः । तथाहि—यदा नामानादिप्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसंनिधिप्रधावितोपरागरञ्जितात्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिप्रधावितोपरागरञ्जितात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव परारोपितविकारोऽहमासं संसारी तदपि न नाम मम कोप्यासीत् तदाप्यहमेक एवोपरक्तचित्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्ता, स अहमेक एवोपरक्तचित्स्वभावेन साधकतमः करणमासम् । अहमेक एवोपरक्तचित्परिणमनस्वभावेनात्मना प्राप्यः कर्मासम् । अहमेक एव चोपरक्त-

---

इति । एतावता किमुक्तं भवति । त्रिविधचेतनापरिणामेन परिणामी सन्नात्मा । किं करोति । निश्चयरत्नत्रयात्मकशुद्धपरिणामेन मोक्षं साधयति, शुभाशुभाभ्यां पुनर्बन्धमपि ॥ ३३ ॥ एवं त्रिविधचेतनाकथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थलम् । अथ सामान्यज्ञेयाधिकारसमाप्तौ पूर्वोक्तभेदभावनायाः शुद्धात्मप्राप्तिरूपं फलं दर्शयति;—**कत्ता** स्वतन्त्रः स्वाधीनः कर्ता साधको निष्पादकोऽस्मि भवामि । स कः । **अप्पत्ति** आत्मेति । आत्मेति कोऽर्थः । अहमिति । कथम्भूतः । एकः । कस्याः साधकः । निर्मलात्मानुभूतेः । किंविशिष्टः । निर्विकारपरमचैतन्यपरिणामेन परिणतः सन् **करण**मतिशयेन साधकं साधकतमं करणमुपकरणं करणकारकमहमेक एवास्मि भवामि । कस्याः साधकं । सहजशुद्धपरमात्मानुभूतेः । केन कृत्वा । रागादिविकल्परहितस्वसंवेदनज्ञानपरिणतिबलेन **कम्मं** शुद्धबुद्धैकस्वभावेन परमात्मना प्राप्यं व्याप्यमहमेक एव

है इसकारण वहां अशुद्धपरिणामोंका होना कह नहीं सकते । इसीलिये शुद्धद्रव्यके कथनमें शुद्धपर्यायभी द्रव्यके ही अंदर लीन हो जाते हैं भेदभाव नहीं रहता, और उस अवस्थामें शुद्धद्रव्य एक ज्ञायकमात्र हुआ स्थित रहता है ॥ ३३ ॥ आगे इस जीवके शुद्धस्वभावका निश्चय होनेसे ज्ञानभावकी सिद्धि होती है तब स्वज्ञेयरूप आत्माके शुद्धस्वरूपका लाभ होता है ऐसा कहते हुए द्रव्यके सामान्यकथनको पूर्ण करते हैं;—[**कर्ता**] कामका करनेवाला [**करणं**] जिससे किया जाय ऐसा मुख्यकारण [**कर्म**] जो किया जाय

चित्परिणमनस्वभावस्य निष्पाद्यं सौख्यं विपर्यस्तलक्षणं दुःखाख्यं कर्मफलमासं । इदानीं पुनरनादिप्रसिद्धपौद्गलिककर्मबन्धनोपाधिसंनिधिध्वंसविस्फुरितसुविशुद्धसहजात्मवृत्तिर्जपापुष्पसंनिधिध्वंसविस्फुरितसुविशुद्धसहजात्मवृत्तिः स्फटिकमणिरिव विश्रान्तपरारोपितविकारोऽहमेकान्तेनास्मि मुमुक्षुः, इदानीमपि न नाम मम कोप्यस्ति, इदानीमप्यहमेक इव सुविशुद्धचित्स्वभावेन स्वतन्त्रः कर्तास्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्स्वभावेन साधकतमः करणमस्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्परिणमनस्वभावेनात्मना

कर्मकारकमस्मि । फलं च शुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मनः साध्यं निष्पाद्यं निजशुद्धात्मरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिरूपाभेदरत्नत्रयात्मकपरमसमाधिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादपरिणतिरूपमहमेक एव फलं चास्मि **णिच्छिदो** एवमुक्तप्रकारेण निश्चितमतिः सन् **समणो** सुखदुःखजीवितमरणशत्रुमित्रादिसमताभावनापरिणतः श्रमणः परममुनिः **परिणमदि णेव अण्णं जदि** परिणमति

वह कर्म [**च**] और [**फलं**] कर्मका फल ये चारों [**आत्मा इति**] आत्मा ही हैं ऐसा [**निश्चितः**] निश्चयकरनेवाला [**श्रमणः**] भेदविज्ञानी मुनि [**यदि**] जो [**अन्यत्**] परद्रव्यरूप [**नैव**] नहीं [**परिणमति**] परिणमन करता है [**तदा**] तभी [**शुद्धं आत्मानं**] शुद्ध अर्थात् कर्मोपाधिरहित शुद्धचिदानंदरूप आत्माको [**लभते**] पाता है ॥ **भावार्थ**—जब यह जीव परद्रव्यके संबंधसे आत्माको जुदा जानकर शुद्ध कर्ता शुद्ध करण शुद्ध कर्म शुद्ध फल—इन चारोंभेदोंसे आत्माको अभेदरूप समझता है इनसे एकताका निश्चयकर किसीकालमें भी परद्रव्यसे एकपना मानके परिणमन नहीं करता वही जीव अभेदरूप ज्ञायकमात्र अपने शुद्धस्वरूपको प्राप्त होता है । इसी कथनको विशेषतासे दिखाते हैं—जैसे लालपुष्पके संयोगसे स्फटिकमणिमें रागविकार उत्पन्न हो जाता है, उसीतरह अनादिकालसे पुद्गलकर्मके बंधनरूप उपाधिके संबंधसे जिसके रागवृत्ति उत्पन्न हुई है ऐसा मैं परकृत विकारसहित पूर्व ही अज्ञान दशामें संसारी था, उस समयमें भी मेरा अन्य द्रव्य कोईभी नहीं संबंधी था, ऐसी अवस्थामें भी अकेला ही मैं अपनी भूलसे सराग चैतन्यभाव कर कर्ता हुआ । मैं ही एक सराग चैतन्य भावकर अज्ञान भावका मुख्यकारण हुआ इससे करण भी मैं ही कहलाया । मैं ही एक सरागचैतन्यपरिणति स्वभावसे अपने अशुद्ध भावको प्राप्त हुआ इसलिये कर्म भी मैं ही होता हुआ । तथा मैं ही एक सरागचैतन्यभावसे उत्पन्न और आत्मीकसुखसे उलटा ऐसा दुःखरूप कर्मफल होता हुआ; इसकारण अज्ञान दशामें भी मैं इन चारों भेदोंसे अभेदरूप परिणत हुआ । और अब ज्ञानदशामें जैसे रक्तपुष्पके संयोगके छूटजानेसे स्फटिकमणि निर्मल स्वाभाविक शुद्ध हो जाता है वैसे मैं भी सर्वथा प्रकृतियोंके विकारसे रहित हुआ निर्मल मोक्षमार्गमें प्रवर्तता हूं तो अब भी मेरा कोई नहीं, अब मैं ही एक निर्मल चैतन्यभावसे

प्राप्यः कर्मास्मि, अहमेक एव च सुविशुद्धचित्परिणमनस्वभावस्य निष्पाद्यमनाकुलत्वलक्षणं सौख्याख्यं कर्मफलमस्मि । एवमस्य बन्धपद्धतौ मोक्षपद्धतौ चात्मानमेकमेव भावयतः परमाणोरिवैकत्वप्रभावनोन्मुखस्य परद्रव्यपरिणतिर्न जातु जायते । परमाणुरिव भावितैकत्वश्च परेण नो संपृच्यते । ततः परद्रव्यासंपृक्तत्वात्सुविशुद्धो भवति । कर्तृकरणकर्मकर्मफलानि चात्मत्वेन भावयन् पर्यायैर्न संकीर्यते, ततः पर्यायासंकीर्णत्वाच्च सुविशुद्धो भवतीति । द्रव्यान्तरव्यतिकरादपसारितात्मा सामान्यमज्जितसमस्तविशेषजातः इत्येष शुद्धनय, उद्धतमोहलक्ष्मीलुण्टाक उत्कटविवेकविविक्ततत्त्वः ॥ ३४ ॥

"इत्युच्छेदात्परपरिणतेः कर्तृकर्मादिभेदभ्रान्तिध्वंसादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः । सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं स्थास्यत्युद्यत्सहजमहिमा सर्वदा मुक्त एव" ॥

"द्रव्यसामान्यविज्ञाननिम्नं कृत्वेति मानसम् । तद्विशेषपरिज्ञानप्राग्भारः क्रियतेऽधुना ॥"

इति **द्रव्यसामान्यप्रज्ञापनम्** ।

अथ द्रव्यविशेषप्रज्ञापनं तत्र द्रव्यस्य जीवाजीवत्वविशेषं निश्चिनोति;—

दव्वं जीवमजीवं जीवो पुण चेदणोवयोगमयो ।
पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि य अजीवं ॥ ३५ ॥

नैवान्यं रागादिपरिणामं यदिचेत्? **अप्पाणं लहदि सुद्धम्** तदात्मानं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितत्वेन शुद्धं शुद्धबुद्धैकस्वभावं लभते प्राप्नोति इत्यभिप्रायो भगवतां श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवानाम् ॥३४॥ एवमेकसूत्रेण पञ्चमस्थलं गतम् । इति सामान्यज्ञेयाधिकारमध्ये स्थलपञ्चकेन भेदभावना

स्वाधीन कर्ता हूं, मैं ही एक निर्मल चैतन्य भावकर शुद्ध स्वभावका अतिशयसे साधनेवाला करण हूं, मैं ही एक निर्मल चैतन्य परिणमन स्वभावसे शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता हूं इसलिये कर्म हूं, और मैं ही एक निर्मल चैतन्यस्वभावकर उत्पन्न आकुलतारहित आत्मीकसुखरूप कर्मफल हूं, इसवास्ते ज्ञानदशामें भी मैं ही अकेला हुआ इन चारों भेदोंसे अभेदरूप परिणमन करता हूं दूसरा कोई भी नहीं । इसप्रकार इस जीवके बंधपद्धति और मोक्षपद्धतिके होनेपर भी एक आत्मस्वरूपकी भावना (चिंतवन) से परद्रव्यरूप परिणति किसी समय भी नहीं हो सकती । जैसे एक भावरूप परिणत हुए परमाणुका अन्य परमाणुके साथ संयोग नहीं होता उसीतरह आत्माका भी परद्रव्यके साथ संबंध नहीं होता है, इसलिये अशुद्धपर्यायोंसे भी संबंध नहीं होता। इसतरह ज्ञानी निर्मल होता है । इसीकारण अन्यद्रव्योंसे भिन्नस्वरूप कर्ता करण कर्म फल आदि सब भेदोंसे रहित अभेदरूप शुद्धनयकर मोहका विनाशक ऐसा प्रकाशरूप ज्ञानतत्त्व इस जीवके शोभा पाता है । सारांश—जब इस जीवके परवस्तुमें परिणति मिटजाती है और कर्ता कर्मभेदरूप भ्रम (अज्ञान) का नाश होता है तभी शुद्ध स्वरूपको पाकर ज्ञानमात्र निर्मल आत्मीकप्रकाशमें साहजिक महिमासहित हमेशा मुक्त हुआ ही तिष्ठता है ॥ ३४ ॥ इस प्रकार **द्रव्यका सामान्यवर्णन** पूर्ण हुआ । आगे द्रव्यविशेषका कहना आरंभ

द्रव्यं जीवोऽजीवो जीवः पुनश्चेतनोपयोगमयः ।
पुद्गलद्रव्यप्रमुखोऽचेतनो भवति चाजीवः ॥ ३५ ॥

इह हि द्रव्यमेकत्वनिबन्धनभूतं द्रव्यत्वसामान्यमनुज्झदेव तदधिरूढविशेषलक्षणसद्भावादन्योन्यव्यवच्छेदेन जीवाजीवत्वविशेषमुपढौकते । तत्र जीवस्यात्मद्रव्यमेवैका व्यक्तिः, अजीवस्य पुनः पुद्गलद्रव्यं धर्मद्रव्यमधर्मद्रव्यं कालद्रव्यमाकाशद्रव्यं चेति पञ्च व्यक्तयः । विशेषलक्षणं जीवस्य चेतनोपयोगमयत्वं, अजीवस्य पुनरचेतनत्वं । तत्र यत्र स्वधर्मव्यापकत्वात्स्वरूपत्वेन द्योतमानयानपायिन्या भगवत्या संवित्तिरूपया चेतनया तत्परि-

---

गता । इत्युक्तप्रकारेण "तम्हा तस्स णमाइं" इत्यादि पञ्चत्रिंशत्सूत्रैः **सामान्यज्ञेयाधिकार**व्याख्यानं समासम् । इत ऊर्ध्वमेकोनविंशतिगाथाभिर्जीवाजीवद्रव्यादिविवरणरूपेण विशेषज्ञेयव्याख्यानं करोति । तत्राष्टस्थानानि भवन्ति । तेष्वादौ जीवाजीवत्वकथनेन प्रथमगाथा, लोकालोकत्वकथनेन द्वितीया, सक्रियनिःक्रियत्वव्याख्यानेन तृतीया चेति । "दव्वं जीवमजीवं" इत्यादिगाथात्रयेण प्रथमस्थलं, तदनन्तरं ज्ञानादिविशेषगुणानां स्वरूपकथनेन "लिंगेहिं जेहिं" इत्यादिगाथाद्वयेन प्रथमस्थलम् । अथानन्तरं स्वकीयस्वकीयगुणोपलक्षितद्रव्याणां निर्णयार्थं "वण्णरसं" इत्यादिगाथात्रयेण तृतीयस्थलम् । अथ पञ्चास्तिकायकथनमुख्यत्वेन "जीवा पोग्गलकाया" इत्यादिगाथाद्वयेन चतुर्थस्थलम् । अतः परं द्रव्याणां लोकाकाशमाधार इति कथनेन प्रथमा, यदेवाकाशद्रव्यस्य प्रदेशलक्षणं तदेव शेषाणामिति कथनरूपेण द्वितीया चेति, "लोयालोएसु" इत्यादिसूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलम् । तदनन्तरं कालद्रव्यस्याप्रदेशत्वस्थापनरूपेण प्रथमा, समयरूपः पर्यायकालः कालाणुरूपो द्रव्यकाल इति कथनरूपेण द्वितीया चेति "समओ दु अप्पदेसो" इत्यादिगाथाद्वयेन षष्ठस्थलम् । अथ प्रदेशलक्षणकथनेन प्रथमा, तदनन्तरं तिर्यक्प्रचयोर्ध्वप्रचयस्वरूपकथनेन द्वितीया चेति, "आयासमणुणिविट्ठं" इत्यादिसूत्रद्वयेन सप्तमस्थलम् । तदनन्तरं कालाणुरूपद्रव्यकालस्थापनरूपेण "उप्पादो पद्धंसो" इत्यादिगाथात्रयेणाष्टमस्थलमिति विशेषज्ञेयाधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ जीवाजीवलक्षणमावेदयति;—**दव्वं जीवमजीवं** द्रव्यं जीवाजीवलक्षणं भवति **जीवो पुण चेदणो** जीवः पुनश्चेतनः स्वतःसिद्धया बहिरङ्गकारणनिरपेक्षया बहिरन्तश्च प्रकाशमानया नित्यरूपया निश्चयेन परमशुद्धचेतनया व्यवहारेण पुनरशुद्धचेतनया च युक्तत्वाच्चेतनो भवति । पुनरपि किंविशिष्टः । **उवजोगमओ**

करते हुए पहले द्रव्यके "जीव और अजीव" ऐसे दो भेद दिखलाते हैं;—[**द्रव्यं**] **सत्तारूप** वस्तु [**जीवः अजीवः**] जीव अजीव—इसतरह दो भेदरूप है [**पुनः**] और इन दोनोंमेंसे [**जीवः**] जीवद्रव्य [**चेतनोपयोगमयः**] चेतना और ज्ञानदर्शनोपयोगमयी है [**पुद्गलद्रव्यप्रमुखः**] तथा पुद्गल द्रव्यको आदिलेकर पांच द्रव्य [**अचेतनः**] चेतना रहित अर्थात् जड़स्वरूप [**अजीवः**] अजीव द्रव्य होता है । **भावार्थ**—द्रव्यके दो भेद हैं । एक जीव दूसरा अजीव, इन दोनोंमें जीवद्रव्य एक

णामलक्षणेन द्रव्यवृत्तिरूपेणोपयोगेन च निर्वृत्तत्वमवतीर्णं प्रतिभाति स जीवः । यत्र पुनरुपयोगसहचरिताया यथोदितलक्षणायाश्चेतनाया अभावाद्बहिरन्तश्चाचेतनत्वमवतीर्णं प्रतिभाति सोऽजीवः ॥ ३५ ॥

अथ लोकालोकत्वविशेषं निश्चिनोति;—

पुग्गलजीवणिबद्धो धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो ।
वट्टदि आयासे जो लोगो सो सव्वकाले दु ॥ ३६ ॥

पुद्गलजीवनिबद्धो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः ।
वर्तते आकाशे यो लोकः स सर्वकाले तु ॥ ३६ ॥

अस्ति हि द्रव्यस्य लोकालोकत्वेन विशेषविशिष्टं स्वलक्षणसद्भावात् । स्वलक्षणं हि लोकस्य षड्द्रव्यसमवायात्मकत्वं, अलोकस्य पुनः केवलाकाशात्मकत्वं । तत्र सर्वद्रव्य-

---

उपयोगमयः अखण्डैकप्रतिभासमयेन सर्वविशुद्धेन केवलज्ञानदर्शनलक्षणेनार्थग्रहणव्यापाररूपेण निश्चयनयेनेत्थम्भूतशुद्धोपयोगेन, व्यवहारेण पुनर्मतिज्ञानाद्यशुद्धोपयोगेन च निर्वृत्तत्वान्निष्पन्नत्वादुपयोगमयः **पोग्गलदव्वप्पमुहं अचेदणं हवदि अज्जीवं** पुद्गलद्रव्यप्रमुखमचेतनं भवत्यजीवद्रव्यं पुद्गलधर्माधर्माकाशकालसंज्ञं द्रव्यपञ्चकं पूर्वोक्तलक्षणचेतनाया उपयोगस्य चाभावादजीवमचेतनं भवतीत्यर्थः ॥ ३५ ॥ अथ लोकालोकरूपेणाकाशपदार्थस्य द्वैविध्यमाख्याति;—**पोग्गलजीवणिबद्धो** अणुस्कन्धभेदभिन्नाः पुद्गलास्तावत्तथैव मूर्तातीन्द्रियज्ञानमयत्वनिर्विकारपरमानन्दैकसुखमयत्वादिलक्षणा जीवाश्चेत्थम्भूतजीवपुद्गलैर्निबद्धः संबद्धो भृतः पुद्गलजीवनिबद्धः **धम्माधम्मत्थिकायकालड्ढो** धर्माधर्मास्तिकायौ च कालश्च धर्माधर्मास्तिकायकालास्तैराढ्यो भृतो धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः **जो** यः एतेषां पञ्चानामित्थम्भूतसमुदायो राशिः समूहः **वट्टदि** वर्तते । कस्मिन् । **आगासे** अनन्तानन्ताकाशद्रव्यस्य मध्यवर्तिनि लोकाकाशे **सो लोगो** स पूर्वोक्तपञ्चानां समुदायस्तदाधारभूतं लोकाकाशं चेति षड्द्रव्यसमूहो लोको

प्रकारका ही है । अजीवके पुद्गल १ धर्म २ अधर्म ३ आकाश ४ काल ५ इसतरह पांच भेद हैं । जीवका लक्षण चेतना और उपयोग है । जो स्वरूपसे सदाकाल प्रकाशमान् है अविनाशी है, पूज्य है जीवका सर्वधन है जाननामात्र है उसे **चेतना** कहते हैं । उसी चेतनाका परिणाम पदार्थके जानने देखनेरूप व्यवहारमें प्रवृत्त होता है वह ज्ञानदर्शनरूप **उपयोग** है ॥ ३५ ॥ आगे लोक और अलोक इसतरह दो भेद दिखलाते हैं;—[**यः**] जो क्षेत्र [**आकाशे**] अनंत आकाशमें [**पुद्गलजीवनिबद्धः**] पुद्गल और जीवकर संयुक्त है और [**धर्माधर्मास्तिकायकालाढ्यः**] धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और काल इनसे भरा हुआ है [**स तु**] वही क्षेत्र [**सर्वकाले**] अतीत अनागत वर्तमान तीनों कालोंमें [**लोकः**] 'लोक' ऐसे नामसे कहा जाता है । भावार्थ—आकाशद्रव्यके लोक और अलोक ऐसे दो भेद हैं । अनंत सर्वव्यापी जल ।

व्यापिनि परममहत्याकाशे यत्र यावति जीवपुद्गलौ गतिस्थितिधर्माणौ गतिस्थिती आस्क-न्दतस्तद्गतिस्थितिनिबन्धनभूतौ च धर्माऽधर्मावभिव्याप्यावस्थितौ, सर्वद्रव्यवर्तनानिमित्तभू-तश्च कालो नित्यदुर्ललितस्तत्तावदाकाशं शेषाण्यशेषाणि द्रव्याणि चेत्यमीषां समवाय आत्मत्वेन स्वलक्षणं यस्य स लोकः । तत्र यावति पुनराकाशे जीवपुद्गलयोर्गतिस्थिती न संभवतो धर्माधर्मौ नावस्थितौ न कालो दुर्ललितस्तावत्केवलमाकाशमात्मत्वेन स्वलक्षणं यस्य सोऽलोकः ॥ ३६ ॥

अथ क्रियाभावतद्भावविशेषं निश्चिनोति;—

उप्पादट्ठिदिभंगा पोग्गलजीवप्पगस्स लोगस्स ।
परिणामा जायंते संघादादो व भेदादो ॥ ३७ ॥

उत्पादस्थितिभङ्गाः पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य ।
परिणामा जायन्ते संघाताद्वा भेदात् ॥ ३७ ॥

क्रियाभाववत्त्वेन केवलभाववत्त्वेन च द्रव्यस्यास्ति विशेषः । तत्र भाववन्तौ क्रिया-वन्तौ च पुद्गलजीवौ परिणामाद्भेदसंघाताभ्यां चोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वात् । शेष-

---

भवति । **क सव्वकाले दु** सर्वकाले तु तद्बहिर्भूतमनन्तानन्ताकाशमलोक इत्यभिप्रायः ॥३६॥ अथ द्रव्याणां सक्रियनिःक्रियत्वेन भेदं दर्शयतीत्येका पातनिका, द्वितीया तु जीवपुद्गलयोरर्थ-व्यञ्जनपर्यायौ द्वौ, शेषद्रव्याणां तु मुख्यवृत्त्यार्थपर्याय इति व्यवस्थापयति;—**जायदि** जायते । के कर्तारः । **उप्पादट्ठिदिभंगा** उत्पादस्थितिभङ्गाः । कस्य संबन्धिनः । **लोगस्स** लोकस्य । किं विशिष्टस्य । **पोग्गलजीवप्पगस्स** । पुद्गलजीवात्मकस्य पुद्गलजीवावित्युपलक्षणं षड्द्रव्यात्म-कस्य । कस्मात्सकाशात् जायन्ते । **परिणामादो** परिणामात् एकसमयवर्तिनोऽर्थपर्यायात् **संघादादो व भेदादो** न केवलमर्थपर्यायात्सकाशाज्जायन्ते जीवपुद्गलानामुत्पादादयः संघाता-द्वा भेदाद्वा व्यञ्जनपर्यायादित्यर्थः । तथाहि—धर्माधर्माकाशकालानां मुख्यवृत्त्यैकसमयवर्तिनोऽर्थ-

---

काशमें जितना आकाश पुद्गल—जीव—धर्म—अधर्म—कालद्रव्य, इनसे घिरा हुआ है उसे लोकाकाश कहते हैं । और केवल आकाश ही है अन्य ५ द्रव्य नहीं रहते वह अलोकाकाश कहा जाता है ॥ ३६ ॥ आगे छह द्रव्योंमेंसे क्रियावाले कितने द्रव्य हैं और भाववाले कितने हैं ऐसा भेद दिखलाते हैं;—[पुद्गलजीवात्मकस्य लोकस्य] पुद्गल और जीव इन दोनोंकी गतिस्थिति परिणति रूप लोकके [उत्पादस्थितिभङ्गाः] उत्पत्ति-ध्रुवपना—विनाश [परिणामाः] ऐसे तीन परिणाम [संघातात्] मिलनेसे [वा] अथवा [भेदात्] बिछुड़नेसे [जायन्ते] होते हैं ॥ भावार्थ—क्रिया और भाव इन दोनोंसे द्रव्यमें भेद होजाता है । उन द्रव्योंमेंसे पुद्गल और जीव क्रिया-वन्त है और भाववंत भी हैं, इससे अन्य द्रव्य केवल भाववाले ही हैं । क्रियाका चिह्न हलना चलना है और भावका लक्षण परिणमनमात्र है । [illegible] भावसे [illegible] द्रव्य

द्रव्याणि तु भाववन्त्येव परिणामादेवोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानत्वादिति निश्चयः । तत्र परिणाममात्रलक्षणो भावः, परिस्पन्दनलक्षणा क्रिया । तत्र सर्वाण्यपि द्रव्याणि परिणामस्वभावत्वात् परिणामेनोपात्तान्वयव्यतिरेकाण्यवतिष्ठमानोत्पद्यमानभज्यमानानि भाववन्ति भवन्ति । पुद्गलास्तु परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन भिन्नाः संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति । तथा जीवा अपि परिस्पन्दस्वभावत्वात्परिस्पन्देन नूतनकर्मनोकर्मपुद्गलेभ्यो भिन्नास्तैः सह संघातेन संहताः पुनर्भेदेनोत्पद्यमानावतिष्ठमानभज्यमानाः क्रियावन्तश्च भवन्ति ॥ ३७ ॥

अथ द्रव्यविशेषो गुणविशेषादिति प्रज्ञापयति;—

लिंगेहिं जेहिं दव्वं जीवमजीवं च हवदि विण्णादं ।
ते तब्भावविसिट्ठा मुत्तामुत्ता गुणा णेया ॥ ३८ ॥

लिङ्गैर्यैर्द्रव्यं जीवोऽजीवश्च भवति विज्ञातम् ।
ते तद्भावविशिष्टा मूर्तामूर्ता गुणा ज्ञेयाः ॥ ३८ ॥

द्रव्यमाश्रित्य परानाश्रयत्वेन वर्तमानैर्लिङ्ग्यते गम्यते द्रव्यमेतैरिति लिङ्गानि गुणाः । ते

पर्याया एव जीवपुद्गलानामर्थपर्यायव्यञ्जनपर्यायाश्च । कथमिति चेत् ? प्रतिसमयपरिणतिरूपा अर्थपर्याया भण्यन्ते । यदा जीवोऽनेन शरीरेण सह भेदवियोगं त्यागं कृत्वा भवान्तरशरीरेण सह संघातं मेलापकं करोति तदा विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति, तस्मादेव भवान्तरसंक्रमणात्सक्रियत्वं भण्यते पुद्गलानां । तथैव विवक्षितस्कन्धविघटनात्सक्रियत्वेन स्कन्धान्तरसंयोगे सति विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति । मुक्तजीवानां तु निश्चयरत्नत्रयलक्षणेन परमकारणसमयसारसंज्ञेन निश्चयमोक्षमार्गबलेनायोगिचरमसमये नखकेशान्विहाय परमौदारिकशरीरस्य विलीयमानरूपेण विनाशे सति केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिलक्षणेन परमकार्यसमयसाररूपेण स्वभावव्यञ्जनपर्यायेण कृत्वा योऽसावुत्पादः स भेदादेव भवति न संघातात् । कस्मादितिचेत् ? शरीरान्तरेण सह संबन्धाभावादिति भावार्थः ॥ ३७ ॥ एवं जीवाजीवत्वलोकालोकत्वसक्रियनिःक्रियत्वकथनक्रमेण प्रथमस्थले

उत्पाद-व्यय-ध्रुवतासहित हैं, इसकारण हर एक समयमें पर्यायसे पर्यायांतर अर्थात् एक पर्यायसे दूसरे पर्यायरूप द्रव्य होते हैं । और क्रिया केवल जीव-पुद्गल हीमें होती है । पुद्गलका हलन चलन स्वभाव है इसकारण स्कंधसे मिलते भी हैं और बिछुड़ते भी हैं । इसलिये मिलने और बिछुड़नेकी अपेक्षा उत्पाद-व्यय और ध्रुवपने सहित हैं, क्रियावाले हैं । इसीतरह जीव भी कर्मके संयोगसे हलन चलनरूप होता हुआ नवीन कर्म नोकर्मरूप पुद्गलसे मिलता है और पुराने कर्म नोकर्म पुद्गलोंसे बिछुड़ जाता है, इसकारण उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हुआ क्रियावाला है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य तो क्रियावान् भी हैं और भाववाले भी हैं । तथा धर्मादिक चार द्रव्य केवल भाववन्त (परिणामवाले) ही हैं ॥ ३७ ॥ आगे गुणोंके भेदसे ही द्रव्योंमें

च यद्रव्यं भवति न तद्गुणा भवन्ति, ये गुणा भवन्ति ते न द्रव्यं भवतीति द्रव्यादतद्भावेन विशिष्टाः सन्तो लिङ्गलिङ्गिप्रसिद्धौ तल्लिङ्गत्वमुपढौकन्ते। अथ ते द्रव्यस्य जीवोऽयमजीवोऽयमित्यादिविशेषमुत्पादयन्ति, स्वयमपि तद्भावविशिष्टत्वेनोपात्तविशेषत्वात् । यतो हि यस्य यस्य द्रव्यस्य यो यः स्वभावस्तस्य तस्य तेन तेन विशिष्टत्वात्तेषामस्ति विशेषः । अत एव च मूर्तानाममूर्तानां च द्रव्याणां मूर्तत्वेनामूर्तत्वेन च तद्भावेन विशिष्टत्वादिमे मूर्ता गुणा इमे अमूर्ता इति तेषां विशेषो निश्चयः ॥ ३८ ॥

अथ मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसंबन्धमाख्याति;—

मुत्ता इंदियगेज्झा पोग्गलदव्वप्पगा अणेगविधा ।
दव्वाणममुत्ताणं गुणा अमुत्ता मुणेदव्वा ॥ ३९ ॥

गाथात्रयं गतम् । अथ ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदमावेदयति;—**लिंगेहिं जेहिं** लिङ्गैर्यैः महजशुद्धपरमचैतन्यविलासरूपैस्तथैवाचेतनैर्जडरूपैर्वा लिङ्गैश्चिह्नैर्विशेषगुणैर्यैः करणभूतैर्जीवेन कर्तृभूतेन **हवदि विण्णादं** विशेषेण ज्ञातं भवति । किं कर्मतापन्नं । **दव्वं** द्रव्यं । कथम्भूतं । **जीवमजीवं च** जीवद्रव्यमजीवद्रव्यं च **ते मुत्तामुत्तागुणा णेया** ते तानि पूर्वोक्तचेतनाचेतनलिङ्गानि मूर्तामूर्तगुणा ज्ञेया ज्ञातव्याः । ते च कथम्भूताः । **अतब्भावविसिट्ठा** अतद्भावविशिष्टाः । तद्यथा—शुद्धजीवद्रव्ये ये केवलज्ञानादिगुणास्तेषां शुद्धजीवप्रदेशैः सह यदेकत्वमभिन्नत्वं तन्मयत्वं स तद्भावो भण्यते, तेषामेव गुणानां तैः प्रदेशैः सह यदा संज्ञालक्षणप्रयोजनादिभेदः क्रियते तदा पुनरतद्भावो भण्यते, तेनातद्भावेन संज्ञादिभेदरूपेण स्वकीयस्वकीयद्रव्येण सह विशिष्टा भिन्ना इति, द्वितीयव्याख्यानेन पुनः स्वकीयद्रव्येण सह सद्भावेन तन्मयत्वेनान्यद्रव्यादिविशिष्टा भिन्ना इत्यभिप्रायः ॥ ३८ ॥ एवं गुणभेदेन द्रव्यभेदो ज्ञातव्यः । अथ मूर्तामूर्तगुणानां

भेद है ऐसा दिखलाते हैं;—[**यैर्लिङ्गैः**] जिन चिन्होंसें [**जीवः**] जीव [**च**] और [**अजीवः**] अजीव [**द्रव्यं**] द्रव्य [**ज्ञातं भवति**] जाना जाता है [**ते**] वे चिह्न (लक्षण) [**तद्भावविशिष्टाः**] द्रव्योंके स्वरूपकी विशेषता लिये हुए [**मूर्तामूर्ता गुणाः**] मूर्तीक और अमूर्तीक गुण [**ज्ञेयाः**] जानने चाहिये ॥ **भावार्थ**—जो अपने द्रव्यके आधार रहें उन्हें **गुण** कहते हैं। वे गुण द्रव्यके चिह्न हैं। द्रव्यका स्वरूप गुणोंसे जाना जाता है इसकारण द्रव्य लक्ष्य है गुण लक्षण हैं। लक्ष्यलक्षण दोनोंमें कथंचित् भेदभी है और किसीप्रकारसे अभेदभी है । यही दिखलाते हैं—जो द्रव्य है वह गुण नहीं है जो गुण है वह द्रव्य नहीं है ऐसा जो गुणगुणी भेद कहाजावे तो भेद है, और यदि वस्तुका स्वरूप विचारा जाय तो लक्ष्यलक्षणमें भेद ही नहीं है, क्योंकि प्रदेशभेद नहीं है, एक ही है । जो जिस द्रव्यका स्वभाव है वह अपनी अपनी विशेषताको लियेहुये है, इसकारण मूर्तीक द्रव्यके मूर्तीक गुण होते हैं और अमूर्तीकके अमूर्तीक गुण होते हैं । एक पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है और जीव—धर्म—अधर्म—आकाश—काल, ये पांच द्रव्य अमूर्तीक हैं ऐसा निश्चयसे जानना चाहिये ॥ ३८ ॥ आगे मूर्त—

मूर्ता इन्द्रियग्राह्याः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधाः ।
द्रव्याणाममूर्तानां गुणा अमूर्ता ज्ञातव्याः ॥ ३९ ॥

मूर्तानां गुणानामिन्द्रियग्राह्यत्वं लक्षणं । अमूर्तानां तदेव विपर्यस्तं । ते च मूर्ताः पुद्गलद्रव्यस्य, तस्यैवैकस्य मूर्तत्वात् । अमूर्ताः शेषद्रव्याणां, पुद्गलादन्येषां सर्वेषामप्यमूर्तत्वात् ॥ ३९ ॥

अथ मूर्तस्य पुद्गलद्रव्यस्य गुणान् गृणाति;—

वण्णरसगंधफासा विज्जंते पुग्गलस्स सुहुमादो ।
पुढवीपरियंतस्स य सद्दो सो पोग्गलो चित्तो ॥ ४० ॥

वर्णरसगन्धस्पर्शा विद्यन्ते पुद्गलस्य सूक्ष्मत्वात् ।
पृथिवीपर्यन्तस्य च शब्दः स पुद्गलश्चित्रः ॥ ४० ॥

इन्द्रियग्राह्याः किल स्पर्शरसगन्धवर्णास्तद्विषयत्वात्, ते चेन्द्रियग्राह्यत्वव्यक्तिश-

---

लक्षणं सम्बन्धं च निरूपयति;—**मुत्ता इंदियगेज्झा** मूर्ता गुणा इन्द्रियग्राह्या भवन्ति, अमूर्ताः पुनरिन्द्रियविषया न भवन्ति इति मूर्तामूर्तगुणानामिन्द्रियानिन्द्रियविषयत्वलक्षणमुक्तं । इदानीं मूर्तगुणाः कस्य सम्बन्धिनो भवन्तीति सम्बन्धं कथयति **पोग्गलदव्वप्पगा अणेयविहा** मूर्तगुणाः पुद्गलद्रव्यात्मका अनेकविधा भवन्ति पुद्गलद्रव्यसम्बन्धिनो भवन्तीत्यर्थः । अमूर्तगुणानां संबन्धं प्रतिपादयति **दव्वाणममुत्ताणं** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृतीनाममूर्तद्रव्याणां संबन्धिनो भवन्ति । ते के गुणाः। **अमुत्ता** अमूर्ताः गुणाः केवलज्ञानादय इत्यर्थः। इति मूर्तामूर्तगुणानां लक्षणसम्बन्धौ ज्ञातव्यौ ॥ ३९ ॥ एवं ज्ञानादिविशेषगुणभेदेन द्रव्यभेदो भवतीति कथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ मूर्तपुद्गलद्रव्यस्य गुणानावेदयति;—**वण्णरसगन्धफासा विज्जंते पोग्गलस्स** वर्णरसस्पर्शगन्धा विद्यन्ते । कस्य । पुद्गलस्य । कथ-

---

अमूर्तका लक्षण–संबंध कहते हैं;—[**मूर्ताः**] जो मूर्त गुण हैं वे [**इन्द्रियग्राह्याः**] इन्द्रियोंसे ग्रहण किये जाते हैं और वे [**पुद्गलद्रव्यात्मकाः**] पुद्गलद्रव्यके ही हैं तथा [**अनेकविधाः**] वर्णादिक भेदोंसे अनेक तरहके हैं। [**अमूर्तानां द्रव्याणां**] और जो अमूर्तीक द्रव्योंके [**गुणाः**] गुण हैं वे [**अमूर्ताः**] अमूर्तीक [**ज्ञातव्याः**] जानने चाहिये ॥ **भावार्थ**—मूर्तीक गुण इंद्रियोंसे जाने जाते हैं, अमूर्तीकगुण इन्द्रियोंसे नहीं जाने जाते । इन्द्रियोंसे जानना यह तो मूर्तीकका लक्षण हुआ, और पुद्गलके हैं यह पुद्गलके साथ उन मूर्तीकगुणोंका संबंध बतलाया । इसीप्रकार इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं होना ये अमूर्तका लक्षण हुआ तथा अमूर्तीक द्रव्यके हैं यह अमूर्तीक द्रव्यके साथ उन अमूर्तीक गुणोंका संबंध दिखलाया । इसतरह मूर्त और अमूर्त गुणोंका लक्षण और संबंध कहा गया है ॥ ३९ ॥ आगे मूर्त पुद्गलद्रव्यके गुणोंको कहते हैं;— [**सूक्ष्मात् पृथिवीपर्यन्तस्य**] परमाणूसे लेकर महास्कंध पृथिवी पर्यंत [**पुद्गलद्रव्यस्य**]

क्रिवशात् गृह्यमाणा अगृह्यमाणाश्च आ एकद्रव्यात्मकसूक्ष्मपर्यायात्परमाणोः, आ अनेकद्रव्यात्मकस्थूलपर्यायात्पृथिवीस्कन्धाच्च सकलस्यापि पुद्गलस्याविशेषेण विशेषगुणत्वेन विद्यन्ते। ते च मूर्तत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवन्तः पुद्गलमधिगमयन्ति। शब्दस्यापीन्द्रियग्राह्यत्वाद्गुणत्वं न खल्वाशङ्कनीयं, तस्य वैचित्र्यप्रपञ्चितवैश्वरूपस्याप्यनेकद्रव्यात्मकपुद्गलपर्यायत्वेनाभ्युपगम्यमानत्वात्। गुणत्वे वा न तावदमूर्तद्रव्यगुणः शब्दः गुणगुणिनोरविभक्तप्रदेशत्वेनैकवेदनवेद्यत्वादमूर्तद्रव्यस्यापि श्रवणेन्द्रियविषयत्वापत्तेः। पर्यायलक्षणे-

---

म्भूताः। **सुहुमादो पुढवीपरियंतस्स य** "पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू। छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं"॥इति गाथाकथितक्रमेण परमाणुलक्षणसूक्ष्मस्वरूपादेः पृथ्वीस्कन्धलक्षणस्थूलस्वरूपपर्यन्तस्य च। तथाहि—यथानन्तज्ञानादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासम्भवं सर्वजीवेषु साधारणं तथा वर्णादिचतुष्टयं विशेषलक्षणभूतं यथासम्भवं सर्वपुद्गलेषु साधारणम्। यथैव चानन्तज्ञानादिचतुष्टयं मुक्तजीवेऽतीन्द्रियविषयज्ञानमनुमानगम्यमागमगम्यं च, तथा शुद्धपरमाणुद्रव्ये वर्णादिचतुष्टयमप्यतीन्द्रियज्ञानविषयमनुमानगम्यमागमगम्यं च। यथा वानन्तचतुष्टयस्य संसारिजीवे रागादिस्नेहनिमित्तेन कर्मबन्धवशादशुद्धत्वं भवति तथा वर्णादि-

---

ऐसे पुद्गलद्रव्यमें [**वर्णरसगन्धस्पर्शाः**] रूप ५ रस ५ गंध २ स्पर्श ८ ये चार प्रकारके गुण [**विद्यन्ते**] मौजूद हैं [**च**] और जो [**शब्दः**] शब्द है [**सः**] वह [**पौद्गलश्चित्रः**] भाषा ध्वनि आदिके भेदसे अनेक प्रकार वाला पुद्गलका पर्याय है॥ **भावार्थ**—पुद्गलद्रव्य सूक्ष्मसूक्ष्म १ सूक्ष्म २ सूक्ष्मस्थूल ३ स्थूलसूक्ष्म ४ स्थूल ५ स्थूलस्थूल ६ भेदोंसे छह प्रकार कहा गया है। उनमेंसे परमाणु सूक्ष्मसे सूक्ष्म है १ कार्माण (कर्म होनेयोग्य) वर्गणा सूक्ष्म हैं २ स्पर्श रस गंध शब्द ये सूक्ष्मस्थूल हैं क्योंकि नेत्र इंद्रियसे नहीं देखे जाते इसलिये सूक्ष्म हैं तथा चार इंद्रियोंसे जाने जाते हैं इसलिये स्थूल भी हैं ३ छाया (परछाई) स्थूलसूक्ष्म है क्योंकि नेत्रसे देखनेमें आती है इसलिये स्थूल है तथा हाथसे ग्रहण नहीं कीजाती इसलिये सूक्ष्मभी है ४ जल तैल आदिक स्थूल हैं क्योंकि छेदन भेदन करनेसे फिर उसी समय मिलजाते हैं ६ पृथिवी पर्वत काठ वगैरः स्थूलस्थूल हैं। इसप्रकार भेदोंसे पुद्गल द्रव्य अनेक प्रकार है। ये स्पर्शादि चारोंगुण इन्द्रियोंसे जाने जाते हैं। यहां पर कोई प्रश्न करै कि परमाणु कार्मणवर्गणादिकमें भी ये चार गुण हैं वे अत्यन्त सूक्ष्मरूपसे वहां रहनेपर इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष ही नहीं हो सकते तो इनको इन्द्रिय ग्राह्य किस तरह कहते हो ? इसका समाधान यह है कि परमाणु आदि पुद्गल यद्यपि इन्द्रियप्रत्यक्ष नहीं हैं तौभी उनमें इंद्रिय ग्रहणयोग्य शक्ति अवश्य मौजूद है, जब स्कंधके संबंध होनेसे स्थूलपना धारण करते हैं तब इंद्रियोंसे प्रत्यक्ष नियमकर होते हैं। इसकारण व्यक्तिशक्तिकी अपेक्षा ग्रहण किये जावें अथवा नहीं किये जावें परंतु इन्द्रिय ग्रहणयोग्य अवश्य हैं। सभी छह प्रकारके

नोत्खातगुणलक्षणत्वान्मूर्तद्रव्यगुणोपि न भवति । पर्यायलक्षणं हि कादाचित्कत्वं गुणलक्षणं तु नित्यत्वं । ततः कादाचित्कत्वोत्खातनित्यत्वस्य न शब्दस्यास्ति गुणत्वं । यत्तु तत्र नित्यत्वं तत्तदारम्भकपुद्गलानां तद्गुणानां च स्पर्शादीनामेव न शब्दपर्यायस्येति दृढतरं ग्राह्यं । न च पुद्गलपर्यायत्वे शब्दस्य पृथिवीस्कन्धस्येव स्पर्शनादीन्द्रियविषयत्वं । अपां घ्राणेन्द्रियाविषयत्वात्, ज्योतिषो घ्राणरसनेन्द्रियाविषयत्वात्, मरुतो घ्राणरसनचक्षुरिन्द्रियाविषयत्वाच्च । न चागन्धागन्धरसागन्धरसवर्णाः, एवमज्योतिर्मारुतः, सर्व-

---

चतुष्टयस्यापि स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तेन द्व्यणुकादिबन्धावस्थायामशुद्धत्वम् । यथा वानन्तज्ञानादिचतुष्टयस्य रागादिस्नेहरहितशुद्धात्मध्यानेन शुद्धत्वं भवति तथा वर्णादिचतुष्टयस्यापि स्निग्धगुणाभावे बन्धनेऽसति परमाणुपुद्गलावस्थायां शुद्धत्वमिति । **सद्दो सो पोग्गलो** यस्तु शब्दः स पौद्गलः यथा जीवस्य नरनारकादिविभावपर्यायाः तथायं शब्दः पुद्गलस्य विभावपर्यायो न च गुणः । कस्मात् । गुणस्याविनश्वरत्वात् अयं च विनश्वरो । नैयायिकमतानुसारी कश्चिद्वदत्याकाशगुणोऽयं शब्दः । परिहारमाह—आकाशगुणत्वे सत्यमूर्तो भवति । अमूर्तश्च श्रवणेन्द्रियविषयो

पुद्गलोंके स्पर्शादि चार गुण नियमसे पाये जाते हैं और अमूर्त द्रव्यके ये चारों नहीं पाये जाते, इसीलिये ये गुण पुद्गलके चिह्न हैं। शब्द भी कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है परंतु वह पुद्गलका पर्याय है गुण नहीं है, क्योंकि अनेक पुद्गलस्कंधोंके संयोगसे उत्पन्न होता है इसलिये पर्याय है । जो कोई अन्यवादी शब्दको आकाशद्रव्यका गुण मानते हैं उनका कहना अप्रमाण है क्योंकि आकाशद्रव्य अमूर्तीक है इसलिये इंद्रिय प्रत्यक्ष नहीं होता और कर्ण इन्द्रियसे ग्रहण किया जाता है । नियम ऐसा है कि जिसका कारण इंद्रियग्रहणयोग्य न हो उसका कार्य भी इन्द्रियग्रहणयोग्य नहीं हो सकता । यदि शब्द इन्द्रियसे ग्राह्य है तो अमूर्त आकाश भी कर्ण इन्द्रियसे ग्राह्य होना चाहिये । शब्द गुण है गुणगुणीके प्रदेश कभी जुदे होते नहीं हैं इसकारण शब्दके ग्रहण होनेसे आकाश भी अवश्य कर्ण इन्द्रियसे प्रत्यक्ष होना चाहिये। परंतु वह आकाश तो कभी इन्द्रिद्रियप्रत्यक्ष होता नहीं है इसलिये शब्द आकाशका गुण कदापि नहीं होसकता । यहांपरभी कोई ऐसी तर्क करै कि पुद्गलद्रव्य मूर्तीक है उसकाही गुण शब्द हो जाना चाहिये पुद्गलकी पर्यय क्यों कहते हो ? इसका समाधान इसतरह है कि पर्यायका लक्षण अनित्य है और गुणका लक्षण नित्य है । यदि शब्द पुद्गलका गुण कहा जावे तो पुद्गल हमेशा शब्दरूप ही प्राप्त होना चाहिये परंतु ऐसा नहीं है । जब स्कंधोंका संयोग होता है तब शब्द होता है इसलिये पर्याय ही है गुण नहीं है ऐसा निश्चयकर जानना । यदि कोई यह कहे कि जैसे भूमि पुद्गलका पर्याय है वह स्पर्शनादि चार इन्द्रियोंसे ग्रहण की जाती है उसीप्रकार शब्द भी चार इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होना चाहिये एक कर्ण इन्द्रियसे ही प्रत्यक्ष क्यों कहते हो ? उसका उत्तर इसतरहसे है कि जल पुद्गलका

पुद्गलानां स्पर्शादिचतुष्कोपेतत्वाभ्युपगमात् । व्यक्तस्पर्शादिचतुष्काणा च चन्द्रकान्तारणियवानामारम्भकैरेव पुद्गलैरव्यक्तगन्धाव्यक्तगन्धरसाव्यक्तगन्धरसवर्णानामप्रज्योतिरुदरमरुतामारम्भदर्शनात् । न च क्वचित्कस्यचित् गुणस्य व्यक्ताव्यक्तत्वं कादाचित्कपरिणामवैचित्र्यप्रत्ययं नित्यद्रव्यस्वभावप्रतिघाताय । ततोऽस्तु शब्दः पुद्गलपर्याय एवेति ॥ ४० ॥

न भवति, दृश्यते च श्रवणेन्द्रियविषयत्वं । शेषेन्द्रियविषयः कस्मान्न भवतीति चेत्---अन्येन्द्रियविषयोऽन्येन्द्रियस्य न भवति वस्तुस्वभावादेव रसादिविषयवत् । पुनरपि कथंभूतः । **चित्तो** चित्रः भाषात्मकाभाषात्मकरूपेण प्रायोगिकवैश्रसिकरूपेण च नानाप्रकारः । तच्च " सद्दो खंधप्पभवो " इत्यादि गाथायां पञ्चास्तिकाये व्याख्यातं तिष्ठत्यत्रालं प्रसङ्गेन ॥ ४० ॥

पर्याय है वह नासिका इन्द्रियसे नहीं प्रत्यक्ष होता, अग्नि नासिका और जीभ इन दोनोंसे ग्रहण नहीं होती । पवन नासिका जीभ और नेत्र इन तीनोंसे ग्रहण नहीं होता; इसकारण "जिस इंद्रियका जो विषय है उस इंद्रियसे वही ग्रहण किया जाता है ऐसा नियम तो है, परंतु ऐसा नहीं कि जो पुद्गलका पर्याय है वह सभी इंद्रियोंसे ग्रहण होना चाहिये" । इसकारण शब्द केवल कर्णइन्द्रियसेही ग्रहण किया जाता है शेष चार इंद्रियोंसे ग्राह्य नहीं है । यदि यहांपर कोई अन्यवादी ऐसी तर्कणा करै कि—जलमें गंध गुण नहीं होनेसे नासिका जलको नहीं ग्रहण करती । अग्निमें गंध रस इन दोनों गुणोंके न होनेसे नासिका–जीभ ये दोनों उसको ग्रहण नहीं करसकतीं । पवनमें गंध रस रूप इन तीनोंके न होनेसे नासिका जीभ नेत्र उसको ग्रहण नहीं करती हैं ? इस तर्कका समाधान इस तरहसे है कि ऐसा कोई पुद्गल नहीं है जोकि स्पर्शादि चार गुणोंमेंसे एक या दो या तीन गुणोंको धारण करै क्योंकि सभी पुद्गलोंमें चार गुण अवश्य होते हैं इसका कारण यह है गुणोंमें कमतीपणा नहीं होता है ऐसी सर्वज्ञकी आज्ञा है । इसलिये पृथिवी जल अग्नि वायु इनमें स्पर्शादिक चारों गुण होते हैं ऐसा जानना चाहिये । केवल मुख्य गौणका भेद है वह इसप्रकार है—पृथिवीमें स्पर्श रस गंध वर्ण ये चारों गुण प्रगट पाये जाते हैं, जलमें गंधकी गौणता है, अग्निमें गंध रस इन दोनोंकी गौणता है, पवनमें गंध रस वर्ण इन तीनोंकी गौणता हैं । इसलिये सभी पुद्गलोंमें चारों गुण होते हैं । इस बातकी सिद्धिकेलिये दूसरी युक्तिभी दिखलाते हैं—चंद्रकांतमणि (पाषाण) पृथिवी कायसे जल झड़ता है जलसे पृथ्वीकाय मोती उत्पन्न होते हैं अरणी लकड़ीसे अग्नि उत्पन्न होती है जौ नामा अन्नके खानेसे पेटमें वायु हो जाता है । इसकारण पृथ्वी जल अग्नि वायुके पुद्गलोंमें भेद नहीं है केवल परिणमनके भेदसे भेद है । इससे सिद्ध हुआ कि सभी पुद्गलोंमें स्पर्शादि चार गुण पाये जाते हैं ॥ ४० ॥

अथामूर्तानां शेषद्रव्याणां गुणान् गृणाति;—

आगासस्सवगाहो धम्मद्दव्वस्स गमणहेदुत्तं ।
धम्मेदरदव्वस्स दु गुणो पुणो ठाणकारणदा ॥ ४१ ॥
कालस्स वट्टणा से गुणोवओगोत्ति अप्पणो भणिदो ।
णेया संखेवादो गुणा हि मुत्तिप्पहीणाणं ॥ ४२ ॥ जुगलं ।

आकाशस्यावगाहो धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वम् ।
धर्मेतरद्रव्यस्य तु गुणः पुनः स्थानकारणता ॥ ४१ ॥
कालस्य वर्तना स्यात् गुण उपयोग इति आत्मनो भणितः ।
ज्ञेया संक्षेपाद्गुणा हि मूर्तिप्रहीणानाम् ॥ ४२ ॥ युगलम् ।

विशेषगुणो हि युगपत्सर्वद्रव्याणां साधारणावगाहहेतुत्वमाकाशस्य, सकृत्सर्वेषां गमनपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गमनहेतुत्वं धर्मस्य, सकृत्सर्वेषां स्थानपरिणामिनां जीवपुद्ग-

---

अथाकाशाद्यमूर्त्तद्रव्याणां विशेषगुणान्प्रतिपादयति;—आकाशस्यावगाहहेतुत्वं, धर्मद्रव्यस्य गमनहेतुत्वं, धर्मेतरद्रव्यस्य तु पुनः स्थानकारणतागुणो भवतीति प्रथमगाथा गता । कालस्य वर्तना स्याद्गुणः ज्ञानदर्शनोपयोगद्वयमित्यात्मनो गुणो भणितः । एवं संक्षेपादमूर्त्तद्रव्याणां गुणा ज्ञेया इति । तथाहि—सर्वद्रव्याणां साधारणमवगाहहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवत्सदाकाशं निश्चिनोति । गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये साधारणं गमनहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवत्सद्धर्म्मद्रव्यं निश्चिनोति । तथैव च स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामेकसमये साधारणं स्थितिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवदधर्म्मद्रव्यं निश्चिनोति । सर्वद्रव्याणां

आगे अमूर्तीक पांच द्रव्योंके गुणोंको कहते हैं—**[आकाशस्य]** आकाश द्रव्यका **[अवगाहः]** एक ही समय सब द्रव्योंको जगह देनेका कारण ऐसा अवगाह नामा विशेषगुण है **[तु]** और **[धर्मस्य]** धर्मद्रव्यका **[गमनहेतुत्वं]** जीव पुद्गलोंके गमनका कारण ऐसा गतिहेतुत्व नामा विशेषगुण है **[पुनः]** तथा **[धर्मेतरद्रव्यस्य]** अधर्मद्रव्यका **[गुणः]** विशेषगुण **[स्थानकारणता]** एक ही समय स्थितिभावको परिणत हुए जीवपुद्गलोंको स्थितिका कारणपना है । **[कालस्य]** कालद्रव्यका **[वर्तना]** सभी द्रव्योंके समय २ परिणमनकी प्रवृत्तिका कारण ऐसा वर्तना नामका गुण **[स्यात्]** है **[आत्मनः गुणः]** जीवद्रव्य-का विशेष गुण **[उपयोगः इति भणितः]** चेतना परिणाम है ऐसा भगवानने कहा है । **[हि]** निश्चयसे **[एते गुणाः]** पहले कहे जो विशेषगुण हैं वे **[संक्षेपात्]** विस्तार न करके थोड़ेमें ही **[मूर्तिप्रहीणानां]** मूर्तिरहित जो पांच द्रव्य हैं उनके **[ज्ञेयाः]** जानने चाहिये ॥ **भावार्थ**—अवगाहन नामा गुण आकाशद्रव्यका ही

लानां स्थानहेतुत्वमधर्मस्य, अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कालस्य, चैतन्य-परिणामो जीवस्य। एवममूर्तानां विशेषगुणसंक्षेपाधिगमे लिङ्गम्। तत्रैककालमेव सकलद्रव्यसाधारणावगाहसंपादनमसर्वगतत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवदाकाशमधिगमयति। तथैकवारमेव गतिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकाद्गमनहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रात्वाज्जीवस्य लोकालोकसीम्नोचलितत्वादाकाशस्य विरुद्धकार्यहेतुत्वादधर्मस्यासंभवद्धर्ममधिगमयति। तथैकवारमेव स्थितिपरिणतसमस्तजीवपुद्गलानामालोकात्स्थानहेतुत्वमप्रदेशत्वात्कालपुद्गलयोः, समुद्घातादन्यत्र लोकासंख्येयभागमात्रत्वाज्जीवस्य, लोकालोकसीम्नोचलितत्वादाकाशस्य, विरुद्धकार्यहेतुत्वाद्धर्मस्य चासंभवदध-

---

युगपत्पर्यायपरिणतिहेतुत्वं विशेषगुणत्वादेवान्यद्रव्याणामसम्भवत्कालद्रव्यं निश्चिनोति। सर्वजीवसाधारणं सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनद्वयं विशेषगुणत्वादेवान्याचेतनपञ्चद्रव्याणामसम्भवत्सच्छुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मद्रव्यं निश्चिनोति। अयमत्रार्थः यद्यपि पञ्चद्रव्याणि जीवस्योपकारं कुर्वन्ति, तथापि तानि दुःखकारणान्येवेति ज्ञात्वा। यदि वाक्षयानन्तसुखादिकारणं विशुद्धज्ञानदर्शनोप-

---

चिन्ह है, क्योंकि अन्य पांच द्रव्य हैं वे सर्व व्यापक नहीं है आकाश द्रव्यही सर्वगत (सबमें फैला हुआ) है इसकारण पांच द्रव्योंका अवगाह गुण नहीं हो सकता; और आकाश सबका भाजन है क्योंकि सब द्रव्य इसीमें रहते हैं इससे इस आकाशका अवगाह चिन्ह है, वह गुण होता हुआ आकाशके अस्तिपने (मौजूदगी) को दिखाता है। जीवपुद्गलकी गतिको सहायता करनेवाला गतिहेतुत्व नामा गुण धर्म द्रव्यका ही चिन्ह है, अन्य पांच द्रव्योंका वन नहीं सकता क्योंकि कालद्रव्य-पुद्गल अप्रदेशी हैं इससे काल-पुद्गलका गुण नहीं हो सकता जो द्रव्य अखंडरूप लोक प्रमाण हो वही पुद्गलकी सब जगह गतिमें सहायता करसकता है, और समुद्घातके विना जीवद्रव्य लोकके असंख्यातवें भागमें रहता है इससे जीवद्रव्यका भी गुण नहीं होसकता, और आकाशद्रव्य लोकालोकतक है। यदि आकाशका गुण हो तो जीव-पुद्गल अलोकमें गमन करसके हैं सो ऐसा है नहीं। इसकारण आकाशका भी गुण नहीं है, अधर्मद्रव्य जीव पुद्गलकी स्थितिको सहायता देनेवाला है उसको गतिसहायता विरुद्ध पड़ती है इसकारण अधर्मद्रव्यका भी गुण नहीं होसक्ता। इसलिये यह गतिहेतुगुण एक धर्मद्रव्यहीको प्रगट दिखलाता है। उसीप्रकार एक ही वार स्थितिभावको परिणत हुए जीव-पुद्गलोंको स्थितिका हेतु होना ऐसा स्थितिहेतुत्व गुण एक अधर्मद्रव्यका ही है क्योंकि काल-पुद्गल अप्रदेशी और खंड हैं इसलिये इन दोनोंका गुण नहीं होसकता; और जीवद्रव्य समुद्घातके विना लोकप्रमाण होता ही नहीं इससे जीवका भी गुण नहीं बनसकता, आकाशद्रव्य लोकालोक प्रमाण है सो यदि आकाशका गुण मानाजावे तो अलोकमें भी जीव-पुद्गलकी स्थिति होनी चाहिये!

र्ममधिगमयति । तथा अशेषशेषद्रव्याणां प्रतिपर्यायं समयवृत्तिहेतुत्वं कारणान्तरसाध्यत्वात्समयविशिष्टाया वृत्तेः स्वतस्तेषामसंभवत्कालमधिगमयति । तथा चैतन्यपरिणामोचेतनत्वादेव शेषद्रव्याणामसंभवन् जीवमधिगमयति । एवं गुणविशेषाद्द्रव्यविशेषोऽधिगन्तव्यः ॥ ४१ । ४२ ॥

अथ द्रव्याणां प्रदेशवत्त्वाप्रदेशवत्त्वविशेषं प्रज्ञापयति;—

जीवा पोग्गलकाया धम्माऽधम्मा पुणो य आगासं ।
देसेहिं असंखादा णत्थि पदेसत्ति कालस्स ॥ ४३ ॥

जीवाः पुद्गलकाया धर्माधर्मौ पुनश्चाकाशम् ।
प्रदेशैरसंख्याता न सन्ति प्रदेशा इति कालस्य ॥ ४३ ॥

प्रदेशवन्ति हि जीवपुद्गलधर्माधर्माकाशानि अनेकप्रदेशवत्त्वात् । अप्रदेशः कालाणुः प्रदेशमात्रत्वात् । अस्ति च संवर्तविस्तारयोरपि लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशापरित्यागाज्जी-

---

योगस्वभावं परमात्मद्रव्यं तदेव मनसा ध्येयं वचसा वक्तव्यं कायेन तत्साधकमनुष्ठानं च कर्त्तव्यमिति ॥ ४१।४२ ॥ एवं कस्य द्रव्यस्य के विशेषगुणा भवन्तीति कथनरूपेण तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ कालद्रव्यं विहाय जीवादिपञ्चद्रव्याणामस्तिकायत्वं व्याख्याति;— **जीवा पुग्गलकाया धम्माधम्मा पुणो व आयासं** जीवाः पुद्गलकायाः धर्माधर्मौ पुनश्चाकाशम् । **सपदेसेहिं असंखा** । एते पञ्चास्तिकायाः किंविशिष्टाः । स्वप्रदेशैरसंख्येयाः । अत्रासंख्येयप्रदेशशब्देन प्रदेशबहुत्वं ग्राह्यम् । तच्च यथासम्भवं योजनीयम् । तस्य तावत्संसारावस्थायां विस्तारोपसंहारयोरपि प्रदीपवत्प्रदेशानां हानिवृद्ध्योरभावाद्व्यवहारेण

इसलिये आकाशका भी गुण नहीं सिद्ध हुआ । इसकारण स्थितिहेतुत्व नामा गुण अधर्म द्रव्यके ही अस्तिपनेको प्रगट करता है । तथा समस्त द्रव्योंके पर्यायोंको समय २ में पलटानेका कारण वर्तना हेतुत्व नामा गुण कालद्रव्यका है क्योंकि अन्य पांच द्रव्योंसे समय पर्यायकी उत्पत्ति नहीं होती इसकारण पांचद्रव्योंका वर्तना हेतुत्व गुण नहीं है वह गुण केवल कालकेही अस्तित्वको कहता है । उसीप्रकार चेतना गुण जीवका ही है क्योंकि अन्य पांच द्रव्य अचेतन हैं इसलिये उनका न होकर जीवका ही चिन्ह होता हुआ जीवको प्रगट दिखलाता है । इसतरह गुणोंके भेदसे द्रव्यका भेद जानना चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ आगे छह द्रव्योंमें प्रदेशी और अप्रदेशीपनेके भेदको दिखलाते हैं;—[**जीवाः**] जीवद्रव्य [**पुद्गलकायाः**] पुद्गलस्कंध [**पुनः**] और [**धर्माधर्मौ**] धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य [**च**] और [**आकाशं**] आकाशद्रव्य—ये पांच द्रव्य [**प्रदेशैः**] प्रदेशोंसे [**असंख्याताः**] गणना रहित हैं अर्थात् कोई असंख्यात प्रदेशी हैं कोई अनंतप्रदेशी हैं [**कालस्य**] कालद्रव्यके [**प्रदेशाः**] अनेक प्रदेश [**न संति**] नहीं हैं [**इति**] इसप्रकार

वस्य द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वादप्रदेशत्वेपि द्विप्रदेशादिसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशपर्यायेणानवधारितप्रदेशत्वात्पुद्गलस्य, सकललोकव्याप्यसंख्येयप्रदेशप्रस्ताररूपत्वात् धर्मस्य, सकललोकव्याप्यसंख्येयप्रदेशप्रस्ताररूपत्वादेवाधर्मस्य, सर्वव्याप्यनन्तप्रदेशप्रस्ताररूपत्वादाकाशस्य च प्रदेशवत्त्वं। कालाणोस्तु द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वात्पर्यायेण तु परस्परसंपर्कासंभवादप्रदेशत्वमेवास्ति। ततः कालद्रव्यमप्रदेशं शेषद्रव्याणि प्रदेशवन्ति ॥ ४३ ॥

अथ कामी प्रदेशिनोप्रदेशाश्चावस्थिता इति प्रज्ञापयति;—

लोगालोगेसु णभो धम्माधम्मेहि आददो लोगो।
सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ ४४ ॥

देहमात्रेऽपि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वम्। धर्माधर्मयोः पुनरवस्थितरूपेण लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वम्। स्कन्धाकारपरिणतपुद्गलानां तु संख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशत्वम्। किन्तु पुद्गलव्याख्यानेन प्रदेशशब्देन परमाणवो ग्राह्या, न च क्षेत्रप्रदेशाः। कस्मात्पुद्गलानामनन्तप्रदेशक्षेत्रेऽवस्थानाभावादिति। परमाणोर्व्यक्तिरूपेणैकप्रदेशत्वं शक्तिरूपेणोपचारेण बहुप्रदेशत्वं च। आकाशस्यानन्ता इति। **णत्थि पदेसत्ति कालस्स** न सन्ति प्रदेशा इति कालस्य। कस्माद्द्रव्यरूपेणैकप्रदेशत्वात् परस्परसम्बन्धाभावात्पर्यायरूपेणापीति ॥ ४३ ॥ अथ तमेवार्थं दृढयति;—

एदाणि पंचदव्वाणि उज्झियकालं तु अत्थिकायत्ति।
भण्णंते काया पुण बहुप्पदेसाण पचयत्तं ॥ १ ॥

एदाणि पञ्चदव्वाणि एतानि पूर्वसूत्रोक्तानि जीवादिषड्द्रव्याण्येव **उज्झिय कालं तु**

भगवानने कहा है अर्थात् कालद्रव्य प्रदेशमात्र होनेसे अप्रदेशी है॥ **भावार्थ—** जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश—ये पांच द्रव्य अनेक प्रदेशवाले हैं इसकारण प्रदेशी कहे जाते हैं। उनमें जीवद्रव्य तो लोकाकाशके प्रमाण असंख्यात प्रदेशवाला है संकोच विस्तार स्वभाव होनेपरभी असंख्यात प्रदेशोंसे कम बढ नहीं होसक्ता, पुद्गलद्रव्य परमाणुद्रव्यसे तो प्रदेशमात्र है इसलिये अप्रदेशी भी है परंतु परमाणुमें मिलनेकी शक्ति होनेसे दोपरमाणुसे लेकर संख्यात-असंख्यात-अनंतपरमाणुओंके स्कंधतक प्रदेशभेद होनेके कारण संख्यातप्रदेशी असंख्यातप्रदेशी—अनंतप्रदेशी जानना चाहिये। व्यवहारनयसे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य लोकाकाश प्रमाण हैं इसकारण असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाशद्रव्य सर्वव्यापक होनेसे अनंत प्रदेशी है। काल अणुद्रव्य होनेसे प्रदेशमात्र है इसलिये अप्रदेशी है। और उस कालाणुमें आपसमें मिलजानेकी शक्ति न होनेसे पुद्गलपरमाणुकी तरह उपचारसे भी प्रदेशी नहीं होसकता। इससे यह बात सिद्ध हुई कि पांच द्रव्य प्रदेशवाले हैं और कालद्रव्य केवल अप्रदेशी है॥ ४३ ॥ आगे प्रदेशी और अप्रदेशी द्रव्य

लोकालोकयोर्नभो धर्माधर्माभ्यामाततो लोकः ।
शेषौ प्रतीत्य कालो जीवाः पुनः पुद्गलाः शेषौ ॥ ४४ ॥

आकाशं हि तावत् लोकालोकयोरपि षड्द्रव्यसमवायासमवाययोरविभागेन वृत्तत्वात् । धर्माधर्मौ सर्वत्र लोके तन्निमित्तगमनस्थानानां जीवपुद्गलानां लोकाद्बहिस्तदेकदेशे च गमनस्थानासंभवात् । कालोपि लोके जीवपुद्गलपरिणामविद्यमानसमयादिपर्यायत्वात्, स तु लोकैकप्रदेश एवाप्रदेशत्वात् । जीवपुद्गलौ तु युक्तित एव लोके षड्द्रव्यसमवायात्मकत्वाल्लोकस्य किंतु जीवस्य प्रदेशसंवर्तविस्तारधर्मत्वात् पुद्गलस्य बन्धहेतुभूतस्निग्धरूक्ष-

---

कालद्रव्यं विहाय **अत्थिकायत्ति भण्णंते** अस्तिकायाः पञ्चास्तिकाया इति भण्यन्ते **काया पुण** कायाः कायशब्देन पुनः । किं भण्यते । **बहुप्पदेसाण पचयत्तं** बहुप्रदेशानां सम्बन्धि प्रचयत्वं समूह इति । अत्र पञ्चास्तिकायमध्ये जीवास्तिकाय उपादेयस्तत्रापि पञ्चपरमेष्ठिपर्यायावस्था तस्यामप्यर्हत्सिद्धावस्था तत्रापि सिद्धावस्था । वस्तुतस्तु रागादिसमस्तविकल्पजालपरिहारकाले सिद्धजीवसदृशा स्वकीयशुद्धात्मावस्थेति भावार्थः ॥ १ ॥ एवं पञ्चास्तिकायसंक्षेपसूचनरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ द्रव्याणां लोकाकाशेवस्थानमाख्याति;—**लोगालोगेसु णभो** लोकालोकयोरधिकरणभूतयोर्णभ आकाशं तिष्ठति **धम्माधम्मेहि आददो लोगो** धर्म्माधर्म्मास्तिकायाभ्यामाततो व्याप्तो भृतो लोकः । किं कृत्वा । **सेसे पडुच्च** शेषौ जीवपुद्गलौ प्रतीत्याश्रित्य । अयमत्रार्थः—जीवपुद्गलौ तावल्लोके तिष्ठतस्तयोर्गतिस्थित्योः कारणभूतौ धर्माधर्मावपि लोके । **कालो** कालोऽपि शेषौ जीवपुद्गलौ प्रतीत्य लोके । कस्मादिति चेत् ? जीवपुद्गलाभ्यां नवजीर्णपरिणत्या व्यज्यमानसमयघटिकादिपर्यायत्वात् । शेषशब्देन किं भण्यते । **जीवा पुण पुग्गला सेसा** जीवाः पुद्गलाश्च पुनः शेषा भण्यन्त इति । अयमत्र भावः—यथा सिद्धा भगवन्तो यद्यपि निश्चयेन लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशे केवलज्ञानादिगुणाधारभूते

किस जगह रहते हैं ? इस वातको कहते हैं;—[**लोकालोकयोः**] लोक और अलोकमें [**नभः**] आकाशद्रव्य रहता है [**धर्माधर्माभ्यां**] धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यसे [**लोकः आततः**] लोकाकाश व्याप्त है अर्थात् धर्म और अधर्म ये दोनों द्रव्य लोकाकाशमें फैल रहे हैं [**शेषौ प्रतीत्य**] जीव—पुद्गल द्रव्यकी प्रतीतिसे [**कालः**] कालद्रव्य तिष्ठ रहा है [**शेषाः जीवाः**] बाकी रहे जीवद्रव्य [**पुनः**] और [**पुद्गलाः**] पुद्गलद्रव्य ये दोनों लोकाकाशमें हैं ॥ **भावार्थ**—आकाश द्रव्य सब जगह है क्योंकि सबका भाजन (रहनेका ठिकाना) है इसलिये लोकालोकमें है । धर्म—अधर्मद्रव्य लोकमें हैं इनके निमित्तसे ही जीव पुद्गलकी गतिस्थिति लोकसे बाहर एक प्रदेशमेंभी नहीं होती लोकमें ही होती है । कालद्रव्यका समयादि पर्याय जीवपुद्गलके परिणमन करनेसे ही प्रगट होता है इसकारण कालद्रव्यभी लोकमें ही है । रहे जीव—पुद्गल ये लोकमें प्रगट दीखते ही हैं, जीवके संकोच विस्तार शक्ति होनेसे वह

गुणधर्मत्वाच्च तदेकदेशसर्वलोकनियमो नास्ति कालजीवपुद्गलानामित्येकद्रव्यापेक्षया एकदेश अनेकद्रव्यापेक्षया पुनरञ्जनचूर्णपूर्णसमुद्गकन्यायेन सर्वलोक एवेति ॥ ४४ ॥

अथ प्रदेशवत्त्वाप्रदेशत्वसंभवप्रकारमाभ्रं सूत्रयति;—

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं ।
अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥ ४५ ॥

यथा ते नभःप्रदेशास्तथा प्रदेशा भवन्ति शेषाणाम् ।
अप्रदेशः परमाणुस्तेन प्रदेशोद्भवो भणितः ॥ ४५ ॥

सूत्रयिष्यते हि स्वयमाकाशस्य प्रदेशलक्षणमेकाणुव्याप्यत्वमिति । इह तु यथाकाशस्य प्रदेशास्तथा शेषद्रव्याणामिति प्रदेशलक्षणप्रकारैकत्वमासूत्र्यते । ततो यथैकाणुव्याप्येनांशेन गम्यमानस्याकाशस्यानन्तांशत्वादनन्तप्रदेशत्वं तथैकाणुव्याप्येनांशेन गण्यमानानां धर्माधर्मैकजीवानामसंख्येयांशत्वात् प्रत्येकमसंख्येयप्रदेशत्वं । यथा चावस्थितप्रमाणयोर्धर्माधर्मयोस्तथा संवर्तविस्ताराभ्यामनवस्थितप्रमाणस्यापि शुष्कार्द्रत्वाभ्यां चर्मण इव

स्वकीयस्वकीयभावे तिष्ठन्ति तथापि व्यवहारेण मोक्षशिलायां तिष्ठन्तीति भण्यन्ते । तथा सर्वे पदार्था यद्यपि निश्चयेन स्वकीयस्वकीयस्वरूपे तिष्ठन्ति तथापि व्यवहारेण लोकाकाशे तिष्ठन्तीति । अत्र यद्यप्यनन्तजीवद्रव्येभ्योऽनन्तगुणपुद्गलास्तिष्ठन्ति तथाप्येकदीपप्रकाशे बहुदीपप्रकाशवद्विशिष्टावगाहशक्तियोगेनासंख्येयप्रदेशेऽपि लोकेऽवस्थानं न विरुध्यते ॥ ४४ ॥ अथ यदेवाकाशस्य परमाणुव्याप्तक्षेत्रं प्रदेशलक्षणमुक्तं शेषद्रव्यप्रदेशानां तदेवेति सूचयति:—**जह ते णहप्पदेसा** यथा ते प्रसिद्धाः परमाणुव्याप्तक्षेत्रप्रमाणाकाशप्रदेशाः **तहप्पदेसा हवंति सेसाणं** तेनैवाकाशप्रदेशप्रमाणेन प्रदेशा भवन्ति । केषां । शुद्धबुद्धैकस्वभावं यत्परमात्मद्रव्यं तत्प्रभृतिशेषद्रव्याणाम् । **अपदेसो परमाणू** अप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो योऽसौ पुद्गलप-

---

लोकपरिमाणभी है। पुद्गलके बंधका कारण स्निग्ध (चिकना) रूक्ष (लूखा) गुण परिणमन होनेसे यह भी सबलोक प्रमाण है। इसकारण ये दोनों द्रव्य लोकके एकप्रदेश (हिस्से) में भी हैं और सबलोकमें भी रहते हैं। तथा कालद्रव्य—जीवद्रव्य और पुद्गल अनेक द्रव्य हैं इनकी अपेक्षा जो देखाजाय तो सबलोक भरा हुआ है। जैसे काजल वगैरः रखनेकी कजलौटी अंजन वगैरःसे भरी रहती है उसीप्रकार अनेक द्रव्यकी अपेक्षा इन तीन द्रव्योंसे सब लोक भरा हुआ है ॥ ४४ ॥ आगे इन द्रव्योंके प्रदेशपनेके कथनका संभव होना दिखलाते हैं;—**[यथा]** जैसे **[ते]** वे एक परमाणु बराबर कहे गये जो **[नभःप्रदेशाः]** आकाशके प्रदेश हैं वे जैसे परमाणुओंके मापसे अनंत गिने जाते हैं **[तथा]** उसीप्रकार **[शेषाणां]** शेष धर्मद्रव्य—अधर्मद्रव्य—एकजीवद्रव्य, इनके भी **[प्रदेशाः]** प्रदेश परमाणुरूप गजसे मापे गये **[भवंति]** होते हैं अर्थात् मापे जाते हैं **[परमाणुः]** अविभागी पुद्गलपरमाणु **[अप्रदेशः]** दो आदि प्रदेशोंसे रहित है अर्थात्

जीवस्य लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वमेव। अमूर्तसंवर्तविस्तारसिद्धिश्च स्थूलकृशशिशुकुमारशरीरव्यापित्वादस्ति स्वसंवेदनसाध्यैव। पुद्गलस्य तु द्रव्येणैकप्रदेशमात्रत्वादप्रदेशत्वे यथोदिते सत्यपि द्विप्रदेशाद्युद्भवहेतुभूततथाविधस्निग्धरूक्षगुणपरिणामशक्तिस्वभावात्प्रदेशोद्भवत्वमस्ति। ततः पर्यायेणानेकप्रदेशत्वस्यापि संभवात् द्व्यादिसंख्येयासंख्येयानन्तप्रदेशत्वमपि न्याय्यं पुद्गलस्य ॥ ४५ ॥

अथ कालाणोरप्रदेशत्वमेवेति नियमयति;—

समओ दु अप्पदेसो पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स।
वदिवददो सो वट्टदि पदेसमागासदव्वस्स ॥ ४६ ॥

समयस्त्वप्रदेशः प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य।
व्यतिपततः स वर्तते प्रदेशमाकाशद्रव्यस्य ॥ ४६ ॥

अप्रदेश एव समयो द्रव्येण प्रदेशमात्रत्वात् न च तस्य पुद्गलस्येव पर्यायेणाप्यनेकप्र-

---

रमाणुः **तेण पदेसुब्भवो भणिदो** तेन परमाणुना प्रदेशस्योद्भव उत्पत्तिर्भणिता। परमाणुव्याप्तक्षेत्रं प्रदेशो भवति। तदग्रे विस्तरेण कथयति इह तु सूचितमेव ॥ ४५ ॥ एवं पञ्चमस्थले स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम्। अथ कालद्रव्यस्य द्वितीयादिप्रदेशरहितत्वेनाप्रदेशत्वं व्यवस्थापयति;—**समओ** समयपर्यायस्योपादानकारणत्वात्समयः कालाणुः **दु** पुनः। स च कथंभूतः।

प्रदेशमात्र है [**तेन**] उस परमाणुसे [**प्रदेशोद्भवः**] प्रदेशोंकी उत्पत्ति [**भणितः**] कही गई है॥ **भावार्थ**—सबसे सूक्ष्म (छोटा) अविभागी परमाणु होता है वह परमाणू जितनी जगह रोके उतनी जगहका नाम प्रदेश है। इसतरह आकाशके अनंतप्रदेश होते हैं। उसीप्रकार प्रदेशसे धर्मद्रव्य–अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्यका माप किया जावे तो असंख्यात २ प्रदेशी हैं, उनमेंभी धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य सदा ही स्थिररूप हैं तथा जीवद्रव्य संसारमें संकोच विस्तारकर अथिर है, जैसे सूका और आला चर्म अनवस्थित है तौभी अपने प्रदेशोंसे कम ज्यादा नहीं होता। इसप्रकार असंख्यातप्रदेशी है। यहांपर कोई प्रश्न करे कि आत्मा अमूर्त है उसके संकोच विस्तार किसतरह होसकता है? तो उसका उत्तर यह है कि, जैसे कोई पुरुष मोटा है वह क्षीण होजाता है और कोई क्षीणसे मोटा होजाता है इसदशामें उस पुरुषके शरीरके मोटे वा क्षीण होनेके साथमें ही आत्माके प्रदेशभी संकोच और विस्तारको प्राप्त होते हैं। और जैसे बालक जब जवान होता है तब आत्माके प्रदेशभी विस्ताररूप हो जाते हैं; इसकारण आत्माके संकोच विस्तार अच्छीतरह अनुभवमें आते हैं संदेह नहीं रहता। पुद्गलद्रव्य परमाणुकी अपेक्षा यद्यपि एक प्रदेशी है तौभी द्व्यणुकादि होनेकी इसमें मिलनशक्ति है इसलिये द्व्यणुकआदि स्कंध (समूहरूप) पर्यायोंकी अपेक्षा संख्यात–असंख्यात—अनंतप्रदेशी पुद्गलद्रव्य है॥४५॥ आगे कालाणुको अप्रदेशी दिखलाते हैं;—[**तु**] और [**समयः**] कालद्रव्य [illegible]

देशत्वं यतस्तस्य निरन्तरं प्रस्तारविस्तृतप्रदेशमात्रासंख्येयद्रव्यत्वेपि परस्परसंपर्कासंभवादे-कैकमाकाशप्रदेशमभिव्याप्य तस्थुषः प्रदेशमात्रस्य परमाणोस्तदभिव्याप्तमेकमाकाशप्रदेशं मन्दगत्या व्यतिपतत एव वृत्तिः ॥ ४६ ॥

अथ कालपदार्थस्य द्रव्यपर्यायौ प्रज्ञापयति;—

वदिवददो तं देसं तस्सम समओ तदो परो पुव्वो ।
जो अत्थो सो कालो समओ उप्पण्णपद्धंसी ॥ ४७ ॥

व्यतिपततस्तं देशं तत्समः समयस्ततः परः पूर्वः ।
योऽर्थः स कालः समय उत्पन्नप्रध्वंसी ॥ ४७ ॥

यो हि येन प्रदेशमात्रेण कालपदार्थेनाकाशस्य प्रदेशोऽभिव्याप्तस्तं प्रदेशं मन्दगत्याति-

---

अप्पदेसो अप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो भवति । स च किं करोति । **सो वट्टदि** स पूर्वोक्तकालाणुः परमाणोर्गतिपरिणतेः सहकारित्वेन वर्त्तते । कस्य सम्बन्धी योऽसौ परमाणुः ? **पदेसमेत्तस्स दव्वजादस्स** प्रदेशमात्रपुद्गलजातिरूपपरमाणुद्रव्यस्य । किं कुर्वतः ? **वदिवददो** व्यतिपततो मन्दगत्या गच्छतः ।कं प्रति। **पदेसं** कालाणुव्याप्तमेकप्रदेशम् । कस्य सम्बन्धिनं ? **आगासदव्वस्स** आकाशद्रव्यस्येति । तथाहि—कालाणुरप्रदेशो भवति । कस्मात् ? द्रव्येणैकप्रदेशत्वात् । अथवा यथा स्नेहगुणेन पुद्गलानां परस्परबन्धो भवति तथाविधबन्धाभावात्पर्यायेणापि । अयमत्रार्थः—यस्मात्पुद्गलपरमाणोरेकप्रदेशगमनपर्यन्तं सहकारित्वं करोति नचाधिकं तस्मादेव ज्ञायते सोऽप्येकप्रदेश इति ॥ ४६ ॥ अथ पूर्वोक्तकालपदार्थस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च प्रतिपादयति;—**वदिवददो** तस्य पूर्वसूत्रोदितपुद्गलपरमाणोर्व्यतिपततो मन्दगत्या गच्छतः । कं कर्म्मतापन्नम् ? **तं देसं** तं पूर्वगाथोदितं कालाणुव्याप्तमाकाशप्रदेशम् **तस्सम**

प्रदेशः] प्रदेशसे रहित है अर्थात् प्रदेशमात्र है [**सः**] वह कालाणू [**आकाशद्रव्यस्य**] आकाशद्रव्यके [**प्रदेशं**] निर्विभागक्षेत्ररूप प्रदेशमें [**व्यतिपततः**] मंदगतिसे गमनकरनेवाला [**प्रदेशमात्रस्य द्रव्यजातस्य**] तथा एक प्रदेशरूप ऐसे पुद्गलजातिरूप परमाणुके निमित्तसे [**वर्तते**] समयपर्यायकी प्रगटतासे प्रवर्तता है ॥ **भावार्थ—**लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं और एक एक प्रदेशमें एक एक कालाणू ठहरा हुआ है वह जुदी २ थिरता लिये हुए रत्नोंकी राशिकी तरह आपसमें मिलनेरूप शक्तिसे रहित है इसप्रकार वे असंख्यात हैं । जब पुद्गल परमाणू आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें मंदगतिसे जाता है तब पुद्गलपरमाणुकी गतिसे उस आकाशमें तिष्टे हुए कालाणूका समयरूप पर्याय प्रगट होता है । और एक कालाणू एक प्रदेशमात्र होनेसे ही अप्रदेशी है ॥ ४६ ॥ आगे कालपदार्थके द्रव्य और पर्याय दिखाते हैं;—[**तं देशं**] जो आकाशका एक प्रदेश है उसमें [**व्यतिपततः**] मंदगमनसे जानेवाले परमाणुको [**तत्समः**] जितना कुछ सूक्ष्मकाल लगे उस समान कालप-

क्रमतः परमाणोस्तत्प्रदेशमात्रातिक्रमणपरिमाणेन तेन समो यः कालपदार्थसूक्ष्मवृत्तिरूप-समयः स तस्य कालपदार्थस्य पर्यायस्ततः एवंविधात्पर्यायात्पूर्वोत्तरवृत्तिवृत्तत्वेन व्यञ्जित-नित्यत्वे योऽर्थः तत्तु द्रव्यं । एवमनुत्पन्नाविध्वस्तो द्रव्यसमयः, उत्पन्नप्रध्वंसी पर्यायस-मयः । अनंशः समयोऽयमाकाशप्रदेशस्यानंशत्वान्यथानुपपत्तेः । न चैकसमयेन परमाणो-रालोकान्तगमनेपि समयस्य सांशत्वं विशिष्टगतिपरिणामाद्विशिष्टावगाहपरिणामवत् । त-

---

तेन कालाणुव्याप्तैकप्रदेशपुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः सदृशस्तत्समः **समओ** कालाणुद्रव्यस्य सूक्ष्मपर्यायभूतः समयो व्यवहारकालो भवतीति पर्यायव्याख्यानं गतम् । **तदो परो पुव्वो** तस्मात्पूर्वोक्तसमयरूपकालपर्यायात्परो भाविकाले पूर्वमतीतकाले च **जो अत्थो** यः पूर्वपर्यायेष्वन्वयरूपेण दत्तपदार्थो द्रव्यं **सो कालो** स कालः कालपदार्थो भवतीति द्रव्यव्या-ख्यानम् । **समओ उप्पण्णपद्धंसी** स पूर्वोक्तसमयपर्यायो यद्यपि पूर्वापरसमयसन्ताना-पेक्षया संख्येयासंख्येयानन्तसमयो भवति, तथापि वर्त्तमानसमयं प्रत्युत्पन्नप्रध्वंसी । यस्तु पूर्वो-क्तद्रव्यकालः स त्रिकालस्थायित्वेन नित्य इति । एवं कालस्य पर्यायस्वरूपं द्रव्यस्वरूपं च ज्ञात-व्यम् ॥ अथवानेन गाथाद्वयेन समयरूपव्यवहारकालव्याख्यानं क्रियते निश्चयकालव्याख्यानं तु 'उप्पादो पद्धंसो' इत्यादि गाथात्रयेणाग्रे करोति । तद्यथा । **समओ** परमार्थकालस्य पर्याय-भूतसमयः । **अवप्पदेसो** अपगतप्रदेशो द्वितीयादिप्रदेशरहितो निरंश इत्यर्थः । कथं निरंश इति चेत् ? **पदेसमेत्तस्स दवियजादस्स** प्रदेशमात्रपुद्गलद्रव्यस्य सम्बन्धी योऽसौ परमाणुः **वदिवादादो वट्टदि** व्यतिपातात् मन्दगतिगमनात्सकाशात्स परमाणुस्तावद्गमनरूपेण वर्त्तते । कं प्रति ? **पदेसमागासदवियस्स** विवक्षितैकाकाशप्रदेशं प्रति । इति प्रथमगाथाव्याख्या-नम् । **वदिवददो तं देसं** स परमाणुस्तमाकाशप्रदेशं यदा व्यतिपतितोऽतिक्रान्तो भवति **त-स्समसमओ** तेन पुद्गलपरमाणुमन्दगतिगमनेन समः समानः समयो भवतीति निरंशत्वमिति वर्त्तमानसमयो व्याख्यातः । इदानीं पूर्वपरसमयौ कथयति—**तदो परो पुव्वो** तस्मात्पूर्वो-क्तवर्त्तमानसमयात्परो भावी कोऽपि समयो भविष्यति पूर्वमपि कोऽपि गतः **अत्थो जो** एवं यः

दार्थ [**समयः**] समय नामा पर्याय कहा जाता है । [**ततः**] उसपर्यायसे [**परः पूर्वः**] आगे तथा पहले [**यः**] जो नित्यभूत [**अर्थः**] पदार्थ है [**सः**] वह [**कालः**] कालनामा द्रव्य है ॥ **भावार्थ**—एक आकाशके प्रदेशमें जो कालाणु है वह दूसरे प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे कदापि नहीं मिलता इसकारण जब पुद्गलपरमाणु एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेश (जगह) में जाता है तब पहले प्रदेशमें रहनेवाले कालाणुसे दूसरे प्रदेशवर्ति कालाणुमें भेद है संयोग नहीं है, क्योंकि उसमें मिलनशक्तिका अभाव है । इसकारण सूक्ष्मकालका समय नामका पर्याय पुद्गलकी मंदगतिसे प्रगट जानाजाता है । जो कालाणु भिन्न नहीं होती तथा मिलनेकी शक्ति होती तो समयपर्याय कभी नहीं होता । अखंड एक द्रव्यके परिणमनसे तथा कालाणुके भिन्न होनेके [illegible]

थाहि-यथा विशिष्टावगाहपरिणामादेकपरमाणुपरिमाणोऽनन्तपरमाणुस्कन्धः परमाणोरनंशत्वात् पुनरप्यनन्तांशत्वं न साधयति तथा विशिष्टगतिपरिणामादेककालाणुव्याप्तैकाकाशप्रदेशातिक्रमणपरिमाणावच्छिन्नेनैकसमयेनैकस्माल्लोकान्ताद्द्वितीयं लोकान्तमाक्रामतः परमाणोरसंख्येया कालाणवः समयस्यानंशत्वादसंख्येयांशत्वं न साधयन्ति ॥ ४७ ॥

समयत्रयरूपोऽर्थः **सो कालो** सोऽतीतानागतवर्त्तमानरूपेण त्रिविधव्यवहारकालो भण्यते । **समओ उप्पण्णपद्धंसी** तेषु त्रिषु मध्ये योऽसौ वर्त्तमानः स उत्पन्नप्रध्वंसी अतीतानागतौ तु संख्येयासंख्येयनन्तसमयावित्यर्थः । एवमुक्तलक्षणे काले विद्यमानेऽपि परमात्मतत्त्वमलभमानोऽतीतानन्तकाले संसारसागरे भ्रमितोऽयं जीवो यतस्ततः कारणात्तदेव निजपरमात्मतत्त्वं सर्वप्रकारोपादेयरूपेण श्रद्धेयं, स्वसंवेदनज्ञानरूपेण ज्ञातव्यमाहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञास्वरूपप्रभृतिसमस्त-

---

होता है । पुद्गलपरमाणु एककालाणुसे दूसरे कालाणुमें जब जाता है वहां भेद होता है । इसीलिये कालद्रव्यका समयपर्याय पुद्गलपरमाणुकी मंदगतिसे प्रगट होता है । और जो समयपर्यायके उत्पन्न होनेसे न तो उत्पन्न होता है तथा न विनाश पाता है आगे पीछे सदा नित्य है वह कालाणु द्रव्यसमय है । तथा पर्यायसमय विनाशीक है, कालाणुरूप द्रव्यसमय नित्य है । पर्यायसमयसे अन्य कोई भी सूक्ष्मकाल नहीं है इसकारण समय निरंशी है अर्थात् फिर उसका भेद नहीं होता । और जो समयके भी अंश (भाग) किये जावें तो सूक्ष्म आकाशके प्रदेशोंके भी अंश हो जाइंगे, परंतु प्रदेश तो सबसे सूक्ष्म क्षेत्र है उसमें अंशोंकी कल्पना किसतरह होसकती है ? कदापि नहीं हो सकती । उसीतरह समय भी सूक्ष्मकाल है इसमें भी अंश कल्पना नहीं होसकती । यहांपर कोई प्रश्न करै कि पुद्गलपरमाणु एक समयमें शीघ्रगतिसे जाकर लोकके अग्रभागतक पहुंचता है उस अवस्थामें चौदह राजु तक श्रेणीबद्ध जितने आकाशप्रदेशोंमें कालाणू हैं उन सबको स्पर्श करता है इसलिये एकसमयमें गमन करनेसे जितने आकाशप्रदेशोंमें कालाणु हैं उतने ही समयके अंश भेद होने चाहिये ? इसका उत्तर यह है कि परमाणुमें कोई एक गतिपरिणामकी विशेषता है, इसकारण बहुत शीघ्र चालसे १४ राजू चलाजाता है परंतु समयके अंश नहीं होते हैं; समय तो अत्यंत सूक्ष्मकाल है । जैसे एक परमाणुके प्रमाण आकाशप्रदेश है उसमें अनंतपरमाणुओंका स्कंध रहता है वहां पर प्रदेशके अनंत अंश नहीं होते, क्योंकि परमाणु निरंश है उसमें दूसरा अंश सिद्ध नहीं होता। इसकारण उस आकाशके प्रदेशमें कोई एक ऐसी अवगाहशक्ति है जो उसमें एक परमाणुके बराबर अनंतपरमाणु स्कंध (समूह) रहते हैं,लेकिन अनंतपरमाणुओंसे उस प्रदेशके अनंत अंश नहीं होजाते, यह कोई अवगाहशक्तिकी ही विशेषता है । उसीतरह गतिपरिणामकी विशेषतासे एकसमयमें परमाणु लोकके अंततक चला जाता है वहां असंख्यात कालाणुओंको उल्लंघन करनेपर भी समयके असंख्यात अंश सिद्ध नहीं होते । समय तो

अथाकाशस्य प्रदेशलक्षणं सूत्रयति;—

आगासमणुणिविट्ठं आगासपदेससण्णया भणिदं ।
सव्वेसिं च अणूणं सक्कदि तं देदुमवकासं ॥ ४८ ॥

आकाशमनुनिविष्टमाकाशप्रदेशसंज्ञया भणितम् ।
सर्वेषां चाणूनां शक्नोति तद्दातुमवकाशम् ॥ ४८ ॥

आकाशस्यैकाणुव्याप्योंशः किलाकाशप्रदेशः, स खल्वेकोपि शेषपञ्चद्रव्यप्रदेशानां परमसौक्ष्मपरिणतानन्तपरमाणुस्कन्धानां चावकाशदानसमर्थः । अस्ति चाविभागैकद्रव्यत्वेप्यंशकल्पनमाकाशस्य, सर्वेषामणूनामवकाशदानस्यान्यथानुपपत्तेः । यदि पुनराकाशस्यांशा न स्युरितिमतिस्तदाङ्गुलीयुगलं नभसि प्रसार्य निरूप्यतां किमेकं क्षेत्रं किमनेकं? एकं चेत्किमभिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन किं वा भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन? अभिन्नांशाऽविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् येनांशेनैकस्या अङ्गुलेः क्षेत्रं तेनांशेनेतरस्या इत्यन्यतरांशाभावः । एवं

रागादिविभावत्यागेन ध्येयमिति तात्पर्य्यम् ॥ ४७ ॥ एवं कालव्याख्यानमुख्यत्वेन षष्ठस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथ पूर्वं यत्सूचितं प्रदेशस्वरूपं तदिदानीं विवृणोति;—**आयासमणुणिविट्ठं** आकाशं अणुनिविष्टं पुद्गलपरमाणुव्याप्तम् । **आयासपदेससण्णया भणिदं** आकाशप्रदेशसंज्ञया भणितं कथितम् । **सव्वेसिं च अणूणं** सर्वेषामणूनां चकारात्सूक्ष्मस्कन्धानां च **सक्कदि तं देदुमवगासं** शक्नोति स आकाशप्रदेशो दातुमवकाशम् । तस्याकाशप्रदेशस्य यदीत्थंभूतमवकाशदानसामार्थ्यं न भवति तदानन्तानन्तो जीवराशिस्तस्मादप्यनन्तगुणपुद्गलराशिश्चासंख्येयप्रदेशलोके कथमवकाशं लभते । तच्च विस्तरेण पूर्वं भणितमेव । अथ मतं—अखण्डाकाशद्रव्यस्य प्रदेशविभावः कथं घटते ? परिहारमाह—चिदानन्दैकस्व-

---

अंशरूप ही है उससें दूसरे अंश किसतरह होसकते हैं ? कदाचित भी नहीं ॥ ४७ ॥ आगे आकाशके प्रदेशका लक्षण कहते हैं;—[**अणुनिविष्टं**] परमाणुसे व्याप्त (रोका गया) जो [**आकाशं**] आकाशद्रव्य है वह [**आकाशप्रदेशसंज्ञया**] आकाशका प्रदेश ऐसे नामसे [**भणितं**] भगवन्तदेवने कहा है [**तत्**] वह आकाशका एक प्रदेश [**सर्वेषां**] अन्य सबद्रव्योंके प्रदेशोंको [**च**] और [**अणूनां**] परमसूक्ष्मपनेको परिणत हुए ऐसे अनंतपुद्गलस्कंधोंको [**अवकाशं**] जगह [**दातुं**] देनेको [**शक्नोति**] समर्थ है ॥ **भावार्थ**—जितने आकाशको एक परमाणु रोककर स्थित हो उतने आकाशका नाम प्रदेश है । इससे सूक्ष्म क्षेत्र कोईभी नहीं है जैसा कि वह प्रदेश सूक्ष्म है, इसमें अन्य अंशोंकी कल्पना नहीं होती । तथा उस सूक्ष्म आकाशके प्रदेशमें जगह देनेकी ऐसी ही शक्ति है कि पांचद्रव्योंके भी प्रदेश रहते हैं और अनंतपुद्गलपरमाणु तथा अनंतपुद्गलस्कंध भी रहते हैं । यह आकाशमें [illegible] (जगह) देनेकी कोई एक ऐसी ही अतिशयमहिमायुक्त शक्ति है । यहां पर कोई [illegible]

द्व्यंशानामभावादाकाशस्य परमाणोरिव प्रदेशमात्रत्वं। भिन्नांशाविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातं। अनेकं चेत् किं सविभागानेकद्रव्यत्वेन किं वाऽविभागैकद्रव्यत्वेन? सविभागानेकद्रव्यत्वेन चेत् एकद्रव्यस्याकाशस्यानन्तद्रव्यत्वं, अविभागैकद्रव्यत्वेन चेत् अविभागैकद्रव्यस्यांशकल्पनमायातम् ॥ ४८ ॥

अथ तिर्यगूर्ध्वप्रचयावावेदयति;—

एको व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य।
दव्वाणं च पदेसा संति हि समयत्ति कालस्स ॥ ४९ ॥

एको वा द्वौ बहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च।
द्रव्याणां च प्रदेशाः सन्ति हि समया इति कालस्य ॥ ४९ ॥

प्रदेशप्रचयो हि तिर्यक्प्रचयः समयविशिष्टवृत्तिप्रचयस्तदूर्ध्वप्रचयः। तत्राकाशस्यावस्थितानन्तप्रदेशत्वाद्धर्माधर्मयोरवस्थिताऽसंख्येयप्रदेशत्वाज्जीवस्यानवस्थितासंख्येयप्रदेशत्वा-

---

भावनिजात्मतत्त्वपरमैकाग्र्यलक्षणसमाधिसंजातनिर्विकाराह्लादैकरूपसुखसुधारसास्वादतृप्तमुनियुगलस्यावस्थितक्षेत्रं किमेकमनेकं वा? यद्येकं तर्हि द्वयोरप्येकत्वं प्राप्नोति न च तथा। भिन्नं चेत्तदा अखण्डस्याप्याकाशद्रव्यप्रदेशविभागो न विरुध्यत इत्यर्थः ॥ ४८ ॥ अथ तिर्यक्प्रचयोर्द्ध्वप्रचयौ निरूपयति;—**एको व दुगे बहुगा संखातीदा तदो अणंता य** एको वा द्वौ

करै कि आकाशद्रव्य तो अखंड एक वस्तु है उसमें प्रदेशरूप अंशकल्पना कैसे होसकती है? उसका समाधान इसतरहसे है कि निर्विभाग एक वस्तुमें भी अंश कल्पना बनसकती है। यदि ऐसा कहो कि किसतरहसे होती है तो पहले अपने हाथकी दो अंगुली आकाशमें रक्खो अब बतलाओ कि दो उंगलियोंका एक क्षेत्र है कि दो क्षेत्र? यदि कहो कि एक क्षेत्र है तो यह प्रश्न उठता है कि क्या वह अखंड एक आकाशकी अपेक्षा एक क्षेत्र है? यदि ऐसा मानो तब तो ठीक ही है। और जो दो उंगलियोंकी भिन्नतासे दो अंश आकाशके कल्पना करनेपर उनकी अपेक्षा भी एकक्षेत्र कहोगे तो जिस अंशकर एक उंगलीका क्षेत्र है उसी अंशकर दूसरी उंगलीका भी क्षेत्र है ऐसा माननेसे अन्य अंशोंका अभाव हो जाइगा। इसीतरह दो आदि आकाशके अनेक अंशोंकर भिन्न २ ही अनेकअंश मानोंगे तो आकाश अनंत होजावेंगे और जो एक आकाशके अनेक अंश मानोगे तो एक अखंड आकाशमें अंशकल्पना सिद्ध ही है ॥ ४८ ॥ आगे तिर्यक्प्रचय—ऊर्ध्वप्रचय इनदोनोंका लक्षण कहते हैं;—[**द्रव्याणां प्रदेशाः**] कालद्रव्यके विना पांचद्रव्योंके निर्विभाग अंशरूप प्रदेश [**एकः**] एक [**वा**] अथवा [**द्वौ बहवः**] दो अथवा बहुत संख्याते [**च**] और [**संख्यातीताः**] असंख्यात [**च**] तथा [**ततः**] उसके बाद [**अनंताः**] अनंत इसतरह यथायोग्य [**सन्ति**] सदाकाल रहते हैं

त्पुद्गलस्य द्रव्येणानेकप्रदेशत्वशक्तियुक्तैकप्रदेशत्वात्पर्यायेण द्विबहुप्रदेशत्वाच्चास्ति तिर्यक्प्रचयः । न पुनः कालस्य शक्त्या, व्यक्त्या चैकप्रदेशत्वात् । ऊर्ध्वप्रचयस्तु त्रिकोटिस्पर्शित्वेन सांशत्वाद्द्रव्यवृत्तेः सर्वद्रव्याणामनिवारित एव । अयं तु विशेषः समयविशिष्टवृत्तिप्रचयः शेषद्रव्याणामूर्ध्वप्रचयः समयप्रचयः एव कालस्योर्ध्वप्रचयः । शेषद्रव्याणां

बहवः संख्यातीतास्ततोऽनन्ताश्च । **दव्वाणं च पदेसा संति हि** कालद्रव्यं विहाय पञ्चद्रव्याणां सम्बन्धिन एते प्रदेशा यथासम्भवं सन्ति हि स्फुटम् । **समयत्ति कालस्स** कालस्य पुनः पूर्वोक्तसंख्योपेताः समयाः सन्तीति । तद्यथा—एकाकारपरमसमरसीभावपरिणतपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतभरितावस्थानां केवलज्ञानादिव्यक्तिरूपानन्तगुणाधारभूतानां लोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयप्रदेशानां मुक्तात्मपदार्थे योऽसौ प्रचयः समूहः समुदायो राशिः स । किं किं भण्यते । तिर्यक्प्रचयाः तिर्यक्सामान्यमिति विस्तारसामान्यमिति अक्रमानेकान्त इति च भण्यते । स च प्रदेशप्रचयलक्षणस्तिर्यक्प्रचयो यथा मुक्तात्मद्रव्ये भणितस्तथा कालं विहाय स्वकीयस्वकीयप्रदेशसंख्यानुसारेण शेषद्रव्याणां स भवतीति तिर्यक्प्रचयो व्याख्यातः । प्रतिसमयवर्त्तिनां पूर्वोत्तरपर्यायाणां मुक्ताफलमालावत्सन्तान ऊर्द्ध्वप्रचय इत्यूर्द्ध्वसामान्यमित्यायतसामान्यमिति क्रमानेकान्त इति च भण्यते । स च सर्वद्रव्याणां भवति । किन्तु पञ्चद्रव्याणां सम्बन्धी पूर्वापरपर्यायसन्तानरूपो योऽसावूर्द्ध्वताप्रचयस्तस्य स्वकीयस्वकीयद्रव्यमुपादानकारणम् । कालस्तु प्रतिसमयं सहकारिकारणं भवति ।

[कालस्य] कालद्रव्यका **[समय इति]** समय पर्यायरूप एक प्रदेश **[हि]** निश्चयकर जानना चाहिये ॥ **भावार्थ**—जिनद्रव्योंके बहुत प्रदेश होवें उन्हें तिर्यक्प्रचय कहते हैं, क्योंकि प्रदेशोंके समूहका नाम तिर्यक्प्रचय है । अनेक समयोंका नाम ऊर्ध्वप्रचय है । सो यह ऊर्ध्वप्रचय सब द्रव्योंके होता है, क्योंकि अतीत अनागत वर्तमान कालके अनेक समयोंमें सब द्रव्य परिणमन करते हैं । तिर्यक्प्रचय एक कालद्रव्यके विना सबके जानना चाहिये । आकाशद्रव्यके निश्चल अनंत प्रदेश हैं, धर्म और अधर्म इन द्रव्योंके निश्चल असंख्यातप्रदेश हैं, जीवके संकोच विस्तारकी अपेक्षा अथिर असंख्यातप्रदेश हैं, पुद्गलके यद्यपि द्रव्यपनेसे एक प्रदेश है तौ भी मिलनशक्तिरूप पर्यायकी अपेक्षा दोसे लेकर संख्यात-असंख्यात-अनंतप्रदेश जानने, कालद्रव्य एकप्रदेशमात्र है इसमें कालाणुओंकी आपसमें मिलनशक्ति नहीं है । इसकारण पांच द्रव्योंके बहुतप्रदेश होनेसे तिर्यक्प्रचय है, काल प्रदेशमात्र है इसलिये उसके तिर्यक् प्रचय नहीं है । उर्ध्वप्रचय तो सब द्रव्योंके है, क्योंकि सभी द्रव्य समय २ में परिणमन करते हैं । यहांपर इतना विशेष जानना कि पांच द्रव्योंका जो ऊर्ध्वप्रचय है वह कालके ऊर्ध्वप्रचयसे जाना जाता है, क्योंकि कालद्रव्य सब द्रव्योंकी परिणति होनेको सहायक है । इसकारण कालके समयपर्यायसे सब द्रव्योंकी परिणतिका भेद गिनाजाता है । इसीलिये कालके ऊर्ध्वप्रचयसे अन्यपांचद्रव्योंका ऊर्ध्वप्रचयरूप भेद गिनलेना,

वृत्तेर्हि समयादर्थान्तरभूतत्वादस्तिसमयविशिष्टत्वं । कालवृत्तेस्तु स्वतः समयभूतत्वात्तन्नास्ति ॥ ४९ ॥

अथ कालपदार्थोर्ध्वप्रचयनिरन्वयत्वमुपहन्ति;—

उप्पादो पद्धंसो विज्जदि जदि जस्स एकसमयस्मि।
समयस्स सोवि समओ सभावसमवट्ठिदो हवदि ॥ ५० ॥

उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि यस्यैकसमये।
समयस्य सोपि समयः स्वभावसमवस्थितो भवति ॥ ५० ॥

समयो हि समयपदार्थस्य वृत्त्यंशः तस्मिन् कस्याप्यवश्यमुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः, परमाणोर्व्यतिपातोत्पद्यमानत्वेन कारणपूर्वत्वात् । तौ यदि वृत्त्यंशस्यैव किं यौगपद्येन किं क्रमेण? यौगपद्येन चेत् नास्ति यौगपद्यं, सममेकस्य विरुद्धधर्मयोरनवतारात् । क्रमेण चेत् नास्ति क्रमः, वृत्त्यंशस्य सूक्ष्मत्वेन विभागाभावात् । ततो वृत्तिमान् कोप्यवश्यमनुस-

---

यस्तु कालस्य समयसन्तानरूप ऊर्द्धताप्रचयस्तस्य काल एवोपादानकारणं सहकारिकारणं च। कस्मात्? कालस्य भिन्नसमयाभावात्पर्याया एव समया भवन्तीत्यभिप्रायः ॥४९॥ एवं सप्तमस्थले स्वतन्त्रगाथाद्वयं गतम् । अथ समयसन्तानरूपस्योर्द्धप्रचयस्यान्वयिरूपेणाधारभूतं कालद्रव्यं व्यवस्थापयति;—**उप्पादो पब्भंसो विज्जदि जदि** उत्पादः प्रध्वंसो विद्यते यदि चेत् । कस्य । **जस्स** यस्य कालाणोः । क? **एकसमयम्हि** एकसमये वर्त्तमानसमये **समयस्स** समयोत्पादकत्वात्समयः कालाणुस्तस्य **सोवि समओ** सोऽपि कालाणुः **सहावसमवट्ठिदो होदि** स्वभावसमवस्थितो भवति । पूर्वोक्तमुत्पादप्रध्वंसद्वयं तदाधारभूतं कालाणुद्रव्यरूपं ध्रौव्यमिति त्रयात्मकस्वभावसत्तास्तित्वमिति यावत् । तत्र सम्यगवस्थितः स्वभावः समवस्थितो भवति । तथाहि—यथाङ्गुलिद्रव्ये यस्मिन्नेव वर्त्तमानक्षणे वक्रपरिणामस्योत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवाङ्गुलिद्रव्यस्य पूर्वर्जुपर्यायेण

कालका ऊर्ध्वप्रचय अन्यसे नहीं, क्योंकि कालकी परिणतिका भेद कालहीके समयपर्यायसे गिननेमें आता है। इसकारण कालके ऊर्ध्वप्रचयको निमित्त व उपादानकारण आप काल ही जानना। अन्य पांचद्रव्य अपने ऊर्ध्वप्रचयको उपादानकारण हैं, कालका ऊर्ध्वप्रचय उसजगह निमित्तकारण है ॥ ४९ ॥ आगे कहते हैं कि यद्यपि समयसंतानरूप ऊर्ध्वप्रचयसे कालपदार्थ उत्पन्न होता है तथा विनाश पाता है तौभी द्रव्यपनेसे ध्रौव्य है;—**[यस्य समयस्य]** जिस कालाणुरूप द्रव्यसमयका **[एकसमये]** एकही अतिसूक्ष्म कालसमयमें **[यदि]** जो **[उत्पादः]** उत्पन्न होना **[प्रध्वंसः]** विनाश होना **[विद्यते]** प्रवर्तता है तो **[सोपि]** वह भी **[समयः]** कालपदार्थ **[स्वभावसमवस्थितः]** अविनाशीस्वभावमें स्थिररूप **[भवति]** होता है ॥ भावार्थ—कालपदार्थका समयपर्याय है उसमें पूर्वपर्यायका नाश उत्तरपर्यायका उत्पाद अवश्य होता है, क्योंकि जब पुद्गलपरमाणु पूर्वकालाणुको छोड़कर आगेकी कालाणुके

तव्यः, स च समयपदार्थ एव । तस्य खल्वेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे समुत्पादप्रध्वंसौ संभवतः । यो हि यस्य वृत्तिमतो यस्मिन् वृत्त्यंशे तद्वृत्त्यंशविशिष्टत्वेनोत्पादः स एव तस्यैव वृत्तिमतस्तस्मिन्नेव वृत्त्यंशे पूर्ववृत्त्यंशविशिष्टत्वेन प्रध्वंसः । यद्येवमुत्पादव्ययावेकस्मिन्नपि वृत्त्यंशे संभवतः समयपदार्थस्य कथं नाम निरन्वयत्वं, यतः पूर्वोत्तरवृत्त्यंशविशिष्टत्वाभ्यां युगपदुपात्तप्रध्वंसोत्पादस्यापि स्वभावेनाप्रध्वस्तानुत्पन्नत्वादवस्थितत्वमेव न भवेत् । एवमेकस्मिन् वृत्त्यंशे समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं सिद्धम् ॥ ५० ॥

प्रध्वंसस्तदाधारभूताङ्गुलिद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । अथवा स्वस्वभावरूपसुखेनोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैवात्मद्रव्यस्य पूर्वानुभूताकुलत्वदुःखरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारभूतपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । अथवा मोक्षपर्यायरूपेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे रत्नत्रयात्मकनिश्चयमोक्षमार्गपर्यायरूपेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारपरमात्मद्रव्यत्वेन ध्रौव्यमिति द्रव्यसिद्धिः । तथा वर्त्तमानसमयरूपपर्यायेणोत्पादस्तस्मिन्नेव क्षणे तस्यैव कालाणुद्रव्यस्य पूर्वसमयरूपपर्यायेण प्रध्वंसस्तदुभयाधारभूताङ्गुलिद्रव्यस्थानीयेन कालाणुद्रव्यरूपेण ध्रौव्यमिति कालद्रव्यसिद्धिरित्यर्थः ॥ ५० ॥ अथ पूर्वो-

---

समीप मंदगतिसे जाता है वहां समयपर्याय उत्पन्न होता है । इसकारण पूर्वका नाश और आगेकी पर्यायकी उत्पत्ति एकसमय होती है । यहांपर कोई प्रश्न करे कि कालद्रव्यमें उत्पाद व्यय होना क्यों कहते हो समयपर्यायको ही उत्पाद व्ययसहित होना मानलेना चाहिये ? तो इसका समाधान इसतरहसे है कि—जो समयपर्यायका ही उत्पाद व्यय मानाजावे तो एकसमयमें उत्पाद—व्यय नहीं वनसकते, क्योंकि उत्पाद—व्यय ये दोनों प्रकाश—अंधकारकी तरह आपसमें विरोधी हैं । इसकारण एकपर्यायसमयका उत्पाद—व्यय एक कालमें किसतरह होसकता है ? नहीं होसकता । यदि ऐसा कहो "कि एकसमयमें क्रमसे समयपर्यायका उत्पाद—व्यय होता है" तो ऐसाभी ठीक नहीं माल्रम होता, क्योंकि समय अत्यंत सूक्ष्म है उसमें क्रमसे भेद हो ही नहीं सकता । इसीलिये एकसमयमें समयपर्यायका उत्पाद व्यय नहीं संभव होता है । कालाणूरूप द्रव्यसमयको अंगीकार करनेसे उत्पाद—व्यय एकही समयमें अच्छीतरह सिद्ध होते हैं । इसकारण कालाणूरूप द्रव्यसमय ही अविनाशी ध्रौव्यद्रव्य स्वीकार करना चाहिये। उस द्रव्यकालाणूके एकसमयमें पूर्वसमयपर्यायका नाश और उत्तरसमयपर्यायका उत्पाद होता है तथा द्रव्यपने ध्रौव्य है । इसप्रकार द्रव्यके ध्रौव्य माननेसे एकसमयमें उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य अच्छीतरह सिद्ध होते हैं । यदि कालाणूद्रव्य न मानाजावे तो ये उत्पादादि तीनों भाव सिद्ध नहीं होसके । जैसे हाथकी उंगली टेढी करनेसे उस उंगलीके पूर्व सीधे पर्यायका नाश होता है, वक्र (टेढा) पर्यायका उत्पाद होता है, और अंगुलीपने ध्रौव्य है; उसीप्रकार कालद्रव्यके उत्पाद व्यय और ध्रौव्य जानने चाहिये ॥ ५० ॥ आगे सब समय-

अथ सर्ववृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यवत्त्वं साधयति;—

एकम्मि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा ।
समयस्स सव्वकालं एस हि कालाणुसब्भावो ॥ ५१ ॥

एकस्मिन् सन्ति समये संभवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः ।
समयस्य सर्वकालं एष हि कालाणुसद्भावः ॥ ५१ ॥

अस्ति हि समस्तेष्वपि वृत्त्यंशेषु समयपदार्थस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वमेकस्मिन् वृत्त्यंशे तस्य दर्शनात्, उपपत्तिमच्चैतत् विशेषास्तित्वस्य सामान्यास्तित्वमन्तरेणानुपपत्तेः । अयमेव च समयपदार्थस्य सिद्ध्यति सद्भावः । यदि विशेषसामान्यास्तित्वे सिद्ध्यतस्तदा त अस्तित्वमन्तरेण न सिद्ध्यतः कथञ्चिदपि ॥ ५१ ॥

अथ कालपदार्थस्यास्तित्वान्यथानुपपत्त्या प्रदेशमात्रत्वं साधयति;—

क्तप्रकारेण यथा वर्त्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितम् तथा सर्वसमयेष्वस्तीति निश्चिनोति;—**एगम्हि संति समये संभवठिदिणाससण्णिदा अट्ठा** एकस्मिन्समये सन्ति विद्यन्ते । के । सम्भवस्थितिनाशसंज्ञिता अर्थाः धर्म्माः स्वभावा इति यावत् । कस्य सम्बन्धिनः ? **समयस्स** समयरूपपर्यायस्योत्पादकत्वात् समयः कालाणुस्तस्य **सव्वकालं** यद्येकस्मिन् वर्त्तमानसमये सर्वदा तथैव **एस हि कालाणुसब्भावो** एष प्रत्यक्षीभूतो हि स्फुटमुत्पादव्ययध्रौव्यात्मककालाणुसद्भाव इति । तद्यथा—यथा पूर्वमेकसमयोत्पादप्रध्वंसाधारेणाङ्गुलिद्रव्यादिदृष्टान्तेन वर्त्तमानसमये कालद्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्यत्वं स्थापितं तथा सर्वसमयेषु ज्ञातव्यमिति । अत्र यद्यप्यतीतानन्तकाले दुर्लभायाः सर्वप्रकारोपादेयभूतायाः सिद्धगतेः काललब्धिरूपेण बहिरङ्गसहकारी भवति कालस्तथापि निश्चयनयेन निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानसमस्तपरद्रव्येच्छानिरोधलक्षणरूपा तपश्चरणरूपा या तु निश्चयचतुर्विधाराधना सैव तत्रोत्पादनकारणं न च कालस्तेन कारणेन स हेय इति भावार्थः ॥ ५१ ॥ अथोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकास्तित्वावष्ट-

पर्यायोंमें कालपदार्थके उत्पाद व्यय ध्रौव्य सिद्ध होते हैं ऐसा कहते हैं;—[**एकस्मिन् समये**] एक समयपर्यायमें [**समयस्य**] कालाणूरूप कालपदार्थके [**संभवस्थितिनाशसंज्ञिताः**] उत्पाद स्थिति नाश नामके [**अर्थाः**] तीनों भाव [**सन्ति**] प्रवर्तते हैं [**एषः हि**] यह उत्पाद व्यय ध्रौव्यरूप ही [**कालाणुसद्भावः**] कालद्रव्यका अस्तित्व [**सर्वकालं**] सदाकाल रहता है ॥ **भावार्थ**—एक ही समय कालपदार्थके उत्पाद–व्यय और ध्रौव्य ये तीनों भाव होते हैं । और जैसे कालद्रव्य एकसमयमें उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप परिणमन करता है उसीप्रकार सबसमयोंमें भी परिणमता है । कालाणूद्रव्य तो ध्रौव्य रहता है पूर्वसमयका नाश और आगेके समयका उत्पाद होता है । इसतरह ये तीनों भाव हमेश सिद्ध होवे हैं ॥ ५१ ॥ आगे कालपदार्थ प्रदेशमात्र कालाणुरूप न होवे तो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप अस्तित्व

जस्स ण संति पदेसा पदेसमेत्तं व तच्चदो णादुं ।
सुण्णं जाण तमत्थं अत्थंतरभूदमत्थीदो ॥ ५२ ॥

यस्य न सन्ति प्रदेशाः प्रदेशमात्रं वा तत्त्वतो ज्ञातुम् ।
शून्यं जानीहि तमर्थमर्थान्तरभूतमस्तित्वात् ॥ ५२ ॥

अस्तित्वं हि तावदुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मिका वृत्तिः । न खलु सा प्रदेशमन्तरेण सूत्र्यमाणा कालस्य संभवति, यतः प्रदेशाभावे वृत्तिमदभावः । स तु शून्य एव, अस्तित्वसंज्ञाया वृत्तेरर्थान्तरभूतत्वात् । न च वृत्तिरेव केवला कालो भवितुमर्हति, वृत्तेर्हि वृत्तिमन्तमन्तरेणानुपपत्तेः । उपपत्तौ वा कथमुत्पादव्ययध्रौव्यैक्यात्मकत्वं । अनाद्यन्तनिरन्तरानेकांशवशीकृतैकात्मकत्वेन पूर्वपूर्वांशप्रध्वंसादुत्तरोत्तरांशोत्पादादेकात्मध्रौव्यादितिचेत्। नैवं । यस्मिन्नंशे प्रध्वंसो यस्मिंश्चोत्पादस्तयोः सह प्रवृत्त्यभावात् कुतस्त्यमैक्यं । तथा प्रध्वस्तांशस्य सर्वथास्तमितत्वादुत्पद्यमानांशस्य वा संभवितात्मलाभत्वात्प्रध्वंसोत्पादैक्यव-

---

र्मेन कालस्यैकप्रदेशत्वं साधयति;—**जस्स ण संति** यस्य पदार्थस्य न सन्ति न विद्यन्ते । के ? **पएसा** प्रदेशाः **पएसमेत्तं तु** प्रदेशमात्रमेकप्रदेशप्रमाणं पुनस्तद्वस्तु **तच्चदो णादुं** तत्त्वतः पदार्थतो ज्ञातुं शक्यते । **सुण्णं जाण तमत्थं** यस्यैकोऽपि प्रदेशो नास्ति तमर्थं पदार्थं शून्यं जानीहि हे शिष्य ! कस्माच्छून्यमिति चेत् ? **अत्थंतरभूदं** एकप्रदेशाभावे सत्यर्थान्तरभूतं भिन्नं भवति यतः कारणात् । कस्याः सकाशाद्भिन्नम् ? **अत्थीदो** उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकसत्ताया इति । तथाहि—कालपदार्थस्य तावत्पूर्वसूत्रोदितप्रकारेणोत्पादव्ययध्रौव्यात्मकमस्तित्वं विद्यते तच्चास्तित्वं प्रदेशं विना न घटते । यश्च प्रदेशवान् स कालपदार्थ इति । अथ मतं कालद्रव्याभावेऽप्युत्पादव्ययध्रौव्यत्वं घटते । नैवं । अङ्गुलिद्रव्याभावे वर्त्तमानवक्रपर्यायोत्पादो भूतर्जुपर्यायस्य

भी नहीं बनसकता यह सिद्ध करते हैं;—[**यस्य**] जिस द्रव्यके [**प्रदेशाः**] क्षेत्रके निर्विभाग अनेक अंश [**न सन्ति**] नहीं हैं [**च**] और [**प्रदेशमात्रं**] एकप्रदेशमात्रभी [**तत्त्वतः**] स्वरूपसे [**ज्ञातुं**] जाननेको ['**न**'] नहीं है तो [**तं अर्थं**] उस द्रव्यको [**शून्यं**] अस्तित्वरहित अर्थात् अवस्तुभूत [**जानीहि**] तुम जानो ॥ **भावार्थ**—पदार्थका अस्तित्व उत्पाद—व्यय—ध्रौव्यसे होता है । इसलिये वह अस्तित्व जो द्रव्यके प्रदेश न होवें तो नहीं होता। यदि कालद्रव्यका एकप्रदेश भी न मानाजावे तो उस कालपदार्थका मूलसे नाश होजावेगा । यदि कोई ऐसा कहे कि समयपर्याय ही मानो प्रदेशमात्र कालाणुद्रव्य माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तो उससे यह पूछना है कि, पर्यायवाले ध्रौव्यके विना समयपर्याय किसतरह होसकता है ? जो ऐसा कहो कि द्रव्यविना ही समयपर्याय उत्पन्न होता है तो उत्पादव्ययध्रौव्यकी एकता एककाल किसतरह होसकती है? जो ऐसा मानो "कि अनादिअनंत निरंतर अनेकसमयपर्याय अंशोंकी परंपरामें पूर्वपूर्व समय अंशका नाश होता है अगले अंशका उत्पाद है

तिध्रौव्यमेव कुतस्त्यं । एवं सति नश्यति त्रैलक्षण्यं, उल्लसति क्षणभङ्गः, अस्तमुपैति नित्यं द्रव्यं, उदीर्यन्ते क्षणक्षयिणो भावाः । ततस्तत्त्वविप्लवभयात्कश्चिदवश्यमाश्रयो भूतो वृत्तेर्वृत्तिमाननुसर्तव्यः । स तु प्रदेश एवाप्रदेशस्यान्वयव्यतिरेकानुविधायित्वाप्रसिद्धेः । एवं सप्रदेशत्वे हि कालस्य कुत एकद्रव्यनिबन्धनं लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वं नाभ्युपगम्येत । पर्यायसमयाप्रसिद्धेः । प्रदेशमात्रं हि द्रव्यसमयमतिक्रामतः परमाणोः पर्यायः समयः प्रसिद्ध्यति । लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वे तु द्रव्यसमयस्य कुतस्त्या तत्सिद्धिः । लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशैकद्रव्यत्वेपि तस्यैकप्रदेशमतिक्रामतः परमाणोस्तत्सिद्धिरिति

विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं । कस्य भविष्यति ? न कस्यापि। तथा कालद्रव्याभावे वर्त्तमानसमयरूपोत्पादो भूतसमयरूपो विनाशस्तदुभयाधारभूतं ध्रौव्यं । कस्य भविष्यति ? न कस्यापि । एवं सत्येतदायाति—अन्यस्य भङ्गोऽन्यस्योत्पादोऽन्यस्य ध्रौव्यमिति सर्वं वस्तुस्वरूपं विप्लवते । तस्माद्वस्तुविप्लवभयादुत्पादव्ययध्रौव्याणां कोऽप्येक आधारभूतोऽस्तीत्यभ्युपगन्तव्यः। स चैकप्रदेशरूपः कालाणुपदार्थ एवेति । अत्रातीतानन्तकाले ये केचन सिद्धसुखभाजनं जाता, भाविकाले चात्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवदित्यादिविशेषेण विशिष्टसिद्धसुखस्य भाजनं भविष्यन्ति ते सर्वेऽपि

परंपरासंतान द्रव्यपनेसे ध्रौव्य है। इसतरह द्रव्यविना ही ये तीनों भाव सधसकते हैं" तो ऐसा माननेसे तीनों भाव एकसमयमें सिद्ध नहीं होसकते, क्योंकि जिस अंशका नाश है उसका नाश ही है और जिसका उत्पाद है वह उत्पादरूपही है। उत्पाद—व्यय एकमें किसतरह होसकते हैं और ध्रौव्य भी कहां रहसक्ता है। और ऐसा माननेपर इन भावोंके नाश होनेका प्रसंग आता है तथा बौद्धमतका प्रवेश होता है। ऐसा होनेसे नित्यपनेका अभाव होजाइगा और द्रव्य क्षणविनाशी होने लगैगा इत्यादि अनेक दोष आजावेंगे। इसकारण समयपर्यायका आधारभूत प्रदेशमात्र कालद्रव्य अवश्य स्वीकार करना चाहिये। प्रदेशमात्रद्रव्यमें एक ही समय अच्छीतरह उत्पाद—व्यय—ध्रौव्य सध जाते हैं। जो कोई ऐसा कहे "कि कालद्रव्यके जब प्रदेशकी स्थापना की तो असंख्यात कालाणुओंको भिन्नमाननेकी क्या आवश्यता है ? एक अखंड लोकपरिमाण द्रव्य मानलेना चाहिये। उसीसे समय उत्पन्न होसकता है" तो उसका समाधान यह है कि जो अखंडकालद्रव्य होवे तो समयपर्याय उत्पन्न नहीं होसकता, क्योंकि पुद्गलपरमाणू जब एक कालाणूको छोड़कर दूसरी कालाणूप्रति मंदगतिसे जाता है तब उसजगह दोनों कालाणू जुदे २ होनेसे समयका भेद होता है। जो एक अखंड लोकपरिमाण कालद्रव्य होवे तो समयपर्यायकी सिद्धि किसतरह होसकती है। यदि कहो "कि कालद्रव्य लोकपरिमाण असंख्यातप्रदेशी है उसके एकप्रदेशसे दूसरे प्रदेश प्रति जब पुद्गलपरमाणु जाइगा तब समयपर्यायकी सिद्धि होजायगी" तो उसका उत्तर यह है कि ऐसा कहनेसे बड़ाभारी दोष आवेगा। वह इसप्रकार है—एक अखंडकालद्रव्यके एकप्रदेशसे दूसरे

चेन्नैवं, एकदेशवृत्तेः सर्ववृत्तित्वविरोधात् । सर्वस्यापि हि कालपदार्थस्य यः सूक्ष्मो वृत्त्यंशः स समयो न तत्तदेकदेशस्य, तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वप्रसंगाच्च । तथाहि—प्रथममेकेन प्रदेशेन वर्तते ततोऽन्येन ततोप्यन्यतरेणेति तिर्यक्प्रचयोप्यूर्ध्वप्रचयीभूय प्रदेशमात्रं द्रव्यमवस्थापयति । ततस्तिर्यक्प्रचयस्योर्ध्वप्रचयत्वमनिच्छता प्रथममेव प्रदेशमात्रं कालद्रव्यं व्यवस्थापयितव्यम् ॥ ५२ ॥

अथैवं ज्ञेयतत्त्वमुक्त्वा ज्ञानज्ञेयविभागेनात्मानं निश्चिन्वन्नात्मनोत्यन्तविभक्तत्वाय व्यवहारजीवत्वहेतुमालोचयति;—

सपदेसेहिं समग्गो लोगो अट्ठेहिं णिट्ठिदो णिच्चो ।
जो तं जाणदि जीवो पाणचदुक्काहिसंबद्धो ॥ ५३ ॥

स्वप्रदेशैः समग्रो लोकोऽर्थैर्निष्ठितो नित्यः ।
यस्तं जानाति जीवः प्राणचतुष्काभिसंबद्धः ॥ ५३ ॥

एवमाकाशपदार्थादाकालपदार्थाच्च समस्तैरेव संभावितप्रदेशसद्भावैः पदार्थैः समग्र

काललब्धिवशेनैव । तथापि तत्र निजपरमात्मोपादेयरुचिरूपं वीतरागचारित्राविनाभूतं यन्निश्चयसम्यक्त्वं तस्यैव मुख्यत्वं, न च कालस्य, तेन स हेय इति । तथा चोक्तम्—"किं पलविएणबहुणा जे सिद्धा णरवरा गये काले सिज्झिहहिं जेवि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं" ॥ ५२ ॥ एवं निश्चयकालव्याख्यानमुख्यत्वेनाष्टमस्थले गाथात्रयं गतम् । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "दव्वं जीवमजीवं" इत्याद्येकोनविंशतिगाथाभिः स्थलाष्टकेन **विशेषज्ञेयाधिकारः** समाप्तः ॥

प्रदेश प्रति जानेसे समयपर्यायका भेद नहीं होता, क्योंकि अखंडद्रव्यसे एकप्रदेशमें समयपर्यायके होनेपर सभी जगह समयपर्याय है । कालकी एकतासे समयका भेद नहीं होसका । इसलिये ऐसा है कि सबसे सूक्ष्म कालपर्याय समय है । वह कालाणूके भिन्न २ पनेसे सिद्ध होता है, एकतासे नहीं । और भी कालके अखंड माननेसे दोष आता है—कालके तिर्यक्प्रचय नहीं है ऊर्ध्वप्रचय है । जो कालको असंख्यातप्रदेशी मानाजावे तो कालके तिर्यक्प्रचय होना चाहिये वही तिर्यक् ऊर्ध्वप्रचय होजावेगा । वह इसतरहसे है—असंख्यातप्रदेशी काल प्रथम तो एकप्रदेशकर प्रवृत्त होता है इससे आगे अन्यप्रदेशकर प्रवृत्त होता है उससे भी आगे अन्यप्रदेशकर प्रवृत्त होता है इसतरह क्रमसे असंख्यातप्रदेशोंसे प्रवृत्त होवै तो तिर्यक्प्रचयही ऊर्ध्वप्रचय होजावेगा । एक एक प्रदेशविषें कालद्रव्यको क्रमसे प्रवृत्त होनेसे कालद्रव्यभी प्रदेशमात्र ही स्थित (सिद्ध) होता है । इसकारण जो पुरुष तिर्यक्प्रचयको ऊर्ध्वप्रचयदोष नहीं चाहते हैं वे पहलेही प्रदेशमात्र कालद्रव्यको मानें जिससे कि कालद्रव्यकी सिद्धि अच्छीतरह होवै ॥ ५२ ॥ इसतरह पूर्वोक्त **विशेषज्ञेयतत्त्वका** वर्णन किया । आगे ज्ञान-ज्ञेयसे आत्माका निश्चयकरके उसको समस्त परभावोंसे जुदा दिखलानेके लिये व्यवहारजीवपनेका कारण

एव यः समाप्तिं नीतो लोकस्तं खलु तदन्तःपातित्वेप्यचिन्त्यस्वपरपरिच्छेदशक्तिसंपदा जीव एव जानीते नत्वितरः । एवं शेषद्रव्याणि ज्ञेयमेव, जीवद्रव्यं तु ज्ञेयं ज्ञानं चेति ज्ञानज्ञेयविभागः । अथास्य जीवस्य सहजविजृम्भितानन्तज्ञानशक्तिहेतुके त्रिसमयावस्थायित्वलक्षणे वस्तुस्वरूपभूततया सर्वदानपायिनि निश्चयजीवत्वे सत्यपि संसारावस्थायामनादिप्रवाहप्रवृत्तपुद्गलसंश्लेषदूषितात्मतया प्राणचतुष्काभिसंबद्धत्वं व्यवहारजीवत्वहेतुर्विभक्तव्योऽस्ति ॥ ५३ ॥

अतःपरं शुद्धजीवस्य द्रव्यभावप्राणैः सह भेदनिमित्तं "सपदेसेहिं समग्गो" इत्यादि यथाक्रमेण गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावनाव्याख्यानं करोति । तद्यथा । अथ ज्ञानज्ञेयज्ञापनार्थं तथैवात्मनः प्राणचतुष्केन सह भेदभावनार्थं वा सूत्रमिदं प्रतिपादयति;—**लोगो** लोको भवति । कथंभूतः । **णिट्ठिदो** निष्ठितः समाप्तिं नीतो भृतो वा । कैः कर्तृभूतैः । **अट्ठेहिं** सहजशुद्धबुद्धैकस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयो येऽर्थास्तैः । पुनरपि किंविशिष्टः । **सपदेसेहिं समग्गो** स्वकीयप्रदेशैः समग्रः परिपूर्णः । अथवा पदार्थैः कथंभूतैः । सप्रदेशैः प्रदेशसहितैः । पुनरपि किंविशिष्टो लोकः । **णिच्चो** द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः लोकाकाशापेक्षया वा । अथवा नित्यो न केनापि पुरुषविशेषेण कृतः **जो तं जाणदि** यः कर्ता तं ज्ञेयभूतलोकं जानाति **जीवो** स जीवपदार्थो भवति । एतावता किमुक्तं भवति योऽसौ विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावो जीवः स ज्ञानं ज्ञेयश्च भण्यते । शेषपदार्थास्तु ज्ञेया एवेति ज्ञातृज्ञेयविभागः । पुनरपि किंविशिष्टो जीवः । **पाणचउक्केण संबद्धो** यद्यपि निश्चयेन स्वतःसिद्धपरमचैतन्यस्वभावेन निश्चयप्राणेन जीव इति तथा व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादायुराद्यशुद्धप्राणचतुष्केनापि सम्बद्धः सन् जीवति । तच्च

कहते हैं;—[**सप्रदेशैः**] अपने २ प्रदेशोंसे संयुक्त [**अर्थैः**] सब पदार्थोंसे [**समग्रः**] भराहुआ ऐसा जो [**लोकः**] यह तीनलोक है वह [**नित्यः**] अनादिअनंत [**निष्ठितः**] निश्चल ठहरा हुआ है [**तं**] उस द्रव्यस्वरूपलोकको [**यः**] जो द्रव्य जानता है [**सः**] वह द्रव्य [**जीवः**] चेतनालक्षणवाला जीवनामा जानना चाहिये। वह जीवद्रव्य [**प्राणचतुष्काभिसंबद्धः**] इंद्रिय—बल—आयु—उच्छ्वास इन चार प्राणोंसे युक्त है ॥ **भावार्थ**—यह लोक ६ द्रव्योंसे रचित है सदाकाल अविनाशी है । तथा इसलोकमें छह द्रव्योंमेंसे अचिंत्यशक्ति और अपना-परका जाननेवाला एक जीवद्रव्य ही है दूसरा कोई नहीं । इससे यह वातसिद्ध हुई कि अन्य पांचद्रव्य तो ज्ञेय हैं और जीवद्रव्य ज्ञानभी है तथा ज्ञेयभी है, ऐसे ज्ञानज्ञेयका भेद जानना । और यद्यपि यह जीव वस्तुस्वरूपसे स्वाभाविक उत्पन्न ज्ञानादि शक्तिसहित तीनोंकाल अविनाशी टंकोत्कीर्ण है तौभी संसार अवस्थामें अनादिपुद्गलके संयोगसे दूषित हुआ चार प्राणोंसे संबंध रखता है । वे चार प्राण व्यवहारजीवके कारण हैं । इन चार प्राणोंसे इस जीवका भेद करने योग्य है, जिससे कि यह जीव साहजिक (स्वाभाविक) अ-

अथ के प्राणा इत्यावेदयति;—

इंदियपाणो य तधा बलपाणो तह य आउपाणो य ।
आणप्पाणप्पाणो जीवाणं होंति पाणा ते ॥ ५४ ॥

इन्द्रियप्राणश्च तथा बलप्राणस्तथा चायुःप्राणश्च ।
आनपानप्राणो जीवानां भवन्ति प्राणास्ते ॥ ५४ ॥

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रपञ्चकमिन्द्रियप्राणाः, कायवाङ्मनस्त्रयं बलप्राणाः, भवधारणनिमित्तमायुःप्राणः । उदञ्चनन्यञ्चनात्मको मरुदानपानप्राणः ॥ ५४ ॥

अथ प्राणानां निरुक्त्या जीवत्वहेतुत्वं पौद्गलिकत्वं च सूत्रयति;—

पाणेहिं चदुहिं जीवदि जीवस्सदि जो हि जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण पोग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता ॥ ५५ ॥

प्राणैश्चतुर्भिर्जीवति जीविष्यति यो हि जीवितः पूर्वम् ।
स जीवः प्राणाः पुनः पुद्गलद्रव्यैर्निर्वृत्ताः ॥ ५५ ॥

शुद्धनयेन जीवस्वरूपं न भवतीति भेदभावना ज्ञातव्येत्यभिप्रायः ॥ ५३ ॥ अथेन्द्रियादिप्राणचतुष्कस्वरूपं प्रतिपादयति;—अतीन्द्रियानन्तसुखाभावादात्मनो विलक्षण इन्द्रियप्राणः, मनोवाक्कायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्याद्विसदृशो बलप्राणः, अनाद्यनन्तस्वभावात्परमात्मपदार्थाद्विपरीतः साद्यन्त आयुःप्राणः, उच्छ्वासनिश्वासजनितखेदरहिताच्छुद्धात्मतत्त्वात्प्रतिपक्षभूत आनपानप्राणः । एवमायुरिन्द्रियबलोच्छ्वासरूपेणाभेदनयेन जीवानां सम्बन्धिनश्चत्वारः प्राणा भवन्ति । ते च शुद्धनयेन जीवाद्भिन्ना भावयितव्या इति ॥ ५४ ॥ अथ त एव प्राणा भेदनयेन दशविधा भवन्तीत्यावेदयति;—

पंचवि इंदियपाणा मणवचिकाया य तिण्णि बलपाणा ।
आणप्पाणप्पाणो आउगपाणेण होंति दसपाणा ॥ १ ॥

इन्द्रियप्राणः पञ्चविधः, त्रिधा बलप्राणः, पुनश्चैक आनपानप्राणः, आयुःप्राणः । इति

पने निश्चयस्वभावको प्राप्त होजावे ॥ ५३ ॥ आगे व्यवहारजीवके कारण जो प्राण कहे उन्हींको कहते हैं;—[**इन्द्रियप्राणः**] पांच इन्द्रियप्राण [**च तथा**] और इसीतरह [**बलप्राणः**] तीन बलप्राण [**च तथा**] और इसीप्रकार [**आयुःप्राणः**] आयुप्राण [**च**] और [**आनपानप्राणाः**] उस्वासनिस्वास नामा प्राण [**ते**] ये सब [**प्राणाः**] १० प्राण [**जीवानां**] जीवोंके होते हैं ॥ **भावार्थ—**स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-कर्ण ये पांच इंद्रियप्राण, कायबल १ वचनबल २ मनोबल ३ ये तीन बलप्राण, मनुष्यादिपर्यायकी स्थितिका हेतु आयुःप्राण और श्वासोच्छ्वासप्राण इसप्रकार १० विशेषप्राण हैं और चार सामान्य प्राण सभी जीवोंके होते हैं ॥५४॥ आगे इन प्राणोंको व्यवहार जीवके कारण कहते हुए पुद्गलीक हैं ऐसा दिखाते हैं;—[**यः**] जो चैतन्यस्वरूप

प्राणसामान्येन जीवति जीविष्यति जीवितवांश्च पूर्वमिति जीवः। एवमनादिसंतानप्रवर्तमानतया त्रिसमयावस्थत्वात्प्राणसामान्यं जीवस्य जीवत्वहेतुरस्त्येव। तथापि तन्न जीवस्य स्वभावत्वमवाप्नोति पुद्गलद्रव्यनिर्वृत्तत्वात्॥ ५५॥

अथ प्राणानां पौद्गलिकत्वं साधयति;—

जीवो पाणणिबद्धो बद्धो मोहादिएहिं कम्मेहिं।
उवभुंजं कम्मफलं बज्झदि अण्णेहिं कम्मेहिं॥ ५६॥

जीवः प्राणनिबद्धो बद्धो मोहादिकैः कर्मभिः।
उपभुञ्जानः कर्मफलं बध्यतेऽन्यैः कर्मभिः॥ ५६॥

यतो मोहादिभिः पौद्गलिककर्मभिर्बद्धत्वाज्जीवः प्राणनिबद्धो भवति। यतश्च प्राणनिब-

---

भेदेन दश प्राणास्तेऽपि चिदानन्दैकस्वभावात्परमात्मनो निश्चयेन भिन्ना ज्ञातव्या इत्यभिप्रायः॥ १॥ अथप्राणशब्दव्युत्पत्त्या जीवस्य जीवत्वं प्राणानां पुद्गलस्वरूपत्वं च निरूपयति;— **पाणेहिं चदुहिं जीवदि** यद्यपि निश्चयेन सत्ताचैतन्यसुखबोधादिशुद्धभावप्राणैर्जीवति तथापि व्यवहारेण वर्त्तमानकाले द्रव्यभावरूपैश्चतुर्भिरशुद्धप्राणैर्जीवति **जीवस्सदि** जीविष्यति भाविकाले **जो हि जीविदो** यो हि स्फुटं जीवितः **पुव्वं** पूर्वकाले **सो जीवो** स जीवो भवति **ते पाणा** ते पूर्वोक्ताः प्राणाः **पुग्गलदव्वेहिं णिव्वत्ता** उदयागतपुद्गलकर्मणा निर्वृत्ता निष्पन्ना इति। तत एव कारणात्पुद्गलद्रव्यविपरीतादनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्याद्यनन्तगुणस्वभावात्परमात्मतत्त्वाद्भिन्ना भावयितव्या इति भावः॥ ५५॥ अथ प्राणानां यत्पूर्वसूत्रोदितं पौद्गलिकत्वं तदेव दर्शयति;—**जीवो पाणणिबद्धो** जीवः कर्त्ता चतुर्भिः प्राणैर्निबद्धः सम्बद्धो भवति। कथंभूतः सन्। **बद्धो** शुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षादिविलक्षणैर्बद्धः। कैर्बद्धः। **मोहादिएहिं कम्मेहिं** मोहनीयादिकर्मभिर्बद्धस्ततो ज्ञायते मोहादिकर्मभिर्बद्धः सन् प्राणनिबद्धो भवति, न च

आत्मा [**हि**] निश्चयसे [**चतुर्भिः प्राणैः**] पहले कहेहुए इंद्रियादि चार प्राणोंसे [**जीवति**] जीता है [**जीविष्यति**] जीवेगा [**पूर्वं जीवितः**] पहले जीता था [**सः**] वह [**जीवः**] जीवद्रव्य है [**पुनः**] और [**प्राणाः**] चारों प्राण [**पुद्गलद्रव्यैः**] पुद्गलद्रव्यसे [**निर्वृत्ताः**] रचेगये हैं॥ **भावार्थ**—यद्यपि यह जीव निश्चयसे आत्मीक निजलक्षणरूप सुख सत्ता अवबोध चैतन्यरूप प्राणोंकर सदा अविनाशी जीवित है तौभी संसारअवस्थामें अनादिकालसे परद्रव्यसंतानके संबंधसे तीनकालवर्ती चारोंगतिके पर्यायोंमें जीवितव्यके कारण व्यवहार प्राणोंसे जीवित कहागया है। वास्तवमें ये चारोंप्राण आत्माके निजस्वरूप नहीं है पुद्गलद्रव्यसे रचित हैं। इसलिये परभावरूपही हैं॥ ५५॥ आगे प्राणोंको पुद्गलीक दिखलाते हैं;—[**मोहादिकैः कर्मभिः**] मोहरागद्वेषभावआदि पुद्गलीक अनेककर्मोंसे [**बद्धः**] बंधाहुआ [**जीवः**] आत्मा [**प्राणनिबद्धः**] चार प्राणोंसे बंधा है और उन प्राणोंके संबंधसे ही [**कर्मफलं**]

त्वात्पौद्गलिककर्मफलमुपभुञ्जानः पुनरप्यन्यैः पौद्गलिककर्मभिर्बध्यते । ततः पौद्गलिककर्मकार्यत्वात्पौद्गलिककर्मकारणत्वाच्च पौद्गलिका एव प्राणा निश्चीयन्ते ॥ ५६ ॥

अथ प्राणानां पौद्गलिककर्मकारणत्वमुन्मीलयति;—

पाणाबाधं जीवो मोहपदेसेहिं कुणदि जीवाणं ।
जदि सो हवदि हि बंधो णाणावरणादिकम्मेहिं ॥ ५७ ॥

प्राणाबाधं जीवो मोहप्रद्वेषाभ्यां करोति जीवयोः ।
यदि स भवति हि बन्धो ज्ञानावरणादिकर्मभिः ॥ ५७ ॥

प्राणैर्हि तावज्जीवः कर्मफलमुपभुङ्क्ते, तदुपभुञ्जानो मोहप्रद्वेषावाप्नोति ताभ्यां स्वजीवप-

---

कर्मबन्धरहित इति । तत एव ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मोदयजनिता इति । तथाविधः सन् किं करोति । **उवभुंजदि कम्मफलं** परमसमाधिसमुत्पन्ननित्यानन्दैकलक्षणसुखामृतभोजनमलभमानः सन् कटुकविषसमानमपि कर्मफलमुपभुङ्क्ते । **बज्झदि अण्णेहि कम्मेहिं** तत्कर्मफलमुपभुञ्जानः सन्नयं जीवः कर्मरहितात्मनो विसदृशैरन्यकर्मभिर्नवतरकर्मभिर्बध्यते । यतः कारणात्कर्मफलं भुञ्जानो नवतरकर्माणि बध्नाति, ततो ज्ञायते प्राणा नवतरपुद्गलकर्मणां कारणभूता इति ॥ ५६ ॥ अथ प्राणा नवतरपुद्गलकर्मबन्धस्य कारणं भवन्तीति पूर्वोक्तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;—**पाणाबाधं** आयुरादिप्राणानां बाधां पीडां **कुणदि** करोति । स कः । **जीवो** जीवः । काभ्यां कृत्वा । **मोहपदेसेहिं** सकलविमलकेवलज्ञानप्रदीपेन मोहान्धकारविनाशकात्परमात्मनो विपरीताभ्यां मोहप्रद्वेषाभ्यां । केषां प्राणबाधां करोति ? **जीवाणं** एकेन्द्रियप्रमुखजीवानाम् । **जदि** यदि चेत् **सो हवदि बंधो** तदा स्वात्मोपलम्भप्राप्तिरूपान्मोक्षाद्विपरीतो मूलोत्तरप्रकृत्यादिभेदभिन्नः स परमागमप्रसिद्धो हि स्फुटं बन्धो भवति । कैः कृत्वा । **णाणा-**

उदयअवस्थाको प्राप्तहुए कर्मोंके फलको [**उपभुञ्जानः**] भोगता हुआ [**अन्यैः कर्मभिः**] अन्य नवीन ज्ञानावरणादि कर्मोंसे [**बध्यते**] बंधता है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा राग द्वेष मोहभावोंकर परिणमन करनेसे ही पुद्गलीक चार प्राणोंको धारण करता है । और यह पुद्गलीक मोहादिक भावोंसे बंधाहुआ प्राणोंसे बद्ध होता है । इसकारण इन प्राणोंका कारण पुद्गलद्रव्य है । कारणके समान ही कार्य होता है इसलिये ये प्राणभी पुद्गलीक हैं । और इन प्राणोंकर उदयको प्राप्तहुए कर्मोंके भोगसे नवीन पुद्गलीककर्म बंधते हैं इसकारण ये प्राण पुद्गलके कारण हैं, इसतरहभी प्राण पुद्गलीक जानने। इससे यह बात सिद्ध हुई कि ये प्राण पुद्गलसे उत्पन्न हुए हैं और पुद्गलको उत्पन्न भी करते हैं इसवास्ते पुद्गलीक हैं ॥ ५६ ॥ आगे नूतन पुद्गलीककर्मके कारण प्राण हैं ऐसा दिखलाते हैं;—[**यदि**] जो [**सः**] वह प्राणसंयुक्त [**जीवः**] संसारी आत्मा [**मोहप्रद्वेषाभ्यां**] रागद्वेषभावोंसे [**जीवयोः**] स्वजीव तथा परजीवोंके [**प्राणाबाधं**] प्राणोंका घात [**करोति**] करता है [**तदा**] तब [**हि**] निश्चयसे

रजीवयोः प्राणाबाधं विदधाति । तदा कदाचित्परस्य द्रव्यप्राणानाबाध्य कदाचिदनाबाध्य स्वस्य भावप्राणानुपरक्तत्वेन बाधमानो ज्ञानावरणादीनि कर्माणि बध्नाति । एवं प्राणाः पौद्गलिककर्मकारणतामुपयान्ति ॥ ५७ ॥

अथ पुद्गलप्राणसन्ततिप्रवृत्तिहेतुमन्तरङ्गमासूत्रयति;—

आदा कम्ममलिमसो धारदि पाणे पुणो पुणो अण्णे ।
ण जहदि जाव ममत्तं देहपधाणेसु विसएसु ॥ ५८ ॥

आत्मा कर्ममलीमसो धारयति प्राणान् पुनः पुनरन्यान् ।
न जहाति यावन्ममत्वं देहप्रधानेषु विषयेषु ॥ ५८ ॥

वरणादिकम्मेहिं ज्ञानावरणादिकर्मभिरिति । ततो ज्ञायते प्राणाः पुद्गलकर्मबन्धकारणं भवन्तीति । अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि तप्तलोहपिण्डेन परं हन्तुकामः सन् पूर्वं तावदात्मानमेव हन्ति पश्चादन्यघाते नियमो नास्ति, तथायमज्ञानी जीवोऽपि तप्तलोहपिण्डस्थानीयमोहादिपरिणामेन परिणतः सन् पूर्वं निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्वरूपं स्वकीयशुद्धप्राणं हन्ति पश्चादुत्तरकाले परप्राणघाते नियमो नास्तीति ॥ ५७ ॥ अथेन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेरन्तरङ्गहेतुमुपदिशति;—**आदाकम्ममलिमसो** अयमात्मा स्वभावेन भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्ममलरहितत्वेनात्यन्तनिर्मलोऽपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशान्मलीमसो भवति । तथाभूतः सन् किं करोति । **धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे** धारयति प्राणान् पुनःपुनः अन्यान्नवतरान् । यावत्किम् ? **ण चयदि जाव ममत्तिं** निःस्नेहचिच्चमत्कारपरिणतेर्विपरीतां ममतां यावत्कालं न त्यजति । केषु विषयेषु ? **देहपधाणेसु विसयेसु** देहविषयरहितपरमचैतन्यप्रकाशपरिणतेः प्रतिपक्षभूतेषु देहप्रधानेषु पञ्चेन्द्रि-

---

इसके [**ज्ञानावरणादिकर्मभिः**] ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंसे [**बन्धः**] प्रकृतिस्थित्यादिरूप बंध [**भवति**] होता है ॥ **भावार्थ**—यह जीव प्राणोंकर कर्मफलको भोगता है और उस फलको भोगताहुआ इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें रागद्वेष करता है, उन रागद्वेषभावोंसे अपने ज्ञानप्राणका नाश करता है तथा अन्यजीवोंके द्रव्यप्राणोंका घात करता है । जब यह रागद्वेषभावोंसे परिणमन करता है तब अन्यजीवके द्रव्यप्राणोंका घात होवे अथवा न होवे परंतु आप तो अवश्य रागी द्वेषी हुवा अपना घात करलेता है । दूसरी बात यह है कि जब यह जीव रागी द्वेषी होता है तब अनेकतरहके बंध करता है, और प्राणोंके संबंधसे पुद्गलीक बंधको करता है । इसलिये ये प्राण पुद्गलीक कर्मके कारण हैं ॥ ५७ ॥ आगे इन प्राणोंकी संतानकी उत्पत्तिका अंतरंगकारण बतलाते हैं;—[**कर्ममलीमसः**] अनादिकालसे लेकर कर्मोंकर मैला जो [**आत्मा**] जीवद्रव्य है वह [**तावत्**] तबतक [**पुनः पुनः**] बारंबार [**अन्यान्**] दूसरे नवीन [**प्राणान्**] प्राणोंको [**धारयति**] धारण करता है [**यावत्**] जबतक कि [**देहप्रधानेषु**] शरीर है मुख्य जिनमें ऐसे [**विषयेषु**] संसार शरीर भोग

योऽयमात्मनः पौद्गलिकप्राणानां सन्तानेन प्रवृत्तिः तस्या अनादिपौद्गलकर्म मूलं, शरीरादिममत्वरूपमुपरक्तत्वमन्तरङ्गो हेतुः ॥ ५८ ॥

अथ पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तिहेतुमन्तरङ्गं ग्राहयति;—

जो इंदियादिविजई भवीय उवओगमप्पगं झादि ।
कम्मेहिं सो ण रंजदि किह तं पाणा अणुचरंति ॥ ५९ ॥

य इन्द्रियादिविजयी भूत्वोपयोगमात्मकं ध्यायति ।
कर्मभिः स न रज्यते कथं तं प्राणा अनुचरन्ति ॥ ५९ ॥

पुद्गलप्राणसंततिनिवृत्तेरन्तरङ्गो हेतुर्हि पौद्गलिककर्ममूलस्योपरक्तत्वस्याभावः । स तु समस्तेन्द्रियादिपरद्रव्यानुविजयिनो भूत्वा समस्तोपाश्रयानुवृत्तिव्यावृत्तस्य स्फटिकमणेरि-

यविषयेष्विति । ततः स्थितमेतत् इन्द्रियादिप्राणोत्पत्तेर्देहादिममत्वमेवान्तरङ्गकारणमिति ॥ ५८ ॥ अथेन्द्रियादिप्राणानामभ्यन्तरविनाशकारणमावेदयति;—**जो इंदियादिविजईभवीय** यः कर्त्तातीन्द्रियात्मोत्थसुखामृतसन्तोषबलेन जितेन्द्रियत्वेन निःकषायनिर्मलानुभूतिबलेन कषायजयेन पञ्चेन्द्रियादिविजयीभूत्वा **उवओगमप्पगं झादि** केवलज्ञानदर्शनोपयोगं निजात्मानं ध्यायति **कम्मेहि सो ण रंजदि** कर्मभिश्चिचमत्कारादात्मनः प्रतिबन्धकैर्ज्ञानावरणादिकर्मभिः स न रज्यते न बध्यते । **किह तं पाणा अणुचरंति** कर्मबन्धाभावे सति त पुरुषं प्राणाः कर्त्तारः कथमनुचरन्ति कथमाश्रयन्ति ? न कथमपीति । ततो ज्ञायते कषायेन्द्रियविजयएव पञ्चेन्द्रियादिप्राणानां

आदिक विषयोंमें [**ममतां**] ममत्व बुद्धिको [**न जहाति**] नहीं छोड़देता ॥ **भावार्थ**—जबतक इस जीवके शरीरादिमेंसे ममत्वबुद्धि नहीं छूटती तबतक चतुर्गतिरूपसंसारके कारण प्राणोंको धारण करता है । इसकारण प्राणोंका अंतरंगकारण ममताभाव है वह सबतरहसे त्यागने योग्य है ॥ ५८ ॥ आगे इन पुद्गलीक प्राणोंकी संतानके नाशका अंतरंगकारण कहते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**इन्द्रियादिविजयीभूत्वा**] इंद्रिय कषाय अव्रतादिक विषयोंके जीतनेवाला होकर [**आत्मकं**] अपने [**उपयोगं**] समस्तपरभावोंसे भिन्न शुद्धचैतन्यस्वरूपका [**ध्यायति**] एकाग्रचित्त होकर अनुभवकरता है [**सः**] वह भेदविज्ञानी [**कर्मभिः**] समस्त शुभाशुभकर्मोंसे [**न रज्यते**] रागी नहीं होता [**तं**] उसमहात्माको [**प्राणाः**] संसारसंतानके कारण पुद्गलीक प्राण [**कथं**] किसतरह [**अनुचरन्ति**] संबंध करसक्ते हैं ? किसीतरहसे भी नहीं ॥ **भावार्थ**—पुद्गलसंतानके अभावका कारण एक वीतरागभाव है । जैसे स्फटिकमणिकी शुद्धताका कारण उसके समीप काली पीली हरीआदि वस्तुका अभाव है उसीतरह यह आत्मा सकलइंद्रियविकारोंसे रहित होके निजस्वरूपमें थिर होनेसे शुद्धस्वरूपको प्राप्त होता है, उसके बाद फिर प्राणधारणरूप दूसरा जन्म नहीं पा-

वात्यन्तविशुद्धमुपयोगमात्रमात्मानं सुनिश्चलं केवलमधिवसतः स्यात् । इदमत्र तात्पर्य-आत्मनोत्यन्तविभक्तसिद्धये व्यवहारजीवत्वहेतवः पुद्गलप्राणा एवमुच्छेत्तव्याः ॥ ५९ ॥

अथ पुनरस्यात्मनोत्यन्तविभक्तत्वसिद्धये गतिविशिष्टव्यवहारजीवत्वहेतुपर्यायस्वरूपमुपवर्णयति;—

अत्थित्तणिच्छिदस्स हि अत्थस्सत्थंतरम्मि संभूदो ।
अत्थो पज्जायो सो संठाणादिप्पभेदेहिं ॥ ६० ॥

अस्तित्वनिश्चितस्य ह्यर्थस्यार्थान्तरे संभूतः ।
अर्थः पर्यायः स संस्थानादिप्रभेदैः ॥ ६० ॥

स्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितस्यैकस्यार्थस्य स्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चित एवान्यस्मिन्नर्थे विशिष्टरूपतया संभावितात्मलाभोर्थोऽनेकद्रव्यात्मकः पर्यायः । स खलु पुद्गलस्य पुद्गलान्तर इव जीवस्य पुद्गले संस्थानादिविशिष्टतया समुपजायमानः संभाव्यत एव । उ-

---

विनाशकारणमिति ॥ ५९ ॥ "एवं सपदेसेहिं सम्मग्गो" इत्यादि गाथाष्टकेन सामान्यभेदभावनाधिकारः समाप्तः । अथानन्तरमेकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाधिकारः कथ्यते । तत्र विशेषान्तराधिकारचतुष्टयं भवति । तेषु चतुर्षु मध्ये शुभाद्युपयोगत्रयमुख्यत्वेनैकादशगाथापर्यन्तं प्रथमविशेषान्तराधिकारः प्रारभ्यते । तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति । तस्मिन्नादौ नरादिपर्यायैः सह शुद्धात्मस्वरूपस्य पृथक्त्वपरिज्ञानार्थं "अत्थित्तणिच्छदस्स हि" इत्यादि यथाक्रमेण गाथात्रयम् । तदनन्तरं तेषां संयोगकारणं "अप्पा उवओगप्पा" इत्यादि गाथाद्वयम् । तदनन्तरं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन "जो जाणादि जिणिंदे" इत्यादि गाथात्रयम् । तदनन्तरं कायवाग्मनसां शुद्धात्मना सह भेदकथनरूपेण "णाहं देहो" इत्यादि गाथात्रयम् । एवमेकादशगाथाभिः प्रथमविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा—अथ पुनरपि शुद्धात्मनो

रण करता । इसलिये इष्ट अनिष्टपदार्थोंमें रागभाव त्यागना योग्य है ॥ ५९ ॥ आगे फिर परभावोंसे जुदा आत्माको दिखलानेकेलिये व्यवहारजीवके चारगतियोंके पर्यायोंका स्वरूप कहते हैं;—[**अस्तित्वनिश्चितस्य**] अपने सहजस्वभावरूप स्वरूपके अस्तित्वकर निश्चल जो [**अर्थस्य**] जीवपदार्थ है उसके [**हि**] निश्चयसे [**यः**] जो [**अर्थान्तरे संभूतः**] अन्यपदार्थ पुद्गलद्रव्यके संयोगसे उत्पन्न हुआ [**अर्थः**] जो अनेकद्रव्यस्वरूप पदार्थ है [**सः**] वह संयोगजनितभाव [**संस्थानादिप्रभेदैः**] संस्थान संहननादिके भेदोंसे [**पर्यायः**] नरनारक आदिविभाव (विकार) पर्याय है ॥ **भावार्थ**—जीवके पुद्गलके संयोगसे नरनारकादि विभावपर्याय उत्पन्न होते हैं ।

---

१ पुस्तके तदनन्तरं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयसूचनमुख्यत्वेन "अप्पा उवओगप्पा" इत्यादिसूत्रद्वयं, तदनन्तरं शरीरवाग्मनसां संबन्धित्वेन शुद्धात्मनः कर्तृकरणादिनिषेधकथनमुख्यत्वेन "णाहं देहो" इत्यादि गाथात्रयम्, ततः पर शुभाद्युपयोगत्रयस्य विशेषव्याख्यानार्थं "जो जाणादि जिणिंदे" इत्यादि गाथात्रयम् ।

पपञ्चमेवंविधः पर्यायः । अनेकद्रव्यसंयोगात्मत्वेन केवलजीवव्यतिरेकमात्रस्यैकद्रव्यपर्यायस्यास्खलितस्यान्तरवभासनात् ॥ ६० ॥

अथ पर्यायव्यक्तीर्दर्शयति;—

णरणारयतिरियसुरा संठाणादीहिं अण्णहा जादा ।
पज्जाया जीवाणं उदयादु हि णामकम्मस्स ॥ ६१ ॥

नरनारकतिर्यक्सुराः संस्थानादिभिरन्यथा जाताः ।
पर्याया जीवानामुदयाद्धि नामकर्मणः ॥ ६१ ॥

नारकस्तिर्यङ्मनुष्यो देव इति किल पर्याया जीवानां । ते खलु नामकर्मपुद्गलविपा-

---

विशेषभेदभावनार्थं नरनारकादिपर्यायरूपं व्यवहारजीवत्वहेतुं दर्शयति;—**अत्थित्तणिच्छिदस्स हि** चिदानन्दैकलक्षणस्वरूपास्तित्वेन निश्चितस्य ज्ञानस्य हि स्फुटं । कस्य ? **अत्थस्स** परमात्मपदार्थस्य **अत्थंतरम्मि** शुद्धात्मार्थादन्यस्मिन् ज्ञानावरणादिकर्मरूपे अर्थान्तरे **संभूदो** संजात उत्पन्नः **अत्थो** यो नरनारकादिरूपोऽर्थः । **पज्जाओ सो** निर्विकारशुद्धात्मानुभूतिलक्षणस्वभावव्यञ्जनपर्यायादन्यादृशः सन् विभावव्यञ्जनपर्यायो भवति । स इत्थंभूतपर्यायो जीवस्य । कैः कृत्वा जातः । **संठाणादिप्पभेदेहिं** संस्थानादिरहितपरमात्मद्रव्यविलक्षणैः संस्थानसंहननशरीरादिप्रभेदैरिति ॥ ६० ॥ अथ तानेव पर्यायभेदान् व्यक्तीकरोति;—**णरणारयतिरियसुरा** नरनारकतिर्यग्देवरूपा अवस्थाविशेषाः । **संठाणादीहिं अण्णहा जादा** संस्थानादिभिरन्यथा जाताः, मनुष्यभवे यत्समचतुरस्रादिसंस्थानमौदारिकशरीरादिकं च तदपेक्षया भवान्तरेऽन्यद्विसदृशं संस्थानादिकं भवति । तेन कारणेन ते नरनारकादिपर्याया अन्यथा जाता भिन्ना भण्यन्ते । नच शुद्धबुद्धैकस्वभावपरमात्मद्रव्यत्वेन । कस्मात् ? तृणकाष्ठपत्राकारादिभेदभिन्नस्याग्नेरिव स्वरूपम् तदेव । **पज्जाया जीवाणं** ते च नरनारकादयो जीवानां विभावव्यञ्जनपर्याया भण्यन्ते । कैः कृत्वा । **उदयादिहिं णामकम्मस्स** उदयादिभिर्नामकर्मणो निर्दोषपर-

---

वे पर्याय व्यवहार जीवके कारण हैं, सर्वथा विनाशवान् हैं तथा त्यागने योग्य हैं । और जो जीवके पुद्गलसंयोगसे भिन्न असंख्यातप्रदेशी अंतरंगमें प्रकाशमान नित्य अखंडित ज्ञानदर्शनादिपर्याय हैं वे उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं ॥ ६० ॥ आगे द्रव्यपर्यायके भेद दिखलाते हैं;—[**हि**] निश्चयसे [**जीवानां**] संसारी जीवोंके [**नरनारकतिर्यक्सुराः पर्यायाः**] मनुष्यनारकीतिर्यंच और देवपर्याय हैं वे [**नामकर्मणः उदयात्**] पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे [**संस्थानादिभिः**] संस्थान संहनन स्पर्श रसादिके भेदोंसे [**अन्यथा जाताः**] स्वभावपर्यायसे भिन्न विभावस्वरूप उत्पन्न होते हैं ॥ **भावार्थ**—जैसे अग्नि, गोबरके छानेसे तथा लकडी तृण इत्यादि अनेकप्रकारके ईंधनके संयोगसे उत्पन्न अनेकतरहके आकारोंसे विभाव (विकार) रूप पर्याय-

ककारणत्वेनानेकद्रव्यसंयोगात्मकत्वात् कुकूलाङ्गारादिपर्याया जातवेदसः क्षोमखिल्वसंस्था-नादिभिरिव संस्थानादिभिरन्यथैव भूता भवन्ति ॥ ६१ ॥

अथात्मनोऽन्यद्रव्यसंकीर्णत्वेप्यर्थनिश्चायकमस्तित्वं स्वपरविभागहेतुत्वेनोद्योतयति;—

तं सब्भावणिबद्धं दव्वसहावं तिहा समक्खादं।
जाणदि जो सवियप्पं ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि ॥ ६२ ॥

तं सद्भावनिबद्धं द्रव्यस्वभावं त्रिधा समाख्यातम्।
जानाति यः सविकल्पं न मुह्यति सोऽन्यद्रव्ये ॥ ६२ ॥

यत्खलु स्वलक्षणभूतं स्वरूपास्तित्वमर्थनिश्चायकमाख्यातं स खलु द्रव्यस्य स्वभाव एव, सद्भावनिबद्धत्वाद्द्रव्यस्वभावस्य। यथासौ द्रव्यस्वभावो द्रव्यगुणपर्यायत्वेन स्थित्युत्पाद-व्ययत्वेन च त्रितयीं विकल्पभूमिकामधिरूढः परिज्ञायमानः परद्रव्ये मोहमपोह्य स्वपर-

---

मात्मशब्दवाच्यान्निर्णामनिर्गोत्रादिलक्षणाच्छुद्धात्मद्रव्यादन्यादृशैर्नामकर्मजनितैर्बन्धोदयोदीरणादिभि-रिति। यत एव ते कर्मोदयजनितास्ततो ज्ञायन्ते शुद्धात्मस्वरूपं न सम्भवन्तीति ॥ ६१ ॥ अथ स्वरूपास्तित्वलक्षणं परमात्मद्रव्यं योऽसौ जानाति स परद्रव्ये मोहं न करोतीति प्रकाश-यति;—**जाणदि** जानाति **जो** यः कर्त्ता। कं। **तं** पूर्वोक्तं **दव्वसहावं** परमात्मद्रव्यस्वभावं। किं विशिष्टं। **सब्भावणिबद्धं** स्वभावः स्वरूपसत्ता तत्र निबद्धमाधीनं तन्मयं सद्भावनिबद्धम्। पुनरपि किं विशिष्टं। **तिहा समक्खादं** त्रिधा समाख्यातं कथितं। केवलज्ञानादयो गुणाः सिद्धत्वादिविशुद्धपर्यायास्तदुभयाधारभूतं परमात्मद्रव्यं द्रव्यत्वमित्युक्तलक्षणत्रयात्मकं तथैव शुद्धो-त्पादव्ययध्रौव्यत्रयात्मकं च यत्पूर्वोक्तं स्वरूपास्तित्वं तेन कृत्वा त्रिधा सम्यगाख्यातं कथितं प्रतिपादि-तम्। पुनरपि कथंभूतं आत्मस्वभावं। **सवियप्पं** सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनं पूर्वोक्तद्रव्य-गुणपर्यायरूपेण सभेदं। इत्थंभूतमात्मस्वभावं जानाति, **ण मुहदि सो अण्णदवियम्हि** न

सहित होती है उसीतरह इसजीवके पुद्गलके संयोगसे देवादिक नानाविकार उत्पन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ आगे यद्यपि परद्रव्योंसे आत्मा मिलाहुआ है तौभी स्वपरभेदके निमित्त स्वरूपास्तित्वको दिखलाते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**तं**] उस पूर्वकथित [**सद्भाव-निबद्धं**] द्रव्यके स्वरूपास्तित्वकर संयुक्त और [**त्रिधा समाख्यातं**] द्रव्यगुण-पर्याय अथवा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य ऐसे तीनप्रकार कहेहुए [**द्रव्यस्वभावं**] द्रव्यके निजलक्षणको [**सविकल्पं**] भेदसहित [**जानाति**] जानता है [**सः**] वह भे-दविज्ञानी [**अन्यद्रव्ये**] अपनेसे भिन्न अचेतनद्रव्योंमें [**न मुह्यति**] मोहको नहीं प्राप्त होता ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष द्रव्यगुणपर्यायभेदोंसे तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीनभेदोंसे स्वरूप और पररूपको अच्छीतरह जानता है वह स्वरूपास्तित्वका जानने-वाला स्वपरका ज्ञायक ही होता है। परपदार्थमें रागी द्वेषी तथा मोही नहीं होता। इसी स्वपरभेदको विशेषतासे दिखाते हैं—जो जीव काललब्धि (अच्छी होनहार) पा-

विभ्रमहेतुर्भवति ततः स्वरूपास्तित्वमेव स्वपरविभागसिद्धये प्रतिपदमवधार्यम् । तथाहि—यश्चेतनत्वान्वयलक्षणं द्रव्यं यश्चेतनाविशेषत्वलक्षणो गुणो यश्चेतनत्वव्यतिरेकलक्षणः पर्यायस्तत्त्रयात्मकं, या पूर्वोत्तरव्यतिरेकस्पर्शिना चेतनेत्वन स्थितिर्यावुत्तरपूर्वव्यतिरेकत्वेन चेतनस्योत्पादव्ययौ तत्त्रयात्मकं च स्वरूपास्तित्वं यस्य तु स्वभावोहं स खल्वयमन्यः । यश्चाचेतनत्वान्वयलक्षणं द्रव्यं योऽचेतनाविशेषत्वलक्षणो गुणो योऽचेतनत्वव्यतिरेकलक्षणः पर्यायस्तत्त्रयात्मकं, या पूर्वोत्तरव्यतिरेकस्पर्शिनाचेतनत्वेन स्थितिर्यावुत्तरपूर्वव्यतिरेकत्वेनाचेतनस्योत्पादव्ययौ तत्त्रयात्मकं च स्वरूपास्तित्वं । यस्य तु स्वभावः पुद्गलस्य स खल्वयमन्यः नास्ति मे मोहोऽस्ति स्वपरविभागः ॥ ६२ ॥

अथात्मनोत्यन्तविभक्तत्वाय परद्रव्यसंयोगकारणस्वरूपमालोचयति;—

अप्पा उवओगप्पा उवओगो णाणदंसणं भणिदो ।
सो हि सुहो असुहो वा उवओगो अप्पणो हवदि ॥ ६३ ॥

आत्मा उपयोगात्मा उपयोगो ज्ञानदर्शनं भणितः ।
सहि शुभोऽशुभो वा उपयोग आत्मनो भवति ॥ ६३ ॥

आत्मनो हि परद्रव्यसंयोगकारणमुपयोगविशेषः उपयोगो हि तावदात्मनः स्वभाव-

---

मुह्यति सोऽन्यद्रव्ये स तु भेदज्ञानी विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावमात्मतत्त्वं देहरागादिपरद्रव्ये मोहं न गच्छतीत्यर्थः ॥ ६२ ॥ एवं नरनारकादिपर्यायैः सह परमात्मनो विशेषभेदकथनरूपेण प्रथमस्थले गाथात्रयं गतम् । अथात्मनः पूर्वोक्तप्रकारेण नरनारकादिपर्यायैः सह भिन्नत्वपरिज्ञानं जातं, तावदिदानीं तेषां संयोगकारणं कथ्यते;—**अप्पा** आत्मा भवति । कथंभूतः । **उवओगप्पा** चैतन्यानुविधायी योऽसावुपयोगस्तेन निर्वृत्तत्वादुपयोगात्मा । **उवओगो णाणदंसणं भणिदो** स चोपयोगः सविकल्पं ज्ञानं निर्विकल्पं दर्शनमिति भणितः । **सोवि सुहो**

कर दर्शनमोहका उपशम अथवा क्षय करता है उसी जीवको ऐसा भेद विज्ञान होता है कि, जो चैतन्यवस्तुरूप द्रव्य है, चैतन्य परिणतिरूप पर्याय है और जो चैतन्यरूप गुण है वह मेरा स्वरूप है। यही मेरा स्वरूप अपने चैतन्यपरिणामसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यता लिये हुए अपने स्वरूपास्तित्वसे संयुक्त है। तथा जो यह मुझसे पर है वह अचेतनद्रव्य है। वह अचेतनद्रव्य अपने अचेतनत्वगुणसहित है, अपने अचेतनपर्यायस्वरूप परिणमता है और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यता लिये हुए अपने स्वरूपास्तित्वसंयुक्त है इसकारण मेरे स्वरूपसे भिन्न पुद्गलका विकार जो यह मोह है वह मेरा स्वरूप नहीं है यह मुझे विश्वास है। इसप्रकार ज्ञानीके स्व और परका भेद होता है ॥ ६२ ॥ आगे सब प्रकारसे आत्माको भिन्न करनेके लिये परद्रव्यके संयोगका कारण दिखलाते हैं; [आत्मा] जीवद्रव्य [उपयोगात्मा] चेतन-

चैतन्यानुविधायिपरिणामत्वात् । स तु ज्ञानं दर्शनं च साकारनिराकारत्वेनोभयरूपत्वाच्चैतन्यस्य । अथायमुपयोगो द्वेधा विशिष्यते शुद्धाशुद्धत्वेन । तत्र शुद्धो निरुपरागः, अशुद्धः सोपरागः । स तु विशुद्धिसंक्लेशरूपत्वेन द्वैविध्यादुपरागस्य द्विविधः शुभोऽशुभश्च ॥ ६३ ॥

अथात्र क उपयोगः परद्रव्यसंयोगकारणमित्यावेदयति;—

उवओगो जदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचयं जादि ।
असुहो वा तध पावं तेसिमभावे ण चयमत्थि ॥ ६४ ॥

उपयोगो यदि हि शुभः पुण्यं जीवस्य संचयं याति ।
अशुभो वा तथा पापं तयोरभावे न चयोऽस्ति ॥ ६४ ॥

उपयोगो हि जीवस्य परद्रव्यसंयोगकारणमशुद्धः । स तु विशुद्धिसंक्लेशरूपोपरागवशात् शुभाशुभत्वेनोपात्तद्वैविध्यः । पुण्यपापत्वेनोपात्तद्वैविध्यस्य परद्रव्यस्य संयोगकारणत्वेन

सोऽपि ज्ञानदर्शनोपयोगधर्मानुरागरूपः शुभः **असुहो** विषयानुरागरूपो द्वेषमोहरूपश्चाशुभः । वाशब्देन शुभाशुभानुरागरहितत्वेन शुद्धः । **उवओगो अप्पणो हवदि** इत्थंभूतस्त्रिलक्षण उपयोग आत्मनः सम्बन्धी भवतीत्यर्थः ॥ ६३ ॥ अथोपयोगस्तावन्नरकादिपर्यायकारणभूतस्य कर्मरूपस्य परद्रव्यस्य संयोगकारणं भवति । तावदिदानीं कस्य कर्मणः क उपयोगः कारणं भवतीति विचारयति;—**उवओगो जदि हि सुहो** उपयोगो यदि चेत् हि स्फुटं शुभो भवति । **पुण्णं जीवस्स संचयं जादि** तदा काले द्रव्यपुण्यं कर्तृ जीवस्य संचयमुपचयं वृद्धिं याति बध्यत

स्वरूप हैं [**उपयोगः**] वह चेतना परिणाम [**ज्ञानदर्शनं**] जानना देखनास्वरूप दो भेदकर [**भणितः**] कहागया है [**सः**] वह ज्ञान दर्शनरूप दोप्रकार [**आत्मनः**] आत्माका [**उपयोगः**] चैतन्य परिणाम [**हि**] निश्चयसे [**शुभः**] शुभरूप [**वा**] अथवा [**अशुभः**] अशुभरूप [**भवति**] होता है ॥ **भावार्थ**—जीवके साथ पुद्गलीकवर्गणाओंके बंधका कारण अशुद्धचेतनास्वरूप उपयोग है, वह उपयोग आत्माका ज्ञानदर्शनरूप चैतन्यपरिणाम है । उनमें सामान्यचेतना "दर्शन" है और "ज्ञान" विशेषचेतना है । यह ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग शुद्ध अशुद्धके भेदसे दोप्रकार है । जो वीतराग उपयोग है वह तो "शुद्धोपयोग" है और जो सराग उपयोग है वह "अशुद्धोपयोग है । यह अशुद्धोपयोग भी विशुद्ध (मंदकषाय) संक्लेश (तीव्रकषाय) के भेदसे दोप्रकार है । विशुद्धरूप "शुभोपयोग" है और संक्लेशरूप "अशुभोपयोग" है ॥ ६३ ॥ आगे शुभोपयोग अशुभोपयोग इन दोनोंमें परद्रव्यके संबंधका कारण बतलाते हैं;—[**जीवस्य**] आत्माके [**यदि**] जो [**हि**] निश्चयकर [**शुभः**] दानपूजा क्रियादि शुभरूप [**उपयोगः**] चैतन्यविकारमय अशुद्ध परिणाम होता है [**तदा**] उस समय [**पुण्यं**] साताको उत्पन्न करनेवाला पुण्यरूप पुद्गलपिंड [**संचयं**] इकट्ठा होकर आत्माके प्रदेशोंमें बंधपनेको [**याति**] प्राप्त होता है [**वा**] अथवा

निर्वर्तयति । यदा तु द्विविधस्याप्यस्याशुद्धस्याभावः क्रियते तदा खलूपयोगः शुद्ध एवाव-तिष्ठते । स पुनरकारणमेव परद्रव्यसंयोगस्य ॥ ६४ ॥

अथ शुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तधेव अणगारे ।
जीवे य साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥ ६५ ॥

यो जानाति जिनेन्द्रान् पश्यति सिद्धांस्तथैवानागारान् ।
जीवे च सानुकम्प उपयोगः स शुभस्तस्य ॥ ६५ ॥

विशिष्टक्षयोपशमदशाविश्रान्तदर्शनचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीतशो-

---

इत्यर्थः । **असुहो वा तह पावं** अशुभोपयोगो वा तथा तेनैव प्रकारेण पुण्यवद्द्रव्यपापं संचयं याति **तेसिमभावे ण चयमत्थि** तयोरभावे न चयोऽस्ति । निर्दोषिनिजपरमात्मभावनारूपेण शुद्धोपयोगबलेन यदा तयोर्द्वयोः शुभाशुभोपयोगयोरभावः क्रियते तदोभयः संचयः कर्मबन्धो नास्तीत्यर्थः ॥ ६४ ॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयस्य सामान्यकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथा-द्वयं गतम् । अथ विशेषेण शुभोपयोगस्वरूपं व्याख्याति;—**जो जाणादि जिणिंदे** यः कर्ता जानाति । कान्? अनन्तज्ञानादिचतुष्टयसहितान् क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितांश्च जिनेन्द्रान् **पेच्छदि सिद्धे** पश्यति । कान्? ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मरहितान्सम्यक्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्त-गुणसहितांश्च सिद्धान् **तहेव अणगारे** तथैवानागारान् । अनागारशब्दवाच्यान्निश्चयव्य-वहारपञ्चाचारादियथोक्तलक्षणानाचार्योपाध्यायसाधून् । **जीवेसु साणुकंपो** त्रसस्थावर-

---

[**अशुभः**] जिससमय आत्माके मिथ्यात्वविषयकषायादिरूप अशुभोपयोग होता है तो [**तथा**] उसीप्रकार इकट्ठा होकर [**पापं**] असाताको करनेवाला पापरूप पुद्गलवर्गणा पिंड आकर बंधता है । [**तयोः**] उन शुभोपयोग अशुभोपयोग परिणामोंके [**अभावे**] नाश होनेपर [**चयः**] परद्रव्यका संचयरूप बंध [**न अस्ति**] नहीं होता है ॥ **भावार्थ**—इस आत्माके शुभ अशुभरूप दोनोंप्रकारका जो अशुद्धोपयोग है वह बंधका ही कारण है, उस अशुद्धोपयोगका अभाव होनेसे तथा निर्मल शुद्धोपयोगभावरूप परिणमन करनेसे ही इसके परद्रव्यका संयोग नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई कि शुभ अशुभरूप अशुद्धोपयोग परद्रव्यके संयोगका कारण है और शुद्धोपयोग मोक्षका कारण है ॥ ६४ ॥ आगे शुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[**यः**] जो जीव [**जिनेन्द्रान्**] परमपूज्य देवाधिदेव परमेश्वर वीतराग जो अरहंतदेव हैं उनके स्वरूपको [**जानाति**] जानता है [**सिद्धान्**] अष्टकर्मोपाधिरहित सिद्ध परमेष्ठियोंको [**पश्यति**] ज्ञानदृष्टिसे देखता है [**तथैव**] उसीप्रकार [**अनगारान्**] आचार्य उपाध्याय साधुओंकोभी जानता है देखता है [**च**] और [**जीवे**] समस्त प्राणियों-पर [**सानुकम्पः**] दयाभावयुक्त है [**तस्य**] उस जीवके [**सः**] वह [**शुभः**]

भनोपरागत्वात् परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुश्रद्धाने समस्तभूतग्रामानुकम्पाचरणे च प्रवृत्तः शुभ उपयोगः ॥ ६५ ॥

अथाशुभोपयोगस्वरूपं प्ररूपयति;—

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो ।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥ ६६ ॥

विषयकषायावगाढो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः ।
उग्र उन्मार्गपर उपयोगो यस्य सोऽशुभः ॥ ६६ ॥

विशिष्टोदयदशाविश्रान्तदर्शनज्ञानचारित्रमोहनीयपुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीताशोभ-

---

जीवेषु सानुकम्पः सदयः **उवओगो सो सुहो** स इत्थंभूत उपयोगः शुभो भण्यते। स च कस्य भवति। **तस्स** तस्य पूर्वोक्तलक्षणजीवस्येत्यभिप्रायः ॥ ६५ ॥ अथाशुभोपयोगस्वरूपं निरूपयति,—**विसयकसाओगाढो** विषयकषायावगाढः **दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो** दुश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः **उग्गो** उग्रः **उम्मग्गपरो** उन्मार्गपरः **उवओगो** एवं विशेषणचतुष्टययुक्त उपयोगः परिणामः **जस्स** यस्य जीवस्य भवति **सो असुहो** स उपयोगस्त्वशुभोपयोगो भण्यते, अभेदेन पुरुषो वा। तथाहि—विषयकषायरहितशुद्धचैतन्यपरिणतेः प्रतिपक्षभूतो विषयकषायावगाढो विषयकषायपरिणतः। शुद्धात्मतत्त्वप्रतिपादिका श्रुतिः सुश्रुतिस्तद्विलक्षणा दुःश्रुतिः मिथ्याशास्त्रश्रुतिर्वा। निश्चिन्तात्मध्यानपरिणतं सुचित्तं तद्विनाशकं दुश्चित्तम्, स्वपरनिमित्तेष्टकामभोगचिन्तापरिणतं रागाद्यपध्यानं वा। पर-

---

शुभरूप [**उपयोगः**] चैतन्यविकाररूप परिणाम जानना चाहिये ॥ **भावार्थ**—जिस जीवके दर्शनमोहनीय अथवा चारित्र मोहनीयकर्मकी विशेषतारूप क्षयोपशम अवस्था तो न हुई हो और शुभरागका उदय हो उस जीवके भक्तिपूर्वक पंच परमेष्ठीके देखने जानने श्रद्धानकरनेरूप परिणाम होवें तथा सब जीवोंमें दयाभाव हो यही शुभोपयोगका लक्षण जानना चाहिये ॥ ६५ ॥ आगे अशुभोपयोगका स्वरूप कहते हैं;—[**यस्य**] जिस जीवका [**उपयोगः**] अशुद्ध चैतन्यविकार परिणाम [**विषयकषायावगाढः**] इन्द्रियविषय तथा क्रोधादिकषाय इनसे अत्यंत गाढ हो, [**दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुतः**] मिथ्या शास्त्रोंका सुनना आर्तरौद्रअशुभध्यानरूप मन पराईनिंदाआदि चर्चा—इनमें उपयोग सहित हो, [**उग्रः**] हिंसादि आचरणके करनेमें महा उद्यमी हो और [**उन्मार्गपरः**] वीतरागसर्वज्ञकथित मार्गसे उलटा जो मिथ्यामार्ग उसमें सावधान हो [**सः**] वह परिणाम [**अशुभः**] अशुभोपयोग कहा है ॥ **भावार्थ**—जब इस जीवके दर्शनमोह तथा चारित्रमोहका तीव्र उदय होता है तब वह अशुभरागके ग्रहणकरनेसे पंच परमेष्ठीमें रुचि नहीं करता, मिथ्यामार्गका श्रद्धानी होकर विषयकषायोंमें प्रवर्तता है, मिथ्यासिद्धांतशास्त्रोंको सुनता है, खोटे आचारका आचरण क-

नोपरागस्वात्परमभट्टारकमहादेवाधिदेवपरमेश्वरार्हत्सिद्धसाधुभ्योऽन्यत्रोन्मार्गश्रद्धाने विषयकषायदुःश्रवणदुराशयदुष्टसेवनोग्रताचरणे च प्रवृत्तोऽशुभोपयोगः ॥ ६६ ॥

अथ परद्रव्यसंयोगकारणविनाशमभ्यसति;—

असुहोवओगरहिदो सुहोवजुत्तो ण अण्णदवियम्मि ।
होज्जं मज्झत्थोऽहं णाणप्पगमप्पगं झाए ॥ ६७ ॥

अशुभोपयोगरहितः शुभोपयुक्तो न अन्यद्रव्ये ।
भवन्मध्यस्थोऽहं ज्ञानात्मकमात्मकं ध्यायामि ॥ ६७ ॥

यो हि नामायं परद्रव्यसंयोगकारणत्वेनोपन्यस्तोऽशुद्ध उपयोगः स खलु मन्दतीव्रोदयदशाविश्रान्तपरद्रव्यानुवृत्तितन्त्रत्वादेव प्रवर्तते न पुनरन्यस्मात् । ततोऽहमेष सर्वस्मिन्नेव परद्रव्ये मध्यस्थो भवामि । एवं भवंश्चाहं परद्रव्यानुवृत्तितन्त्रत्वाभावात् शुभेनाशुभेन वा

मचैतन्यपरिणतेर्विनाशिका दुष्टगोष्ठी तत्प्रतिपक्षभूतकुशीलपुरुषगोष्ठी वा । इत्थंभूतं दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठीभिर्युतो दुःश्रुतिदुश्चित्तदुष्टगोष्ठियुक्तः परमोपशमभावपरिणतपरमचैतन्यस्वभावात्प्रतिकूलः उग्रः वीतरागसर्वज्ञप्रणीतनिश्चयव्यवहारमोक्षमार्गाद्विलक्षण उन्मार्गपरः । इत्थंभूतविशेषणचतुष्टयसहित उपयोगः परिणामः । तत्परिणतपुरुषोवेत्यशुभोपयोगो भण्यत इत्यर्थः ॥ ६६ ॥ अथ शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगं प्ररूपयति;—**असुहोवओगरहिदो** अशुभोपयोगरहितो भवामि । स कः **अहं** अहं कर्त्ता । पुनरपि कथंभूतः । **सुहोवजुत्तो ण** शुभोपयोगयुक्तः परिणतो न भवामि । क विषयेऽसौ शुभोपयोगः **अण्णदवियम्हि** निजपरमात्मद्रव्यादन्यद्रव्ये । तर्हि कथंभूतो भवामि । **होज्झं मज्झत्थो** जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशंसादिविषये मध्यस्थो भवामि । इत्थंभूतः सन् किं करोमि । **णाणप्पगमप्पणं झाए** ज्ञानात्म-

---

रता है इत्यादि पापक्रियाओंमें लीन होता है इसीसे वह जीव अशुभोपयोगी कहा जाता है ॥ ६६ ॥ आगे परद्रव्यसंयोगके कारण जो शुभ अशुभभाव हैं उनके नाश होनेका कारण दिखलाते हैं;—[**अशुभोपयोगरहितः**] मिथ्यात्व विषय कषायाविरहित हुआ [**शुभोपयुक्तः न**] शुभोपयोगरूप भावोंमें भी उपयोग नहीं करनेवाला [**अन्यद्रव्ये मध्यस्थो भवन्**] और शुभ अशुभद्रव्य भावरूप पर भावोंमें मध्यवर्ती हुआ अर्थात् दोनोंको समान माननेवाला ऐसा जो [**अहं**] स्वपरविवेकी मैं हूं सो [**ज्ञानात्मकं**] ज्ञानस्वरूप [**आत्मानं**] शुद्ध जीवद्रव्यका [**ध्यायामि**] परमसमरसीभावमें मग्न हुआ अनुभव करता हूं ॥ **भावार्थ**—यह जो परसंयोगका कारण शुभ अशुभरूप अशुद्ध उपयोग होता है वह मोहनीकर्मकी मंद तीव्र दशाके आधीन होकर प्रवर्तता है, शुद्ध आत्मीक भावसे विपरीत (उलटा) है परद्रव्यरूप है इसकारण इन दोनों शुभ अशुभभावोंमें मेरी समान बुद्धि है इसीलिये मैं मध्यस्थ हूं परद्रव्यको अंगीकार नहीं करता हूं, इसकारण मैं अशुद्धोपयोगसे रहित हुआ केवल

शुद्धोपयोगेन निर्मुक्तो भूत्वा केवलस्वद्रव्यानुवृत्तिपरिग्रहात् प्रसिद्धशुद्धोपयोग उपयोगात्मनात्मन्येव नित्यं निश्चलमुपयुक्तस्तिष्ठामि। एष मे परद्रव्यसंयोगकारणविनाशाभ्यासः ॥६७॥

अथ शरीरादावपि परद्रव्ये माध्यस्थं प्रकटयति;—

णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी ण कारणं तेसिं ।
कत्ता ण ण कारयिदा अणुमत्ता णेव कत्तीणं ॥ ६८ ॥

नाहं देहो न मनो न चैव वाणी न कारणं तेषाम् ।
कर्ता न न कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् ॥ ६८ ॥

शरीरं च वाचं च मनश्च परद्रव्यत्वेनाहं प्रतिपद्ये ततो न तेषु कश्चिदपि मम पक्षपातोस्ति । सर्वत्राप्यहमत्यन्तं मध्यस्थोऽस्मि । तथाहि—न खल्वहं शरीरवाङ्मनसां स्वरूपाधारभूतमचेतनद्रव्यमस्मि, तानि खलु मां स्वरूपाधारार्थान्तरेणाप्यात्मनः स्वरूपं धारयन्ति । ततोऽहं शरीरवाङ्मनःपक्षपातमपास्यात्यन्तमध्यस्थोस्मि । न च मे शरीर वाङ्मनःकारणाचेतनद्रव्यत्वमस्ति, तानि खलु मां कारणमन्तरेणापि कारणं भवन्ति । ततोऽहं तत्कारणत्वपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारणाचे-

---

कमात्मानं ध्यायामि । ज्ञानेन निर्वृत्तज्ञानात्मकं केवलज्ञानान्तर्भूतानन्तगुणात्मकं निजात्मानं शुद्धध्यानप्रतिपक्षभूतसमस्तमनोरथरूपचिन्ताजालत्यागेन ध्यायामीति शुद्धोपयोगलक्षणं ज्ञातव्यम् ॥ ६७ ॥ एवं शुभाशुभशुद्धोपयोगविवरणरूपेण तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ देहमनोवचनविषयेत्यन्तमाध्यस्थ्यमुद्योतयति;—**णाहं देहो ण मणो ण चेव वाणी** नाहं देहो न मनो न चैव वाणी । मनोवचनकायव्यापाररहितात्परमात्मद्रव्याद्भिन्नं यन्मनोवचनकायत्रयं निश्चयनयेन तन्नाहं भवामि । ततः कारणात्तत्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि । **ण कारणं तेसिं** न कारणं तेषाम् । निर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतपरिणतेर्यदुपादानकारणभूतमात्मद्रव्यं तद्विलक्षणो मनोवचनकायानामुपादानकारणभूतः पुद्गलपिण्डो न भवामि ।

स्वरूपकी प्रवृत्तिसे शुद्धोपयोगी होकर आत्मामें सदा काल निश्चल होकर तिष्ठता हूं । यह जो मेरे आत्मलीन शुद्धोपयोग वृत्ति है वही परद्रव्यसंयोगकारणके विनाशका अभ्यास है, यही मोक्षमार्ग है, यही साक्षात् जीवन्मोक्ष है, और यही कर्तृत्व भोक्तृत्व आस्रव बंधभाव दशासे रहित सिद्धस्वरूप शुद्धभाव है ॥ ६७ ॥ आगे शरीरादि परद्रव्यमें भी मध्यस्थ भाव दिखलाते हैं;—[**अहं**] मैं जो शुद्धचिन्मात्र स्वपरविवेकी हूं सो [**देहः न**] शरीररूप नहीं हूं [**मनो न**] मनयोगरूपभी नहीं हूं [**च**] और [**एव**] निश्चयसे [**वाणी न**] वचनयोगरूप भी नहीं हूं [**तेषां कारणं न**] उन काय वचन मनका उपादानकारणरूप पुद्गलपिंड भी नहीं हूं [**कर्ता न**] उन तीन योगोंका कर्ता नहीं हूं अर्थात् मुझ कर्ताके बिना ही वे योग पुद्गलपिंडकर किये जाते हैं, [**कारयिता न**] उन तीन योगोंका

तत्परद्रव्यत्वमस्ति, तानि खलु मां कर्तारमन्तरेणापि क्रियमाणानि । ततोऽहं तत्कर्तृत्वपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यप्रयोजकत्वमस्ति, तानि खलु मां कारकप्रयोजकमन्तरेणापि क्रियमाणानि । ततोऽहं तत्कारकप्रयोजकपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तमध्यस्थः । न च मे स्वतन्त्रशरीरवाङ्मनःकारकाचेतनद्रव्यानुज्ञातृत्वमस्ति, तानि खलु मां कारकानुज्ञातारमन्तरेणापि क्रियमाणानि ततोऽहं तत्कारकानुज्ञातृत्वपक्षपातमपास्यास्म्ययमत्यन्तं मध्यस्थः ॥ ६८ ॥

अथ शरीरवाङ्मनसां परद्रव्यत्वं निश्चिनोति;—

देहो य मणो वाणी पोग्गलदव्वप्पगत्ति णिद्दिट्ठा ।
पोग्गलदव्वंपि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं ॥ ६९ ॥

देहश्च मनो वाणी पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः ।
पुद्गलद्रव्यमपि पुनः पिण्डः परमाणुद्रव्याणाम् ॥ ६९ ॥

शरीरं च वाक् च मनश्च त्रीण्यपि परद्रव्यं पुद्गलद्रव्यात्मकत्वात् । पुद्गलद्रव्यत्वं तु

ततः कारणात्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मि । **कत्ता ण हि कारइदा अणुमंता णेव कत्तीणं** कर्ता न हि कारयिता अनुमन्ता नैव कर्तृणाम् । स्वशुद्धात्मभावनाविषये यत्कृतकारितानुमतस्वरूपं तद्विलक्षणं यन्मनोवचनकायविषये कृतकारितानुमतस्वरूपं तन्नाहं भवामि । ततः कारणात्पक्षपातं मुक्त्वात्यन्तमध्यस्थोऽस्मीति तात्पर्यम् ॥ ६८ ॥ अथ कायवाङ्मनसां शुद्धात्मस्वरूपात्परद्रव्यत्वं व्यवस्थापयति;—**देहो य मणो वाणी पुग्गलदव्वप्पगंति णिद्दिट्ठा** देहश्च मनो वाणी तिस्रोऽपि पुद्गलद्रव्यात्मका इति निर्दिष्टाः । कस्मात् । व्यवहारेण जीवेन सहैकत्वेऽपि निश्चयेन परमचैतन्यप्रकाशपरिणतेर्भिन्नत्वात् । पुद्गलद्रव्यं किं भण्यते । **पुग्गलदव्वं हि पुणो पिंडो परमाणुदव्वाणं** पुद्गलद्रव्यं हि स्फुटं पुनः पिण्डः

प्रेरक होकर करानेवाला नहीं हूं पुद्गलद्रव्य ही उनका कर्ता है [**कर्तृणां**] और उन योगोंके करनेवाले पुद्गलपिंडोंका [**अनुमन्ता**] अनुमोदनेवाला भी नहीं हूं । मेरी अनुमोदनाके विना ही पुद्गलपिंड उन योगोंका कर्ता है । इसकारण मैं परद्रव्यमें अत्यंत मध्यस्थ हूं ॥**भावार्थ**—स्वपर विवेकी जीव सब द्रव्योंके स्वरूपका जाननेवाला है, इसकारण इन तीन योगोंको पुद्गलीक जानता है । इनमें कृत कारित अनुमोदना भाव नहीं करता, परद्रव्यके भाव जानकर त्यागी होता है, स्वरूपमें निश्चल हुआ तिष्ठता है और शुभ अशुभरूप अशुद्धोपयोगको विनाश करके निरास्रव हुआ शुद्धोपयोगी होता है ॥ ६८ ॥ आगे इन शरीर वचन मन तीनोंको निश्चयकर परद्रव्य दिखलाते हैं;—[**देहः**] शरीर [**मनः**] चित्त [**च**] और [**वाणी**] वचन ये तीनोंयोग [**पुद्गलद्रव्यात्मकाः**] पुद्गलद्रव्यरूप हैं [**इति**] ऐसे [**निर्दिष्टाः**] वीतरागदेवने कहे हैं [**पुनः**] और [**पुद्गलद्रव्यं**] तीन योगरूप पुद्गलद्रव्य [**अपि**] निश्चयसे [**परमाणुद्रव्याणां**]

तेषां पुद्गलद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वनिश्चितत्वात्। तथाविधपुद्गलद्रव्यं त्वनेकपरमाणुद्रव्याणामेकपिण्डपर्यायेण परिणामः । अनेकपरमाणुद्रव्यस्वलक्षणभूतस्वरूपास्तित्वानामनेकत्वेपि कथंचिदेकत्वेनावभासनात् ॥ ६९ ॥

अथात्मनः परद्रव्यत्वाभावं परद्रव्यकर्तृत्वाभावं च साधयति;—

णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं।
तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्स देहस्स ॥ ७० ॥

नाहं पुद्गलमयो न ते मया पुद्गलाः कृताः पिण्डम् ।
तस्माद्धि न देहोऽहं कर्ता वा तस्य देहस्य ॥ ७० ॥

यदेतत्प्रकरणनिर्धारितं पुद्गलात्मकमन्तर्नीतवाङ्मनो द्वैतं शरीरं नाम परद्रव्यं न तावदहमस्मि, ममापुद्गलमयस्य पुद्गलात्मकशरीरत्वविरोधात् । न चापि तस्य कारणद्वारेण कर्तृद्वारेण कर्तृप्रयोजनद्वारेण कर्त्रनुमन्तृद्वारेण वा शरीरस्य कर्ताहमस्मि, ममानेकपरमाणुद्र-

---

समूहो भवति । केषां । परमाणुद्रव्याणामित्यर्थः ॥ ६९ ॥ अथात्मनः शरीररूपपरद्रव्याभावं तत्कर्तृत्वाभावं च निरूपयति;—**णाहं पुग्गलमइओ** नाहं पुद्गलमयः **ण ते मया पुग्गला कया पिंडा** न च ते पुद्गला मया कृताः पिण्डाः **तम्हा हि ण देहोऽहं** तस्माद्देहो न भवाम्यहं हि स्फुटं **कत्ता वा तस्स देहस्स** कर्त्ता वा न भवामि तस्य देहस्येति । अयमत्रार्थः—देहोऽहं न भवामि । कस्मात् । अशरीरसहजशुद्धचैतन्यपरिणतत्वेन

सूक्ष्म अविभागी पुद्गलपरमाणुओंका [**पिण्डं**] स्कंधरूप (समूहरूप) पिंड है ॥ **भावार्थ**—ये तीन योग निश्चयसे पुद्गलद्रव्यस्वरूप हैं । अनंत परमाणू मिलकर एकरूप हुए विभावपर्याय ही हैं, इस कारण ये योग पुद्गलपर्याय हैं। यद्यपि योगरूप पुद्गलपर्यायमें अपने स्वरूपास्तित्वसे परमाणू जुदे २ हैं तौभी स्निग्धरूक्ष गुणके बंध परिणामकी अपेक्षाकर एक पिंडरूप भासते (मालूम पड़ते) हैं ॥ ६९ ॥ आगे आत्माके परद्रव्यका अभाव और परद्रव्यके कर्तापनेका अभाव सिद्ध करते हैं;–[**अहं**] मैं शुद्ध चैतन्यमात्रवस्तु [**पुद्गलमयः न**] अचेतन पुद्गलद्रव्यरूप नहीं हूं [**ते पुद्गलाः**] वे सूक्ष्मपरमाणूरूप पुद्गल [**मया**] स्वरूप गुप्त मुझ चैतन्यसे [**पिण्डं कृता न**] स्कंधरूप नहीं किये गये हैं, अपनी शक्तिसे ही पिंडरूप हो जाते हैं । [**तस्मात्**] इसकारण [**हि**] निश्चयसे [**अहं**] ज्ञानस्वरूप मैं [**देहः**] पुद्गलविकार शरीरमयी [**न**] नहीं हूं मैं तो अमूर्त चैतन्य हूं [**वा**] अथवा [**तस्य देहस्य**] उस पुद्गलमयी देहका [**कर्ता 'न'**] उत्पन्न करनेवाला भी नहीं हूं ॥ **भावार्थ**—यह मन वचन सहित शरीर है वह अवश्य पुद्गलीक ही है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ऐसा मैंने निश्चय किया है । इसकारण मैं इसका कृत कारित अनुमोदभावोंसे कर्ता नहीं हूं क्योंकि यह शरीर तो अनंत परमाणुओंका पिंड है और मुझमें अनंतपरमाणूरूप परिणमन शक्ति नहीं है; इसलिये

व्यैकपिण्डपर्यायपरिणामस्याकर्तुरनेकपरमाणुद्रव्यैकपिण्डपर्यायपरिणामात्मकशरीरकर्तृत्वस्य सर्वथा विरोधात् ॥ ७० ॥

अथ कथं परमाणुद्रव्याणां पिण्डपर्यायपरिणतिरिति संदेहमपनुदति;—

अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य सयमसद्दो जो ।
णिद्धो वा लुक्खो वा दुपदेसादित्तमणुहवदि ॥ ७१ ॥

अप्रदेशः परमाणुः प्रदेशमात्रश्च स्वयमशब्दो यः ।
स्निग्धो वा रूक्षो वा द्विप्रदेशादित्वमनुभवति ॥ ७१ ॥

परमाणुर्हि द्व्यादिप्रदेशानामभावादप्रदेशः, एकप्रदेशसद्भावात्प्रदेशमात्रः, स्वयमनेकपरमाणुद्रव्यात्मकशब्दपर्यायव्यक्त्यसंभवादशब्दश्च । यतश्चतुःस्पर्शपञ्चरसद्विगन्धपञ्चवर्णा-

---

मम देहत्वविरोधात् । कर्त्ता वा न भवामि तस्य देहस्य । तदपि कस्मात्? निःक्रियपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन मम देहकर्तृत्वविरोधादिति ॥ ७० ॥ एवं कायवाङ्मनसां शुद्धात्मना सह भेदकथनरूपेण चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् । इति पूर्वोक्तप्रकारेण "अत्थित्तणिस्सदस्स हि" इत्याद्येकादशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन प्रथमो 'विशेषान्तराधिकारः' समाप्तः । अथ केवलपुद्गलमुख्यत्वेन नवगाथापर्यन्तं व्याख्यानं करोति । तत्र स्थलद्वयं भवति । परमाणूनां परस्परबन्धकथनार्थं "अपदेसो परमाणू" इत्यादि प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयम् । तदनन्तरं स्कन्धानां बन्धमुख्यत्वेन "दुवदेसादी खंधा" इत्यादिद्वितीयस्थले गाथापञ्चकम् । एवं द्वितीयविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका । अथ यद्यात्मा पुद्गलानां पिण्डं न करोति तर्हि कथं पिण्डपर्यायपरिणतिरिति प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;–**अपदेसो** अप्रदेशः । स कः । **परमाणू** पुद्गलपरमाणुः । पुनरपि कथंभूतः । **पदेसमेत्तो य** द्वितीयादिप्रदेशाभावात् प्रदेशमात्रश्च । पुनश्च किं रूपः । **सयमसद्दो य** स्वयं व्यक्तिरूपेणाशब्दः । एवं विशेषणत्रयविशिष्टः सन् **णिद्दो वा रुक्खो वा** स्निग्धो वा रूक्षो वा यतः कारणात्संभवति ततः कारणात् । **दुपदेसादित्तमणुभवदि** द्विप्रदेशा-

---

मैं इस शरीरका कर्ता किस तरह हो सकता हूं ? नहीं होसकता । पुद्गलकी निजशक्तिसे वह पुद्गलपर्याय ही है मुझमें और शरीरमें बड़ा भारी विरोध है । इसकारण मैं भिन्न द्रव्य हूं ॥ ७० ॥ आगे कहते हैं कि परमाणुरूपद्रव्योंके स्कंध पर्याय किसतरहसे होते हैं इस संदेहको दूर करते हैं;—[**परमाणुः**] जो सूक्ष्म अविभागी पुद्गलपरमाणू है वह [**अप्रदेशः**] दोआदि प्रदेशोंसे रहित है, [**प्रदेशमात्रः**] एक प्रदेशमात्र है [**च**] और [**स्वयं अशब्दः**] आप ही शब्दपर्यायरहित है, "शब्द तो अनंत पुद्गलपरमाणुओंके स्कंधसे उत्पन्न होता है" [**यत्**] इसीकारणसे वह परमाणु [**स्निग्धो वा**] चिकना परिणाम सहित हुआ [**वा**] और रूक्ष (रूखा) परिणाम सहित भी हुआ [**द्विप्रदेशादित्वं**] दो प्रदेशको आदिलेकर अनेकप्रदेश भावोंको [**अनुभवति**] प्राप्त होता है ॥ **भावार्थ**—यह 'परमाणु' अविभागी प्रदेश-

नामविरोधेन सद्भावात् स्निग्धो वा रूक्षो वा स्यात् । तत एव तस्य पिण्डपर्यायपरिणतिरूपा द्विप्रदेशादित्वानुभूतिः । अथैवं स्निग्धरूक्षत्वं पिण्डत्वसाधनम् ॥ ७१ ॥

अथ कीदृशं तत्स्निग्धरूक्षत्वं परमाणोरित्यावेदयति;—

एगुत्तरमेगादी अणुस्स णिद्धत्तणं व लुक्खत्तं ।
परिणामादो भणिदं जाव अणंतत्तमणुहवदि ॥ ७२ ॥

एकोत्तरमेकाद्यणोः स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वम् ।
परिणामाद्भणितं यावदनन्तत्वमनुभवति ॥ ७२ ॥

परमाणोर्हि तावदस्ति परिणामः तस्य वस्तुस्वभावत्वेनानतिक्रमात् । ततस्तु परिणामादु-

---

दिरूपं बन्धमनुभवतीति । तथाहि—यथायमात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावेन बन्धरहितोऽपि पश्चादशुद्धनयेन स्निग्धस्थानीयरागभावेन रूक्षस्थानीयद्वेषभावेन यदा परिणमति तदा परमागमकथितप्रकारेण बन्धमनुभवति । तथा परमाणुरपि स्वभावेन बन्धरहितोऽपि यदा बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणेन परिणतो भवति तदा पुद्गलान्तरेण सह विभावपर्यायरूपं बन्धमनुभवतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥ अथ कीदृशं तत्स्निग्धरूक्षत्वमितिपृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;— **एगुत्तरमेगादी** एकोत्तरमेकादि । किं । **णिद्धत्तणं च लुक्खत्तं** स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च कर्मतापन्नं **भणिदं** भणितं कथितम् । किं पर्यन्तम् ? **जाव अणंतत्तमणुभवदि** अनन्तत्वमनन्तपर्यन्तं यावदनुभवति प्राप्नोति । कस्मात्सकाशात् **परिणामादो** परिणतिविशेषात्परिणामित्वादित्यर्थः । कस्य सम्बन्धि ? **अणुस्स** अणोः पुद्गलपरमाणोः । तथाहि—यथा जीवे जलाजागोमहिषीक्षीरे स्नेहवृद्धिवत्स्नेहस्थानीयं रागत्वं रूक्षस्थानीयं द्वेषत्वं बन्धकारणभूतं जघन्यविशुद्धसंक्लेशस्थानीयमादिं कृत्वा परमागमकथितक्रमेणोत्कृष्टविशुद्धसंक्लेशपर्यन्तं वर्द्धते । तथा पुद्गलपरमाणुद्र-

---

मात्र है, और इसमें वर्णादि पांच गुण अविरोधी पाये जाते हैं तथा प्रगट शब्द पर्याय रहित है, इसकारण यह शुद्ध परमाणू कहा जाता है । इसमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, इन गुणोंके परिणमनेसे ही एक परमाणू दूसरे परमाणूसे मिलजाता है इसकारण पिंडरूप स्कंधपर्याय हो जाता है और वह अनेकप्रदेशी भी कहा जाता है ॥ ७१ ॥ आगे परमाणुओंमें स्निग्ध रूक्षगुण किसतरहका है यह कहते हैं;—[**अणोः**] परमाणुके [**परिणामात्**] स्निग्धरूक्षगुणमें अनेकप्रकार परिणमन शक्ति होनेसे [**एकादि**] एकसे लेकर [**एकोत्तरं**] एक एक बढता हुआ तब तक [**स्निग्धत्वं**] चिकनभाव [**वा**] अथवा [**रूक्षत्वं**] रूक्षभाव [**भणितं**] कहा गया है । [**यावत्**] जब तक कि [**अनन्तत्वं**] अनंतभेदोंको [**अनुभवति**] प्राप्त होजाता है ॥ **भावार्थ**—परमाणूमें स्निग्ध रूक्ष गुण हैं, उन गुणोंकी अनंतप्रकार परिणति होती है इसलिये स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंत भेद होजाते हैं। वे भेद इसतरहके होते हैं कि जिनका दूसरा फिर अंश नहीं होता, उन्हीका नाम **अविभागप्रतिच्छेद** भी

पातकादाचित्कवैचित्र्यं चित्रगुणयोगित्वात्परमाणोरेकाद्येकोत्तरानन्तावसानाविभागपरिच्छेदव्यापि स्निग्धत्वं वा रूक्षत्वं वा भवति ॥ ७२ ॥

अथात्र कीदृशात्स्निग्धरूक्षत्वात्पिण्डत्वमित्यावेदयति;—

णिद्धा वा लुक्खा वा अणुपरिणामा समा व विसमा वा ।
समदो दुराधिगा जदि बज्झन्ति हि आदिपरिहीणा ॥ ७३ ॥

स्निग्धा वा रूक्षा वा अणुपरिणामा समा वा विषमा वा ।
समतो द्व्यधिका यदि बध्यन्ते हि आदिपरिहीनाः ॥ ७३ ॥

समतो द्व्यधिकगुणाद्धि स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्युत्सर्गः, स्निग्धरूक्षद्व्यधिकगुणत्वस्य

ण्येऽपि स्निग्धत्वं रूक्षत्वं च बन्धकारणभूतं पूर्वोक्तजलादितारतम्यशक्तिदृष्टान्तेनैकगुणसंज्ञाजघन्यशक्तिमादिं कृत्वा गुणसंज्ञेनाविभागपरिच्छेदद्वितीयनामाभिधेयेन शक्तिविशेषेण वर्द्धते । किं पर्यन्तं । यावदनन्तसंख्यानम् । कस्मात्? पुद्गलद्रव्यस्य परिणामित्वात् परिणामस्य वस्तुस्वभावादेव निषेधितुमशक्यत्वादिति ॥ ७२ ॥ अथात्र कीदृशात्स्निग्धरूक्षत्वगुणात् पिण्डो भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—**बज्झंति हि** बध्यन्ते हि स्फुटं । के । कर्मतापन्नाः **अणुपरिणामा** अणुपरिणामाः।अणुपरिणामशब्देनात्र परिणामपरिणता अणवो गृह्यन्ते । कथंभूताः। **णिद्धा वा लुक्खा वा** स्निग्धपरिणामपरिणता वा रूक्षपरिणामपरिणता वा । पुनरपि किं विशिष्टाः **समा व विसमा वा** द्विशक्तिचतुःशक्तिषट्शक्त्यादिपरिणतानां सम इति संज्ञा । त्रिशक्तिपञ्चशक्तिसप्तशक्त्यादिपरिणतानां विषम इति संज्ञा । पुनश्च किं रूपा । **समदो दुराधिगा जदि** समतः समसंख्यानात्सकाशाद् द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिका यदि चेत् । कथं द्विगुणाधिकत्वमितिचेत्? एको द्विगुणस्तिष्ठति द्वितीयोऽपि द्विगुण इति द्वौ समसंख्यानौ तिष्ठतस्तावत् एकस्य विवक्षितद्विगुणस्य द्विगुणाधिकत्वे कृते सति सः चतुर्गुणो-भवति शक्तिचतुष्टयपरिणतो भवति । तस्य चतुर्गुणस्य पूर्वोक्तद्विगुणेन सह बन्धो भवतीति । तथैव द्वौ त्रिशक्तियुक्तौ तिष्ठतस्तावत्, तत्राप्येकस्य त्रिगुणशब्दाभिधेयस्य त्रिशक्तियुक्तस्य परमाणोः शक्तिद्वयमेलापके कृते सति पञ्चगुणत्वं भवति । तेन पञ्चगुणेन सह पूर्वोक्तत्रिगुणस्य बन्धो भवति । एवं द्वयोर्द्वयोः स्निग्धयोर्द्वयोर्द्वयो रूक्षयोर्द्वयोर्द्वयोःस्निग्धरूक्षयोर्वा समयो विषमयोश्च द्विगुणाधिकत्वे सति

कहा गया है । जैसे बकरी गाय भैंस ऊंटनीके दूधमें अथवा घी वगैरः में बढते २ चिकनाईका भेद होता है और जैसे धूलि राख रेत इत्यादि वस्तुओंमें रूखापन अधिक अधिक होता है उसीप्रकार स्निग्ध रूक्ष गुणके अनंतभेद जानने चाहिये ॥ ७२ ॥ आगे किसतरहके स्निग्धरूक्षगुणके परिणमनसे बंध होकर पिंड होजाता है यह दिखलाते हैं;—
[**अणुपरिणामाः**] परमाणुके पर्यायभेद [**स्निग्धा वा**] स्निग्ध होवें [**वा**] अथवा [**रूक्षाः**] रूखे होवें [**समा वा**] दो चार छह इत्यादि अंशोंकी गिनतीकर समान हों [**विषमा वा**] अथवा तीन पांच सात इत्यादि अंशोंकर विषम हों, परंतु

हि परिणामकत्वेन बन्धसाधनत्वात्। न खल्वेकगुणात् स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्ध इत्यपवादः, एकगुणस्निग्धरूक्षत्वस्य हि परिणम्यपरिणामकत्वाभावेन बन्धस्यासाधनत्वात् ॥ ७३ ॥

अथ परमाणूनां पिण्डत्वस्य यथोदितहेतुत्वमवधारयति;—

णिद्धत्तणेण दुगुणो चदुगुणणिद्धेण बंधमणुभवदि।
लुक्खेण वा तिगुणिदो अणु बज्झदि पंचगुणजुत्तो ॥ ७४ ॥

स्निग्धत्वेन द्विगुणश्चतुर्गुणस्निग्धेन बन्धमनुभवति।
रूक्षेण वा त्रिगुणितोऽणुर्बध्यते पञ्चगुणयुक्तः ॥ ७४ ॥

यथोदितहेतुकमेव परमाणूनां पिण्डत्वमवधार्यं द्विचतुर्गुणयोस्त्रिपञ्चगुणयोश्च द्वयोः स्निग्धयोः द्वयो रूक्षयोर्द्वयोः स्निग्धरूक्षयोर्वा परमाण्वोर्बन्धस्याप्रसिद्धेः। उक्तं च "णिद्धा णिद्धे-

---

बन्धो भवतीत्यर्थः, किन्तु विशेषोऽस्ति। **आदिपरिहीणा** आदिशब्देन जलस्थानीयं जघन्यस्निग्धत्वं वालुकास्थानीयं जघन्यरूक्षत्वं भण्यते ताभ्यां विहीना आदि परिहीना बध्यन्ते। किञ्च—परमचैतन्यपरिणतिलक्षणपरमात्मतत्त्वभावनारूपधर्म्यध्यानशुक्लध्यानबलेन यथा जघन्यस्निग्धशक्तिस्थानीये क्षीणरागत्वे सति जघन्यरूक्षशक्तिस्थानीये क्षीणद्वेषत्वे च सति जलवालुकयोरिव जीवस्य बन्धो न भवति, तथा पुद्गलपरमाणोरपि जघन्यस्निग्धरूक्षशक्तिप्रस्तावे बन्धो न भवतीत्यभिप्रायः ॥ ७३ ॥ अथ तमेवार्थं विशेषेण समर्थयति;—गुणशब्दवाच्यशक्तिद्वययुक्तस्य स्निग्धपरमाणोश्चतुर्गुणः स्निग्धेन रूक्षेण वा समशब्दसंज्ञेन तथैव त्रिशक्तियुक्तरूक्षस्य पञ्चगुणरूक्षेण स्निग्धेन वा विषमसंज्ञेन द्विगुणाधिकत्वेन सति बन्धो भवतीति ज्ञातव्यम्। अयं तु विशेषः—

[**यदि**] जो [**आदिपरिहीनाः**] जघन्य अंशसे रहित [**समनः**] गिनतीकी समानतासे [**द्व्यधिकाः**] दो अंश अधिक होवैं तब [**बध्यन्ति**] आपसमें बंधते हैं अन्यरीतिसे नहीं॥ **भावार्थ**—स्निग्ध रूक्ष गुणमें अनंत अंश भेद हैं परंतु एक परमाणू दूसरे परमाणुसे तब बंधता है जब कि दो अंश अधिक स्निग्ध अथवा रूक्ष गुणका परिणमन हो, क्योंकि दो ही अंशकी अधिकतासे बंध होनेकी योग्यता परमागममें दिखलाई है अन्यप्रकारसे बंध नहीं होता, पूर्वोक्त परिणमनसे ही होता है। एक अंशरूप स्निग्धरूक्षभाव परिणत परमाणूसे बंध नहीं होता क्योंकि अति जघन्यभावकर बंधपरिणाम होनेकी अयोग्यता है। इसकारण एक अंशकर बंध नहीं होता ॥७३॥ आगे किसतरह बंध होता है यह दिखलाते हैं;–[**स्निग्धत्वेन**] चिकनेपनेसे [**द्विगुणः**] दो अंशरूप परिणत परमाणु [**चतुर्गुणस्निग्धेन**] चार अंशरूप परिणत हुए परमाणूसे [**बंधं**] बंध अवस्थाको [**अनुभवति**] प्राप्त होता है [**वा**] अथवा [**रूक्षेण**] रूखेपनेसे [**त्रिगुणितः**] तीन अंशरूप परिणत परमाणू [**पञ्चगुणयुक्तः**] पांच अंशरूप परिणत हुए परमाणूसे संयुक्त हुआ [**अनुबध्यते**] बंधको प्राप्त होता है॥ **भावार्थ**—एक परमाणूमें दो अंश स्निग्ध हों तथा दूसरी परमाणूमें चार अंश हों तो

ण बज्झंति लुक्खा लुक्खा य पोग्गला । णिद्ध लुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ॥"
"णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण । णिद्धस्स लुक्खेण हवेदि बन्धो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥" ॥ ७४ ॥

अथात्मनः पुद्गलपिण्डात्मकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

दुपदेसादी खंधा सुहुमा वा बादरा ससंठाणा ।
पुढविजलतेउवाऊ सगपरिणामेहिं जायंते ॥ ७५ ॥

परमानन्दैकलक्षणस्वसंवेदज्ञानबलेन हीयमानरागद्वेषत्वे सति पूर्वोक्तजलवालुकादृष्टान्तेन यथा जीवानां बन्धो न भवति तथा जघन्यस्निग्धरूक्षत्वगुणे सति परमाणूनां चेति । तथाचोक्तम्—"णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिगेण लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिगेण । णिद्धस्स लुक्खेण उवेदि बंधो जघण्णवज्जे विसमे समे वा" ॥ ७४ ॥ एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्निग्धरूक्षपरिणतपरमाणुस्वरूपकथनेन

दोनों परमाणुओंका आपसमें बंध होता है अथवा एकमें ४ अंश हों तथा दूसरीमें ६ अंश हों तौभी बंध होता है । इसप्रकार अपने अनंत अंश भेद तक दो अंश अधिक स्निग्धतासे स्निग्ध परमाणुओंका अथवा स्कंधोंका बंध जानना । तथा एक परमाणु ३ अंश रूक्ष हो और दूसरा परमाणु ५ अंश रूक्ष हो तो दोनोंका बंध होता है, अथवा एक परमाणु ५ अंश दूसरा ७ अंश हो तौ भी बंध होता है । इसप्रकार अपने अंश भेद तक दो अंश अधिक रूक्षतासे रूक्ष परमाणुओंका अथवा स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । एक परमाणुमें २ अंश रूखेपनेके हैं और दूसरी परमाणूमें ४ अंश स्निग्धताके हैं तौभी बंध होता है, इसप्रकार दो अंश अधिक स्निग्ध रूक्षगुणोंके अंशोंसेभी परमाणु तथा स्कंधोंका बंध जानना चाहिये । इससे यह बात सिद्ध हुई कि स्निग्धतासे दो अंश अधिक स्निग्धताकर बंध होता है तथा रूक्षतासे दो अंश अधिक रूक्षताकर बंध होता है, और रूक्षता स्निग्धतामें भी दो अंश अधिक होनेसे बंध होता है । जो दो परमाणुओंमें अंश बराबर हों तो बंध नहीं होता और जो एक अंश अधिक हो तो भी बंध होना संभव नहीं है, परंतु जब दो अंश अधिक हों तभी बंध होसकता है दूसरी तरह बंध होनेकी योग्यता नहीं है । तथा जो एक अंश चिकनाई अथवा रूखाई हो तोभी बंध नहीं होता, क्योंकि १ अंश अति जघन्य है इसकारण बंध योग्य नहीं है । दो अंशसे लेकर आगे अनंतभेदतक दो अंश अधिक चिकनाई रूखाई जो होवे तब बंध होता है एक अंशसे बंधका अभाव ही जानना । एक परमाणू एक अंश चिकनाई अथवा रूखाईपने परिणत हो और दूसरा तीन अंश चिकनाई अथवा तीन अंश रूखापनेसे परिणत हो तौभी बंध नहीं होता यद्यपि वहां पर दो अंश अधिक भी हैं तौभी बंधकी योग्यता नहीं है, इसकारण एक अंशसे बंध कभी नहीं होता ॥ ७४ ॥ आगे आत्माके पुद्गलपिंडके कर्तापनेका अभाव दिखलाते

द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः सूक्ष्मा वा बादरा ससंस्थानाः ।
पृथिवीजलतेजोवायवः स्वकपरिणामैर्जायन्ते ॥ ७५ ॥

एवममी समुपजायमाना द्विप्रदेशादयः स्कन्धा विशिष्टावगाहनशक्तिवशादुपात्तसौक्ष्म्यस्थौल्यविशेषा विशिष्टाकारधारणशक्तिवशाद्गृहीतविचित्रसंस्थानाः सन्तो यथास्वं स्पर्शादिचतुष्कस्याविर्भावतिरोभावस्वशक्तिवशमासाद्य पृथिव्यप्तेजोवायवः स्वपरिणामैरेव जायन्ते । अतोऽवधार्यते द्व्यणुकाद्यनन्तानन्तपुद्गलानां न पिण्डकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७५ ॥

प्रथमगाथा । स्निग्धरूक्षगुणविवरणेन द्वितीया । स्निग्धरूक्षगुणाभ्यां ह्यधिकत्वे सति बन्धकथनेन तृतीया । तस्यैव दृढीकरणेन चतुर्थी चेति परमाणूनां परस्परबन्धव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथात्मा द्व्यणुकादिपुद्गलस्कन्धानां कर्त्ता न भवतीत्युपदिशति;— **जायन्ते** उत्पद्यन्ते । के कर्त्तारः । **दुपदेसादी खंदा** द्विप्रदेशाद्यनन्ताणुपर्यन्ताः स्कन्धा जायन्ते । **पुढविजलतेउवाऊ** पृथ्वीजलतेजोवायवः । कथंभूताः सन्तः । **सुहुमा वा बादरा** सूक्ष्मा बादराः । पुनरपि किंविशिष्टाः सन्तः । **ससंठाणा** यथासम्भवं वृत्तचतुरस्रादिस्वकीयस्वकीयसंस्थानाकारयुक्ताः । कैः कृत्वा जायन्ते ? **सगपरिणामेहिं** स्वकीयस्वकीयस्निग्धरूक्षपरिणामैरिति । अथ विस्तरः—जीवा हि तावद्वस्तुतष्टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकरूपेण शुद्धबुद्धैकस्वभावा एव पश्चाद्व्यवहारेणानादिकर्मबन्धोपाधिवशेन शुद्धात्मस्वभावमलभमानाः सन्तः पृथिव्यप्तेजोवातकायिकेषु समुत्पद्यन्ते, तथापि स्वकीयाभ्यन्तरसुखदुःखादिरूपपरिणतेरेवाशुद्धोपादानकारणं भवन्ति । न च पृथिव्यादिकायाकारपरिणतेः । कस्मादिति चेत् ? तत्र स्कन्धानामेवोपादानकारण-

---

हैं;—[**द्विप्रदेशादयः स्कन्धाः**] दो प्रदेशको आदि लेकर परमाणुओंके स्कंध अर्थात् दो परमाणूका स्कंध तीन परमाणुओंका स्कंध इत्यादि अनंत परमाणुओंके स्कंध पर्यंत जो स्कंध हैं वे सब [**स्वकपरिणामैः**] अपने ही स्निग्ध रूक्ष गुणके परिणमनकी योग्यतासे [**जायन्ते**] उत्पन्न होते हैं [**वा**] अथवा [**सूक्ष्मा बादराः**] सूक्ष्मजाति और स्थूलजातिके [**पृथ्वीजलतेजोवायवः**] पृथिवीकाय जलकाय अग्निकाय वायुकाय ये भी स्निग्ध रूक्षभावके परिणमनसे पुद्गलात्मक स्कंध पर्यायरूप उत्पन्न होते हैं। वे पुद्गलपर्याय [**ससंस्थानाः**] तिकोने चौकोने गोलाकार इत्यादि अनेक आकार सहित होते हैं॥ **भावार्थ**—दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर अनंतानंत परमाणूस्कंध पर्यंत नानाप्रकार आकारोंको धारणकिये हुए सूक्ष्म स्थूलरूप जो पुद्गलपर्याय होते हैं तथा स्पर्शरसगंधवर्णकी मुख्यता वा गौणता लिये हुए पृथ्वी जल तेज वायुरूप पिंड हैं उन सब पर्यायोंका कर्ता पुद्गलद्रव्य जानना चाहिये । इससे यह सिद्धांत निकला कि आत्मा(पुरुष) पुद्गलपिंडका कर्ता नहीं है पुद्गलद्रव्यमें ही पिंड होनेकी स्निग्धरूक्ष शक्ति है, इसलिये

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानेतृत्वाभावमवधारयति;—

ओग्गाढगाढणिचिदो पोग्गलकाएहिं सव्वदो लोगो ।
सुहुमेहिं बादरेहिं य अप्पाउग्गेहिं जोग्गेहिं ॥ ७६ ॥

अवगाढगाढनिचितः पुद्गलकायैः सर्वतो लोकः ।
सूक्ष्मैर्बादरैश्चाप्रायोग्यैर्योग्यैः ॥ ७६ ॥

यतो हि सूक्ष्मत्वपरिणतैर्बादरपरिणतैश्चानतिसूक्ष्मत्वस्थूलत्वात् कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिभिरतिसूक्ष्मस्थूलतया तदयोगिभिश्चावगाहविशिष्टत्वेन परस्परमबाधमानैः स्वयमेव सर्वत एव पुद्गलकायैर्गाढं निचितो लोकः । ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानामानेता पुरुषोऽस्ति ॥ ७६ ॥

त्वादिति । ततो ज्ञायते पुद्गलपिण्डानां जीवः कर्ता न भवतीति ॥७५॥ अथात्मा बन्धकाले बन्धयोग्यपुद्गलान् बहिर्भागान्नैवानयतीत्यावेदयति;—**ओगाढगाढणिचिदो** अवगाह्यावगाह्य नैरन्तर्येण निचितो भृतः । स कः । **लोगो** लोकः । कथंभूतः ? **सव्वदो** सर्वतः सर्वप्रदेशेषु । कैः कर्तृभूतैः ? **पुग्गलकायेहि** पुद्गलकायैः । किंविशिष्टैः ? **सुहुमेहि बादरेहि य** इन्द्रियाग्रहणयोग्यैः सूक्ष्मैस्तद्ग्रहणयोग्यैर्बादरैश्च । पुनश्च कथंभूतैः ? **अप्पाओग्गेहिं** अतिसूक्ष्मस्थूलत्वेन कर्मवर्गणायोग्यतारहितैः । पुनश्च किंविशिष्टैः । **जोग्गेहिं** अतिसूक्ष्मस्थूलत्वाभावात्कर्मवर्गणायोग्यैरिति । अयमत्रार्थः—निश्चयेन शुद्धस्वरूपैरपि व्यवहारेण कर्मोदयाधीनतया पृथिव्यादिपञ्चसूक्ष्मस्थावरत्वं प्राप्तैर्जीवैर्यथा लोको निरन्तरं भृतस्तिष्ठति तथा पुद्गलैरपि । ततो ज्ञायते यत्रैव शरीरावगाढक्षेत्रे जीवस्तिष्ठति बन्धयोग्यपुद्गला अपि तत्रैव तिष्ठन्ति न च बहिर्भागाज्जीव आनय-

---

अपने परिणामसे वह अनेकप्रकार हो जाता है ॥ ७५ ॥ आगे आत्मा पुद्गलपिंडका प्रेरक भी नहीं है यह निश्चय करते हैं;—[**लोकः**] असंख्यप्रदेशी लोक [**सर्वतः**] सब जगह [**सूक्ष्मैः**] सूक्ष्मरूप [**च**] और [**बादरैः**] स्थूलरूप [**आत्मप्रायोग्यैः**] आत्माके ग्रहणकरनेयोग्य [**योग्यैः**] कर्मरूप होनेयोग्य अथवा कर्मरूप न होनेयोग्य ऐसे [**पुद्गलकायैः**] पुद्गलद्रव्यके पिंडोंसे [**अवगाढगाढनिचितः**] अत्यंत गाढ भर रहा है ॥ **भावार्थ**—यह लोक सब जगह एक एक प्रदेशमें अनंत अनंत कार्माण (कर्म होनेयोग्य) वर्गणाओंसे भरपूर है, अवगाहना शक्ति होनेसे कहींपर बाधा नहीं होती । इसकारण इसलोकमें सब जगह जीव ठहरे हुए हैं, और कर्मबंधके योग्य पुद्गलवर्गणा भी सब जगह मौजूद हैं। जीवके जिसतरहके परिणाम होते हैं उसीतरहका आत्माके कर्मबंध होता है । ऐसा नहीं है कि वह आत्मा आप किसी जगहसे प्रेरणा करके कार्माण वर्गणाओंका बंध करता हो । जिस जगह जीव है उसीजगह अनंतवर्गणा हैं वहां पर ही आपसमें बंध होजाता है । इस-

अथात्मनः पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

कम्मत्तणपाओग्गा खंधा जीवस्स परिणइं पप्पा ।
गच्छंति कम्मभावं ण हु ते जीवेण परिणमिदा ॥ ७७ ॥

कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धा जीवस्य परिणतिं प्राप्य ।
गच्छन्ति कर्मभावं न तु ते जीवेन परिणमिताः ॥ ७७ ॥

यतो हि तुल्यक्षेत्रावगाढजीवपरिणाममात्रं बहिरङ्गसाधनमाश्रित्य जीवं परिणमयितारमन्तरेणापि कर्मत्वपरिणमनशक्तियोगिनः पुद्गलस्कन्धाः स्वयमेव कर्मभावेन परिणमन्ति । ततोऽवधार्यते न पुद्गलपिण्डानां कर्मत्वकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७७ ॥

अथात्मनः कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्तृत्वाभावमवधारयति;—

ते ते कम्मत्तगदा पोग्गलकाया पुणो हि जीवस्स ।
संजायंते देहा देहंतरसंकमं पप्पा ॥ ७८ ॥

तीति ॥ ७६ ॥ अथ कर्मस्कन्धानां जीव उपादानकर्त्ता न भवतीति प्रज्ञापयति;—**कम्मत्तणपाओग्गा खंधा** कर्मत्वप्रायोग्याः स्कन्धाः कर्त्तारः **जीवस्स परिणइं पप्पा** जीवस्य परिणतिं प्राप्य निर्दोषिपरमात्मभावनोत्पन्नसहजानन्दैकलक्षणसुखामृतपरिणतेः प्रतिपक्षभूतां जीवसम्बन्धिनीं मिथ्यात्वरागादिपरिणतिं प्राप्य **गच्छंति कम्मभावं** गच्छन्ति परिणमन्ति । कं । कर्मभावं ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायं **ण हि ते जीवेण परिणमिदा** न हि नैव ते कर्मस्कन्धा जीवेनोपादानकर्तृभूतेन परिणमिताः परिणतिं नीता इत्यर्थः । अनेन व्याख्यानेनैतदुक्तं भवति कर्मस्कन्धानां निश्चयेन जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥ ७७ ॥ अथ शरीराकारपरिणतपुद्गलपिण्डानां जीवः कर्त्ता न भवतीत्युपदिशति;—**ते ते कम्मत्तगदा** ते ते पूर्वसूत्रोदिताः

कारण आत्मा पुद्गलपिंडका प्रेरक नहीं है ॥ ७६ ॥ आगे आत्माको पुद्गलपिंडरूप कर्मका अकर्ता दिखलाते हैं;—[**कर्मत्वप्रायोग्याः**] अष्टकर्मरूप होनेयोग्य जो [**स्कन्धाः**] पुद्गलवर्गणाओंके पिंड हैं वे [**जीवस्य**] संसारी आत्माकी [**परिणति**] अशुद्ध परिणतिको [**प्राप्य**] पाकर [**कर्मभावं**] आठ कर्मरूप परिणामको [**गच्छन्ति**] प्राप्त होते हैं [**तु**] परंतु [**ते**] वे कर्मयोग्यबंध [**जीवेन**] आत्माने [**न परिणमिताः**] नहीं परिणमाये हैं अपनीशक्तिसे ही परिणत हुए हैं ॥ **भावार्थ—** जिस क्षेत्रमें कार्माण वर्गणा हैं उसी क्षेत्रमें जीव भी हैं । वे जीव अनादि बंधके संयोगसे अशुद्धभावोंस्वरूप परिणमते हैं। उस अशुद्धपरिणामका बंधरूप बहिरंग निमित्तकारण पाकर कर्मवर्गणा अपनी अंतरंग निजशक्तिसे आठ कर्मरूप परिणम जाती हैं । इसकारण यह आत्मा उनका परिणमानेवाला नहीं है कार्माणवर्गणा अपने आप परिणमती हैं । इसीलिये "उनका कर्ता आत्मा नहीं है" यह सिद्ध हुआ ॥ ७७ ॥ आगे आत्माको नोकर्मरूप शरीरका अकर्ता दिखलाते हैं;—[**ते ते**] वे वे [**कर्मत्वगताः**]

ते ते कर्मत्वगताः पुद्गलकायाः पुनर्हि जीवस्य ।
संजायन्ते देहा देहान्तरसंक्रमं प्राप्य ॥ ७८ ॥

ये ये नामामी यस्य जीवस्य परिणामं निमित्तमात्रीकृत्य पुद्गलकायाः स्वयमेव कर्मत्वेन परिणमन्ति, अथ ते ते तस्य जीवस्यानादिसंतानप्रवृत्तिशरीरान्तरसंक्रान्तिमाश्रित्य स्वयमेव च शरीराणि जायन्ते । अतोऽवधार्यते न कर्मत्वपरिणतपुद्गलद्रव्यात्मकशरीरकर्ता पुरुषोस्ति ॥ ७८ ॥

अथात्मनः शरीरत्वाभावमवधारयति;—

ओरालिओ य देहो देहो वेउव्विओ य तेजयिओ ।
आहारय कम्मइओ पोग्गलदव्वप्पगा सव्वे ॥ ७९ ॥

औदारिकश्च देहो देहो वैक्रियिकश्च तैजसः ।
आहारकः कार्मणः पुद्गलद्रव्यात्मकाः सर्वे ॥ ७९ ॥

कर्मत्वं गता द्रव्यकर्मपर्यायपरिणताः **पुग्गलकाया** पुद्गलस्कन्धाः **पुणोवि जीवस्स** पुनरपि भवान्तरेऽपि जीवस्य **संजायंते देहा** संजायन्ते सम्यग्जायन्ते देहाः शरीराणीति । किं कृत्वा । **देहंतरसंकमं पप्पा** देहान्तरसंक्रमं भवान्तरं प्राप्य लब्ध्वेति । अनेन किमुक्तं भवति—औदारिकादिशरीरनामकर्मरहितपरमात्मानमलभमानेन जीवेन यान्युपार्जितान्यौदारिकादिशरीरनामकर्माणि तानि भवान्तरे प्राप्ते सत्युदयमागच्छन्ति तदुदयेन नोकर्मपुद्गला औदारिकादिशरीराकारेण स्वयमेव परिणमन्ति । ततः कारणादौदारिकादि कायानां जीवः कर्त्ता न भवतीति ॥ ७८ ॥ अथ शरीराणि जीवस्वरूपं न भवन्तीति निश्चिनोति; **ओरलिओ य देहो** औदारिकश्च देहः **देहो वेउव्वियो य** देहो वैक्रियकश्च **तेजइओ** तैजसिकः **आहारय कम्मइयो** आहारः कार्मणश्च **पुग्गलदव्वप्पगा सव्वे** एते पञ्च देहाः पुद्गलद्रव्यात्मकाः

द्रव्यकर्मरूप परिणत हुए [**पुद्गलकायाः**] कर्मवर्गणापिंड [**देहान्तरसंक्रमं प्राप्य**] अन्य पर्यायका संबंध पाके [**पुनः**] फिर [**हि**] निश्चयसे [**जीवस्य**] आत्माके [**देहाः**] शरीररूप [**संजायन्ते**] उत्पन्न होते हैं ॥ **भावार्थ**—जीवके परिणामका निमित्त पाकर द्रव्यकर्मबंधरूप जो पुद्गल हुए थे वे ही अन्यपर्यायमें शरीराकार हो जाते हैं और अपनी ही शक्तिसे द्रव्यकर्मका नोकर्मरूप शरीर फल होजाता है। इसकारण नोकर्मका भी कर्ता पुद्गल ही है आत्मा नहीं है ॥ ७८ ॥ आगे आत्माके पांच शरीरोंका अभाव दिखलाते हैं;—[**औदारिकः देहः**] मनुष्य तिर्यंच संबंधी औदारिकशरीर [**च**] और [**वैक्रियिकः**] नारकी देवता संबंधी वैक्रियिकशरीर [**च**] और [**तैजसः**] शुभ अशुभ तैजसशरीर [**आहारकः**] आहारक पुतलेका शरीर [**कार्मणः**] आठ कर्मरूप शरीर—इसतरह ये ५ शरीर हैं वे [**सर्वे**] सब ही [**पुद्गलद्रव्यात्मकाः**] पुद्गलद्रव्यमयी हैं । इसकारण पांच शरीर आत्मा नहीं है ।

यतो ह्यौदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि सर्वाण्यपि पुद्गलद्रव्यात्मकानि। ततोऽवधार्यते न शरीरं पुरुषोस्ति ॥ ७९ ॥

अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिसर्वपरद्रव्यविभागसाधनमसाधारणं स्वलक्षणमित्यावेदयति;—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ८० ॥

अरसमरूपमगन्धमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम्।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥ ८० ॥

आत्मनो हि रसरूपगन्धगुणाभावस्वभावत्वात्स्पर्शगुणव्यक्त्यभावस्वभावत्वात् शब्दपर्यायाभावस्वभावत्वात्तथा तन्मूलादलिङ्गग्राह्यत्वात्सर्वसंस्थानाभावस्वभावत्वाच्च पुद्गलद्रव्यविभागसाधनमरसत्वमरूपत्वमगन्धत्वमव्यक्तत्वमशब्दत्वमलिङ्गग्राह्यत्वमसंस्थानत्वं चास्ति। सकलपुद्गलापुद्गलाजीवद्रव्यविभागसाधनं तु चेतनागुणत्वमस्ति। तदेव च तस्य स्वजीवद्र-

सर्वेऽपि मम स्वरूपं न भवन्ति। कस्मादिति चेत्? ममाशरीरचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन सर्वदैवाचेतनशरीरत्वविरोधादिति ॥ ७९ ॥ एवं पुद्गलस्कन्धानां बन्धव्याख्यानमुख्यतया द्वितीयस्थले गाथापञ्चकं गतम्। इति "अपदेसो परमाणू" इत्यादि गाथानवकेन परमाणुस्कन्धभेदभिन्नपुद्गलानां पिण्डनिष्पत्तिव्याख्यानमुख्यतया 'द्वितीयविशेषान्तराधिकारः' समाप्तः। अथैकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलेन सह बन्धमुख्यतया व्याख्यानं करोति, तत्र षट्स्थलानि भवन्ति। तेष्वादौ "अरसमरूवं" इत्यादि शुद्धजीवव्याख्यानगाथैका "मुत्तो रूवादि" इत्यादिपूर्वपक्षपरिहारमुख्यतया गाथाद्वयमिति प्रथमस्थले गाथात्रयम्। तदनन्तरं भावबन्धमुख्यत्वेन "उवओगमओ" इत्यादि गाथाद्वयम्। अथ परस्परं द्वयोः पुद्गलयोः बन्धो जीवस्य रागादिपरिणामेन सह बन्धो जीवपुद्गलयोर्बन्धश्चेति त्रिविधबन्धमुख्यत्वेन "फासेहि पुग्गलाणं" इत्यादि सूत्रद्वयम्। ततः परं निश्चयेन द्रव्यबन्धकारणत्वाद्रागादिपरिणाम एव बन्ध इति कथनमुख्यतया "रत्तो बंधदि" इत्यादि गाथात्रयम्। अथ भेदभावनामुख्यत्वेन "भणिदा पुढवी" इत्यादि सूत्रद्वयम्। तदनन्तरं जीवो रागादिपरिणामानामेव कर्ता न च द्रव्यकर्मणामिति कथनमुख्यत्वेन "कुव्वं सहावमादा" इत्यादि षष्ठस्थले गाथासप्तकम्। यत्र मुख्यत्वमिति वदति तत्र यथासम्भवमन्योऽप्यर्थो लभ्यत इति सर्वत्र ज्ञातव्यः। एवमेकोनविंशतिगाथाभिस्तृतीयविशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथ किं तर्हि जीवस्य शरीरादिपरद्रव्येभ्यो भिन्नमन्यद्रव्यासाधारणं स्वस्वरूपमिति? प्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;—**अरसमरूवमगंधं** रसरूप-

आत्मा तो इनसे भिन्न स्वरूप है ॥ ७९ ॥ आगे जीवका शरीरादिक पर द्रव्योंसे भिन्न शुद्धस्वरूप, जो कि अन्य द्रव्यमें नहीं पाया जावे ऐसा लक्षण दिखलाते हैं,—[त्वं] हे भव्य तू [जीवं] शुद्धस्वरूप आत्माको [अरसं] ५ प्रकारके रससे रहित

व्यमात्राश्रितत्वेन स्वलक्षणतां बिभ्राणं शेषद्रव्यान्तरविभागं साधयति । अलिङ्गग्राह्य इति वक्तव्ये यदलिङ्गग्रहणमित्युक्तं तद्बहुतरार्थप्रतिपत्तये । तथाहि—न लिङ्गैरिन्द्रियैर्ग्राहकतामापन्नस्य ग्रहणं यस्येत्यतीन्द्रियज्ञानमयत्वस्य प्रतिपत्तिः । न लिङ्गैरिन्द्रियैर्ग्राह्यतामापन्नस्य ग्रहणं यस्येतीन्द्रियप्रत्यक्षाविषयत्वस्य । न लिङ्गादिन्द्रियगम्याद्धूमादग्नेरिव ग्रहणं यस्येतीन्द्रियप्रत्यक्षपूर्वकानुमानाविषयत्वस्य । न लिङ्गादेव परैः ग्रहणं यस्येत्यनुमेयमात्रत्वाभावस्य । न लिङ्गादेव परेषां यस्येत्यनुमातृमात्रत्वाभावस्य । न लिङ्गात्स्वभावेन ग्रहणं यस्येति प्रत्यक्षज्ञातृत्वस्य । न लिङ्गेनोपयोगाख्यलक्षणेन ग्रहणं ज्ञेयार्थालम्बनं यस्येति बहिरर्थालम्बनज्ञानाभावस्य । न लिङ्गस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं स्वयमाहरणं यस्येत्यनाहार्यज्ञानत्वस्य । न लिङ्गस्योपयोगाख्यलक्षणस्य ग्रहणं परेण हरणं यस्येत्याहार्यज्ञानत्वस्य । न लिङ्गे उपयोगाख्यलक्षणे ग्रहणं सूर्य इवोपरागो यस्येति शुद्धोपयोगस्वभावस्य । न लिङ्गादुपयोगाख्यलक्षणाद्ग्रहणं पौद्गलिककर्मादानं यस्येति द्रव्यकर्मासंपृक्तत्वस्य । न

गन्धरहितत्वात्तथा चाव्याहार्यमाणास्पर्शरूपगन्धत्वाच्च **अव्वत्तं** अव्यक्तत्वात् **असद्दं** अशब्दत्वात् **अलिंगग्गहणं** अलिङ्गग्रहणत्वात् **अणिद्दिट्ठसंठाणं** अनिर्दिष्टसंस्थानत्वाच्च **जाण जीवं** जानीहि जीवम् । अरसमरूपमगन्धमस्पर्शमव्यक्तमशब्दमलिङ्गग्रहणमनिर्दिष्टसंस्थानलक्षणं च हे शिष्य ! जीवं जीवद्रव्यं जानीहि । पुनरपि कथंभूतं । **चेदणागुणं** समस्तपुद्गलादिभ्योऽचेतनेभ्यो भिन्नः समस्तान्यद्रव्यासाधारणः स्वकीयानन्तजीवजातिसाधारणश्च चेतना गुणो यस्य तं चेतनागुणं चालिङ्गग्राह्यमिति वक्तव्ये यदलिङ्गग्रहणमित्युक्तं तत्किमर्थमिति चेत् ? बहुतरार्थप्रतिपत्त्यर्थम् । तथाहि—लिङ्गमिन्द्रियं तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति तेनालिङ्गग्रहणो भवति । तदपि कस्मात्स्वयमेवातीन्द्रियाखण्डज्ञानसहितत्वात् । तेनैव लिङ्गशब्दवाच्येन चक्षुरा-

---

[**अरूपं**] ५ वर्णोंसे रहित [**अगन्धं**] दो प्रकार गंधगुणरहित [**अव्यक्तं**] आठ प्रकार स्पर्शगुणरहित इसीसे अप्रगट [**अशब्दं**] शब्दपर्यायसे रहित स्वभाववाला [**अलिङ्गग्रहणं**] पुद्गलके चिह्नसे ग्रहण नहीं होनेवाला [**अनिर्दिष्टसंस्थानं**] सब आकारोंसे रहित निराकार स्वभावयुक्त [**चेतनागुणं**] और ज्ञान दर्शन गुणवाला ऐसा शुद्ध निर्विकारद्रव्य जानना ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा अमूर्तस्वभाव होनेसे रसरूपगंधस्पर्श शब्द संस्थानादिक पुद्गलीकभावोंसे रहित है, अपने चेतनागुणसे धर्म अधर्म आकाश काल इन चार अमूर्तद्रव्योंसे भी भिन्न है, स्वजीवसत्ताकी अपेक्षा अन्यजीवद्रव्यसे भी भिन्न है अपने अस्तित्वकर सद्रूप वस्तुमात्र है । और यहां पर अलिंगग्रहण विशेषण इसलिये कहा है कि वह आत्मा किसी पुद्गलीकचिन्हसे ग्रहण नहीं किया जाता । इस विशेषणपदके अनेक अर्थ हैं उनमेंसे कुछ थोड़े दिखलाते हैं—लिंग नाम इंद्रियोंका है उन इन्द्रियोंसे यह आत्मा पदार्थोंका ग्रहण (ज्ञान) करनेवाला नहीं है, अतीन्द्रियस्वभावसे पदा-

लिङ्गेभ्य इन्द्रियेभ्यो ग्रहणं विषयाणामुपभोगो यस्येति विषयोपभोक्तृत्वाभावस्य । न लिङ्गात्मनो वेन्द्रियादिलक्षणाद्ग्रहणं जीवस्येति शुक्रार्तवानुविधायित्वाभावस्य । न लिङ्गस्य मेहनाकारस्य ग्रहणं यस्येति लौकिकसाधनमात्रत्वाभावस्य । न लिङ्गेनामेहनाकारेण ग्रहणं लोकव्याप्तिर्यस्येति कुहुकप्रसिद्धसाधनाकारलोकव्याप्तित्वाभावस्य । न लिङ्गानां स्त्रीपुन्नपुंसकवेदानां ग्रहणं यस्येति स्त्रीपुन्नपुंसकद्रव्यभावाभावस्य । न लिङ्गानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति बहिरङ्गयतिलिङ्गाभावस्य । न लिङ्गगुणो ग्रहणमर्थावबोधो यस्येति गुणविशेषानालीढशुद्धद्रव्यत्वस्य । न लिङ्गं गुणपर्यायो ग्रहणमर्थावबोधविशेषो यस्येति पर्यायविशेषानालीढशुद्धद्रव्यत्वस्य । न लिङ्गं प्रत्यभिज्ञानहेतुर्ग्रहणमर्थावबोधसामान्यं यस्येति द्रव्यानालीढशुद्धपर्यायत्वस्य ॥ ८० ॥

दीन्द्रियेणान्यजीवानां यस्य ग्रहणं परिच्छेदनं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण उच्यते । तदपि कस्मात् । निर्विकारातीन्द्रियस्वसंवेदनप्रत्यक्षज्ञानगम्यत्वात् । लिङ्गं धूमादि तेन धूमलिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निवदनुमेयभूतपरपदार्थानां ग्रहणं न करोति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? स्वयमेवालिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात् , तेनैव लिङ्गोद्भवानुमानेनाग्निग्रहणवत् परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? अलिङ्गोद्भवातीन्द्रियज्ञानगम्यत्वात् । अथवा लिङ्गं चिह्नं लाञ्छनं शिखाजटाधारणादि तेनार्थानां ग्रहणं परिच्छेदनं न करोति, तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मात् ? स्वाभाविकाचिह्नोद्भवातीन्द्रियज्ञानसहितत्वात् । तेनैव चिह्नोद्भवज्ञानेन परपुरुषाणां यस्यात्मनो ग्रहणं परिज्ञानं कर्तुं नायाति तेनालिङ्गग्रहण इति । तदपि कस्मान्निरुपरागस्वसंवेदनज्ञानगम्यत्वादिति । एवमलिङ्गग्रहणशब्दस्य व्याख्या-

---

र्थोंको जानता है इसलिये अलिंगग्रहण है । अथवा इन्द्रियोंसे अन्यजीवभी इस आत्माका ग्रहण नहीं करसकते, यह तो अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञानगम्य (अपने अनुभवगोचर) है इसलिये भी अलिंगग्रहण है । जैसे धूम चिह्नको देखकर अग्निका ज्ञान करते हैं वैसे अनुमानज्ञानकर लिंग अर्थात् चिह्नकर यह आत्मा अन्यपदार्थोंका जाननेवाला नहीं है, यह तो अतींद्रियप्रत्यक्षज्ञानकर जानता है इसकारण भी अलिंगग्रहण है । कोई भी जीव इंद्रियगम्यचिह्नकर इस आत्माका अनुमान नहीं करसकता अर्थात्—इंद्रियज्ञान जनित अनुमानसे ग्रहण नहीं किया जासकता इसकारण भी अलिंग ग्रहण है । इत्यादि अलिंगग्रहण शब्दके अनेक अर्थ होते हैं । यह शुद्ध आत्मा केवल अनुभवगम्य है वचनसे नहीं कहा जासकता, कहनेसे अशुद्धताका प्रसंग आता है । इसलिये शुद्ध जीवद्रव्य ज्ञानगम्य है । जो अनुभवी हैं वे ही शांतरसके स्वादको जानते हैं, इसका अन्यकथन है वह व्यवहारमात्र है । जिनके काललब्धि निकट आगई है वे ही व्यवहारमात्र शब्दब्रह्मका निमित्त पाकर स्वरूपमें लीन होते हैं । इसकारण अवाच्य शुद्धजीवद्रव्य अनुभवयोग्य ही है

अथ कथममूर्तस्यात्मनः स्निग्धरूक्षत्वाभावाद्बन्धो भवतीति ? पूर्वपक्षयति;—

मुत्तो रूवादिगुणो बज्झदि फासेहिं अण्णमण्णेहिं ।
तव्विवरीदो अप्पा बंधदि किध पोग्गलं कम्मं ॥ ८१ ॥

मूर्तो रूपादिगुणो बध्यते स्पर्शैरन्योन्यैः ।
तद्विपरीत आत्मा बध्नाति कथं पौद्गलं कर्म ॥ ८१ ॥

मूर्तयोर्हि तावत्पुद्गलयो रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषादन्योन्यबन्धोऽवधार्यते एव । आत्मकर्मपुद्गलयोस्तु स कथमवधार्यते ? मूर्तस्य कर्मपुद्गलस्य रूपादिगुणयुक्तत्वेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषसंभवेप्यमूर्तस्यात्मनो रूपादिगुणयुक्तत्वाभावेन यथोदितस्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषासंभावनया चैकाङ्गविकलत्वात् ॥ ८१ ॥

अथैवममूर्तस्याप्यात्मनो बन्धो भवतीति सिद्धान्तयति;—

रूवादिएहिं रहिदो पेच्छदि जाणादि रूवमादीणि ।
दव्वाणि गुणे य जधा तध बंधो तेण जाणीहि ॥ ८२ ॥

नक्रमेण शुद्धजीवस्वरूपं ज्ञातव्यमित्यभिप्रायः ॥ ८० ॥ अथामूर्तशुद्धात्मनो व्याख्याने कृते सत्यमूर्तजीवस्य मूर्तपुद्गलकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति पूर्वपक्षं करोति;—**मुत्तो रूवादिगुणो** मूर्तो रूपरसगन्धस्पर्शवान् पुद्गलद्रव्यगुणः **बज्झदि** अन्योन्यसंश्लेषेण बध्यते बन्धमनुभवति, तत्र दोषो नास्ति । कैः कृत्वा ? **पासेहि अण्णमण्णेहिं** स्निग्धरूक्षगुणलक्षणस्पर्शसंयोगैः । किंविशिष्टैः । अन्योन्यैः परस्परनिमित्तैः । **तं विवरीदो अप्पा बज्झदि किह पोग्गलं कम्मं** तद्विपरीतात्मा बध्नाति कथं पौद्गलं कर्मेति । अयं परमात्मा निर्विकारपरमचैतन्यचमत्कारपरिणतत्वेन बन्धकारणभूतस्निग्धरूक्षगुणस्थानीयद्वेषादिविभावपरिणामरहितत्वादमूर्तत्वाच्च पौद्गलकर्म कथं बध्नाति न कथमपीति पूर्वपक्षः ॥ ८१ ॥ अथैवममूर्तस्याप्यात्मनो नयविभागेन बन्धो

॥ ८० ॥ आगे अमूर्त आत्माके स्निग्धरूक्षगुणका अभाव होनेसे बंध किसतरह होसकता है ? ऐसा तर्क करते हैं;–[**रूपादिगुणः**] रूप रस गंध स्पर्शगुणवाला [**मूर्तः**] स्कंध वा परमाणुरूप पुद्गलद्रव्य [**अन्योन्यैः**] परस्पर [**स्पर्शैः**] स्निग्धरूक्षरूप स्पर्शगुणसे [**बध्यते**] बंधको प्राप्त होसकता है [**तद्विपरीतः**] पुद्गलके स्निग्धरूक्षगुण रहित [**आत्मा**] जीवद्रव्य [**पौद्गलिकं कर्म**] पुद्गलीक कर्मवर्गणाओंको [**कथं**] कैसे [**बध्नाति**] बांधसकता है ? **भावार्थ**—पुद्गलद्रव्य मूर्तीक है वह अपने स्निग्ध रूक्ष गुणकर आपसमें बंधता है । आत्मा तो अमूर्तीक है स्निग्ध रूक्ष गुणकरके रहित है वह कर्मवर्गणासे किसतरह बँध सक्ता है ? यह बड़ा संशय है कि एक तरफ तो स्निग्धरूक्षगुणसहित कर्मवर्गणा और दूसरी तरफ स्निग्धरूक्षगुणरहित आत्मा, ये दोनों आपसमें किस तरह बंधको प्राप्त हो सकते हैं ऐसा शिष्यका प्रश्न है ॥ ८१ ॥ आगे अमूर्त आत्माके भी बंध होता है ऐसा उत्तर दृष्टान्तद्वारा कहते हैं;—[**रूपा-**

रूपादिकै रहितः पश्यति जानाति रूपादीनि।
द्रव्याणि गुणांश्च यथा तथा बन्धस्तेन जानीहि ॥ ८२ ॥

येन प्रकारेण रूपादिरहितो रूपीणि द्रव्याणि तद्गुणांश्च पश्यति जानाति च, तेनैव प्रकारेण रूपादिरहितो रूपिभिः कर्मपुद्गलैः किल बध्यते। अन्यथा कथममूर्तो मूर्तं पश्यति जानाति चेत्यत्रापि पर्यनुयोगस्यानिवार्यत्वात्। न चैतदत्यन्तदुर्घटत्वाद्दार्ष्टान्तिकीकृतं, किंतु दृष्टान्तद्वारेणाबालगोपालप्रकटितं। तथाहि—यथा बालकस्य गोपालकस्य

भवतीति प्रत्युत्तरं ददाति;—**रूवादिएहि रहिदो** अमूर्तपरमचिज्ज्योतिःपरिणतत्वेन तावदयमात्मा रूपादिरहितः। तथाविधः सन् किं करोति? **पेच्छदि जाणादि** मुक्तावस्थायां युगपत्परिच्छित्तिरूपसामान्यविशेषग्राहककेवलदर्शनज्ञानोपयोगेन यद्यपि तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथापि ग्राह्यग्राहकलक्षणसम्बन्धेन पश्यति जानाति। कानि कर्मतापन्नानि? **रूवमादीणि दव्वाणि** रूपरसगन्धस्पर्शसहितानि मूर्तद्रव्याणि। न केवलं द्रव्याणि **गुणे य जधा** तद्गुणांश्च यथा। अथवा यः कश्चित्संसारी जीवो विशेषभेदज्ञानरहितः सन् काष्टपाषाणाद्यचेतनजिनप्रतिमां दृष्ट्वा मदीयाराध्योऽयमिति मन्यते। यद्यपि तत्र सत्तावलोकदर्शनेन सह प्रतिमायास्तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथापि परिच्छेद्यपरिच्छेदकलक्षणसम्बन्धोऽस्ति। यथा वा समवसरणे प्रत्यक्षजिनेश्वरं दृष्ट्वा विशेषभेदज्ञानी मन्यते मदीयाराध्योऽयमिति। तत्रापि यद्यप्यवलोकनज्ञानस्य जिनेश्वरेण सह तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथाप्याराध्याराधकसम्बन्धोऽस्ति। **तह बंधो तेण जाणाहि** तथा बन्धं तेनैव दृष्टान्तेन जानीहि। अयमत्रार्थः—यद्यप्ययमात्मा निश्चयेनामूर्तस्तथा-

---

दिकैः रहितः] रूपादिसे रहित यह आत्मा **[यथा]** जैसे **[रूपादीनि द्रव्याणि]** रूपादिगुणोंवाले घटपटादिस्वरूप अनेक पुद्गलद्रव्योंको **[च]** और **[गुणान्]** उन द्रव्योंके रूपादिगुणोंको **[जानाति]** जानता है **[पश्यति]** देखता है **[तथा]** उसीप्रकार **[तेन]** पुद्गलद्रव्यके साथ **[बन्धं]** आत्माका बंध **[जानीहि]** जानो॥ **भावार्थ**—आत्मा अमूर्तीक है परंतु मूर्तीकद्रव्यका देखने जाननेवाला है। देखना जानना इसका स्वभाव है उस देखने जाननेसे ही मूर्तीकद्रव्यसे बंध होता है जो देखता जानता न होता तो बंध न होता। जब देखता जानता है तभी बंध है। यही बात दृष्टांतसे दिखलाते हैं—जैसे एक बालक मट्टीके वलय (कंकण) को अपना समझकर देखता है जानता है मानता है परंतु वह वलय उस बालकसे जुदा है कुछ संबंध नहीं है, तौभी जो उस कंकणको कोई तोड डाले फोड डाले अथवा लेजावे तो वह बालक अति दुःखी होता है और इसी तरह ग्वालिया सचे कंकणको अपना समझ कर देखता है जानता है मानता है सो सचा वलयभी उस ग्वालियेसे जुदा है उस वलयसे कुछ संबंध नहीं है, तौभी उस सचे वलयको जो कोई तोड डाले अथवा लेजावे तो ग्वालियाभी अति दुःखी होता है। इसजगह

वा पृथगवस्थितं मृद्बलीवर्दं बलीवर्दं वा पश्यतो जानतश्च न बलीवर्देन सहास्ति संबन्धः, विषयभावावस्थितबलीवर्दनिमित्तोपयोगाधिरूढबलीवर्दाकारदर्शनज्ञानसंबन्धो बलीवर्दसंबन्धव्यवहारसाधकस्त्वस्त्येव; तथा किलात्मनो नीरूपत्वेन स्पर्शशून्यत्वान्न कर्मपुद्गलैः सहास्ति संबन्धः, एकावगाहभावावस्थितकर्मपुद्गलनिमित्तोपयोगाधिरूढरागद्वेषादिभावसंबन्धः कर्मपुद्गलबन्धव्यवहारसाधकस्त्वस्त्येव ॥ ८२ ॥

अथ भावबन्धस्वरूपं ज्ञापयति;—

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि ।
पप्पा विविधे विसए जो हि पुणो तेहिं संबंधो ॥ ८३ ॥

उपयोगमयो जीवो मुह्यति रज्यति वा प्रद्वेष्टि ।
प्राप्य विविधान् विषयान् यो हि पुनस्तैः संबन्धः ॥ ८३ ॥

प्यनादिकर्मबन्धवशाद्व्यवहारेण मूर्तः सन् द्रव्यबन्धनिमित्तभूतं रागादिविकल्परूपं भावबन्धोपयोगं करोति । तस्मिन्सति मूर्तद्रव्यकर्मणा सह यद्यपि तादात्म्यसम्बन्धो नास्ति तथापि पूर्वोक्तदृष्टान्तेन संश्लेषसम्बन्धोऽस्तीति नास्ति दोषः ॥ ८२ ॥ एवं शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवकथनमुख्यत्वेन प्रथमगाथा । मूर्तिरहितजीवस्य मूर्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति पूर्वपक्षरूपेण द्वितीया तत्परिहाररूपेण तृतीया चेति गाथात्रयेण प्रथमस्थलं गतम् । अथ रागद्वेषमोहलक्षणं भावबन्धस्वरूपमाख्याति;—**उवओगमओ जीवो** उपयोगमयो जीवः, अयं जीवो निश्चयनयेन विशुद्धज्ञानदर्शनोपयोगमयस्तावत्तथाभूतोऽप्यनादिबन्धवशात्सोपाधिस्फटिकवत् परोपाधिभावेन परिणतः सन् । किं करोति । **मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि** मुह्यति रज्यति वा प्रद्वेष्टि द्वेषं करोति । किं कृत्वा । पूर्वं **पप्पा** प्राप्य । कान् ? **विविधे विसये**

विचारना चाहिये कि माटीका वलय और सच्चा वलय दोनों बाल गोपालसे जुदे हैं उनके जानेसे बालक और ग्वालिया क्यों दुःखी होते हैं । इससे यह बात विचारमें आती है कि वे बालगोपाल उन वलयोंको अपना देखते हैं जानते हैं । इसकारण अपने परिणामोंसे बँध रहे हैं, उनका ज्ञान वलयके निमित्तसे तदाकार परिणत हो रहा है । इसलिये परस्वरूप वलयोंसे संबंधका व्यवहार आजाता है । उसीप्रकार इस आत्माका पुद्गलसे कुछ संबंध नहीं है परंतु अनादिकालसे लेकर एक क्षेत्रावगाहकर ठहरे हुए जो पुद्गल हैं उनका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ जो राग द्वेष मोहरूप अशुद्धोपयोग वही भावबंध है उसीसे आत्मा बँधा हुआ है पुद्गलीक कर्मबंध व्यवहारमात्र है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो यह आत्मा परद्रव्यको रागी द्वेषी मोही होकर देखता है जानता है वही अशुद्धोपयोगरूप परिणाम बंधका कारण है । और अपने ही अशुद्धपरिणाममें बंध है ॥ ८२ ॥ आगे भावबंधका स्वरूप दिखलाते हैं;—[**यः**] जो [**उपयोगमयः**] ज्ञान दर्शनमयी [**जीवः**] आत्मा [**विविधान्**] अनेक तरहके [**विषयान्**]

अयमात्मा सर्व एव तावत्सविकल्पनिर्विकल्पपरिच्छेदात्मकत्वादुपयोगमयः । तत्र यो हि नाम नानाकारान् परिच्छेद्यानर्थानासाद्य मोहं वा रागं वा द्वेषं वा समुपैति स नाम तैः परप्रत्ययैरपि मोहरागद्वेषैरुपरक्तात्मस्वभावत्वान्नीलपीतरक्तोपाश्रयप्रत्ययनीलपीतरक्तत्वैरुपरक्तस्वभावः स्फटिकमणिरिव स्वयमेक एव तद्भावद्वितीयत्वाद्बन्धो भवति ॥ ८३ ॥

अथ भावबन्धयुक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रज्ञापयति;—

भावेण जेण जीवो पेच्छदि जाणादि आगदं विसए ।
रज्जदि तेणेव पुणो बज्झदि कम्मत्ति उवएसो ॥ ८४ ॥

भावेन येन जीवः पश्यति जानात्यागतं विषयः ।
रज्यति तेनैव पुनर्बध्यते कर्मेत्युपदेशः ॥ ८४ ॥

अयमात्मा साकारनिराकारपरिच्छेदात्मकत्वात्परिच्छेद्यतामापद्यमानमर्थजातं येनैव मोहरूपेण रागरूपेण द्वेषरूपेण वा भावेन पश्यति जानाति च तेनैवोपरज्यत एव । योयमुप-

---

निर्विषयपरमात्मस्वरूपभावनाविपक्षभूतान्विविधपञ्चेन्द्रियविषयान् । **जो हि पुणो** यः पुनरित्थंभूतोऽस्ति जीवो हि स्फुटं **तेहि संबंधो** तैः सम्बद्धो भवति तैः पूर्वोक्तरागद्वेषमोहैः कर्तृभूतैर्मोहरागद्वेषरहित जीवस्य शुद्धपरिणामलक्षणं परमधर्ममलभमानः सन् स जीवो बद्धो भवतीति । अत्र योसौ रागद्वेषमोहपरिणामः स एव भावबन्ध इत्यर्थः ॥ ८३ ॥ अथ भावबन्धयुक्तिं द्रव्यबन्धस्वरूपं च प्रतिपादयतिः—**भावेण जेण** भावेन परिणामेन येन **जीवो** जीवः कर्त्ता **पेच्छदि जाणदि** निर्विकल्पदर्शनपरिणामेन पश्यति सविकल्पज्ञानपरिणामेन जानाति । किं कर्मतापन्नम् ? **आगदं विसये** आगतं प्राप्तं किमपीष्टानिष्टं वस्तु पञ्चेन्द्रियविषये **रज्जदि तेणेव पुणो** रज्यते तेनैव पुनः आदिमध्यान्तवर्जितं रागादिदोषरहितं चि-

---

इष्ट अनिष्ट विषयोंको [**प्राप्य**] पाकर [**मुह्यति**] मोही होता है [**वा**] अथवा [**रज्यति**] रागी होता है अथवा [**प्रद्वेष्टि**] द्वेषी होता है [**सः**] वह [**पुनः**] फिर [**तैः**] उन राग द्वेष मोहभावोंसे [**बद्धः**] बँधा हुआ है ॥ **भावार्थ—**यह संसारी जीव इंद्रियोंके विषयोंमें उपयोगी होता हुआ राग द्वेष मोहभावको प्राप्त होता है । वे रागद्वेष मोहभाव परके निमित्तसे होते हैं । यद्यपि यह आत्मा एकभावस्वरूप है परंतु रागद्वेष मोहभावके परिणमनसे द्वैतभावरूप हुआ है इससे बंध है । जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे एक श्वेतभावरूप है परंतु नील पीत रक्तवस्तुके संबंधसे नील पीत रक्तरूप दूसरे परिणामको प्राप्त होती है तदाकार संबंधको धारण करती है, उसीप्रकार यह आत्मा परसंयोगसे रागद्वेष मोहभावरूप भावबंधसे बँधता है ॥ ८३ ॥ आगे भावबंधके अनुसार द्रव्यबंधका स्वरूप दिखलाते हैं,—[**जीवः**] आत्मा [**येन भावेन**] जिस रागद्वेष मोहभावकर [**विषये**] इंद्रियोंके विषयमें [**आगतं**] आये हुए इष्ट अनिष्ट पदार्थको [**पश्यति**] देखता है [**जानाति**] जानता है [**तेन एव**]

रागः स खलु स्निग्धरूक्षत्वस्थानीयो भावबन्धः । अथ पुनस्तेनैव पौद्गलिकं कर्म बध्यत एव, इत्येष भावबन्धप्रत्ययो द्रव्यबन्धः ॥ ८४ ॥

अथ पुद्गलजीवतदुभयबन्धस्वरूपं ज्ञापयति;—

फासेहिं पोग्गलाणं बंधो जीवस्स रागमादीहिं ।
अण्णोण्णं अवगाहो पोग्गलजीवप्पगो भणिदो ॥ ८५ ॥

स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धो जीवस्य रागादिभिः ।
अन्योन्यमवगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः ॥ ८५ ॥

यस्तावदत्र कर्मणां स्निग्धरूक्षत्वस्पर्शविशेषैरेकत्वपरिणामः स केवलपुद्गलबन्धः । यस्तु जीवस्यौपाधिक मोहराग द्वेषपर्यायैरेकत्व परिणाम; स केवलजीवबन्धः । यः पुनः जीव-

---

ज्ज्योतिःस्वरूपं निजात्मद्रव्यमरोचमानस्तथैवाजानन्सन् समस्तरागादिविकल्पपरिहारेण भावयंश्च तेनैव पूर्वोक्तज्ञानदर्शनोपयोगेन रज्यते रागं करोति इति भावबन्धयुक्तिः । **बज्झदि कम्मत्ति उवदेसो** तेन भावबन्धेन नवतरद्रव्यकर्म बध्नातीति द्रव्यबन्धस्वरूपं चेत्युपदेशः ॥ ८४ ॥ एवं भावबन्धकथनमुख्यतया गाथाद्वयेन द्वितीयस्थलं गतम् । अथ पूर्वनवतरपुद्गलद्रव्यकर्मणोः परस्परबन्धो जीवस्य तु रागादिभावेन सह बन्धो जीवस्यैव नवतरद्रव्यकर्मणा सह चेति त्रिविध-बन्धस्वरूपं प्रज्ञापयति;—**पासेहि पुग्गलाणं बंधो** स्पर्शैः पुद्गलानां बन्धः पूर्वनवतरपुद्गल-द्रव्यकर्मणोर्जीवगतरागादिभावनिमित्तेन स्वकीयस्निग्धरूक्षोपादानकारणेन च परस्परस्पर्शसंयोगेन योसौ बन्धः स पुद्गलबन्धः । **जीवस्स रागमादीहिं** जीवस्य रागादिभिर्निरुपरागपरम-

---

और उसी रागद्वेष मोहरूप परिणामकर [**रज्यते**] तदाकार हो लीन होजाता है [**पुनः**] फिर [**तेनैव**] उसी भावबंधके निमित्तसे [**कर्म**] ज्ञानावरणादि आठ प्रकार द्रव्यकर्म [**बध्यते**] बँधते हैं [**इति उपदेशः**] यह भगवन्तका उपदेश है ॥ **भावार्थ**—यह आत्मा ज्ञान दर्शन स्वभाव सहित है । जब यह रागद्वेषमोहभावोंसे ज्ञेय पदार्थको देखता है जानता है तब इसके चिद्विकाररूप रागद्वेष मोह परिणाम होते हैं । उन अशुद्धोपयोगरूप परिणामोंका जो होना वही भावबंध है । इसी भावकर्मके अनुसार द्रव्यकर्म बंधते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेवका उपदेश मनमें धारण करने योग्य है ॥ ८४ ॥ आगे पुद्गलकर्मका बंध पुद्गलकर्मोंसे होता है, जीवका बंध अशुद्धरागादि भावोंसे होता है और आत्मा पुद्गल इन दोनोंका भी बंध आपसमें होता है ऐसा तीन तरहका बंध दिखलाते हैं;—[**स्पर्शैः**] यथायोग्य स्निग्धरूक्षस्पर्शगुणोंसे [**पुद्गलानां**] पुद्गलकर्मवर्गणाओंका आपसमें [**बन्धः**] मिलकर एकपिंडरूप बंध होता है [**रागादिभिः**] पर उपाधिसे उत्पन्न चिद्विकाररूप रागद्वेषमोहपरिणामोंसे [**जीवस्य**] आत्माका बंध होता है [**अन्योन्यं**] परस्परमें परिणामोंका निमित्त पाकर [**अवगाहः**] एक क्षेत्रमें जीवकर्मका बंध होना [**पुद्गलजीवात्मकः**] वह

कर्मपुद्गलयोः परस्परपरिणामनिमित्तमात्रत्वेन विशिष्टतरः परस्परमवगाहः स तदुभयबन्धः ॥ ८५ ॥

अथ द्रव्यबन्धस्य भावबन्धहेतुकत्वमुज्जीवयति;—

सपदेसो सो अप्पा तेसु पदेसेसु पोग्गला काया ।
पविसंति जहाजोग्गं चिट्ठंति य जंति बज्झंति ॥ ८६ ॥

सप्रदेशः स आत्मा तेषु प्रदेशेषु पुद्गलाः कायाः ।
प्रविशन्ति यथायोग्यं तिष्ठन्ति च यान्ति बध्यन्ते ॥ ८६ ॥

अयमात्मा लोकाकाशतुल्यासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशः । अथ तेषु तस्य प्रदेशेषु कायवाङ्मनोवर्गणालम्बनः परिस्पन्दो यथा भवति तथा कर्मपुद्गलकायाः स्वयमेव परिस्पन्द-

---

चैतन्यरूपनिजात्मतत्त्वभावनाच्युतस्य जीवस्य यद्रागादिभिः सह परिणमनं स जीवबन्ध इति । **अण्णोण्णस्सवगाहो पुग्गलजीवप्पगो भणिदो** अन्योन्यस्यावगाहः पुद्गलजीवात्मको भणितः। निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानरहितत्वेन स्निग्धरूक्षस्थानीयरागद्वेषपरिणतजीवस्य बन्धयोग्यस्निग्धरूक्षपरिणामपरिणतपुद्गलस्य च योऽसौ परस्परावगाहलक्षणः स इत्थंभूतबन्धो जीवपुद्गलबन्ध इति त्रिविधबन्धलक्षणं ज्ञातव्यम् ॥ ८५ ॥ अथ बन्धो "जीवस्स रायमादीहिं" पूर्वसूत्रे यदुक्तं तदेव रागत्वं द्रव्यबन्धस्य कारणमिति विशेषेण समर्थयति;—**सपदेसो सो अप्पा** स प्रसिद्धात्मा लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्तावत्सप्रदेशः । **तेसु पदेसेसु पुग्गला काया** तेषु प्रदेशेषु कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलकायाः कर्तारः **पविसंति** प्रविशन्ति । कथम् ? **जहाजोग्गं** मनोवचनकायवर्गणालम्बनवीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितात्मप्रदेशपरिस्पन्दलक्षणयोगानुसारेण यथायोग्यम् । न केवलं प्रविशन्ति **चिट्ठंति हि** प्रवेशानन्तरं स्वकीय-

---

पुद्गलकर्म और जीव इन दोनोंका बंध [**भणितः**] कहा गया है ॥ **भावार्थ**—जब जीवके नवीन कर्मबंध होता है तब वह तीन जातिका बंध होता है । जो जीवके प्रदेशोंमें पूर्वबद्ध वर्गणा हैं उनसे तो नूतन कर्मवर्गणा स्निग्धरूक्षभावकर बंधती हैं, और जो जीवके रागादि अशुद्धोपयोग होता है उससे जीवबंध होता है तथा जीव और पुद्गलके परिणमनसे निमित्तनैमित्तिकभावकर जो दोनोंका एकक्षेत्रावगाह है वह आपसमें जीवपुद्गलका बंध होता है—इसप्रकार तीन जातिका बंध जानना चाहिये ॥८५॥ आगे द्रव्यबंधका कारण भावबंध प्रगट दिखलाते हैं;—[**सः**] सो [**आत्मा**] यह आत्मा [**सप्रदेशः**] लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है [**तेषु प्रदेशेषु**] उन असंख्यातप्रदेशोंमें [**पुद्गलाः कायाः**] पुद्गलकर्मवर्गणापिंड [**यथायोग्यं**] मनवचनकायवर्गणाओंकी सहायतासे जो आत्माके प्रदेशोंका कंपरूप योगका परिणमन है उसीके अनुसार [**प्रविशन्ति**] जीवके प्रदेशोंमें आके प्रवेश करते हैं [**च**] और [**बध्यन्ते**] परस्परमें एक क्षेत्रावगाहकर बंधते हैं तथा वे कर्मवर्गणा पिंड [**तिष्ठन्ति**] राग-

न्तः प्रविशन्त्यपि तिष्ठन्त्यपि च । अस्ति चेज्जीवस्य मोहरागद्वेषरूपो भावो बध्यन्तेऽपि च । ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य भावबन्धो हेतुः ॥ ८६ ॥

अथ द्रव्यबन्धहेतुत्वेन रागपरिणाममात्रस्य भावबन्धस्य निश्चयबन्धत्वं साधयति;—

रत्तो बंधदि कम्मं मुचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो ॥ ८७ ॥

रक्तो बध्नाति कर्म मुच्यते कर्मभी रागरहितात्मा ।
एष बन्धसमासो जीवानां जानीहि निश्चयतः ॥ ८७ ॥

यतो रागपरिणत एवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा बध्यते न वैराग्यपरिणतः, अभिनवेन द्रव्यकर्मणा रागपरिणतो न मुच्यते वैराग्यपरिणत एव, संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसंचितेन पुराणेन च न मुच्यते रागपरिणतः, मुच्यत एव संस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिर-

---

स्थितिकालपर्यन्तं तिष्ठन्ति हि स्फुटम् । न केवलं तिष्ठन्ति **जंति** स्वकीयोदयकालं प्राप्य फलं दत्वा गच्छन्ति **बज्झंति** केवलज्ञानाद्यनन्तचतुष्टयव्यक्तिरूपमोक्षप्रतिपक्षभूतबन्धस्य कारणं रागादिकं लब्ध्वा पुनरपि द्रव्यबन्धरूपेण बध्यन्ते च । अत एतदायातं रागादिपरिणाम एव द्रव्यबन्धकारणमिति । अथवा द्वितीयव्याख्यानम्—प्रविशन्ति प्रदेशबन्धास्तिष्ठन्ति स्थितिबन्धाः फलं दत्वा गच्छन्त्यनुभागबन्धा बध्यन्ते प्रकृतिबन्धा इति ॥ ८६ ॥ एवं त्रिविधबन्धमुख्यतया सूत्रद्वयेन तृतीयस्थलं गतम् । अथ द्रव्यबन्धकारणत्वान्निश्चयेन रागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव बन्ध इति प्रज्ञापयति;—**रत्तो बंधदि कम्मं** रक्तो बध्नाति कर्म । रक्त एव कर्म बध्नाति नच वैराग्यपरिणतः **मुंचदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा** मुच्यते कर्मभ्यां रागरहितात्मा मुच्यत एव शुभाशुभकर्मभ्यां रागरहितात्मा न च बध्यते **एसो बंधसमासो** एष प्रत्यक्षीभूतो बन्धसंक्षेपः । **जीवाणं** जीवानां सम्बन्धी **जाण णिच्छयदो** जानीहि त्वं हे शिष्य ! निश्चयतो

द्वेषमोहभावके अनुसार अपनी स्थिति लेकर ठहरते हैं, उसके बाद **[यान्ति]** अपना फल देकर क्षय होजाते हैं ॥ **भावार्थ**— जो पहले तो जीवके रागादि अशुद्धोपयोगरूप भावबंध होता है उसके बाद द्रव्यबंध होता है । इसकारण द्रव्यबंधका कारण भावबंध जानना । प्रकृति और प्रदेशबंध योगपरिणामसे होते हैं, स्थिति और अनुभाग बंध रागद्वेषरूप कषाय परिणामसे होते हैं ॥ ८६ ॥ आगे द्रव्यबंधका कारण रागादिभाव है इसलिये रागादिभावको ही निश्चयबंध दिखलाते हैं;—**[रक्तः]** जो जीव परद्रव्यमें रागी है वही **[कर्म]** ज्ञानावरणादि कर्मोंको **[बध्नाति]** बांधता है **[रागरहितात्मा]** और जो रागभावकर रहित है वह **[कर्मभिः]** सब कर्मकलंकोंसे **[मुच्यते]** मुक्त होता है । **[निश्चयतः]** निश्चयनयकर **[जीवानां]** संसारी आत्माओंके **[एषः]** यह रागादिविभावरूप अशुद्धोपयोग ही भावबंध है ऐसा **[बन्धसमासः]** बंधका संक्षेपकथन **[जानीहि]** हे शिष्य तू समझ ॥ **भावार्थ**—जो जीव रागभावकर

संचितेन पुराणेन च वैराग्यपरिणतो न बध्यते। ततोऽवधार्यते द्रव्यबन्धस्य साधकतमत्वाद्रागपरिणाम एव निश्चयेन बन्धः॥ ८७॥

अथ परिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकतमरागविशिष्टत्वं सविशेषं प्रकटयति;—

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो।
असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो॥ ८८॥

परिणामाद्बन्धः परिणामो रागद्वेषमोहयुतः।
अशुभौ मोहप्रद्वेषौ शुभो वाशुभो भवति रागः॥ ८८॥

द्रव्यबन्धोस्ति तावद्विशिष्टपरिणामात्। विशिष्टत्वं तु परिणामस्य रागद्वेषमोहमयत्वेन।

निश्चयनयाभिप्रायेणेति। एवं रागपरिणाम एव बन्धकारणं ज्ञात्वा समस्तरागादिविकल्पजालत्यागेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वे निरन्तरं भावना कर्त्तव्येति॥ ८७॥ अथ जीवपरिणामस्य द्रव्यबन्धसाधकं रागाद्युपाधिजनितभेदं दर्शयति;—**परिणामादो बंधो** परिणामात्सकाशाद्बन्धो भवति। स च परिणामः किंविशिष्टः। **परिणामो रागदोसमोहजुदो** वीतरागपरमात्मनो विलक्षणत्वेन परिणामो रागद्वेषमोहोपाधित्रयेण संयुक्तः **असुहो मोहपदोसो** अशुभौ मोहप्रद्वेषौ परोपाधिजनितपरिणामत्रयमध्ये मोहप्रद्वेषद्वयमशुभम्। **सुहो व असुहो हवदि रागो** शुभोऽशुभो वा भवति रागः। पञ्चपरमेष्ठ्यादिभक्तिरूपः शुभराग उच्यते, विषयकषायरूपश्चाशुभइति। अयं परिणामः सर्वोऽपि सोपाधित्वात् बन्धहेतुरिति ज्ञात्वा

परिणमता है वही नवीन द्रव्य कर्मकर बंधता है और जो जीव वैराग्यस्वरूप परिणमन करता है वह कर्मोंसे नहीं बंधता। रागपरिणत जीव नूतनकर्मसे छूटता ही नहीं और वैराग्यपरिणतिवाला नवीनकर्मोंसे छूट जाता है तथा पुराने कर्मोंसे छूटता है। रागपरिणतिवाला जीव नवीन कर्मोंसे भी बंधता है और पुराने कर्मोंसेभी पहलेका बंधाहुआ है। वैराग्यसे परणत जीव बंध अवस्थाके होनेपर भी अबंध कहागया है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि द्रव्यबंधका कारण रागादि अशुद्धोपयोग है वही निश्चयबंध है द्रव्य उपचारमात्र है॥८७॥ आगे द्रव्यबंधका कारण जो परिणाम है उसमें रागकी विशेषता दिखलाते हैं;—**[परिणामात्]** अशुद्धोपयोगरूप परिणामसे **[बन्धः]** पुद्गलकर्मवर्गणारूप द्रव्यबंध होता है **[परिणामः]** और वह परिणाम **[रागद्वेषमोहयुतः]** रागद्वेषमोहभावोंकर सहित है। वह परिणाम शुभ और अशुभके भेदसे दोतरहका है उनमेंसे **[मोहप्रद्वेषौ]** मोहभाव और द्वेषभाव ये दोनों **[अशुभौ]** अशुभ हैं। और **[रागः]** रागभाव **[शुभः]** पंचपरमेष्ठीभक्तिआदिस्वरूप शुभ है **[वा]** और **[अशुभः]** विषयरतिरूप अशुभ भी है॥ **भावार्थ**—जो परिणाम रागद्वेषमोहकी विशेषता लियेहुए हो वही परिणाम बंधका कारण है। मोहसामान्य रागद्वेषमोहके भेदकर तीनप्रकार है उनमेंसे द्वेषमोह तो अशुभभावही हैं और राग शुभ-अशुभके भेदसे दो प्रकार है। धर्मानुराग शुभ है और

तत्र शुभाशुभत्वेन द्वैतानुवर्ति । तत्र मोहद्वेषमयत्वेनाशुभत्वं, रागमयत्वेन तु शुभत्वं चाशुभत्वं च । विशुद्धिसंक्लेशाङ्गत्वेन रागस्य द्वैविध्यात् भवति ॥ ८८ ॥

अथ विशिष्टपरिणामविशेषमविशिष्टपरिणामं च कारणे कार्यमुपचर्य कार्यत्वेन निर्दिशति;—

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु ।
परिणामोणण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥ ८९ ॥

शुभपरिणामः पुण्यमशुभः पापमिति भणितमन्येषु ।
परिणामोऽनन्यगतो दुःखक्षयकारणं समये ॥ ८९ ॥

द्विविधस्तावत्परिणामः परद्रव्यप्रवृत्तः स्वद्रव्यप्रवृत्तश्च । तत्र परद्रव्यप्रवृत्तः परोपरक्तत्वाद्विशिष्टपरिणामः, स्वद्रव्यप्रवृत्तस्तु परानुपरक्तत्वादविशिष्टपरिणामः । तत्रोक्तौ द्वौ विशिष्ट-

---

बन्धे शुभाशुभसमस्तरागद्वेषविनाशार्थं समस्तरागाद्युपाधिरहिते सहजानन्दैकलक्षणसुखामृतस्वभावे निजात्मद्रव्ये भावना कर्तव्येति तात्पर्यम् ॥ ८८ ॥ अथ द्रव्यरूपपुण्यपापबन्धकारणत्वाच्छुभाशुभपरिणामयोः पुण्यपापसंज्ञां शुभाशुभरहितशुद्धोपयोगपरिणामस्य मोक्षकारणत्वं च कथयति;—**सुहपरिणामो पुण्णं** द्रव्यपुण्यबन्धकारणत्वाच्छुभपरिणामः पुण्यं भण्यते **असुहो पावत्ति भणिदं** द्रव्यपापबन्धकारणत्वादशुभपरिणामः पापं भण्यते । केषु विषयेषु योऽसौ शुभाशुभपरिणामः । **अण्णेसु** निजशुद्धात्मनः सकाशादन्येषु शुभाशुभबहिर्द्रव्येषु **परिणामो णण्णगतो** परिणामो नान्यगतोऽनन्यगतः स्वस्वरूपस्थ इत्यर्थः । स इत्थंभूतः शुद्धोपयोगलक्षणः परिणामः **दुक्खक्खयकारणं** दुःखक्षयकारणं दुःखक्षयाभिधानमोक्षस्य कारणं **भणिदो** भणितः । क्व भणितः ? **समये** परमागमे लब्धिकाले वा । किंच । मिथ्यादृष्टिसासादनमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभपरिणामो भवतीति पूर्वं भणितमस्ति, अविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतसंज्ञगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभपरिणामश्च भणितः, अप्रमत्तादिक्षीणकषायान्तगुण-

---

विषयराग अशुभभाव है । इसप्रकार ये शुभाशुभ दोतरहके परिणाम बंधके ही कारण हैं ॥ ८८ ॥ आगे बंधके कारणविशेष जो शुभाशुभपरिणाम हैं उनको तथा मोक्षका कारण शुद्धपरिणामको कारणमें कार्यका उपचारकर कार्यरूप दिखलाते हैं;—[**अन्येषु**] अपनी आत्मसत्तासे भिन्नरूप पंचपरमेष्ठी आदिकोंमें [**यः**] जो [**शुभपरिणामः**] भक्तिआदि प्रशस्तरागरूप परिणाम है वह [**पुण्यं**] पुण्य है । और जो [**अशुभः**] परद्रव्यमें ममत्व विषयानुरागरूप अप्रशस्त (खोटा) रागपरिणाम है वह [**पापं**] पाप है [**अनन्यगतः परिणामः**] जो अन्यद्रव्यमें नहीं प्रवर्ते ऐसा वीतराग शुद्धोपयोगरूप भाव है वह [**दुःखक्षयकारणं**] दुःखके नाशका कारणरूप मोक्षस्वरूप है [**इति**] ऐसा [**समये**] परमागममें [**भणितं**] कहा है ॥ **भावार्थ**—परिणाम दो प्रकारका है एक तो परद्रव्यमें प्रवर्तता है दूसरा निजद्रव्यमें प्रवर्तता है । जो परद्रव्यमें प्रवर्तता है वह बंधकारणरूप विशेषतासहित है इसलिये विशेष परिणाम

परिणामस्य विशेषौ, शुभपरिणामोऽशुभपरिणामश्च । तत्र पुण्यपुद्गलबन्धकारणत्वात् शुभपरिणामः पुण्यं, पापपुद्गलबन्धकारणत्वादशुभपरिणामः पापं । अविशिष्टपरिणामस्य तु शुद्धत्वेनैकत्वान्नास्ति विशेषः । स काले संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयकारणत्वात्संसारदुःखहेतुकर्मपुद्गलक्षयात्मको मोक्ष एव ॥ ८९ ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिवृत्तिसिद्धये स्वपरविभागं दर्शयति;—

भणिदा पुढविप्पमुहा जीवनिकायाध थावरा य तसा ।
अण्णा ते जीवादो जीवोवि य तेहिंदो अण्णो ॥ ९० ॥

भणिताः पृथिवीप्रमुखा जीवनिकाया अथ स्थावराश्च त्रसाः ।
अन्ये ते जीवाज्जीवोऽपि च तेभ्योऽन्यः ॥ ९० ॥

स्थानेषु तारतम्येन शुद्धोपयोगोऽपि भणितः । नयविवक्षायां मिथ्यादृष्ट्यादिक्षीणकषायान्तगुणस्थानेषु पुनरशुद्धनिश्चयनयो भवत्येव । तत्राशुद्धनिश्चयमध्ये शुद्धोपयोगः कथं लभ्यत इति शिष्येण पूर्वपक्षे कृते सति प्रत्युत्तरं ददाति—वस्त्वेकदेशपरीक्षा तावन्नयलक्षणं शुभाशुभशुद्धद्रव्यालम्बनमुपयोगलक्षणं चेति तेन कारणेनाशुद्धनिश्चयमध्येऽपि शुद्धात्मावलम्बनत्वात् शुद्धध्येयत्वात् शुद्धसाधकत्वाच्च शुद्धोपयोगपरिणामो लभ्यत इति नयलक्षणमुपयोगलक्षणं च यथासम्भवं सर्वत्र ज्ञातव्यम् । अत्र योसौ रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोगो मुक्तिकारणं भणितः स शुद्धात्मद्रव्यलक्षणाद्ध्येयभूताच्छुद्धपरिणामिकभावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नोऽपि भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन भिन्नः कस्मादिति चेत्? अयमेकदेशनिरावरणत्वेन क्षायोपशमिकखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः स च पारिणामिकः सकलावरणरहितत्वेनाखण्डज्ञानव्यक्तिरूपः। अयं तु सादिसान्तत्वेन विनश्वरः, स च अनाद्यनन्तत्वेनाविनश्वरः । यदि पुनरेकान्तेनाभेदो भवति तर्हि घटोत्पत्तौ मृत्पिण्डविनाशवद् ध्यानपर्यायविनाशे मोक्षे जाते सति ध्येयरूपपारिणामकस्यापि विनाशो भवतीत्यर्थः । तत एव ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानभावनारूपो न भवति । कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वादिति ॥ ८९ ॥ एवं द्रव्यबन्धकारणत्वात् मिथ्यात्वरागादिविकल्परूपो भावबन्ध एव निश्च-

---

कहाजाता है और जो स्वरूपमें प्रवर्तता है वह बंधकारणविशेष रहित है इसकारण अविशेष परिणाम कहा जाता है । विशेषपरिणामके शुभ अशुभ ऐसे दो भेद हैं । जो पुण्यरूप पुद्गलबंधका कारण है वह शुभपरिणाम है और जो पापरूप पुद्गलोंके बंधका कारण है उसे अशुभपरिणाम जानना चाहिये । ये शुभ अशुभपरिणाम पुण्यपापभी कहेजाते हैं, वास्तवमें पुण्यादिकके कारण हैं परंतु कारणमें कार्यका उपचार होता है उसकी अपेक्षा पुण्यपाप कहेजाते हैं । तथा जो अविशेष परिणाम है वह शुद्ध एकभाव है इसलिये उसमें भेद नहीं है, वह संसारमें दुःखरूपपुद्गलक्षयका कारण है और सकलकर्मक्षयलक्षणमोक्षका बीजभूत है । यहांपर भी कारणमें कार्यके उपचारकी अपेक्षा यह शुद्धोपयोग मोक्षरूप ही आनना चाहिये ॥ ८९ ॥ आगे जीवकी स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति

य एते पृथिवीप्रभृतयः षड्जीवनिकायास्त्रसस्थावरभेदेनाभ्युपगम्यन्ते । ते खल्वचेतनत्वादन्ये जीवात्, जीवोपि च चेतनत्वादन्यस्तेभ्यः । अत्र षड्जीवनिकायात्मनः परद्रव्यमेक एवात्मा स्वद्रव्यम् ॥ ९० ॥

अथ जीवस्य स्वपरद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तत्वेन स्वपरविभागज्ञानाऽज्ञाने अवधारयति;—

जो ण विजाणदि एवं परमप्पाणं सहावमासेज्ज ।
कीरदि अज्झवसाणं अहं ममेदन्ति मोहादो ॥ ९१ ॥

यो न विजानात्येवं परमात्मानं स्वभावमासाद्य ।
कुरुतेऽध्यवसानमहं ममेदमिति मोहात् ॥ ९१ ॥

यो हि नाम नैवं प्रतिनियतचेतनाचेतनत्वस्वभावेन जीवपुद्गलयोः स्वपरविभागं पश्यति

येन बन्ध इति कथनमुख्यतया गाथात्रयेण चतुर्थस्थलं गतम् । अथ जीवस्य स्वद्रव्यप्रवृत्तिपरद्रव्यनिवृत्तिनिमित्तं षड्जीवनिकायैः सह भेदविज्ञानं दर्शयति;—**भणिदा पुढविप्पमुहा** भणिताः परमागमे कथिताः पृथिवीप्रमुखाः । ते के । **जीवणिकाया** जीवसमूहाः **अथ** अहो । कथंभूताः **थावरा य तसा** स्थावराश्च त्रसाः । ते च किंविशिष्टाः । **अण्णा ते** अन्ये भिन्नास्ते । कस्मात्? **जीवादो** शुद्धबुद्धैकजीवस्वभावात् । **जीवोवि य तेहिंदो अण्णो** जीवोऽपि च तेभ्योऽन्य इति । तथाहि— टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावपरमात्मतत्त्वभावनारहितेन जीवेन यदुपार्जितं त्रसस्थावरनामकर्म तदुदयजनितत्वादचेतनत्वाच्च त्रसस्थावरजीवनिकायाः शुद्धचैतन्यस्वभावजीवाद्भिन्नाः । जीवोऽपि च तेभ्यो विलक्षणत्वाद्भिन्न इति । अत्रैवं भेदविज्ञाने जाते सति मोक्षार्थी जीवः स्वद्रव्ये प्रवृत्तिं परद्रव्ये निवृत्तिं च करोतीति भावार्थः ॥ ९० ॥ अथैतदेव भेदविज्ञानं प्रकारान्तरेण दृढयति;—**जो णवि जाणदि एवं** यः कर्त्ता नैव जानात्येवं पूर्वोक्तप्रकारेण । कं । **परं** षड्जीवनिकायादिपरद्रव्यम् **अप्पाणं** निर्दोषिपरमात्मद्रव्यरूपं निजात्मानम् ।

और परद्रव्यसे निवृत्ति इस बातकी सिद्धिकेलिये स्वपरभेद दिखलाते हैं;—[**अथ**] इसके बाद [**ये**] जो [**पृथिवीप्रमुखाः**] पृथ्वीको आदिलेकर [**जीवनिकायाः**] जीवके छः काय जो [**स्थावराः**] स्थावर [**च**] और [**त्रसाः**] त्रस [**भणिताः**] कहे गये हैं [**ते**] वे सब भेद [**जीवात् अन्ये**] चेतनालक्षण जीवसे अन्य अचेतन पुद्गलपिंडरूप हैं [**च**] और [**जीवः अपि**] जीवद्रव्यभी निश्चयसे [**तेभ्यः**] उन त्रसस्थावररूप छह प्रकारके भेदोंसे [**अन्यः**] जुदा टंकोत्कीर्ण ज्ञायकस्वरूप है ॥ **भावार्थ**—जो कुछ कर्मजनित सामग्री है वह सब परद्रव्यरूप है । उससे निवृत्त होकर निजद्रव्यमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥ आगे जीवके स्वद्रव्यमें प्रवृत्ति करनेसे भेदविज्ञान होता है और परद्रव्यमें प्रवृत्ति करनेसे स्वपरभेदविज्ञानका अभाव होता है यह दिखलाते हैं;—[**यः**] जो जीव [**एवं**] पूर्वोक्तप्रकारसे अर्थात् चेतन और अचेतनस्वभावोंका निश्चयकरके [**स्वभावं आसाद्य**] सच्चिदानंदरूप शुद्ध नित्य

स एवाहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन परद्रव्यमध्यवस्यति मोहान्नान्यः । अतो जीवस्य परद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तं स्वपरपरिच्छेदाभावमात्रमेव सामर्थ्यात्स्वद्रव्यप्रवृत्तिनिमित्तं तदभावः ॥ ९१ ॥

अथात्मनः किं कर्मेति निरूपयति;—

कुव्वं सभावमादा हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स ।
पोग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं ॥ ९२ ॥

कुर्वन् स्वभावमात्मा भवति हि कर्ता स्वकस्य भावस्य ।
पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानाम् ॥ ९२ ॥

आत्मा हि तावत्स्वं भावं करोति तस्य स्वधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्तिसंभवेनावश्यमेव कार्यत्वात् । स तं च स्वतन्त्रः कुर्वाणस्तस्य कर्तावश्यं स्यात्, क्रियमाणश्चात्मना स्वो भावस्तेनाप्यत्वात्तस्य कर्मावश्यं स्यात् । एवमात्मनः स्वपरिणामः कर्म न त्वात्मा

किंकृत्वा । **सहावमासिज्ज** शुद्धोपयोगलक्षणनिजशुद्धस्वभावमाश्रित्य **कीरदि अज्झवसाणं** स पुरुषः करोत्यध्यवसानं परिणाम । केन रूपेण । **अहं ममेदत्ति** अहं ममेदमिति । ममकाराहंकारादिरहितपरमात्मभावनाच्युतो भूत्वा परद्रव्यं रागादिकमहमिति देहादिकं ममेतिरूपेण । कस्मात् ? **मोहादो** मोहाधीनत्वादिति । ततः स्थितमेतत्स्वपरभेदविज्ञानबलेन स्वसंवेदनज्ञानी जीवः *स्वद्रव्ये रतिं परद्रव्ये निवृत्तिं करोतीति* ॥ ९१ ॥ एवं भेदभावनाकथनमुख्यतया सूत्रद्वयेन पञ्चमस्थलं गतम् । अथात्मनो निश्चयेन रागादिस्वपरिणाम एव कर्म न च द्रव्यकर्मेति प्ररूपयति;—**कुव्वं सहावं** कुर्वन्स्वभावम्, अत्र स्वभावशब्देन यद्यपि, शुद्धनिश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावो भण्यते, तथापि कर्मबन्धप्रस्तावे रागादिपरिणामोऽप्यशुद्धनिश्चयेन स्वभावो भण्यते । तं स्वभावं कुर्वन् । स कः । **आदा** आत्मा **हवदि हि कत्ता** कर्त्ता भवति हि स्फुटम् । कस्य ? **सगस्स भावस्स** स्वकीयचिद्रूपस्वभावस्य

आत्मीक भावको उपादेयरूप अंगीकार कर [**परं**] पुद्गलको [**आत्मानं**] तथा जीवको स्व और परके भेदकर [**न जानाति**] नहीं जानता है वह [**मोहात्**] रागद्वेषमोहसे [**अहं इदं**] मैं शरीरादिस्वरूप हूं [**मम इदं**] मेरे ये शरीरादि हैं [**इति**] ऐसा [**अध्यवसानं**] मिथ्या परिणाम [**कुरुते**] करता है ॥ **भावार्थ—** जो जीव स्वरूपको अंगीकारकर स्वपरका भेद नहीं जानता है वह भेदविज्ञानी नहीं है और भेदविज्ञानी न होनेसे परद्रव्यमें अहंकार ममकार करता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि परद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण स्वपरभेदका नहीं जानना है और स्वद्रव्यमें प्रवृत्तिका कारण स्वपरभेदका जानना है ॥ ९१ ॥ आगे आत्माका कर्म कौनसा है ऐसा कहते हैं;— [**आत्मा**] जीव [**स्वभावं**] अपने चेतनास्वरूपपरिणामको [**कुर्वन्**] करता हुआ [**स्वकस्य**] अपने [**भावस्य**] चेतनास्वरूपभावका [**कर्ता**] कर्ता

पुद्गलस्य भावान् करोति तेषां परधर्मत्वादात्मनस्तथाभवनशक्त्यसंभवेनाकार्यत्वात् । स तानकुर्वाणो न तेषां कर्ता स्यात् अक्रियमाणाश्चात्मना ते न तस्य कर्म स्युः । एवमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म ॥ ९२ ॥

अथ कथमात्मनः पुद्गलपरिणामो न कर्म स्यादिति संदेहमपनुदति;—

गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पोग्गलाणि कम्माणि ।
जीवो पोग्गलमज्झे वट्टण्णवि सव्वकालेसु ॥ ९३ ॥

गृह्णाति नैव न मुञ्चति करोति न हि पुद्गलानि कर्माणि ।
जीवः पुद्गलमध्ये वर्तमानोपि सर्वकालेषु ॥ ९३ ॥

न खल्वात्मनः पुद्गलपरिणामः कर्म परद्रव्योपादानहानशून्यत्वात्, यो हि यस्य परि-

---

रागादिपरिणामस्य तदेव तस्य रागादिपरिणामरूपं निश्चयेन भावकर्म भण्यते । कस्मात् । तप्तायःपिण्डवत्तेनात्मना प्राप्यत्वाद्व्याप्यत्वादिति । **पुग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं** चिद्रूपात्मनो विलक्षणानां पुद्गलद्रव्यमयानां न तु कर्ता सर्वभावानां ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मपर्यायाणामिति । ततो ज्ञायते जीवस्य रागादिस्वपरिणाम एव कर्म तस्यैव स कर्तेति ॥ ९२ ॥ अथात्मनः कथं द्रव्यकर्मरूपपरिणामः कर्म न स्यादिति प्रश्नसमाधानं ददाति;—**गेण्हदि णेव ण मुंचदि करेदि ण हि पुग्गलाणि कम्माणि जीवो** यथा निर्विकल्पसमाधिरतः

(करनेवाला) [**हि**] निश्चयसे [**भवति**] होता है । [**तु**] और [**पुद्गलद्रव्यमयानां**] पुद्गलद्रव्यमयी [**सर्वभावानां**] सब द्रव्यकर्मशरीरादिभावोंका [**कर्ता**] करनेवाला [**न**] नहीं है ॥ **भावार्थ—**जीवद्रव्य अपने परिणामका कर्ता है क्योंकि वे परिणाम जीवके स्वभाव हैं जीवमें उस भावरूप होनेकी शक्ति है, इसकारण परिणाम कार्य है । उसकार्यको स्वाधीन होके करता हुआ आत्मा कर्ता होता है । और जो आत्माकर कियाजावे वह परिणामरूपकार्य सो आत्माका कर्म है । यही आत्माके परिणामपरिणामीभावरूप कर्ताकर्मभाव है । आत्मा द्रव्यकर्मादि पुद्गलीकभावोंका कर्ता नहीं है क्योंकि वे परद्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके उन भावोंरूप होनेकी शक्तिका अभाव है । इसलिये उन पुद्गलीकभावोंका अकर्ता हुआ यह आत्मा अकर्ता है, क्योंकि वे भाव आत्माकर नहीं किये जाते हैं इसीकारण वे आत्माके कर्म नहीं हैं । उनभावोंसे कर्ताकर्मभाव पुद्गलका ही है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलपरिणाम आत्माके कर्म नहीं हैं ॥ ९२ ॥ आगे आत्माका पुद्गलपरिणाम कर्म किसतरह नहीं है यह संदेह दूर करते हैं;—[**जीवः**] आत्मा [**सर्वकालेषु**] सदाकाल [**पुद्गलमध्ये**] पुद्गलके बीचमें एक क्षेत्रावगाहकर [**प्रवर्तमानः अपि**] मौजूद है तौभी [**पुद्गलानि कर्माणि**] पुद्गलीक द्रव्यकर्मादिकोंको [**नैव गृह्णाति**] न तो ग्रहण करता है और [**न मुञ्चति**] न छोड़ता है तथा [**हि**] निश्चयसे [**न करोति**] करता भी

णमयिता दृष्टः स तदुपादानहानशून्यो दृष्टः, यथाग्निरयःपिण्डस्य। आत्मा तु तुल्यक्षेत्रवर्तित्वेपि परद्रव्योपादानहानशून्य एव। ततो न स पुद्गलानां कर्मभावेन परिणमयिता स्यात्॥ ९३॥

अथात्मनः कुतस्तर्हि पुद्गलकर्मभिरुपादानं हानं चेति निरूपयति;—

स इदाणिं कत्ता सं सगपरिणामस्स दव्वजादस्स।
आदीयदे कदाई विमुच्चदे कम्मधूलीहिं॥ ९४॥

स इदानीं कर्ता सन् स्वकपरिणामस्य द्रव्यजातस्य।
आदीयते कदाचिद्विमुच्यते कर्मधूलिभिः॥ ९४॥

सोयमात्मा परद्रव्योपादानहानशून्योपि सांप्रतं संसारावस्थायां निमित्तमात्रीकृतपरद्र-

---

परममुनिः परभावं न गृह्णाति न मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण लोहपिण्डो वाग्निं तथायमात्मा न च गृह्णाति न च मुञ्चति न च करोत्युपादानरूपेण पुद्गलकर्माणीति। किं कुर्वन्नपि? **पुग्गलमज्झे वट्टण्णवि सव्वकालेसु** क्षीरन्यायेन पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि सर्वकालेषु। अनेन किमुक्तं भवति—यथा सिद्धो भगवान् पुद्गलमध्ये वर्त्तमानोऽपि परद्रव्यग्रहणमोचनकरणरहितस्तथा शुद्धनिश्चयेन शक्तिरूपेण संसारी जीवोऽपीति भावार्थः॥ ९३॥ अथ यद्ययमात्मा पुद्गलकर्म न करोति न च मुञ्चति तर्हि बन्धः कथं तर्हि मोक्षोऽपि कथमितिप्रश्ने प्रत्युत्तरं ददाति;— **स इदाणीं कत्ता सं** स इदानीं कर्ता सन् स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा इदानीं कोऽर्थः एवं पूर्वोक्तनयविभागेन कर्त्ता सन्। कस्य? **सगपरिणामस्स** निर्विकारनित्यानन्दैकलक्षणपरमसुखामृतव्यक्तिरूपकार्यसमयसारसाधकनिश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारविलक्षणस्य मिथ्यात्वरागादिविभावरूपस्य स्वकीयपरिणामस्य। पुनरपि किं विशिष्टस्य? **दव्वजादस्स** स्वकीयात्मद्रव्योपादानकारणजातस्य। **आदीयदे कदाई कम्मधूलीहिं** आदीयते बध्यते। काभिः? कर्मधू-

---

नहीं है॥ **भावार्थ**—पुद्गलीक परिणाम आत्माके नहीं हैं क्योंकि आत्माके परद्रव्यका ग्रहण करना तथा छोड़ना नहीं है। जैसे कि अग्नि स्वभावसे लोहेके पिंडको ग्रहण करती वा छोडती नहीं है। जो द्रव्य जिसका परिणमावनेवाला होता है वही उसका ग्रहण करनेवाला वा छोड़नेवाला होता है ऐसा नियम है। आत्मा पुद्गलका परिणमावनेवाला नहीं है इसकारण पुद्गलको न तो ग्रहणकरता है न छोड़ता है और न करनेवाला कर्ता ही है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलीकपरिणाम आत्माका नहीं है॥ ९३॥ आगे आत्माका पुद्गलमयी कर्मोंसे ग्रहण त्याग किसतरह होता है यह कहते हैं;— **[सः]** वह परद्रव्यके ग्रहणत्यागसे रहित आत्मा **[इदानीं]** अब संसार अवस्थामें परद्रव्यका निमित्त पाके **[द्रव्यजातस्य]** आत्मद्रव्यसे उत्पन्न हुए **[स्वकपरिणामस्य]** चेतनाके विकाररूप अशुद्ध अपने परिणामोंका **[कर्ता सन्]** कर्ता होता हुआ **[कर्मधूलीभिः]** उस अशुद्ध चेतनारूप आत्मपरिणामका ही निमित्त

व्यपरिणामस्य स्वपरिणाममात्रस्य द्रव्यत्वभूतत्वात्केवलस्य कलयन् कर्तृत्वं तदेव तस्य स्वपरिणामं निमित्तमात्रीकृत्योपात्तकर्मपरिणामाभिः पुद्गलधूलीभिर्विशिष्टावगाहरूपेणोपादीयते कदाचिन्मुच्यते च ॥ ९४ ॥

अथ किंकृतं पुद्गलकर्मणां वैचित्र्यमिति निरूपयति;—

परिणमदि जदा अप्पा सुहम्मि असुहम्मि रागदोसजुदो ।
तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं ॥ ९५ ॥

परिणमति यदात्मा शुभेऽशुभे रागद्वेषयुतः ।
तं प्रविशति कर्मरजो ज्ञानावरणादिभावैः ॥ ९५ ॥

अस्ति खल्वात्मनः शुभाशुभपरिणामकाले स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यकर्मपुद्गलपरिणामः नवघनाम्बुनो भूमिसंयोगपरिणामकाले समुपात्तवैचित्र्यान्यपुद्गलपरिणामवत् । तथाहि—

लीभिः कर्तृभूताभिः कदाचित्पूर्वोक्तविभावपरिणामकाले । न केवलमादीयते **विमुंचदे** विशेषेण मुच्यते त्यज्यते ताभिः कर्मधूलीभिः कदाचित्पूर्वोक्तकारणसमयसारपरिणतिकाले । एतावता किमुक्तं भवति—अशुद्धपरिणामेन बध्यते शुद्धपरिणामेन मुच्यत इति ॥ ९४ ॥ अथ यथा द्रव्यकर्माणि निश्चयेन स्वयमेवोत्पद्यन्ते तथा ज्ञानावरणादिविचित्रभेदरूपेणापि स्वयमेव परिणमन्तीति कथयति;—**परिणमदि जदा अप्पा** परिणमति यदात्मा समस्तशुभाशुभपरद्रव्यविषये परमोपेक्षालक्षणं शुद्धोपयोगपरिणामं मुक्त्वा यदायमात्मा परिणमति । क ? **सुहम्हि असुहम्हि** शुभेऽशुभे वा परिणामे । कथंभूतः सन् । **रागदोसजुदो** रागद्वेषयुक्तः परिणत इत्यर्थः । **तं पविसदि कम्मरयं** तदा काले तत्प्रसिद्धं कर्मरजः प्रविशति । कैः कृत्वा ? **णाणावरणा-**

पाकर ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणत हुई पुद्गलकर्मरूपी धूलिसे [**उपादीयते**] ग्रहण किया जाता है और [**कदाचित्**] किसी कालमें अपना रस (फल) देकर [**विमुच्यते**] छोड़ दिया जाता है ॥ **भावार्थ**—संसार अवस्थामें यह जीव परद्रव्य संयोगके निमित्तसे अशुद्धोपयोगभावोंस्वरूप परिणमन करनेसे उनका कर्ता है परिणमनकी अपेक्षा अशुद्धोपयोगभाव आत्माके परिणाम हैं इसकारण उनका तो कर्ता होसकता है लेकिन पुद्गलकर्मका कर्ता नहीं होता । उस आत्माके अशुद्धपरिणामोंका निमित्त पाकर पुद्गलद्रव्य अपनी निजशक्तिसे ज्ञानावरणादिकर्मरूप परिणमन करके आत्मासे एक क्षेत्रावगाह होके अपने आप बँधते हैं फिर अपना रस (फल) देकर आपही क्षयको प्राप्त होजाते हैं । इससे यह बात सिद्ध हुई कि पुद्गलकर्मका आत्मा ग्रहण करनेवाला वा छोड़नेवाला नहीं है, पुद्गलही पुद्गलको ग्रहण करता है तथा छोड़ता है ॥ ९४ ॥ [**यदा**] जिससमय [**आत्मा**] यह आत्मा [**रागद्वेषयुतः**] रागद्वेष भावोंसहित हुआ [**शुभे अशुभे**] शुभ अशुभ भावोंमें [**परिणमति**] परिणमन करता है उसी समय [**ज्ञानावरणादिभावैः**] ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप होकर [**तत्क-**

यथा यदा नवघनाम्बुभूमिसंयोगेन परिणमति तदान्ये पुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैः शाद्वलशिलीन्ध्रशक्रगोपादिभावैः परिणमन्ते, तथा यदायमात्मा रागद्वेषवशीकृतः शुभाशुभभावेन परिणमति तदा अन्ये योगद्वारेण प्रविशन्तः कर्मपुद्गलाः स्वयमेव समुपात्तवैचित्र्यैर्ज्ञानावरणादिभावैः परिणमन्ते। अतः स्वभावकृतं कर्मणां वैचित्र्यं न पुनरात्मकृतम्॥९५॥

अथैक एव आत्मा बन्ध इति विभावयति;—

सपदेसो सो अप्पा कसायदो मोहरागदोसेहिं।
कम्मरजेहिं सिलिट्ठो बंधोत्ति परूविदो समये॥ ९६॥

दिभावेहिं भूमेर्मेघजलसंयोगे सति यथाऽन्ये पुद्गलाः स्वयमेव हरितपल्लवादिभावैः परिणमन्ति तथा स्वयमेव नानाभेदपरिणतैर्मूलोत्तरप्रकृतिरूपज्ञानावरणादिभावैः पर्यायैरिति। ततो ज्ञायते ज्ञानावरणादि कर्मणामुत्पत्तिः स्वयंकृता तथा मूलोत्तरप्रकृतिरूपवैचित्र्यमपि, न च जीवकृतमिति॥ ९५॥ अथ पूर्वोक्तज्ञानावरणादिप्रकृतीनां जघन्योत्कृष्टानुभागस्वरूपं प्रतिपादयति;—

सुहपयडीण विसोही तिव्वो असुहाण संकिलेसम्मि।
विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं॥ १॥

अणुभागो अनुभागः फलदानशक्तिविशेषः भवतीति क्रियाध्याहारः। कथंभूतो भवति? **तिव्वो** तीव्रः प्रकृष्टः परमामृतसमानः। कासां सम्बन्धी। **सुहपयडीणं** सद्वेद्यादिशुभप्रकृतीनाम्। कया कारणभूतया? **विसोही** तीव्रधर्मानुरागरूपविशुद्ध्या **असुहाण संकिलेसम्मि** असद्वेद्याद्यशुभप्रकृतीनां तु मिथ्यात्वादिरूपतीव्रसंक्लेशे सति तीव्रो हालाहलविषसदृशो भवति। **विवरीदो दु जहण्णो** विपरीतस्तु जघन्यो गुडनिम्बरूपो भवति। जघन्यविशुद्ध्या जघन्यसंक्लेशेन च मध्यमविशुद्ध्या मध्यमसंक्लेशेन तु शुभाशुभप्रकृतीनां खण्डशर्करारूपः काञ्जीरविषरूपश्चेति। एवंविधो जघन्यमध्यमोत्कृष्टरूपोऽनुभागः कासां सम्बन्धी भवति? **सव्वपयडीणं** मूलोत्तरप्रकृतिरहितनिजपरमानन्दैकस्वभावलक्षणसर्वप्रकारोपादेयभूतपरमात्मद्रव्याद्भिन्नानां हेयभूतानां सर्वमूलोत्तरकर्मप्रकृतीनामिति कर्मशक्तिस्वरूपं ज्ञातव्यम्॥१॥ अथाभेदनयेन बन्धकारणभूतरागादिपरिण-

---

र्मरजः] वह कर्मरूपी धूली **[प्रविशति]** इस आत्माके योगोंद्वारा प्रवेश करती है॥ **भावार्थ—**जैसे वर्षाऋतुमें नवीन मेघोंका जल जिससमय भूमीके साथ संयोग करता है तब उस मेघजलका निमित्त पाके अन्य पुद्गल अपनेसे ही निजशक्तिकर हरी दूब (घास) और हरे पीलेआदि पत्र अंकुर वगैरः भावोंस्वरूप परिणमन करते हैं उसीप्रकार जब यह आत्मा शुभ अशुभरूप रागद्वेषभावोंसे परिणत होता है तब इसके शुभाशुभभावोंका निमित्त पाकर पुद्गलद्रव्य अपने आप नानाप्रकार ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप परिणमता है। इसकारण यह सिद्धांत हुआ कि पुद्गलद्रव्य स्वभावसे ही कर्मोंकी विचित्रताका कर्ता है आत्मा कर्ता नहीं होसकता॥ ९५॥ आगे अभेदनयकी विवक्षासे आत्माको एक बंधस्वरूप दिखलाते हैं;—**[स आत्मा]** वह संसारी जीव

सप्रदेशः स आत्मा कषायितो मोहरागद्वेषैः ।
कर्मरजोभिः श्लिष्टो बन्ध इति प्ररूपितः समये ॥ ९६ ॥

यथात्र सप्रदेशत्वे सति लोध्रादिभिः कषायितत्वात् मञ्जिष्ठरङ्गादिभिरुपश्लिष्टमेकं रक्तं दृष्टं वासः, तथात्मापि सप्रदेशत्वे सति काले मोहरागद्वेषैः कषायितत्वात् कर्मरजोभिरुपश्लिष्ट एको बन्धो द्रष्टव्यः शुद्धद्रव्यविषयत्वान्निश्चयस्य ॥ ९६ ॥

अथ निश्चयव्यवहाराविरोधं दर्शयति;—

एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छएण णिद्दिट्ठो ।
अरहंतेहिं जदीणं ववहारो अण्णहा भणिदो ॥ ९७ ॥

तात्मैव बन्धो भण्यत इत्यावेदयति;—**सपदेसो** लोकाकाशप्रमितासंख्येयप्रदेशत्वात्सप्रदेशस्तावद्भवति **सो अप्पा** स पूर्वोक्तलक्षण आत्मा । पुनरपि किं विशिष्टः? **कसायदो** कषायितः परिणतो रञ्जितः । कैः । **मोहरागदोसेहिं** निर्मोहस्वशुद्धात्मतत्त्वभावनाप्रतिबन्धिभिर्मोहरागद्वेषैः । पुनश्च किंरूपः । **कम्मरएहि सिलिट्ठो** कर्मरजोभिः श्लिष्टः कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलरजोभिः संश्लिष्टो बद्धः । **बंधोत्ति परूविदो** अभेदेनात्मैव बन्ध इति प्ररूपितः । क? **समये** परमागमे । अत्रेदं भणितं भवति—यथा वस्त्रं लोध्रादिद्रव्यैः कषायितं रञ्जितं सन्मञ्जीष्ठादिरङ्गद्रव्येण रञ्जितं सदभेदेन रक्तमित्युच्यते तथा वस्त्रस्थानीय आत्मा लोध्रादिद्रव्यस्थानीयमोहरागद्वेषैः कषायितो रञ्जितः परिणतो मञ्जीष्ठस्थानीयकर्मपुद्गलैः संश्लिष्टः संबद्धः सन् भेदेऽप्यभेदोपचारलक्षणेनासद्भूतव्यवहारेण बन्ध इत्यभिधीयते । कस्मात्? अशुद्धद्रव्यनिरूपणार्थविषयत्वादसद्भूतव्यवहारनयस्येति ॥ ९६ ॥ **एसो बंधसमासो** एष बन्धसमासः एष बहुधा पूर्वोक्तप्रकारो रागादिपरिणतिरूपो बन्धसंक्षेपः केषां सम्बन्धी । **जीवाणं** जीवानाम् । **णिच्छयेण णिद्दिट्ठो** निश्चयेन निर्दिष्टः कथितः । कैः

[सप्रदेशः] लोकमात्र असंख्यात प्रदेशोंवाला होनेसे **[मोहरागद्वेषैः कषायितः]** मोह राग द्वेषरूप रंगसे कसैला हुआ **[कर्मरजोभिः]** ज्ञानावरणादि आठकर्मरूपी धूलिसमूहकर **[श्लिष्टः]** बंधा हुआ है **[इति]** इसप्रकार **[समये]** जैन सिद्धान्तमें **[बंधः]** बंधरूप **[प्ररूपितः]** कहागया है ॥ **भावार्थः**—जैसे वस्त्र प्रदेशोंवाला होनेसे लोध फिटकरी आदिकर कसैला होता है फिर वही वस्त्र मंजीठादि रंगसे लाल होजाता है उसीप्रकार यह आत्मा प्रदेशी है इसलिये बंधके समयमें रागद्वेषमोहभावोंकर रंजित हुआ कसैला होता है तब कर्मरूपी धूलीकर बंध अवस्थाको प्राप्त होता है । इसकारण रागद्वेषभावोंरूप परिणमन निश्चयबंध है कर्मवर्गणारूप व्यवहारबंध है । निश्चयनय तो केवल द्रव्यके परिणामको दिखलाता है और व्यवहारनय अन्यद्रव्यके परिणामको दिखलाता है ॥ ९६ ॥ आगे निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयोंका आपसमें अविरोध दिखलाते हैं;—**[अर्हद्भिः]** अर्हंतदेवने **[जीवानां]** संसारी जीवोंका **[एषः]**

एष बन्धसमासो जीवानां निश्चयेन निर्दिष्टः ।
अर्हद्भिर्यतीनां व्यवहारोऽन्यथा भणितः ॥ ९७ ॥

रागपरिणाम एवात्मनः कर्म, स एव पुण्यपापद्वैतं । रागादिपरिणामस्यैवात्मा कर्ता तस्यैवोपादाता हाता चेत्येष शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको निश्चयनयः । यस्तु पुद्गलपरिणाम आत्मनः कर्म स एव पुण्यपापद्वैतं पुद्गलपरिणामस्यात्मा कर्ता तस्योपादाता हाता चेति सोऽशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको व्यवहारनयः । उभावप्येतौ स्तः, शुद्धाशुद्धत्वेनोभयथा

कर्तृभूतैः । **अरहंतेहिं** अर्हद्भिः निर्दोषिपरमात्मभिः । केषाम्? **जदीणं** जितेन्द्रियत्वेन शुद्धात्मस्वरूपे यत्नपराणां गणधरदेवादियतीनाम् । **ववहारो** द्रव्यकर्मरूपव्यवहारबन्धः **अण्णहा भणिदो** निश्चयनयापेक्षयान्यथा व्यवहारनयेनेति भणितः । किंच रागादीनेवात्मा करोति तानेव भुङ्क्ते चेति निश्चयनयलक्षणमिदम् । अयं तु निश्चयनयो द्रव्यकर्म्मबन्धप्रतिपादकासद्भूतव्यवहारनयापेक्षया शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मको विवक्षितनिश्चयनयस्तथैवाशुद्धनिश्चयश्च भण्यते । द्रव्यकर्माण्यात्मा करोति भुङ्क्ते चेत्यशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकासद्भूतव्यवहारनयो भण्यते । इदं नयद्वयं तावदस्ति । किंत्वत्र निश्चयनय उपादेयः न चासद्भूतव्यवहारः । ननु रागादीनात्मा करोति भुङ्क्ते चेत्येवं लक्षणो निश्चयनयो व्याख्यातः स कथमुपादेयो भवति? परिहारमाह—रागादीनेवात्मा करोति न च द्रव्यकर्मरागादय एव बन्धकारणमिति यदा जानाति जीवस्तदा रागद्वेषादिविकल्प-

---

पूर्वोक्तप्रकार यह रागपरिणाम ही [**निश्चयेन**] निश्चयसे बंध है ऐसा [**बन्धसमासः**] बंधका संक्षेप कथन (सारांश) [**यतीनां**] मुनीश्वरोंको [**निर्दिष्टः**] दिखलाया है । [**अन्यथा**] इस निश्चय बंधसे जुदा जो जीवोंके एक क्षेत्रावगाहरूप द्रव्यकर्मबंध है वह [**व्यवहारः**] उपचारसे बंध [**भणितः**] भगवंतने कहा है ॥ **भावार्थः**—जो पुन्य पापस्वरूप आत्माका रागपरिणाम है वह उसका कर्म है उसीका आत्मा कर्ता है उस राग परिणामको अपने ही परिणमनसे ग्रहण करता है और अपनेहीसे छोड़ता है । इसकारण यह शुद्धद्रव्यका कहनेवाला निश्चयनय जानना । तथा जो द्रव्यकर्मरूप पुद्गलपरिणाम आत्माका कर्म है उसका वह कर्ता है और ग्रहण करनेवाला तथा छोडनेवाला है सो यह अशुद्धद्रव्यका कहनेवाला व्यवहार नय है । इसप्रकार निश्चय व्यवहार नयकर शुद्धाशुद्धरूप बंधका स्वरूप दो प्रकार दिखलाया है । परंतु इतना विशेष है कि निश्चय नय ग्रहण करने योग्य है क्योंकि वह केवल द्रव्यके परिणामको दिखलाता है और साध्यरूप शुद्धद्रव्यके शुद्धस्वरूपको दिखलाता है । तथा व्यवहारनय परद्रव्यके परिणामको आत्मपरिणाम दिखलानेसे द्रव्यको अशुद्ध दिखलाता है इसकारण ग्रहण योग्य नहीं है । यहांपर कोई प्रश्न करै "कि तुमने रागपरिणामको निश्चयबंध कहा और इसीको शुद्धद्रव्यका कथन तथा ग्रहण योग्य कहा है सो क्या कारण है ? यह कथन ठीक नहीं है क्योंकि यह रागपरिणाम तो द्रव्यकी अशुद्धता करता है वह ग्रहण योग्य कैसे होस-

द्रव्यस्य प्रतीयमानत्वात् । किन्त्वत्र निश्चयनयः साधकतमत्वादुपात्तः, साध्यस्य हि शुद्धत्वेन द्रव्यस्य शुद्धत्वद्योतकत्वान्निश्चयनय एव साधकतमो न पुनरशुद्धद्योतको व्यवहारनयः ॥ ९७ ॥

अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एवेत्यावेदयति;—

ण जहदि जो दु ममत्तिं अहं ममेदत्ति देहदविणेसु ।
सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होइ उम्मग्गं ॥ ९८ ॥

न जहाति यस्तु ममतामहं ममेदमिति देहद्रविणेषु ।
स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गम् ॥ ९८ ॥

यो हि नाम शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयनिरपेक्षोऽशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारन-

---

जालत्यागेन रागादिविनाशार्थं निजशुद्धात्मानं भावयति । ततश्च रागादिविनाशो भवति । रागादिविनाशे चात्मा शुद्धो भवति । ततः परंपरया शुद्धात्मसाधकत्वादयमशुद्धनयोऽप्युपचारेण शुद्धनयो भण्यते निश्चयनयो न भण्यते तथैवोपादेयो भण्यते इत्यभिप्रायः ॥ ९७ ॥ एवमात्मा स्वपरिणामानामेव कर्त्ता न च द्रव्यकर्मणामिति कथनमुख्यतया गाथासप्तकेन षष्ठस्थलं गतम् । इति 'अरसमरूवं' इत्यादिगाथात्रयेण पूर्वं शुद्धात्मव्याख्याने कृते सति शिष्येण यदुक्तममूर्तस्यात्मनो मूर्तकर्मणा सह कथं बन्धो भवतीति तत्परिहारार्थं नयविभागेन बन्धसमर्थनमुख्यतयैकोनविंशतिगाथाभिः स्थलषट्केन तृतीयविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । अतः परं द्वादश गाथापर्यन्तं चतुर्भिः स्थलैः शुद्धात्मानुभूतिलक्षणविशेषभेदभावनारूपचूलिका व्याख्यानं करोति । तत्र शुद्धात्मनो भावना प्रधानत्वेन 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादिपाठक्रमेण प्रथमस्थले गाथा चतुष्टयम् । तदनन्तरं शुद्धात्मोपलम्भभावनाफलेन दर्शनमोहग्रन्थिविनाशस्तथैव चारित्रमोहग्रन्थिविनाशः क्रमेण तदुभयविनाशो भवतीति कथनमुख्यत्वेन 'जो एवं जाणित्ता' इत्यादि द्वितीय-

---

कहा है" तो उसका समाधान इस तरहसे है कि रागपरिणाम तो आत्माकी अशुद्धताको ही करता है इसमें कुछभी संदेह नहीं परंतु इस जगह दूसरी विवक्षासे कथन किया गया है । वही दिखलाते हैं—यहांपर शुद्धद्रव्यका कथन एक द्रव्याश्रित परिणामकी अपेक्षासे जानना चाहिये और अशुद्धकथन अन्यद्रव्यका परिणाम अन्यद्रव्यमें लगाना जानना । तथा जो इस जगह बंधरूप निश्चय नय ग्रहण योग्य कहा है सो इसलिये कि यह जीव अपनेही परिणामोंसे अपनेको बँधा हुआ समझेगा तो आपहीकर अपनेको छुड़ावेगा । इसकारण ऐसी समझ होनेकेलिये ग्रहण योग्य कहा है । और जो अपनेको दूसरेसे बँधा हुआ मानेगा तो कभी छूटनेका उपाय नहीं करैगा । इसलिये अपनेसे अपनेको बंधा मानता हुआ ही रागादि परिणामोंका त्यागी होके अपने वीतराग परिणामको धारण करैगा । इसी अपेक्षासे निश्चयबंध शुद्धद्रव्यका साधक कहा गया है ॥ ९७ ॥ आगे अशुद्धनयसे अशुद्धात्माका लाभ होता है

योपजनितमोहः सन् अहमिदं ममेदमित्यात्मात्मीयत्वेन देहद्रविणादौ परद्रव्ये ममत्वं न जहाति स खलु शुद्धात्मपरिणतिरूपं श्रामण्याख्यं मार्गं दूरादपहायाशुद्धात्मपरिणतिरूपमुन्मार्गमेव प्रतिपद्यते। अतोऽवधार्यते अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव ॥ ९८ ॥

अथ शुद्धनयात् शुद्धात्मलाभ एवेत्यवधारयति;—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे सन्ति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥ ९९ ॥

स्थले गाथात्रयम्। ततः परं केवलिध्यानोपचारकथनरूपेण 'णिहदघणघाइकम्मा' इत्यादि तृतीयस्थले गाथाद्वयम्। तदनन्तरं दर्शनाधिकारोपसंहारप्रधानत्वेन 'एवं जिणा जिणिंदा' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथाद्वयम्। ततःपरं 'दंसणसंसुद्धाणं' इत्यादि नमस्कारगाथा चेति द्वादशगाथाभिश्चतुर्थस्थले विशेषान्तराधिकारे समुदायपातनिका। अथाशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव भवतीत्युपदिशति;—**ण चयदि जो दु ममत्तिं** न त्यजति यस्तु ममतां ममकाराहंकारादिसमस्तविभावरहितसकलविमलकेवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वरूपनिजात्मपदार्थनिश्चलानुभूतिलक्षणनिश्चयनयरहितत्वेन व्यवहारमोहितहृदयः सन् ममतां ममत्वभावं न त्यजति यः। केन रूपेण **अहं ममेदंति** अहं ममेदमिति। केषु विषयेषु? **देहदविणेसु** देहद्रव्येषु देहे देहोऽहमिति परद्रव्येषु ममेदमिति **सो सामण्णं चत्ता पडिवण्णो होदि उम्मग्गं** स श्रामण्यं त्यक्त्वा प्रतिपन्नो भवत्युन्मार्गं स पुरुषो जीवितमरणलाभालाभसुखदुःखशत्रुमित्रनिन्दाप्रशंसादिपरममाध्यस्थ्यलक्षणं श्रामण्यं यतित्वं चारित्रं दूरादपहाय तत्प्रतिपक्षभूतमुन्मार्गं मिथ्यामार्गं प्रतिपन्नो भवति। उन्मार्गाच्च संसारं परिभ्रमति। ततः स्थितं अशुद्धनयादशुद्धात्मलाभ एव ॥९८॥ अथ शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भवतीति निश्चिनोति;—**णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति** नाहं भवामि परेषाम्। न मे परे स-

---

यह दिखलाते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**देहद्रविणेषु**] शरीर तथा धनादिकमें [**अहं इदं**] मैं शरीरादिरूप हूं [**तु**] और [**मम इदं**] मेरे ये शरीर धनादिक हैं [**इति**] इसप्रकार [**ममता**] ममत्व बुद्धिको [**न जहाति**] नहीं छोड़ता है [**सः**] वह पुरुष [**श्रामण्यं**] समस्त परद्रव्यके त्यागरूप मुनिपदको [**त्यक्त्वा**] छोड़कर [**उन्मार्गं**] अशुद्धपरिणतिरूप विपरीतमार्गको [**प्रतिपन्नः भवति**] प्राप्त होता है ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष शुद्धद्रव्यके दिखानेवाले निश्चयनयको छोड़कर अशुद्धद्रव्यके स्वरूपको कहता है और ऐसे व्यवहारनयकी सहायता लेकर मोही हुआ देह धनादिपरभावोंमें "ये मेरे मैं इन स्वरूप हूं" इसतरह ममताभावको धारण करता हुआ मोहको नहीं छोड़ता है वह पुरुष अशुद्धपरिणतिरूप हुआ मुनिपदको छोड़के विपरीतमार्गपर चलनेवाला है। इससे यह निश्चय हुआ कि अशुद्धनयके ग्रहण करनेसे अशुद्धात्माका लाभ होता है ॥ ९८ ॥ आगे शुद्धनयसे शुद्ध आत्माका लाभ होता है यह कहते हैं;—[**अहं**] मैं शुद्धात्मा [**परेषां**] शरीरादि परद्रव्योंका [**न भ-**

नाहं भवामि परेषां न मे परे सन्ति ज्ञानमहमेकः ।
इति यो ध्यायति ध्यानेन स आत्मा भवति ध्याता ॥ ९९ ॥

यो हि नाम स्वविषयमात्रप्रवृत्ताशुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकव्यवहारनयाविरोधमध्यस्थः शुद्धद्रव्यनिरूपणात्मकनिश्चयनयापहस्तितमोहः सन् नाहं परेषामस्मि न परे मे सन्तीति स्वपरयोः परस्परस्वस्वामिसंबन्धमुद्धूय शुद्धज्ञानमेवैकमहमित्यनात्मानमुत्सृज्यात्मानमेवात्मत्वेनोपादाय परद्रव्यव्यावृत्तत्वादात्मन्येवैकस्मिन्नग्रे चिन्तां निरुणद्धि स खल्वेकाग्रचिन्तानिरोधकस्तस्मिन्नेकाग्रचिन्तानिरोधसमये शुद्धात्मा स्यात् । अतोऽवधार्यते शुद्धनयादेव शुद्धात्मलाभः ॥ ९९ ॥

अथ ध्रुवत्वात् शुद्ध आत्मैवोपलम्भनीय इत्युपदिशति;—

एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं ।
धुवमचलमणालंबं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं ॥ १०० ॥

न्तीति समस्तचेतनाचेतनपरद्रव्येषु स्वस्वामिसम्बन्धं मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च स्वात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयनयबलेन पूर्वमपहाय निराकृत्य । पश्चात् किंकरोति ? **णाणमहमेको** ज्ञानमहमेकः सकलविमलकेवलज्ञानमेवाहं भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मरहितत्वेनैकश्च । **इदि जो झायदि** इत्यनेन प्रकारेण योऽसौ ध्यायति चिन्तयति भावयति । क ? **झाणे** निजशुद्धात्मध्याने स्थितः **सो अप्पाणं हवदि झादा** स आत्मानं भवति ध्याता । स चिदानन्दैकस्वभावपरमात्मानं ध्याता भवतीति। ततश्च परमात्मध्यानात्तादृशमेव परमात्मानं लभते । तदपि कस्मात् ? उपादानकारणसदृशं कार्यमिति वचनात् । ततो ज्ञायते शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभ इति ॥ ९९ ॥ अथ ध्रु-

---

वामि] नहीं हूं और **[परे मे]** शरीरादिक परद्रव्य मेरे **[न सन्ति]** नहीं हैं **[अहं]** मैं परमात्मा **[एकः ज्ञानं]** सकल परभावोंसे रहित एक ज्ञानस्वरूपही हूं **[इति]** इसप्रकार **[यः]** जो भेदविज्ञानी जीव **[ध्याने]** एकाग्रतारूप ध्यानमें समस्त ममत्व भावोंसे रहित हुआ **[ध्यायति]** अपने निजस्वरूपका चिंतवन करता है **[सः]** वही पुरुष **[आत्मानं]** आत्माके प्रति **[ध्याता]** ध्यानका करनेवाला **[भवति]** होता है ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष व्यवहारनयके अशुद्ध कथनमें अविरोधी होके मध्यस्थ हुआ निश्चयनयके शुद्ध कथनसे मोहको दूर करता है अर्थात् शरीरादि परभाव मेरे नहीं हैं मैं इनका नहीं हूं ऐसी भावनाकर परमें स्वामीपनेकी बुद्धिको छोडकर शुद्धज्ञानमात्र अपना स्वरूप जानके अंगीकार करता हुआ बाह्य वस्तुसे चित्तको हटाकर और समस्त संकल्पविकल्प त्यागके अन्य चिंताको रोकता है वह जीव एकाग्रतारूप ध्यानके समय शुद्धात्मा होता है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि शुद्धनयके अवलम्बनसे शुद्धात्माका लाभ होता है ॥ ९९ ॥ आगे कहते हैं कि आत्मा अविनाशी ध्रुव शुद्ध वस्तु है इसकारण यही ग्रहण योग्य है;—**[अहं]** भेदविज्ञानी मैं

एवं ज्ञानात्मानं दर्शनभूतमतीन्द्रियमहार्थम्।
ध्रुवमचलमनालम्बं मन्येऽहमात्मकं शुद्धम् ॥ १०० ॥

आत्मनो हि शुद्ध आत्मैव सदहेतुकत्वेनानाद्यनन्तत्वात् स्वतःसिद्धत्वाच्च ध्रुवो न किंच-नाप्यन्यत् शुद्धत्वं चात्मनः परद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चैकत्वात्। तच्च ज्ञानात्म-कत्वाद्दर्शनभूतत्वादतीन्द्रियमहार्थत्वादचलत्वादनालम्बत्वाच्च तत्र ज्ञानमेवात्मनि बिभ्रतः स्वयं दर्शनभूतस्य चातिशयपरद्रव्यविभागेन स्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा प्रतिनि-यतस्पर्शरसगन्धवर्णगुणशब्दपर्यायग्राहीण्यनेकानीन्द्रियाण्यतिक्रम्य सर्वस्पर्शरसगन्धवर्ण-गुणशब्दपर्यायग्राहकस्यैकस्य सतोऽर्थस्येन्द्रियात्मकपरद्रव्यविभागेन स्पर्शादिग्रहणात्मकस्व-धर्माविभागेन चास्त्येकत्वं । तथा क्षणक्षयप्रवृत्तपरिच्छेद्यपर्यायग्रहणमोक्षणाभावेनाचलस्य

वत्वाच्छुद्धात्मानमेव भावयेऽहमिति विचारयति;—**मण्णे** "मण्णे" इत्यादिपदखण्डनारूपेण व्या-ख्यानं क्रियते—मन्ये ध्यायामि सर्वप्रकारोपादेयत्वेन भावये । स कः । अहं कर्त्ता । कं कर्मता-पन्नं । **अप्पगं** सहजपरमाह्लादैकलक्षणनिजात्मानम् । किं विशिष्टम्? **सुद्धं** रागादिसमस्तवि-भावरहितम् । पुनरपि किं विशिष्टम्? **धुवं** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावत्वेन ध्रुवमविनश्वरम् । पुनरपि कथंभूतम्? **एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं** एवं बहुविधपूर्वोक्तप्रकारेणाखण्डैकज्ञानदर्श-नात्मकम् । पुनश्च किंरूपम्? **अइंदियं** अतीन्द्रियं मूर्त्तविनश्वरानेकेन्द्रियरहितत्वेनामूर्त्ताविन-श्वरैकातीन्द्रियस्वभावम् । पुनश्च कीदृशम्? **महत्थं** मोक्षलक्षणमहापुरुषार्थसाधकत्वान्महार्थम् । पुनरपि किंस्वभावम्? **अचलं** अतिचपलचञ्चलमनोवाक्कायव्यापाररहितत्वेन स्वस्वरूपे निश्चलं स्थिरम् । पुनरपि किंविशिष्टम्? **अणालंबं** स्वाधीनस्वद्रव्यत्वेन सालम्बनं भरितावस्थमपि समस्त-

---

[**एवं**] इसतरह [**आत्मानं**] आत्माको [**मन्ये**] मानता हूं कि आत्मा [**शुद्धं**] परभावोंसे रहित निर्मल है [**ध्रुवं**] निश्चल एक रूप है [**ज्ञानात्मानं**] ज्ञानस्वरूप है [**दर्शनभूतं**] दर्शनमयी है [**अतीन्द्रियमहार्थं**] अपने अतीं-द्रिय स्वभावसे सबका ज्ञाता महान् पदार्थ है [**अचलं**] अपने स्वरूपकर निश्चल है [**अनालम्बं**] परद्रव्यके आलंबन (सहायता)से रहित स्वाधीन है । इसप्रकार शुद्ध टंकोत्कीर्ण आत्माको अविनाशी वस्तु मानता हूं ॥ **भावार्थ**—आत्मा किसी कार-णसे उत्पन्न नहीं हुआ है. इसलिये अनादि अनंत शुद्ध स्वतःसिद्ध अविनाशी है और दूसरी कोईभी वस्तु ध्रुव नहीं है । यह आत्मा अपने स्वभावकर एकस्वरूप है इसकारण शुद्ध है । यह अपने ज्ञानदर्शन गुणमयी है इसके परद्रव्यसे जुदापना है अपने धर्मसे जुदा नहीं है इसकारण एक है । निश्चयकर एक स्पर्शरसगंधवर्ण शब्दरूप विषयोंकी ग्रहण करनेवालीं जो पांच इन्द्रियां हैं उनको त्यागकर अपने अखंड ज्ञानसे एक ही समय इन पांच विषयोंका ज्ञाता यह आत्मा महापदार्थ है, इसलिये इस आत्माको पांच विषयरूप परद्रव्यसे जुदापना है परंतु इनके ज्ञानरूप स्वभा-

परिच्छेद्यपर्यायात्मकपरद्रव्यविभागेन तत्प्रत्ययपरिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं तथा नित्यप्रवृत्तपरिच्छेद्यद्रव्यालम्बनाभावेनानालम्बस्य परिच्छेद्यपरद्रव्यविभागेन तत्प्रत्यय-परिच्छेदात्मकस्वधर्माविभागेन चास्त्येकत्वं। एवं शुद्ध आत्मा चिन्मात्रशुद्धनयस्य तावन्मात्र-निरूपणात्मकत्वात् अयमेक एव च ध्रुवत्वादुपलब्धव्यः, किमन्यैरध्वनीनाङ्गसङ्गच्छमानाने-कमार्गपादपच्छायास्थानीयैरध्रुवैः ॥ १०० ॥

अथाध्रुवत्वादात्मनोऽन्यन्नोपलभनीयमित्युपदिशति;—

देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाऽध सत्तुमित्तजणा ।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा ॥ १०१ ॥

देहा वा द्रविणानि वा सुखदुःखे वाथ शत्रुमित्रजनाः ।
जीवस्य न सन्ति ध्रुवा ध्रुव उपयोगात्मक आत्मा ॥ १०१ ॥

आत्मनो हि परद्रव्याविभागेन परद्रव्योपरज्यमानस्वधर्मविभागेन चाशुद्धत्वनिबन्धनं

पराधीनपरद्रव्यालम्बनरहितत्वेन निरालम्बनमित्यर्थः ॥ १०० ॥ अथात्मनः पृथग्भूतं देहादिक-मध्रुवत्वान्न भावनीयमित्याख्याति;—**ण संति धुवा** ध्रुवा अविनश्वरा नित्या न सन्ति । कस्य? **जीवस्स** जीवस्य । के ते? **देहा वा दविणा वा** देहा वा द्रव्याणि वा सर्वप्रकार-शुचीभूतादेहरहितात्परमात्मनो विलक्षणा औदारिकादिपञ्चदेहास्तथैव च पञ्चेन्द्रियभोगो-पभोगसाधकानि परद्रव्याणि च । न केवलं देहादयो ध्रुवा न भवन्ति **सुहदुक्खा वा** निर्विकारपरमानन्दैकलक्षणस्वात्मोत्थसुखामृतविलक्षणानि सांसारिकसुखदुःखानि वा । **अथ**

वसे जुदापना नहीं है इसलिये भी यह एक रूप है। इसीप्रकार यह आत्मा समयर विनाशीक ज्ञेयपदार्थोंके ग्रहण करनेवाला और त्यागनेवाला नहीं है अचल है इसकारण इसके ज्ञेयपर्यायरूप परद्रव्यसे जुदापना है उसके जाननेरूप भावसे जुदापना नहीं है इसलिये भी एक है। और अन्यभावसहित ज्ञेयपदार्थोंके अवलंबनका अभाव है यह आत्मा तो स्वाधीन है इसकारण इसके ज्ञेयपदार्थोंसे भिन्नपना है परंतु इनके जाननेरूप भावसे जुदापना नहीं है इससे भी एक रूप है। इसप्रकार अनेक परद्रव्योंके भेदसे अपनी एकताको नहीं छोड़ता है इसकारण शुद्धनयसे शुद्ध चिन्मात्र वस्तु है यही एक टंकोत्कीर्ण ध्रुव है और अंगीकार करने योग्य है। जैसे मार्गमें गमन करते हुए पथिक जनोंको अनेक वृक्षोंकी छाया विनाशीक और अध्रुव होती है उसीप्रकार इस आत्माके पर-द्रव्यके संबंधसे अनेक अध्रुवभाव उत्पन्न होते हैं उनसे कुछ साध्य [इष्ट] की सिद्धि नहीं होती। इसलिये एक नित्यस्वरूप यही अवलंबन योग्य है बाकी सब त्याज्य हैं ॥१००॥ आगे कहते हैं कि आत्मा ध्रुव है इसकारण इसके सिवाय अन्यवस्तुको अंगीकार करना योग्य नहीं है;—[देहाः] औदारिकादि पांच शरीर [वा] अथवा [द्रविणानि] धन [illegible] [वा] अथवा [सुखदुःखे] इष्ट अनिष्ट पंचे-

न किंचनाप्यन्यदसद्धेतुमत्त्वेनाद्यन्तत्त्वात्परतः सिद्धत्वाच्च ध्रुवमस्ति। ध्रुव उपयोगात्मा शुद्ध आत्मैव। अतोऽध्रुवं शरीरादिकमुपलभ्यमानमपि नोपलभे शुद्धात्मानमुपलभे ध्रुवम्॥ १०१॥

अथैव शुद्धात्मोपलम्भात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागाराणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं॥ १०२॥

य एवं ज्ञात्वा ध्यायति परमात्मानं विशुद्धात्मा।
साकारानाकारः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम्॥ २०२॥

अमुना यथोदितेन विधिना शुद्धात्मानं ध्रुवमधिगच्छतस्तस्मिन्नेव प्रवृत्तेः शुद्धात्मत्वं

अहो भव्याः **सत्तुमित्तजणा** शत्रुमित्रादिभावरहितादात्मनो भिन्नाः शत्रुमित्रादिजनाश्च। यद्येतत्सर्वमध्रुवं तर्हि किं ध्रुवमिति चेत्? **धुवो** ध्रुवः शाश्वतः। स कः। **अप्पा** निजात्मा। किंविशिष्टः। **उवओगप्पगो** त्रैलोक्योदरविवरवर्तित्रिकालविषयसमस्तद्रव्यगुणपर्याययुगपत्परिच्छित्तिसमर्थकेवलज्ञानदर्शनोपयोगात्मक इति। एवमध्रुवत्वं ज्ञात्वा ध्रुवस्वभावे स्वात्मनि भावना कर्त्तव्येति तात्पर्यम्॥ १०१॥ एवमशुद्धनयादशुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन प्रथमगाथा। शुद्धनयाच्छुद्धात्मलाभो भवतीति कथनेन द्वितीया। ध्रुवत्वादात्मैव भावनीय इति प्रतिपादनेन तृतीया। आत्मनोऽन्यदध्रुवं न भावनीयमिति कथनेन चतुर्थी चेति शुद्धात्मव्याख्यानमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथाचतुष्टयं गतम्। अथैव पूर्वोक्तप्रकारेण शुद्धात्मोपलम्भे सति किं फलं भवतीति प्रश्ने प्रत्युत्तरमाह;—**झादि** ध्यायति **जो** यः कर्त्ता। कम्? **अप्पगं** निजात्मानम्। कथंभूतम्? **परं** परमानन्तज्ञानादिगुणाधारत्वात्परमुत्क-

---

न्द्रियविषयजन्य सुख दुःख [**वा अथ**] अथवा और [**शत्रुमित्रजनाः**] शत्रु मित्रआदिक लोक ये सभी संयोगजन्यपदार्थ [**जीवस्य**] आत्माके [**ध्रुवाः**] अविनाशी [**न सन्ति**] नहीं हैं, केवल [**उपयोगात्मकः**] ज्ञानदर्शनस्वरूप [**आत्मा**] शुद्धजीव [**ध्रुवः**] अविनाशी वस्तु है॥ **भावार्थ**—जो शरीरादिक भाव हैं वे परद्रव्यसे तन्मयी हैं आत्मासे भिन्न हैं और अशुद्धताके कारण हैं। वे आत्माके कुछ नहीं लगते विनाशीक हैं। और जो यह आत्मा है वह अनादि अनंत है, उत्कृष्टसे उत्कृष्ट है, सदा सिद्धरूप है, ज्ञानदर्शनमयी है और एक ध्रुव है इसकारण मैं शरीरादि अध्रुव (विनाशीक) वस्तुको अंगीकार नहीं करता हूं शुद्ध आत्माको ही प्राप्त होता हूं॥ १०१॥ आगे शुद्धात्माकी प्राप्तिसे क्या होता है यह कहते हैं; [**यः**] जो [**साकारः**] अणुव्रती श्रावक तथा [**अनाकारः**] मुनीश्वर [**एवं**] पूर्वोक्तरीतिसे [**ज्ञात्वा**] स्वरूपको ध्रुव जानकर [**परमात्मानं**] सबसे उत्कृष्ट शुद्धात्माको [**ध्यायति**] एकाग्रपनेसे चिंतवन करता है [**सः**]

स्यात् । ततोऽनन्तशक्तिचिन्मात्रस्य परमस्यात्मन एकाग्रसंचेतनलक्षणं ध्यानं स्यात्, ततः साकारोपयुक्तस्य चाविशेषेणैकाग्रचेतनप्रसिद्धेरासंसारबद्धदृढतरमोहदुग्रन्थेरुद्ग्रन्थनं स्यात् । अतः शुद्धात्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिभेदः फलम् ॥ १०२ ॥

अथ मोहग्रन्थिभेदात्किं स्यादिति निरूपयति;—

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्णे ।
होज्जं समसुहदुक्खो सो सोक्खं अक्खयं लहदि ॥ १०३ ॥

यो निहतमोहग्रन्थी रागप्रद्वेषौ क्षपयित्वा श्रामण्ये ।
भवेत् समसुखदुःखः स सौख्यमक्षयं लभते ॥ १०३ ॥

मोहग्रन्थिक्षपणाद्धि तन्मूलरागद्वेषक्षपणं ततः समसुखदुःखस्य परममाध्यस्थ्यलक्षणे

ष्टम् । किंकृत्वा पूर्वम्? **एवं जाणित्ता** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण स्वात्मोपलम्भलक्षण-स्वसंवेदनज्ञानेन ज्ञात्वा । कथंभूतः सन् ध्यायति? **विसुद्धप्पा** ख्यातिपूजालाभादिसमस्त-मनोरथजालरहितत्वेन विशुद्धात्मा सन् । पुनरपि कथंभूतः । **सागारोऽणागारो** सागारोऽ-नागारः । अथवा साकारानाकारः । सहाकारेण विकल्पेन वर्त्तते साकारो ज्ञानोपयोगः, अनाकारो निर्विकल्पो दर्शनोपयोगस्ताभ्यां युक्तः साकारानाकारः । अथवा साकारः सवि-कल्पो गृहस्थः अनाकारो निर्विकल्पस्तपोधनः अथवा सहाकारेण लिङ्गेन चिह्नेन वर्त्तते साकारो यतिः अनाकारश्चिह्नरहितो गृहस्थः । **खवेदि सो मोहदुग्गंथिं** य एवं गुणवि-शिष्टः क्षपयति स मोहदुर्ग्रन्थिम् । मोह एव दुर्ग्रन्थिः शुद्धात्मरुचिप्रतिबन्धको दर्शनमोहस्तम् । ततः स्थितमेतत्—आत्मोपलम्भस्य मोहग्रन्थिविनाश एव फलम् ॥ १०२ ॥ अथ दर्शन-मोहग्रन्थिभेदात्किं भवतीति प्रश्ने समाधानं ददाति;—**जो णिहदमोहगंथी** यः पूर्व-सूत्रोक्तप्रकारेण निहतदर्शनमोहग्रन्थिर्भूत्वा **रागपदोसे खवीय** निजशुद्धात्मनिश्चलानुभूति-लक्षणवीतरागचारित्रप्रतिबन्धकौ चरित्रमोहसंज्ञौ रागद्वेषौ क्षपयित्वा । क? **सामण्णे**

वह [**विशुद्धात्मा**] निर्मल आत्मा होता हुआ [**मोहदुर्ग्रन्थि**] मोहकी अना-दिकालकी विपरीतबुद्धिरूपी गांठको [**क्षपयति**] क्षीण (नष्ट) करता है ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष शुद्ध अविनाशी आत्माके स्वभावको प्राप्त होता है अर्थात् उस स्वभावमें रमण करता है उसके शुद्धात्मभाव प्रगट होता है उसके बाद अनंत चैतन्यशक्तिसहित परमात्माका जाननेरूप एकाग्र ध्यान होता है इसलिये गृहस्थ अथवा मुनि यदि निश्चल होके स्वरूपको ध्यावे तो अनादि बंधवाली मोहकी गांठको खोल सकता है । इसकारण शुद्धात्माकी प्राप्तिका फल मोहकी गांठका खुलना है ॥ १०२ ॥ आगे मोहगांठके खुलनेसे क्या होता है यह कहते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**निहतमोहग्रन्थिः**] मोहकी गांठको दूर करता हुआ [**श्रामण्ये**] यति अवस्थामें [**रागद्वेषौ**] इष्ट अनिष्ट पदार्थोंमें प्रीति अप्रीतिभावको [**क्षपयित्वा**]

श्रामण्ये भवनं ततोऽनाकुलत्वलक्षणाक्षयसौख्यलाभः। अतो मोहग्रन्थिभेदादक्षयसौख्यं फलम् ॥ १०३ ॥

अथैकाग्र्यसंचेतनलक्षणं ध्यानमशुद्धत्वमात्मनो नावहतीति निश्चिनोति;—

जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा ॥ १०४ ॥

यः क्षपितमोहकलुषो विषयविरक्तो मनो निरुध्य।
समवस्थितः स्वभावे स आत्मानं भवति ध्याता ॥ १०४ ॥

आत्मनो हि परिक्षपितमोहकलुषस्य तन्मूलपरद्रव्यप्रवृत्त्यभावाद्विषयविरक्तत्वं स्यात्, ततोऽधिकरणभूतद्रव्यान्तराभावादुदधिमध्यप्रवृत्तैकपोतपतत्रिण इव अनन्यशरणस्य मनसो

स्वस्वभावलक्षणे श्रामण्ये। पुनरपि किं कृत्वा। **होज्जं** भूत्वा। किंविशिष्टः। **समसुहदुक्खो** निजशुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नरागादिविकल्पोपाधिरहितपरमसुखानुभवेन सांसारिकसुखदुःखोत्पन्नहर्षविषादरहितत्वात्समसुखदुःखः। **सो सोक्खं अक्खयं लहदि** स एवं गुणविशिष्टो भेदज्ञानी सौख्यमक्षयं लभते। ततो ज्ञायते दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहसंज्ञरागद्वेषविनाशतश्च सुखदुःखमाध्यस्थ्यलक्षणश्रामण्येऽवस्थानं तेनाक्षयसुखलाभो भवतीति ॥ १०३ ॥ अथ निजशुद्धात्मैकाग्र्यलक्षणध्यानमात्मनोऽत्यन्तविशुद्धिं करोतीत्यावेदयति;—**जो खविदमोहकलुसो** यः क्षपितमोहकलुषः मोहो दर्शनमोहः कलुषश्चारित्रमोहः पूर्वसूत्रद्वयकथितक्रमेण क्षपितौ मोहकलुषौ येन स भवति क्षपितमोहकलुषः। पुनरपि किंविशिष्टः। **विसयविरत्तो** मोहकलुषरहितस्वात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखसुधारसास्वादबलेन कलुषमोहोदयजनितविषयसुखाकाङ्क्षारहितत्वाद्विषयविरक्तः। पुनरपि कथंभूतः? **समवट्ठिदो** सम्यगवस्थितः। क? **सहावे** निजपरमात्मद्रव्ये स्वभावे। किंकृत्वा पूर्वं? **मणो णिरुंभित्ता** विषयकषायोत्पन्नविकल्पजाल-

---

छोड़कर [**समसुखदुःखः**] सुख दुःखमें समानदृष्टिवाला [**भवेत्**] होता है [**सः**] वह समबुद्धि पुरुष [**अक्षयं सौख्यं**] अविनाशी अतीन्द्रिय आत्मीक मोक्षसुखको [**लभते**] पाता है॥ **भावार्थ**—इस मोहकी गांठके खुलनेसे आत्माके राग द्वेषका नाश होता है और जहांपर राग द्वेषका अभाव है वहीं सुखदुःखमें समान भाव होते हैं तथा वहां ही आकुलतारहित स्वाधीन आत्मीक सुख अवश्य होता है। इसकारण मोहकी गांठके खुलनेसे अविनाशीक सुख होनेरूप ही फल होता है ॥१०३॥ आगे एकाग्रतासे निश्चल स्वरूपका अनुभव करनेवाला ध्यान आत्माकी अशुद्धताको दूर करता है यह कहते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**क्षपितमोहकलुषः**] मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ तथा [**विषयविरक्तः**] परद्रव्यरूप इष्ट अनिष्ट इंद्रियोंके विषयोंसे विरक्त हुआ [**मनः निरुध्य**] चंचल चित्तको बाह्य विषयोंसे

निरोधः स्यात्। ततस्तन्मूलचञ्चलत्वविलयादनन्तसहजचैतन्यात्मनि स्वभावे समवस्थानं स्यात्। तत्तु स्वरूपप्रवृत्तानाकुलैकाग्रसंचेतनत्वात् ध्यानमित्युपगीयते। अतः स्वभावावस्थानरूपत्वेन ध्यानमात्मनोऽनन्यत्वात् ध्यानमात्मैवेति ॥ १०४ ॥

रूपं मनो निरुध्य निश्चलं कृत्वा **सो अप्पाणं हवदि झादा** स एवंगुणयुक्तः पुरुषः स्वात्मानं भवति ध्याता। तेनैव शुद्धात्मध्यानेनात्यन्तिकीं मुक्तिलक्षणां शुद्धिं लभत इति। ततः स्थितं शुद्धात्मध्यानाज्जीवो विशुद्धो भवतीति। किंच ध्यानेन किलात्मा शुद्धो जातः तत्र विषये चतुर्विधव्याख्यानं क्रियते। तथाहि—ध्यानं ध्यानसन्तानस्तथैकध्यानचिन्ता ध्यानान्वयसूचनमिति। तत्रैकाग्र्यचिन्तानिरोधो **ध्यानम्** तच्च शुद्धाशुद्धरूपेण द्विधा। अथ ध्यानसन्तानः कथ्यते—यत्रान्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं ध्यानं तदनन्तरमन्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं तत्त्वचिन्ता पुनरप्यन्तर्मुहूर्त्तपर्यन्तं ध्यानम् पुनरपि ततः चिन्तेति प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानवदन्तर्मुहूर्तेऽन्तर्मुहूर्त्ते गते सति परावर्त्तनमस्ति स **ध्यानसन्तानो** भण्यते। स च धर्म्यध्यानसम्बन्धी। शुक्लध्यानं पुनरुपशमश्रेणिक्षपकश्रेण्यारोहणे भवति। तत्र चाल्पकालत्वात्परावर्त्तनरूपध्यानसन्तानो न घटते। इदानीं ध्यानचिन्ता कथ्यते—यत्र ध्यानसन्तानवद्ध्यानपरावर्त्तो नास्ति ध्यानसम्बधिनी चिन्तास्ति तत्र यद्यपि क्वापि काले ध्यानं करोति तथापि सा **ध्यानचिन्ता** भण्यते। अथ ध्यानान्वयसूचन कथ्यते—यत्र ध्यानसामग्रीभूता द्वादशानुप्रेक्षा अन्यद्वा ध्यानसम्बन्धि संवेगवैराग्यवचनं व्याख्यानं वा तत् **ध्यानान्वयसूचनमिति**। अन्यथा वा चतुर्विधं ध्यानव्याख्यानं ध्याता ध्यानं फलं ध्येयमिति। अथवार्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लविभेदेन चतुर्विधं

रोककर **[स्वभावे समवस्थितः]** अपने अनंत सहज चैतन्यस्वरूपमें **[समवस्थितः]** एकाग्र निश्चलभावमें ठहरता है **[स]** वह पुरुष **[आत्मानं]** टंकोत्कीर्ण निज शुद्ध जीवद्रव्यका **[ध्याता]** ध्यान करनेवाला **[भवति]** होता है ॥ **भावार्थ—** जब यह आत्मा निर्मोही होता है तब मोहके आधीन जो परद्रव्यमें प्रवृत्ति है उसका अभाव होता है और परप्रवृत्तिके अभावसे इन्द्रियोंके विषयोंमें वैराग्यभाव होता है ऐसा होनेसे सहज ही मनका निरोध होता है और यह मन अत्यंत चंचल है जब इंद्रियविषयोंसे वैराग्यभाव होता है तब विषयरूप आधारके अभावसे अपने आप चंचलपनेसे रहित होजाता है। जैसे समुद्रके मध्यमें जिहाजका पक्षी उड़करके चारों दिशाओंमें वृक्षादि आधारके अभावसे अन्य आश्रयके विना जहाजके ही ऊपर आपहीसे निश्चल होकर तिष्ठता है उसीप्रकार यह मनभी वैराग्यभावसे परद्रव्यरूप इन्द्रिय विषय आधारके विना निराश्रय हुआ सहज ही निश्चल होता है तब चंचलताके अभावसे स्वरूपमें एकाग्र होता है उस एकाग्रतासे अनंत चैतन्यस्वरूपका स्वसंवेदन (अनुभव) रूप ध्यान होता है उस ध्यानसे आत्मा शुद्ध होता है, इसकारण ध्यान

अथोपलब्धशुद्धात्मा सकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमासूत्रयति;—

णिहदघणघादिकम्मो पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू।
णेयंतगदो समणो झादि किमट्ठं असंदेहो॥ १०५॥

निहतघनघातिकर्मा प्रत्यक्षं सर्वभावतत्त्वज्ञः।
ज्ञेयान्तगतः श्रमणो ध्यायति किमर्थमसंदेहः॥ १०५॥

लोको हि मोहसद्भावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकसद्भावे च सतृष्णत्वादप्रत्यक्षार्थत्वानवच्छिन्नविषयत्वाभ्यां चाभिलषितं जिज्ञासितं संदिग्धं चार्थं ध्यायन् दृष्टः, भगवान् सर्वज्ञस्तु

ध्यानव्याख्यानं तदन्यत्र कथितमस्ति॥१०४॥ एवमात्मपरिज्ञानाद्दर्शनमोहक्षपणं भवतीति कथनरूपेण प्रथमगाथा दर्शनमोहक्षयाच्चारित्रमोहक्षपणं भवतीति कथनेन द्वितीया तदुभयक्षयेण मोक्षो भवतीति प्रतिपादनेन तृतीया चेत्यात्मोपलम्भफलकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथोपलब्धशुद्धात्मतत्त्वसकलज्ञानी किं ध्यायतीति प्रश्नमाक्षेपद्वारेण पूर्वपक्षं वा करोति;—**णिहदघणघाइकम्मो** पूर्वसूत्रोदितनिश्चलनिजपरमात्मतत्त्वपरिणतिरूपशुद्धध्यानेन निहतघनघातिकर्मा। **पच्चक्खं सव्वभावतच्चण्हू** प्रत्यक्षं यथा भवति तथा सर्वभावतत्त्वज्ञः सर्वपदार्थपरिज्ञातस्वरूपः **णेयंतगदो** ज्ञेयान्तगतः ज्ञेयभूतपदार्थानां परिच्छित्तिरूपेण पारंगतः। एवं विशेषणत्रयविशिष्टः **समणो** जीवितमरणादिसमभावपरिणतात्मस्वरूपः श्रमणो महाश्रमणः सर्वज्ञः **झादि कमट्ठं** ध्यायति कमर्थमिति प्रश्नः। अथवा कमर्थं ध्यायति न कमपीत्याक्षेपः। कथंभूतः सन्। **असंदेहो** असन्देहः संशयादिरहित इति। अयमत्रार्थः—यथा कोऽपि देवदत्तो विषयसुखनिमित्त विद्याराधनाध्यानं करोति यदा विद्या सिद्धा भवति तत्फलभूतं विषयसुखं च सिद्धं भवति तदाराधनाध्यानं न करोति, तथायं भगवानपि केवलज्ञानविद्यानिमित्तं तत्फलभूतानन्तसुखनिमित्तं च पूर्वं छद्मस्थावस्थायां

परमशुद्धताका कारण है॥१०४॥ आगे कहते हैं कि जिन केवली भगवानने शुद्धस्वरूपको पाया है उनके भी ध्यान कहागया है सो वे केवली क्या ध्यान करते हैं ऐसा प्रश्न करते हैं;—**[निहतघनघातिकर्मा]** जिन्होंने अत्यंतदृढबद्ध घातियाकर्मोंका नाश किया है, **[प्रत्यक्षं]** परोक्षतासे रहित साक्षात् **[सर्वभावतत्त्वज्ञः]** समस्तपदार्थोंके जाननेवाले **[ज्ञेयान्तगतः]** जाननेयोग्य पदार्थोंके पारको प्राप्त **[असंदेहः]** संशय विमोह विभ्रमसे रहित ऐसे **[श्रमणः]** महामुनि केवली **[किमर्थं]** किसलिये **[ध्यायति]** ध्यान करते हैं॥ **भावार्थ**—इस संसारमें मोहकर्मके उदयसे ज्ञानके घातक कर्मके उदयकर ये संसारी जीव तृष्णावंत हैं इसलिये इन जीवोंको सकलपदार्थ प्रत्यक्ष नहीं होते और सबके अंतःप्रविष्ट इनका ज्ञान नहीं है इसकारण वांछित अर्थका ध्यान करते हैं इनके तो ध्यानका होना संभव है, परंतु केवली भगवान तो घातियाकर्मरहित हैं समस्त पदार्थोंके साक्षात्कार करनेवाले हैं और

निहितघनघातिकर्मतया मोहाभावे ज्ञानशक्तिप्रतिबन्धकाभावे च निरस्ततृष्णत्वात्प्रत्यक्षसर्वभावतत्त्वज्ञेयान्तगतत्वाभ्यां च नाभिलषति न जिज्ञासति न संदिह्यति च कुतोऽभिलषितो जिज्ञासितः संदिग्धश्चार्थः । एवं सति किं ध्यायति? ॥ १०५ ॥

अथैतदुपलब्धिशुद्धात्मा सकलज्ञानी ध्यायतीत्युत्तरमासूत्रयति;—

सव्वाबाधविजुत्तो समंतसव्वक्खसोक्खणाणड्ढो ।
भूदो अक्खादीदो झादि अणक्खो परं सोक्खं ॥ १०६ ॥

सर्वाबाधवियुक्तः समन्तसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः ।
भूतोक्षातीतो ध्यायत्यनक्षः परं सौख्यम् ॥ १०६ ॥

अयमात्मा यदैव सहजसौख्यज्ञानबाधायतनानामसार्वदिक्कासकलपुरुषसौख्यज्ञानायतनानां चाक्षाणामभावात्स्वयमनक्षत्वेन वर्तते तदेव परेषामक्षातीतो भवन् निराबाधसहजसौख्यज्ञानत्वात् सर्वाबाधवियुक्तः, सार्वदिक्कसकलपुरुषसौख्यज्ञानपूर्णत्वात्समन्त-

शुद्धात्मभावनारूपं ध्यानं कृतवान् इदानीं तद्ध्यानेन केवलज्ञानविद्या सिद्धा तत्फलभूतमनन्तसुखं च सिद्धम् किमर्थं ध्यानं करोतीति प्रश्नः आक्षेपो वा, द्वितीयं च कारणं परोक्षेऽर्थे ध्यानं भवति भगवतः सर्वं प्रत्यक्षं कथं ध्यानमिति पूर्वपक्षद्वारेण गाथा गता ॥ १०५ ॥ अथात्र पूर्वपक्षे परिहारं ददाति;—**झादि** ध्यायति एकाकारसमरसीभावेन परिणमत्यनुभवति । स कः कर्त्ता । भगवान् । किं ध्यायति **सोक्खं** सौख्यम् । किंविशिष्टम्? **परं** उत्कृष्टं सर्वात्मप्रदेशाह्लादकपरमानन्तसुखम् । कस्मिन्प्रस्तावे । यस्मिन्नेव क्षणे **भूदो** भूतः संजातः । किंविशिष्टः । **अक्खातीदो** अक्षातीतः इन्द्रियरहितः न केवलं स्वयमतीन्द्रियो जातः परेषां च **अणक्खो** अनक्षः इन्द्रियविषयो न भवतीत्यर्थः । पुनरपि किंविशिष्टः । **सव्वाबाधविजुत्तो** "प्राकृतलक्षणबलेन बाधाशब्दस्य ह्रस्वत्वं" सर्वाबाधवियुक्तः । आसमन्ताद्बाधाः पीडा आबाधाः सर्वाश्च ता आबाधाश्च सर्वाबाधास्ताभिर्वियुक्तो रहितः सर्वाबाधवियुक्तः । पुनश्च किंरूपः । **समंतसव्वक्खसोक्खणाणड्ढो** [1]समन्ततः सामस्त्येन स्पर्शनादिसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः । समन्ततः

सब पदार्थोंका प्रमाण (माप) करनेवाले हैं इसलिये इस सर्वज्ञके कोई चीजकी इच्छा नहीं रही और कुछ जानना भी बाकी न रहा, इसकारण केवली भगवानके ध्यान कैसे होसकता है ऐसा शिष्यका प्रश्न है ॥ १०५ ॥ आगे इस प्रश्नका उत्तर कहते हैं कि यद्यपि स्वरूपको प्राप्त हुए हैं तौभी केवली ध्यान करते हैं;—**[अक्षातीतः]** इन्द्रियोंसे रहित **[भूतः]** हुए **[अनक्षः]** दूसरेको इन्द्रिय ज्ञानगम्य न होनेवाले, **[सर्वाबाधवियुक्तः]** समस्त ज्ञानावरणादि घातिया कर्मोंसे रहित और **[समन्तसर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यः]** सर्वांग परिपूर्ण आत्माके अनंतसुख और

१ (ख पुस्तके) सर्वात्मप्रदेशेषु सर्वे । सर्वे कोऽर्थः परिपूर्णेऽक्षनात्र आत्मनः सम्बन्धिनी ये द्वे ज्ञानसौख्ये इति पाठान्तरम् ।

सर्वाक्षसौख्यज्ञानाढ्यश्च भवति। एवंभूतश्च सर्वाभिलाषजिज्ञासासंदेहासंभवेऽप्यपूर्वमना-कुलत्वलक्षणं परमसौख्यं ध्यायति। अनाकुलत्वसंगतैकाग्रसंचेतनमात्रेणावतिष्ठत इति यावत्। ईदृशमवस्थानं च सहजज्ञानानन्दस्वभावस्य सिद्धत्वस्य सिद्धिरेव॥ १०६॥

अथायमेव शुद्धात्मोपलम्भलक्षणो मोक्षस्य मार्ग इत्यवधारयति;—

एवं जिणा जिणिंदा सिद्धा मग्गं समुट्ठिदा समणा।
जादा णमोत्थु तेसिं तस्स य णिव्वाणमग्गस्स॥ १०७॥

एवं जिना जिनेन्द्राः सिद्धा मार्गं समुत्थिताः श्रमणाः।
जाता नमोऽस्तु तेभ्यस्तस्मै च निर्वाणमार्गाय॥ १०७॥

यतः सर्व एव सामान्यचरमशरीरास्तीर्थकराः अचरमशरीरा मुमुक्षवश्चामुनैव यथोदि-

---

सर्वात्मप्रदेशैर्वा स्पर्शनादिसर्वेन्द्रियाणां सम्बन्धित्वेन ये ज्ञानसौख्ये द्वे ताभ्यामाढ्यः परिपूर्ण इत्यर्थः। तद्यथा—अय भगवानेकदेशोद्भवसांसारिकज्ञानसुखकारणभूतानि सर्वात्मप्रदेशोद्भवस्वाभा-विकातीन्द्रियज्ञानसुखविनाशकानि च यानीन्द्रियाणि निश्चयरत्नत्रयात्मककारणसमयसारबलेना-तिक्रामति विनाशयति यदा तस्मिन्नेव क्षणे समस्तबाधारहितः सन्नतीन्द्रियमनन्तमात्मो-त्थसुखं ध्यायत्यनुभवति परिणमति। ततो ज्ञायते केवलिनामन्यचिन्तानिरोधलक्षणं ध्यानं नास्ति किंत्विदमेव परमसुखानुभवनं वा ध्यानकार्यभूतां कर्मनिर्जरां दृष्ट्वा ध्यानशब्देनोपचर्यते। यत्पुनः सयोगिकेवलिनस्तृतीयशुक्लध्यानमयोगिकेवलिनश्चतुर्थशुक्लध्यानं भवतीत्युक्तं तदुपचारेण ज्ञातव्य-मिति सूत्राभिप्रायः॥ १०६॥ एवं केवली किं ध्यायतीति प्रश्नमुख्यत्वेन प्रथमगाथा। परमसुखं

अनंतज्ञान इन दोनोंसे पूर्ण ऐसे केवली भगवान् [**परं**] उत्कृष्ट [**सौख्यं**] आत्मीकसुखका [**ध्यायति**] चिंतवन अर्थात् एकाग्रतासे अनुभव करते हैं॥ **भावार्थ**—यह आत्मा जिस समय अनंत ज्ञान अनंत सुखके आवरण करनेवाले एक देशी ज्ञान सुखके हेतु इन्द्रियोंके नाशसे अतींद्रिय दशाको जब प्राप्त होता है तब बाधा-ओंसे रहित हुआ अनंतज्ञान अनंतसुख सहित होता है ऐसे केवली भगवानमें यद्यपि कुछ प्राप्ति करनेकी इच्छा नहीं रही और कुछ जाननेकी भी अभिलाषा नहीं रही तथा कुछ संशय भी नहीं रहा तौभी यह भगवान् एकाग्रताकर अपने अनंत अनाकुल परमसुखको अनुभवता है। इसकारण उपचारकर 'ध्यान करता है' ऐसा कहते हैं। ध्यान करनेका फल यह है कि जो पूर्वबंधे हुए कर्मोंकी निर्जरा होती है और आगामी बंधका परमसंवर होता है इसकारण केवली भगवानके अपने अनंतसुखका अनुभव करनेसे पूर्व कर्मोंकी निर्जरा होती है आगेका संवर है इसलिये उपचारमात्र केवलीके ध्यान है। इसप्रकार स्वाभाविक ज्ञानानंदस्वरूप सिद्धत्वकी सिद्धि भगवानके ही है॥ १०६॥ आगे शुद्ध आत्माकी प्राप्ति ही मोक्षमार्ग है यह निश्चय करते हैं;—

तेन शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिलक्षणेन विधिना प्रवृत्तमोक्षस्य मार्गमधिगम्य सिद्धा बभूवुः न, पुनरन्यथापि । ततोऽवधार्यते केवलमयमेक एव मोक्षस्य मार्गो न द्वितीय इति । अलं च प्रपञ्चेन । तेषां शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तानां तस्य शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपस्य मोक्षमार्गस्य चाप्रत्यस्तमितभाव्यभावकविभागत्वेन नोआगमभावनमस्कारोऽस्तु ॥ १०७ ॥ अवधारितो मोक्षमार्गः कृत्यमनुष्ठीयते

ध्यायत्यनुभवतीति परिहारमुख्यत्वेन द्वितीया चेति ध्यानविषयपूर्वपक्षपरिहारद्वारेण तृतीयस्थले गाथाद्वयं गतम् । अथायमेव निजशुद्धात्मोपलब्धलक्षणमोक्षमार्गो नान्य इति विशेषेण समर्थयति;—**जादा** । उत्पन्नाः । कथंभूताः । **सिद्धा** सिद्धाः सिद्धपरमेष्ठिनो मुक्तात्मान इत्यर्थः । के कर्त्तारः । **जिणा** जिनाः अनागारकेवलिनः । **जिणिंदा** न केवलं जिना जिनेन्द्राश्च तीर्थकरपरमदेवाः । कथंभूताः सन्तः एते सिद्धा जाताः । **मग्गं समुट्ठिदा** निजपरमात्मतत्त्वानुभूतिलक्षणमार्गं मोक्षमार्गं समुत्थिता आश्रिताः । केन । एवं पूर्वं बहुधा व्याख्यातक्रमेण । न केवलं जिना जिनेन्द्रा अनेन मार्गेण सिद्धा जाताः **समणा** सुखदुःखादिसमताभावनापरिणतात्मतत्त्वलक्षणाः शेषा अचरमदेहश्रमणाश्च । अचरमदेहानां कथ सिद्धत्वमिति चेत् ? "तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य णाणंमि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंस्सामि ॥" इति गाथाकथितक्रमेणैकदेशेन **णमोत्थु तेसिं** नमोऽस्तु तेभ्यः । अनन्तज्ञानादिसिद्धगुणस्मरणरूपो भावनमस्कारोऽस्तु **तस्स य णिव्वाणमग्गस्स** तस्मै निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्वाणमार्गाय च । ततोऽवधार्यते अयमेव मोक्षमार्गो नान्य इति ॥१०७॥

[**एवं**] इस पूर्वोक्त प्रकारसे [**मार्गं**] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमयी शुद्धात्मप्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गके प्रति [**समुत्थिताः**] उद्यमी होके प्राप्त हुए जो [**जिनाः**] उसी भवसे मोक्ष जानेवाले सामान्य चरमशरीरी जीव [**जिनेन्द्राः**] अरहंत पदके धारक तीर्थंकर और [**श्रमणाः**] एक दो पर्याय धारणकर मोक्षजानेवाले ऐसे मोक्षाभिलाषी मुनि हैं वे [**सिद्धाः**] मोक्षमें सिद्ध अवस्थाको [**जाताः**] प्राप्त हुए हैं [**तेभ्यः**] उन सबको [**च**] तथा [**तस्मै निर्वाणमार्गाय**] शुद्धात्माकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्गको [**नमः अस्तु**] द्रव्य भावरूप नमस्कार होवे ॥ **भावार्थ**—जो तीर्थंकर वा सामान्यकेवली अथवा अन्य मुनी मोक्षको गये हैं वे केवल शुद्ध आत्माकी प्रवृत्तिरूप मोक्षमार्गको पाकर ही मुक्त हुए हैं । शुद्धात्माके अनुभव विना दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है यही अद्वितीयमार्ग है । अब बहुत विस्तार कहांतक कियाजावे सारांश इतना है कि, जो शुद्धात्मतत्त्वमें प्रवर्तमान हैं ऐसे सिद्धपरमेष्ठियोंको और जो शुद्धात्मतत्त्वकी प्रवृत्तिमयी अनुभवरूप मोक्षमार्ग है उसको

अथोपसंपद्ये साम्यमिति पूर्वप्रतिज्ञां निर्वहन् मोक्षमार्गभूतं स्वयमपि शुद्धात्मप्रवृत्तिमासूत्रयति;—

तम्हा तध जाणित्ता अप्पाणं जाणगं सभावेण ।
परिवज्जामि ममत्तिं उवट्ठिदो णिम्ममत्तम्मि ॥ १०८ ॥

तस्मात्तथा ज्ञात्वात्मानं ज्ञायकं स्वभावेन ।
परिवर्जयामि ममतामुपस्थितो निर्ममत्वे ॥ १०८ ॥

अहमेष मोक्षाधिकारी ज्ञायकस्वभावात्मतत्त्वपरिज्ञानपुरस्सरममत्वनिर्ममत्वहानोपादानविधानेन कृत्यान्तरस्याभावात्सर्वारम्भेण शुद्धात्मनि प्रवर्तते । तथाहि—अहं हि तावत् ज्ञायक एव स्वभावेन, केवलज्ञायकस्य च सतो मम विश्वेनापि सहजज्ञेयज्ञायकलक्षण एव संबन्धः न पुनरन्ये स्वस्वामिलक्षणादयः संबन्धाः । ततो मम न क्वचनापि ममत्वं सर्वत्र निर्ममत्वमेव । अथैकस्य ज्ञायकभावस्य समस्तज्ञेयभावस्वभावत्वात्प्रोत्कीर्णलिखितनिखातकीलितमज्जितसमावर्तितप्रतिविम्बितवत्तत्र क्रमप्रवृत्तानन्तभूतभवद्भाविविचित्रपर्यायप्राग्भारमगाधस्वभावं गम्भीरं समस्तमपि द्रव्यजातमेकक्षण एव प्रत्यक्षयन्तं ज्ञेयज्ञायकलक्षणसंबन्ध-

---

अथ 'उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती' इत्यादि पूर्वप्रतिज्ञां निर्वाहयन् स्वयमपि मोक्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोतीति प्रतिपादयति;—**तम्हा** यस्मात्पूर्वोक्तशुद्धात्मोपलम्भलक्षणमोक्षमार्गेण जिना जिनेन्द्राः श्रमणाश्च सिद्धा जातास्तस्मादहमपि **तह** तथैव तेनैव प्रकारेण **जाणित्ता** ज्ञात्वा । कम् ? **अप्पाणं** निजपरमात्मानम् । किं विशिष्टं ? **जाणगं** ज्ञायकं केवलज्ञानाद्यनन्तगुणस्वभावं । केन कृत्वा ज्ञात्वा । **सहावेण** समस्तरागादिविभावरहितशुद्धबुद्धैकस्वभावेन । पश्चात् किं करोमि ? **परिवज्जामि** परि समन्ताद्वर्जयामि । कां ? **ममत्तिं** समस्तचेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्यसम्बन्धिनीं ममताम् । कथंभूतः सन् । **उवट्ठिदो** उपस्थितः परिणतः । क ? **णिम्ममत्तिम्हि** समस्तपरद्रव्यममकाराहंकाररहितत्वेन निर्ममत्वलक्षणे परमसाम्याभिधाने वीतरागचारित्रे तत्परिणतनिजशुद्धात्मस्वभावे वा । तथाहि—अहं तावत्केवलज्ञानदर्शनस्वभावत्वेन ज्ञायकैकटङ्कोत्कीर्णस्व-

---

द्रव्यभावरूप नमस्कार होवे ॥ १०७ ॥ आगे आचार्यने जो पूर्व प्रतिज्ञा की थी कि मैं समताभावोंको अवलंबता हूं अब उसीका निर्वाह (पालन) करते हुए मोक्षमार्गरूप शुद्धआत्माकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं;—**[तस्मात्]** इसकारणसे अर्थात् जो मुक्त हुए हैं वे शुद्धात्माके श्रद्धान ज्ञान आचरणसे हुए हैं इसकारणसे **[तथा]** उसीप्रकार अर्थात् जैसे तीर्थंकरादिकोंने स्वरूप जानके शुद्धात्माका अनुभव किया है उसीतरह मैं भी **[स्वभावेन]** अपने आत्मीक भावकर **[ज्ञायकं]** सकल ज्ञेयपदार्थोंको जाननेवाले **[आत्मानं]** आत्माको **[ज्ञात्वा]** समस्त परद्रव्यसे भिन्न जानकर **[ममतां]** पर वस्तुमें ममत्वबुद्धिको **[परिवर्जयामि]** सब तरहसे छोड़ता हूं और **[निर्ममत्वे]** स्वरूपमें निश्चल होके वीतरागभावमें **[उपस्थितः]** स्थित होता हूं ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष मोक्षका इच्छुक है वह ज्ञानस्वरूप आत्माका जाननेवाला

स्यानिवार्यत्वेनाशक्यविवेचनत्वादुपात्तवैश्वरूप्यमपि सहजानन्तशक्तिज्ञायकस्वभावेनैक्यरूप्यमनुज्झन्तमासंसारमनयैव स्थित्या स्थितं मोहेनान्यथाध्यवस्यमानं शुद्धात्मानमेष मोहमुत्खाय यथास्थितमेवातिनिःप्रकम्पः संप्रतिपद्ये । स्वयमेव भवतु चास्यैवं दर्शनविशुद्धिमूलया सम्यग्ज्ञानोपयुक्ततयात्यन्तमव्याबाधरतत्वात्साधोरपि साक्षात्सिद्धभूतस्य स्वात्मनस्तथाभूतानां परमात्मनां च नित्यमेव तदेकपरायणतत्त्वलक्षणो भावनमस्कारः ॥ १०८ ॥
"जैनं ज्ञानं ज्ञेयतत्त्वप्रणेतृ स्फीतं शब्दब्रह्म सम्यग्विगाह्य । संशुद्धात्मद्रव्यमात्रैकवृत्त्या

भावः । तथाभूतस्य सतो मम नु केवलं स्वस्वाम्यादयः परद्रव्यसम्बन्धा न सन्ति । निश्चयेन ज्ञेयज्ञायकसम्बन्धो नास्ति । ततः कारणात्समस्तपरद्रव्यममत्वरहितो भूत्वा परमसाम्यलक्षणे निजशुद्धात्मनि तिष्ठामीति । किंच 'उवसंपयामि सम्मं' इत्यादिस्वकीयप्रतिज्ञां निर्वाहयन्स्वयमपि मोक्षमार्गपरिणतिं स्वीकरोत्येवं यदुक्तं गाथापातनिका प्रारम्भे तेन किमुक्तं भवति—ये तां प्रतिज्ञां गृहीत्वा सिद्धिंगतास्तैरेव सा प्रतिज्ञा वस्तुवृत्त्या समाप्तिं नीता । कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पुनर्ज्ञानदर्शनाधिकारद्वयरूपग्रन्थसमाप्तिरूपेण समाप्तिं नीता । शिवकुमारमहाराजेन नु तद्ग्रन्थश्रवणेन च । कस्मादिति चेत् ? ये मोक्षं गतास्तेषां सा प्रतिज्ञा परिपूर्णा जाता । न चैतेषां कस्मात् ? च-

---

होता है इसके बाद ममताभावका त्यागी होके वीतरागभावोंका आचरण करता है, तथा अन्य सब कार्य मिथ्या भ्रमरूप समझकर सर्वप्रकार उद्यमवाला होके शुद्धात्मामें प्रवर्तता है । उस प्रवृत्तिकी रीति इसतरह है—मैं निजस्वभावसे ज्ञायक (जाननेवाला) हूं इसकारण समस्त परवस्तुओंके साथ मेरा ज्ञेयज्ञायक संबंध है लेकिन वे पदार्थ मेरे हैं मैं उनका स्वामी हूं ऐसा मेरा संबंध नहीं है इसलिये मेरे किसी परवस्तुमें ममत्वभाव नहीं है सबमें ममताभाव रहित हूं । और जो मैं एक स्वभाव हूं सो मेरा समस्त ज्ञेयपदार्थोंका जानना स्वभाव है इसकारण वे ज्ञेय मुझमें ऐसे मालूम होते हैं कि मानों प्रतिमाकी तरह गढदिये हैं वा लिखे हैं या मेरेमें समागये (मिलगये) हैं या कीलित हैं या डूब गये हैं वा पलट रहे हैं अथवा प्रतिबिंबित हैं क्या, इसतरह मेरे ज्ञेय ज्ञायक संबंध है अन्य कोई भी संबंध नहीं है । इसवास्ते अब मैं मोहको दूरकर अपने यथास्थित (जैसा था वैसा) स्वरूपको निश्चल होकर आपसे ही अंगीकार करता हूं । जिस मेरे स्वरूपमें त्रिकालसंबंधी अनेक प्रकार अतिगंभीर सब ही द्रव्यपर्याय एक ही समयमें प्रत्यक्ष हैं और मेरा यह स्वरूप ज्ञेयज्ञायकसंबंधसे यद्यपि समस्त लोकके स्वरूप हुआ है तौभी स्वाभाविक अनंत ज्ञायक शक्तिकर अपने एक स्वरूपको नहीं छोड़ता । और यह मेरा स्वरूप अनादि कालसे इसीप्रकारका था परंतु मोहके वशीभूत होके अन्यका अन्य (दूसरा) जाना इसीकारण मैं अज्ञानी हुआ । अब मैंने जैसेका तैसा (यथार्थ) जान लिया इसकारण अप्रमादी होके स्वरूपको स्वीकार करता हूं और सम्यक्दर्शन सम्यक्ज्ञानकर अखंडित सुखमें तिष्ठे हुए साक्षात् सिद्ध स्वरूप भगवान् अपना जो आत्मा है उसको हमारा भावनमस्कार होवे । तथा जो अन्य जीव उस

नित्यं युक्तैः स्थीयतेऽस्माभिरेवम् ॥ १ ॥ ज्ञेयीकुर्वन्नञ्जसासीमविश्वं ज्ञानीकुर्वन् ज्ञेयमाक्रान्तभेदम् । आत्मीकुर्वन् ज्ञानमात्मान्यभासि स्फूर्यत्यात्मा ब्रह्म संपद्य सद्यः ॥ २ ॥ द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारि द्रव्यं मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम् । तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्गं द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य ॥ ३ ॥"

इति तत्त्वदीपिकायां प्रवचनसारवृत्तौ श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापनो नाम द्वितीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ २ ॥

रमदेहत्वाभावादिति ॥ १०८ ॥ एवं ज्ञानदर्शनाधिकारसमाप्तिरूपेण चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम् ।

एवं निजशुद्धात्मभावनारूपमोक्षमार्गेण ये सिद्धिं गता ये च तदाराधकास्तेषां दर्शनाधिकारापेक्षयावसानमङ्गलार्थं ग्रन्थापेक्षया मध्यमङ्गलार्थं च तत्पदाभिलाषी भूत्वा नमस्कारं करोति;—

— दंसणसंसुद्धाणं सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं ।
अव्वाबाधरदाणं णमो णमो सिद्धसाहूणं ॥ १ ॥

णमो णमो नमो नमः पुनः पुनर्नमस्करोमीति भक्तिप्रकर्षं दर्शयति । केभ्यः ? **सिद्धसाहूणं** सिद्धसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । सिद्धशब्दवाच्यस्वात्मोपलब्धिलक्षणार्हत्सिद्धेभ्यः साधुशब्दवाच्यमोक्षसाधकाचार्योपाध्यायसाधुभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः । **दंसणसंसुद्धाणं** मूढत्रयादिपञ्चविंशतिमलरहितसम्यग्दर्शनसंशुद्धेभ्यः । पुनरपि कथंभूतेभ्यः ? **सम्मण्णाणोवजोगजुत्ताणं** संशयादिरहितं सम्यग्ज्ञानं तस्योपयोगः सम्यग्ज्ञानोपयोगः, योगो निर्विकल्पसमाधिवर्तिरागचारित्रमित्यर्थः ताभ्यां युक्ताः सम्यग्ज्ञानोपयोगयुक्तास्तेभ्यः । पुनश्च किंरूपेभ्यः । **अव्वाबाधरदाणं** सम्यग्ज्ञानादिभावनोत्पन्नाव्याबाधानन्तसुखरतेभ्यश्च ॥ १ ॥ इति नमस्कारगाथासहितस्थलचतुष्टयेन चतुर्थविशेषान्तराधिकारः समाप्तः । एवं 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकादशगाथापर्यन्तं शुभाशुभशुद्धोपयोगत्रयमुख्यत्वेन प्रथमो विशेषान्तराधिकारस्तदनन्तरं 'अपदेसो परमाणू पदेसमेत्तो य' इत्यादिगाथानवकपर्यन्तं पुद्गलानां परस्परबन्धमुख्यत्वेन द्वितीयो विशेषान्तराधिकारस्ततः परं 'अरसमरूवं' इत्यादि एकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवस्य पुद्गलकर्मणा सह बन्धमुख्यत्वेन तृतीयो विशेषान्तराधिकारस्ततश्च 'ण चयदि जो दु ममत्तिं' इत्यादि द्वादशगाथापर्यन्तं विशेषभेदभावनाचूलिकाव्याख्यानरूपश्चतुर्थो चारित्रविशेषान्तराधिकार इत्येकाधिकपञ्चाशद्गाथाभिर्विशेषान्तराधिकारचतुष्टयेन विशेषभेदभावनाभिधानश्चतुर्थोन्तराधिकारः समाप्तः ।

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ 'तम्हा दंसणमाई' इत्यादि पञ्चत्रिंशद्गाथापर्यन्तं सामान्यज्ञेयव्याख्यानं तदनन्तरं 'दव्वं जीवं' इत्याद्येकोनविंशतिगाथापर्यन्तं जीवपुद्गलधर्मादिभेदेन विशेषज्ञेयव्याख्यानं ततश्च 'सपदेसेहि समग्गो' इत्यादि गाथाष्टकपर्यन्तं सामान्यभेदभावना ततःपरं 'अत्थित्तणिच्छिदस्स हि' इत्याद्येकाधिकपञ्चाशद्गाथापर्यन्तं विशेषभेदभावना चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन त्रयोदशाधिकशतगाथाभिः सम्यग्दर्शनाधिकारनामा ज्ञेयाधिकारापरसंज्ञो द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः ॥ २ ॥

परमात्मभावको प्राप्त हुए हैं उनको भी हमारा बहुत भक्तिसे भावनमस्कार होवे ॥१०८॥

इति श्रीपांडे हेमराजकृत श्रीप्रवचनसार सिद्धांतकी बालावबोधभाषाटीकामें ज्ञेयतत्त्वका अधिकार पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ चारित्राधिकारः ॥ ३ ॥

अथ परेषां चरणानुयोगसूचिका चूलिका ।

तत्र "द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धौ । बुद्धेति कर्मा-विरताः परेपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चरन्तु" इति चरणाचरणे परान् प्रयोजयति;—"एस सुरे"त्यादि "सेसे" इत्यादि "ते ते" इत्यादि ।

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे ।
पडिवज्जद सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं ॥ १ ॥

कार्ये प्रत्यत्रैव ग्रन्थः समाप्त इति ज्ञातव्यम् । कस्मादिति चेत् । 'उवसंपयामि सम्मं' इति प्रतिज्ञासमाप्तेः । अतःपरं यथाक्रमेण सप्ताधिकनवतिगाथापर्यन्तं चूलिकारूपेण चारित्राधिकार-व्याख्यानं प्रारभ्यते । तत्र तावदुत्सर्गरूपेण चारित्रस्य संक्षेपव्याख्यानम् । तदनन्तरमपवादरू-पेण तस्यैव चारित्रस्य विस्तरव्याख्यानम् । ततश्च श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गव्याख्यानम् । तदन-न्तरं शुभोपयोगव्याख्यानमित्यन्तराधिकारचतुष्टयं भवति । तत्रापि प्रथमान्तराधिकारे पञ्चस्थ-लानि 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्यादि गाथासप्तकेन दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्य-तया प्रथमस्थलम् । अतःपरं 'वदसमिदिंदिय' इत्यादिमूलगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्व-यम् । तदनन्तरं गुरुव्यवस्थाज्ञापनार्थं 'लिंगग्गहणे' इत्यादि एका गाथा । तथैव प्रायश्चित्तकथ-नमुख्यतया 'पयदंहि' इत्यादि गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयम् । अथाधारा-दिशास्त्रकथितक्रमेण तपोधनस्य संक्षेपसमाचारकथनार्थं 'अधिवासे व वि' इत्यादि चतुर्थस्थले

इसके वाद चारित्रका अधिकार प्रारंभ करते हैं—जो जीव मोक्षाभिलाषी हैं वे द्रव्यके स्वरूपको भी यथार्थ जानते हैं और चारित्रके स्वरूपको भी यथार्थ जानते हैं क्योंकि द्रव्यके ज्ञानके अनुसार चारित्र होता है और चारित्रके अनुसार द्रव्यज्ञान होता है । इसकारण ये दोनों एकत्र रहते हैं । इन दोनोंमें जो एक न होवे तो मोक्षमार्गभी न हो इसलिये इन दोनोंका जानना योग्य है । इसीकारण चारित्रका स्वरूप कहते हैं । आगे चारित्रके आचरणमें अन्य जीवोंको युक्त करते हैं । जो द्रव्यका ज्ञान होवे तो चारित्रके आचरणकी अच्छीतरह सिद्धि होवे और जो चारित्र हो तो द्रव्यका ज्ञान सफल होवे । इन दोनोंकी परस्पर सिद्धि है । इसकारण जो जीव क्रियामें प्रवृत्त होवे हैं वे आत्मद्रव्यके जाननेसे अविरोधी क्रियाका आचरण करो, अहंबुद्धिरहित निरभि-लाषी होके आचरो । इसीलिये आचार्य अन्य जीवोंके हितके निमित्त यत्नाचार कहते हैं । पूर्व ही ग्रंथआरंभके आदिमें "एस सुरासुर" इत्यादि गाथाओंसे पंच परमेष्ठियोंको नमस्कार किया था उन्हीं गाथाओंसे इस यत्नाचारके आरंभमें भी आचार्य नमस्कार

१. ये गाथासूत्र पहले अधिकारके प्रारम्भमें आगये हैं ।

एवं प्रणम्य सिद्धान् जिनवरवृषभान् पुनः पुनः श्रमणान्।
प्रतिपद्यतां श्रामण्यं यदीच्छति दुःखपरिमोक्षम् ॥ १ ॥

यथा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिना, "किच्चा अरिहंताणं" इति "तेसिं" इत्यादि इति अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां प्रणतिवन्दनात्मकनमस्कारपुरःसरं विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानं साम्यनाम श्रामण्यमवान्तरग्रन्थसन्दर्भोभयसंभावितसौस्थित्यं स्वयं प्रतिपन्नं

गाथात्रयम्। तदनन्तरं भावहिंसाद्रव्यहिंसापरिहारार्थं 'अपयत्तादो चरिया' इत्यादिपञ्चमस्थले सूत्रषट्कमित्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेन प्रथमान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा—अथासन्नभव्यजीवांश्चारित्रे प्रेरयति;—**परिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु किम्? **सामण्णं** श्रामण्यं चारित्रम्। यदि किम्? **इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं** यदि च दुःखपरिमोक्षमिच्छति। स कः कर्त्ता। परेषामात्मा। कथं प्रतिपद्यताम्? **एवं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'एस सुरासुरमणुसिंद' इत्यादि गाथापञ्चकेन पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारं कृत्वा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिनान्यैः पूर्वोक्तभव्यैर्वा यथा तच्चारित्रं प्रतिपन्नं तथा प्रतिपद्यताम्। किं कृत्वा पूर्वं। **पणमिय** प्रणम्य। कान्? **सिद्धे** अञ्जनपादुकादिसिद्धिविलक्षणस्वात्मोपलब्धिसिद्धिसमेतसिद्धान्। **जिणवरवसहे** सासादनादिक्षीणकषायान्ता एकदेशजिना उच्यन्ते शेषाश्चानागारकेवलिनो जिनवरा भण्यन्ते। तीर्थकरपरमदेवाश्च जिनवरवृषभा इति तान् जिनवरवृषभान्। न केवलं तान् प्रणम्य **पुणो पुणो समणे** चिच्चमत्कारमात्रनिजात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयाचरणप्रतिपादनसाधकत्वोद्यतान् श्रमणशब्दवाच्यानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च पुनः पुनः प्रणम्येति। किंच पूर्वं ग्रन्थप्रारम्भकाले शाम्यमाश्रयामीति शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोतीति भणितम्। इदानीं तु महात्मना चारित्रं प्रतिपन्नमिति पूर्वापरविरोधः। परिहारमाह—ग्रन्थप्रारम्भात्पूर्वमेव दीक्षा गृहीता तिष्ठति परं किन्तु ग्रन्थकरणव्याजेन क्वाप्यात्मानं भावनापरिणतं दर्शयति। क्वापि शिवकुमारमहाराजं क्वाप्यन्यं भव्यजीवं वा। तेन कारणेनात्र ग्रन्थे पुरुषनियमो नास्ति कालनियमो नास्ती-

करते हैं। अब फिर आचार्य नमस्कारपूर्वक दयालु होके कहते हैं;—[**एवं**] इसप्रकार "एस सुरासुर" इत्यादि गाथाओंकर [**जिनवरवृषभान्**] जिनवरोंमें श्रेष्ठ ऐसे अरहंतोंको [**सिद्धान्**] सिद्धोंको [**पुनः पुनः**] अनेकवार [**श्रमणान्**] मुनियोंको [**प्रणम्य**] नमस्कार करके 'भव्यजीवोंको चारित्रमें प्रेरणाकरनेका उपदेश करते हैं कि हे भव्यजीवो! जैसे दुःखका नाश करनेके लिये मेरे आत्माने पंच परमेष्ठियोंको वंदना (नमस्कार) पूर्वक निर्मल ज्ञान दर्शनरूप समताभाव नामवाला यतिमार्ग अंगीकार किया है उसीप्रकार' [**यदि**] जो तुमारा आत्मा भी [**दुःखपरिमोक्षं**] दुःखसे मुक्त होनेकी [**इच्छति**] अभिलाषा करता है तो [**श्रामण्यं**] यतिधर्मको [**प्रतिपद्यतां**] प्राप्त होवे ॥ **भावार्थ**—जैसा हमने वह साम्यभावरूप मोक्षका मार्गभूत चारित्र अनुभव किया है वैसाही तुमको भी कहते हैं कि तुमभी मुनिमार्गका

परेषामात्मापि यदि दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यतां यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति ॥ १ ॥

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन् पूर्वं किं किं करोतीत्युपदिशति;—

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोइदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं ।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारम् ॥ २ ॥

आपृच्छ्य बन्धुवर्गं विमोचितो गुरुकलत्रपुत्रैः ।
आसाद्य ज्ञानदर्शनचरित्रतपोवीर्याचारम् ॥ २ ॥

यो हि नाम श्रमणो भवितुमिच्छति स पूर्वमेव बन्धुवर्गमापृच्छते, गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति । तथाहि—एवं बन्धुवर्गमापृच्छते अहो इदं जनशरीरबन्धुवर्गवर्तिन आत्मानः! अस्य जनस्य आत्मा न किंचनापि युष्माकं भवतीति निश्चयेन यूयं जानीत तत आपृष्टा यूयं, अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिबन्धुमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीरजनकस्यात्मन्! अहो इदं जनशरीरजनन्या आत्मन्! अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति निश्चयेन युवां जानीतं तत इममात्मानं युवां विमुञ्चतं, अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः

त्यभिप्रायः ॥१॥ अथ श्रमणो भवन्निच्छन्पूर्वं क्षमितव्यं करोति;—'उवट्ठिदो होदि सो समणो' इत्यग्रे षष्ठगाथायां यद्व्याख्यानं तिष्ठति तन्मनसि धृत्वा पूर्वं किं कृत्वा श्रमणो भविष्यतीति व्याख्याति;—**आपिच्छ** आपृच्छ्य पृष्ट्वा । कम्? **बंधुवग्गं** गोत्रम् । ततः कथंभूतो भवति? **विमोचिदो** विमोचितस्त्यक्तो भवति । कैः कर्तृभूतैः? **गुरुकलत्तपुत्तेहिं** पितृमातृकलत्रपुत्रैः । पुनरपि किं कृत्वा श्रमणो भविष्यति । **आसिज्ज** आसाद्य आश्रित्य । कम्? **णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं** ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमिति । अथ विस्तरः–अहो बन्धुवर्गपितृमातृकलत्रपुत्राः! अयं मदीयात्मा साम्प्रतमुद्भिन्नपरमविवेकज्योतिस्सन् स्वकीयचिदानन्दैकस्वभावं परमात्मानमेव निश्चयनयेनानादिबन्धुवर्गं पितरं मातरं कलत्रं पुत्रं चाश्रयति तेन कारणेन मां मुञ्चत यूयमिति क्षमितव्यं करोति । ततश्च किं करोति । परमचैतन्यमात्रनिजात्मतत्त्वसर्वप्रकारोपादेयरुचिपरिच्छित्तिनिश्चलानुभूतिसमस्तपरद्रव्येच्छानिवृत्तिलक्षणतपश्चरणस्वशक्त्यनवगूहनवीर्याचाररूपं निश्चयपञ्चाचारमाचारादिचरणग्रन्थकथिततत्साधकव्यवहारपञ्चाचारं चाश्रयतीत्यर्थः ।

आचरण करो ॥ १ ॥ आगे जो मुनि होना चाहता है वह पहले क्या २ करे उसकी परिपाटीको कहते हैं—[**बंधुवर्गं**] अपने कुटुंबसमूहको [**आपृच्छ्य**] पूछकर [**गुरुकलत्रपुत्रैः**] मा बाप स्त्रीजन और पुत्र इनकर [**विमोचितः**] मुक्त हुआ [**ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारं**] आठ प्रकारका ज्ञानाचार आठ तरहका दर्शनाचार तेरह प्रकारका चारित्राचार बारहप्रकार तपआचार और आत्मशक्तिको प्रगट करनेवाला ऐसा वीर्याचार इसतरह पांच आचारोंको [**आसाद्य**] स्वीकार करके वि-

आत्मानमेवात्मनोऽनादिजनकमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीररमण्या आत्मन्! अस्य जनस्यात्मानं न त्वं रमयसीति निश्चयेन त्वं जानीहि तत इममात्मानं विमुञ्च, अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः स्वानुभूतिमेवात्मनोऽनादिरमणीमुपसर्पति । अहो इदं जनशरीरपुत्रस्यात्मन्! अस्य जनस्यात्मनो न त्वं जन्यो भवसीति निश्चयेन त्वं जानीहि तत इममात्मानं विमुञ्च, अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजन्यमुपसर्पति । एवं गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति । तथा अहो कालविनयोपधानबहुमानानिह्नवार्थव्यञ्जनतदुभयसंपन्नलक्षणज्ञानाचार! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो निःशङ्कितत्वनिःकाङ्क्षितत्वनिर्विचिकित्सत्वनिर्मूढदृष्टित्वोपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनालक्षणदर्श-

---

अत्र यद्गोत्रादिभिः सह क्षमितव्यव्याख्यानं कृतं तदत्रातिप्रसङ्गनिषेधार्थम् । तत्र नियमो नास्ति । कथमिति चेत् ? पूर्वकाले प्रचुरेण भरतसगररामपाण्डवादयो राजान एव जिनदीक्षां गृह्णन्ति, तत्परिवारमध्ये यदा कोऽपि मिथ्यादृष्टिर्भवति तदा धर्मस्योपसर्गं करोतीति । यदि पुनः कोऽपि

रक्त होता है ॥ **भावार्थ**—जो जीव मुनि होना चाहता है वह पहले ही कुटुंबके लोकोंको पूछकर अपनेको छुड़ावै । छुड़ानेकी रीति इसतरहसे है—भो इस जनके शरीरके तुम भाईबंधुओ! इस जनका (मेरा) आत्मा तुम्हारा नहीं है ऐसा तुम निश्चयकर समझो इसलिये तुमको पूछता हूं कि यह मेरा आत्मा ज्ञान ज्योतिकर प्रगट हुआ है इसीकारण अपना आत्मास्वरूप ही अनादि भाईबंधुको प्राप्त होता है । अहो इस जनके शरीरके तुम माता पिताओ! इस जनका आत्मा तुमने नहीं उत्पन्न किया यह तुम निश्चयसे समझो इसवास्ते तुम इस मेरे आत्माके विषयमें ममताभाव छोड़ो यह आत्मा ज्ञानज्योतिकर प्रगट हुआ है सो अपने आत्मास्वरूप ही मातापिताको प्राप्त होता है । हे इस जनके शरीरका मन हरनेवाली स्त्री! तू इस जनके आत्माको नहीं रमण कराती (प्रसन्न करती) यह निश्चयसे जान इसकारण इस आत्मासे ममत्वभाव छोड़ दे यह आत्मा ज्ञानज्योतिकर प्रगट हुआ है इसलिये अपनी अनुभूतिरूप स्त्रीके साथ रमण स्वभावी है । हे जनके शरीरका पुत्र! तू इस जनके आत्मासे नहीं उत्पन्न हुआ यह निश्चयसे समझ इसकारण इसमें ममताभाव छोड़, यह आत्मा ज्ञान ज्योतिकर प्रगट हुआ है इसवास्ते अपने आत्माका यह आत्मा ही अनादि पुत्र है उसको प्राप्त होता है । इसप्रकार मातापिता स्त्री पुत्रादि कुटुंबसे अपना पीछा छुड़ावे । अथवा जो कोई जीव मुनि होना चाहता है वह तो सब तरह कुटुंबसे विरक्त ही है उसको कुटुंबसे पूछनेका कुछ कार्य ही नहीं रहा परंतु यदि कुटुंबसे विरक्त होवे जब कुछ कहना पड़े तब वैराग्यके कारण कुटुंबके समझानेको इसतरहके वचन निकलते हैं । यहांपर ऐसा नहीं समझना कि जो विरक्त होवे तो कुटुंबको राजीकरके ही होवे ।

नाचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो मोक्षमार्गप्रवृत्तिकारणपञ्चमहाव्रतोपेतकायवाङ्मनोगुप्तीर्याभाषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनसमितिलक्षणचारित्राचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशप्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायध्यानव्युत्सर्गलक्षणतपआचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । अहो सम-

---

मन्यते गोत्रसम्मतं कृत्वा पश्चात्तपश्चरणं करोमि तस्य प्रचुरेण तपश्चरणमेव नास्ति कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादिममत्वं करोति तदा तपोधन एव न भवति । तथाचोक्तं—

कुटुंब यदि किसीतरह राजी न होवे तब कुटुंबके भरोसे रहनेसे विरक्त कभी होय ही नहीं सकता । इसकारण कुटुंबके पूछनेका नियम नहीं है । जो कभी किसी जीवको मुनिदशा धारणके समय कुछ कहना ही होवे तो पूर्वोक्त प्रकार उपदेशरूप वचन निकलते हैं उसतरहके वैराग्यरूप वचनोंको सुनकर जो निकट संसारी जीव कुटुंबमें हों वे भी विरक्त होसकते हैं । तथा इसकेबाद सम्यग्दृष्टी जीव अपने स्वरूपको देखता है जानता है अनुभव करता है अन्य समस्त ही व्यवहारभावोंसे अपनेको भिन्न मानता है और परभावरूप सभी शुभाशुभ क्रियाओंको हेयरूप जानता है अंगीकार नहीं करता । लेकिन वही सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वबंधे हुए कर्मोंके उदयसे अनेकप्रकारके विभाव (विकार) भावोंस्वरूप परिणमता है तौभी उन भावोंसे विरक्त है यह जानता है कि जबतक इस अशुद्धपरिणतिकी स्थिति है तबतक यह अवश्य होती है इसकारण आकुलतारूपभावोंको भी नहीं प्राप्त होता । यह सम्यग्दृष्टी जीव तो सकलद्रव्यभावरूप विभावभावोंका तभी त्याग करचुका जब इसके स्वपरविवेकरूप भेदविज्ञान प्रगट हुआ था और तभी टंकोत्कीर्ण निजभाव भी अंगीकारकिये । इसलिये सम्यग्दृष्टीको न तो कुछ त्यागनेको रहा है और न कुछ स्वीकार करनेको ही है।परंतु वही सम्यग्दृष्टि जीव चारित्रमोहके उदयसे शुभभावोंरूप परिणमनकरता है उस परिणमनकी अपेक्षा त्यागता है और अंगीकार करता है । यही कथन दिखलाते हैं—प्रथम ही गुणस्थानोंकी परिपाटीके क्रमसे अशुभ परिणतिकी हानि होती है उसके बाद धीरे २ शुभपरिणति भी छूटती जाती है, इसकारण पहले तो गृहवास कुटुंबका त्यागी होता है पीछे शुभरागके उदयसे व्यवहाररत्नत्रयरूप पंचाचारोंको अंगीकार करता है । यद्यपि ज्ञानभावकरके समस्त ही शुभाशुभक्रियाओंका त्यागी है परंतु शुभरागके उदयसे ही पंचाचारोंको ग्रहण करता है । उसकी रीति बतलाते हैं—हे काल विनय उपधान बहुमान अनिह्नव अर्थ व्यंजन तदुभयरूप आठप्रकार ज्ञानाचार ! मैं तुझको जानता हूं कि तू शुद्धात्मस्वरूपका निश्चयकरके स्व-

स्वेतराचारप्रवर्तकस्वशक्त्यनिगूहनलक्षणवीर्याचार ! न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभते । एवं ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति च ॥ २ ॥

अथातः कीदृशो भवतीत्युपदिशति;—

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं ।
समणेहिं तंपि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो ॥ ३ ॥

श्रमणं गणिनं गुणाढ्यं कुलरूपवयोविशिष्टमिष्टतरम् ।
श्रमणैस्तमपि प्रणतः प्रतीच्छ मां चेत्यनुगृहीतः ॥ ३ ॥

ततो हि श्रामण्यार्थी प्रणतोऽनुगृहीश्च भवति । तथाहि—आचरिताचारितसमस्तवि-

---

"जो सकलणयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणइ य ममत्ति । सो णवरिलिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो" ॥ २ ॥ अथ जिनदीक्षार्थी भव्यो जैनाचार्यमाश्रयति;—**समणं** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तत्वेन पूर्वसूत्रोदितनिश्चयव्यवहारपञ्चाचारस्य चरणाभरणप्रवीणत्वात् श्रमणम् । **गुणड्ढं** चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्रशीलसहकारिकारणोत्तमनिजशुद्धात्मा-

---

भाव नहीं है तौभी मैं तबतक अंगीकार करता हूं जबतक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको प्राप्त होजाउं । अहो निःशंकितत्व निःकांक्षितत्व निर्विचिकित्सत्व निर्मूढदृष्टित्व उपबृंहण स्थितिकरण वात्सल्य प्रभावनास्वरूप दर्शनाचार ! तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है ऐसा मैं निश्चयसे जानता हूं तौभी तुझको तबतक स्वीकार करता हूं जबतक तेरे प्रसादसे शुद्ध आत्माको प्राप्त होजाउं । अहो मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके कारण पंच महाव्रत तीन गुप्ति पांच समितिरूप तेरह प्रकार चारित्राचार ! मैं जानता हूं कि निश्चयसे तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है तथापि तबतक अंगीकार करता हूं जबतक कि तेरे प्रसादसे शुद्धात्माको प्राप्त होउं । अहो अनशन अवमौदर्य वृत्तिपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्त शय्यासन कायक्लेश प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्य स्वाध्याय ध्यान व्युत्सर्गस्वरूप बारहप्रकार तपआचार ! मैं निश्चयसे जानता हूं कि तू शुद्धात्माका स्वभाव नहीं है परंतु तौभी तुझको तबतक स्वीकार करता हूं जबतक तेरे प्रसादसे शुद्धस्वरूपको प्राप्त होजाऊं । अहो समस्त आचारकी प्रवृत्तिके वढानेमें स्वशक्तिके प्रगट करनेवाले वीर्याचार ! मैं निश्चयकर जानता हूं कि तू शुद्धात्माका स्वरूप नहीं है परंतु तौभी तुझको तबतक अंगीकार करता हूं जबतव कि तेरे प्रसाद (कृपा) से शुद्धस्वरूपको प्राप्त होजाउं । इसप्रकार ज्ञान दर्शन चारित्र तप वीर्यरूप पांचप्रकार आचारको अंगीकार करता है ॥ २ ॥ आगे इसके बाद कैसा होता है यह कहते हैं;—[**तं**] उस [**गणिणं**] परम आचार्यको प्राप्त होके [**प्रणतः**] नमस्कार करता हुआ [**चापि**] और निश्चयकर [**मां**] हे प्रभो ! मुझको [**प्रतीच्छ**] शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिकर अंगीकार करो [**इति**] इसप्रकार विनती करता हुआ [**अनुगृहीतः**] आचार्यकर दीक्षाके उपदेश द्वारा अंगीकार किया

रतिप्रवृत्तिसमानात्मरूपश्रामण्यत्वात् श्रमणं एवंविधश्रामण्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् गुणाढ्यं, सकललौकिकजननिःशङ्कसेवनीयत्वात् कुलक्रमागतक्रौर्यादिदोषवर्जितत्वाच्च कुलविशिष्टं, अन्तरङ्गशुद्धरूपानुमापकबहिरङ्गशुद्धरूपत्वात् रूपविशिष्टं, शैशववार्धक्यकृतबुद्धिविक्लवत्वाभावाद्यौवनोद्रेकविक्रियाविविक्तबुद्धित्वाच्च वयोविशिष्टं, निःशेषितयथोक्तश्रामण्याचरणाचारणविषयपौरुषेयदोषत्वेन मुमुक्षुभिरभ्युपगततरत्वात् श्रमणैरिष्टतरं च गणिनं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकमाचार्यं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्ध्या मामनुगृहाणेत्युपसर्पन्

नुभूतिगुणेनाढ्यं भृतम् परिपूर्णत्वाद्गुणाढ्यम् । **कुलरूववयोविसिट्ठं** लोकदुगुंच्छारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं **कुलं** भण्यते । अन्तरङ्गशुद्धात्मानुभूतिरूपकं निर्ग्रन्थनिर्विकारं **रूपमु**च्यते । शुद्धात्मसंवित्तिविनाशकारिवृद्धबालयौवनोद्रेकजनितबुद्धिवैकल्यरहितं **वय**श्चेति तैः कुलरूपवयोभिर्विशिष्टत्वात्कुलरूपवयोविशिष्टम् । **इट्ठदरं** सम्मतम् । कैः ? **समणेहिं** निजपरमात्मतत्त्वभावनासहितसमचित्तश्रमणैरन्याचार्यैः **गुणिं** एवंविधगुणविशिष्टं, परमभावनासाधकदीक्षादायकमाचार्यम् । **तं पि पणदो** न केवलमाचार्यमाश्रितो भवति प्रणतोऽपि भवति । केन रूपेण । **पडिच्छ मं** हे भगवन् अनन्तज्ञानादिजिनगुणसम्पत्तिकारणभूताया अनादिकालेऽत्यन्तदुर्लभाया भावसहितजिनदीक्षायाः प्रदानेन प्रसादेन मां प्रतीच्छ स्वीकुरु **चेदि अणुगहिदो**

जाता है । कैसे वे आचार्य हैं । कि **[श्रवणं]** पंचाचारके आचरण करनेमें तथा करानेमें प्रवीण अर्थात् साम्यभावलीन हैं, **[गुणाढ्यं]** यतिपदवीका आप आचरण करनेमें अन्यको आचरण करानेमें प्रवीण होनेसे गुणोंकर परिपूर्ण हैं **[कुलरूपवयोविशिष्टं]** कुलसे रूपसे उमरसे विशेषता लियेहुए (उत्कृष्ट) हैं और वे **[श्रमणैः]** मुक्तिके इच्छुक महामुनियोंकर **[इष्टतरं]** अतिप्रिय हैं ॥ **भावार्थ**—जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ है उसकी सब लोक निःशंक होते हुए सेवा करते हैं और जो उत्तम कुलोत्पन्न होगा उसके कुलकी परिपाटीसेही क्रूरभावादिक दोषोंका अभाव निश्चयसे होगा इससे कुलकी विशेषता लियेहुए ही आचार्य होते हैं, आचार्यके बाहरसे रूपकी विशेषता ऐसी है कि देखनेसे उनमें अंतरंगकी शुद्ध अनुभव मुद्रा पायी जाती है तौभी बाहरके शुद्ध रूपकर मानों अंतरंगकी शुद्धता बतलाई जारही है इसकारण रूपकी विशेषताकर सहित होते हैं, तथा वय (उमर) करके विशेषता इसतरह है कि बालक-वृद्धअवस्थामें बुद्धिकी विकलता रहित हैं और जवान अवस्थामें कामविकारकर बुद्धिकी विकलता होती है उससे भी रहित हैं । ऐसी अवस्थाकी विशेषता लियेहुए आचार्य कहेगये हैं । और समस्त सिद्धांतोक्त मुनिकी क्रियाके आचरण करने तथा करानेमें जो कभी पीछे दोष हुआ हो उसको बतलाने वाले हैं तथा गुणका उपदेश करनेवाले हैं । इसलिये अत्यंतप्रिय हैं । इत्यादि अनेकगुणोंकर शोभायमान जो आचार्य हैं उनके पास जाकर यह दीक्षा(व्रत)का ग्रहण करनेवाला पुरुष पहले तो नमस्कार करता है उसके बाद शुद्धात्मतत्त्वके साधक आचार्यको हाथ

प्रणतो भवति । एवमियं ते शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्धिरिति तेन प्रार्थितार्थेन संयुज्यमानोऽनुग्रहीतो भवति ॥ ३ ॥

अथातोपि कीदृशो भवतीत्युपदिशति;—

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो ॥ ४ ॥

नाहं भवामि परेषां न मे परे नास्ति ममेह किंचित् ।
इति निश्चितो जितेन्द्रियः यातो यथाजातरूपधरः ॥ ४ ॥

ततोपि श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधरो भवति । तथाहि—अहं तावन्न किंचिदपि परेषां भवामि परेपि न किंचिदपि मम भवन्ति, सर्वद्रव्याणां परैः सह तत्त्वतः समस्तसंबन्धशून्यत्वात् । तदिह षड्द्रव्यात्मके लोके न मम किंचिदप्यात्मनोऽन्यदस्तीति निश्चित-

---

न केवलं प्रणतो भवति, तेनाचार्येणानुगृहीतः स्वीकृतश्च भवति । हे भव्य ! निस्सारसंसारे दुर्लभबोधिं प्राप्य निजशुद्धात्मभावनारूपया निश्चयचतुर्विधाराधनया मनुष्यजन्म सफलं कुर्वित्यनेन प्रकारेणानुगृहीतो भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥ अथ गुरुणा स्वीकृतः सन्नीदृशो भवतीत्युपदिशति;—**णाहं होमि परेसिं** नाहं भवामि परेषाम् । निजशुद्धात्मनः सकाशात्परेषां भिन्नद्रव्याणां सम्बन्धी न भवाम्यहम् । **ण मे परे** न मे सम्बन्धीनि परद्रव्याणि **णत्थि मज्झमिह किंचि** नास्ति ममेह किंचिदपि परद्रव्यं मम नास्ति **इदि णिच्छिदो** इति निश्चितमतिर्जातः **जिदिंदो जादो** इन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानन्तज्ञानादिगुणस्वरूपनिजपरमात्मद्रव्याद्विपरीतेन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च संजातः सन् **जधजादरूवधरो**

जोड़कर विनती करता है कि हे प्रभो ! मैं संसारसे भयभीत हुआ हूं सो मुझको शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धि होनेकेलिये दीक्षा दो । तव आचार्य कहते हैं कि तुझको शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धि (प्राप्ति) करनेवाली यह भगवती दीक्षा है । ऐसा कहकर वह मुमुक्षु आचार्यसे कृपायुक्त किया जाता है ॥३॥ आगे फिर वह कैसा होता है यह कहते हैं;—**[अहं]** मैं **[परेषां]** शुद्धचिन्मात्रसे अन्य जो परद्रव्य हैं उनका **[न भवामि]** नहीं हूं और **[न मे]** न मेरे **[परे]** परद्रव्य हैं इसलिये **[इह]** इस लोकमें **[मम]** मेरा **[किंचित्]** कुछ भी **[नास्ति]** नहीं है **[इति]** इसतरह **[निश्चितः]** निश्चय करता हुआ **[जितेन्द्रियः]** पांच इंद्रियोंका जीतनेवाला **[यथाजातरूपधरः जातः]** आत्माका जैसा कुछ स्वयं सिद्ध स्वरूप है उसको धारण करता है ॥ **भावार्थ**—जो पुरुष मुनि होना चाहता है उसके प्रथम तो ऐसे भाव होते हैं कि न मैं परद्रव्यका हूं और न मेरे परद्रव्य हैं क्योंकि कोई द्रव्य अपना स्वरूप छोड़कर किसीसे मिलता नहीं है सब जुदे २ हैं । इसलिये संसारमें जो नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मरूप समस्त परभाव हैं उनमें मेरा स्वरूप कुछ भी नहीं है । मैं सबसे भिन्न अविनाशी टंकोत्कीर्ण

मतिः परद्रव्यस्वस्वामिसंबन्धानामिन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च सन् धृतयथानिष्पन्नात्मद्रव्यशुद्धरूपत्वेन यथाजातरूपधरो भवति ॥ ४ ॥

अथैतस्य यथाजातरूपधरत्वस्यासंसारानभ्यस्तत्वेनात्यन्तमप्रसिद्धस्याभिनवाभ्यासकौशलोपलभ्यमानायाः सिद्धेर्गमकं बहिरङ्गान्तरङ्गलिङ्गद्वैतमुपदिशति;—

जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं ।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥ ५ ॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोगजोगसुद्धीहिं ।
लिङ्गं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जोण्हं ॥ ६ ॥ जुगलं ।

यथाजातरूपजातमुत्पाटितकेशश्मश्रुकं शुद्धम् ।
रहितं हिंसादितोऽप्रतिकर्म भवति लिङ्गम् ॥ ५ ॥
मूर्छारम्भवियुक्तं युक्तमुपयोगयोगशुद्धिभ्याम् ।
लिङ्गं न परापेक्षमपुनर्भवकारणं जैनम् ॥ ६ ॥ युगलम् ।

आत्मनो हि तावदात्मना यथोदितक्रमेण यथाजातरूपधरस्य जातस्यायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययानां मोहरागद्वेषादिभावानां भवत्येवाभावः, तदभावात्तु तद्भावभाविनो निवस-

---

यथाजातरूपधरः व्यवहारेण नग्नत्वं यथाजातरूपं निश्चयेन तु स्वात्मरूपं तदित्थंभूतं यथाजातरूपं धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थो जात इत्यर्थः ॥४॥ अथ तस्य पूर्वसूत्रोदितयथाजातरूपधरस्य निर्ग्रन्थस्यानादिकालदुर्लभायाः स्वात्मोपलब्धिलक्षणसिद्धेर्गमकं चिह्नं बाह्याभ्यन्तरलिङ्गद्वयमादिशति;—**जधजादरूवजादं** पूर्वसूत्रोक्तलक्षणयथाजातरूपेण निर्ग्रन्थत्वेन जातमुत्पन्नं यथाजातरूपजातम् **उप्पादियकेसमस्सुगं** केशश्मश्रुसंस्कारोत्पन्नरागादिदोषवर्जनार्थमुत्पाटितकेशश्मश्रुकम् । **सुद्धं** निरवद्यचैतन्यचमत्कारविसदृशेन सर्वसावद्ययोगेन रहितत्वाच्छुद्धम् । **रहिदं हिंसादीदो** शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणहिंसाकारणभूताया रागादिपरिणतिलक्षणनिश्चयहिंसाया अभावात् हिंसादिरहितम् । **अप्पडिकम्मं हवदि** परमोपेक्षासंयमबलेन देहप्रतिकार-

---

वस्तुमात्र हूं ऐसा निश्चय करके जितेंद्री होता हुआ जैसा कुछ मुनिका स्वरूप है उसको धारण करता है ॥४॥ आगे अनादिकालसे लेकर कभी जिसका अभ्यास नहीं किया था ऐसा जो यथाजातरूपधारक मुनिपद है उसकी बतलानेवाली अंतरंग बहिरंग भेदकर लिंगकी द्वैतता दिखलाते हैं अर्थात् जिनचिन्होंसे मुनिपदवी अच्छीतरह जानी जावे ऐसे द्रव्यभावलिंगोंको कहते हैं;—[**यथाजातरूपजातं**] जैसा निर्ग्रंथ अर्थात् परमाणुमात्र परिग्रहसे भी रहित मुनिका स्वरूप होता है वैसे स्वरूपवाला [**उत्पाटितकेशश्मश्रुकं**] लोंच करडाले हैं शिर डाढीके बाल जिसमें ऐसा [**शुद्धं**] समस्त परिग्रहरहित होनेसे निर्मल [**हिंसादितः रहितं**] हिंसा आदि पापयोगोंसे रहित और [**अप्रतिकर्म**] शरीरके सम्हालनेकी अथवा सजानेकी क्रियाकर रहित ऐसा

नमूवणधारणस्य मूर्धजव्यञ्जनपालनस्य सकिंचनत्वस्य सावद्ययोगयुक्तत्वस्य शरीरसंस्कारकरणत्वस्य चाभावाद्यथाजातरूपत्वमुत्पाटितकेशश्मश्रुत्वं शुद्धत्वं हिंसादिरहितत्वमप्रतिकर्मत्वं च भवत्येव, तदेतद्बहिरङ्गं लिङ्गं। तथात्मनो यथाजातरूपधरत्वापसारितायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावानामभावादेव तद्भावभाविनो ममत्वकर्मप्रक्रमपरिणामस्य शुभाशुभोपरक्तोपयोगतत्पूर्वकतथाविधयोगाशुद्धियुक्तत्वस्य परद्रव्यसापेक्षत्वस्य

रहितत्वादप्रतिकर्म भवति। किं। **लिंगं** एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं लिङ्गं द्रव्यलिङ्गं ज्ञातव्यमिति प्रथमगाथा गता॥ **मुच्छारंभविमुक्कं** परद्रव्यकाङ्क्षारहितनिर्मोहपरमात्मज्योतिर्विलक्षणा बाह्यद्रव्ये ममत्वबुद्धिर्मूर्च्छा भण्यते, मनोवाक्कायव्यापाररहितचिच्चमत्कारप्रतिपक्षभूत आरम्भो व्यापारस्ताभ्यां मूर्च्छारम्भाभ्यां विमुक्तं मूर्च्छारम्भविमुक्तम्। **जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं** निर्विकारस्वसंवेदनलक्षण उपयोगः निर्विकल्पसमाधिर्योगः तयोरुपयोगयोगयोः शुद्धिरुपयोगयोगशुद्धिस्तया युक्तः **ण परावेक्खं** निर्मलानुभूतिपरिणतेः परस्य परद्रव्यस्यापेक्षया रहितम् न परापेक्षम्। **अपुणब्भवकारणं** पुनर्भवविनाशकशुद्धात्मपरिणामाविपरीतापुनर्भवस्य मोक्षस्य कारणमपुनर्भवकारणम्। **जेण्हं** जिनस्य सम्बन्धीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम्। एवं पञ्च-

---

[लिङ्गं] मुनीश्वरके **द्रव्यलिंग [भवति]** होता है। तथा **[मूर्छारम्भवियुक्तं]** परद्रव्यमें मोहसे उत्पन्न ममतारूपपरिणामोंके आरंभसे रहित **[उपयोगयोगशुद्धिभ्यां]** ज्ञानदर्शनरूप चैतन्यपरिणामस्वरूप उपयोग और मनवचनकायकी क्रियारूपयोग इनकी शुद्धि अर्थात् शुभाशुभरूपरंजकतासे रहित भावरूप उपयोगशुद्धि और योगपरिणतिकी निश्चलतारूप योगशुद्धि इसतरह दोप्रकारकी शुद्धताकर **[युक्तं]** सहित **[न परापेक्षं]** परकी अपेक्षा नहीं रखनेवाला **[अपुनर्भवकारणं]** और मोक्षका कारण ऐसा **[जैनं लिङ्गं]** जिनेन्द्रकर कहाहुआ **भावलिंग** होता है॥ **भावार्थ**—यथाजातरूप (निर्ग्रंथपने) पदके रोकनेवाले जो रागद्वेष मोहभाव हैं उनका जब अभाव होता है तब यह आत्मा आपहीसे परिपाटी (क्रम) के अनुसार यथाजातरूपका धारक होता है। उस अवस्थामें इस जीवके रागादि भावोंके बढ़ानेवाले जो वस्त्र आभूषण हैं उनका अभाव तथा सिर डाढीके बालोंकी रक्षाका अभाव होता है, निष्परिग्रहदशा होती है, पापक्रियासे रहित होता है और शरीरमंडनादिक क्रियासे रहित होता है अर्थात् जैसा मुनिका स्वरूप बाह्यदशाकर होता है वैसा ही बनजाता है—यह द्रव्यलिंग जानना। तथा इस आत्माके जैसा निर्ममत्वादि अंतरंगमें मुनिपद कहा है वैसी ही अवस्थाकर जो स्वरूपका होना उसके रोकनेवाले जो रागद्वेष मोहभाव हैं उनका जब अभाव होता है तब इस आत्माके स्वाभाविक मोक्षका कारण, अहंकार ममताभावरहित, उपयोगकी शुद्धतासंयुक्त स्वाधीन अंतरंगलिंग प्रगट होता है। इसप्रकार जब यह आत्मा बाह्यचिन्होंसे और अंतरंग चिन्होंसे 'यथाजातरू-

चाभावान्मूर्छारम्भवियुक्तत्वमुपयोगयोगशुद्धियुक्तत्वमपरापेक्षत्वं च भवत्येव, तदेतदन्तरङ्गं लिङ्गम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथैतदुभयलिङ्गमादायैतदेतत्कृत्वा च श्रमणो भवतीति भवतिक्रियायां बन्धुवर्गप्रच्छनक्रियादिशेषसकलक्रियाणां चैककर्तृकत्वमुद्योतयन्नियता श्रामण्यप्रतिपत्तिर्भवतीत्युपदिशति;—

आदाय तंपि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता ।
सोचा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो ॥ ७ ॥

आदाय तदपि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं नमस्कृत्य ।
श्रुत्वा सव्रतं क्रियामुपस्थितो भवति स श्रमणः ॥ ७ ॥

ततोपि श्रमणो भवितुमिच्छन् लिङ्गद्वैतमादत्ते गुरुं नमस्यति व्रतक्रिये शृणोति अथोपतिष्ठते उपस्थितश्च पर्याप्तश्रामण्यसामग्रीकः श्रमणो भवति । तथाहि—तत इदं यथाजातरूपधरत्वस्य गमकं बहिरङ्गमन्तरङ्गमपि लिङ्गं प्रथममेव गुरुणा परमेणार्हद्भट्टारकेण तदात्वे च

विशेषणविशिष्टं भवति । किं । **लिंगं** भावलिङ्गमिति । इति द्रव्यलिङ्गभावलिङ्गस्वरूपं ज्ञातव्यम् ॥ ५ । ६ ॥ अथैतल्लिङ्गद्वैतमादाय पूर्वं भाविनैगमनयेन यदुक्तं पञ्चाचारस्वरूपं तदिदानीं स्वीकृत्य तदाधारेणोपस्थितः स्वस्थो भूत्वा श्रमणो भवतीत्याख्याति;—**आदाय तं पि लिङ्गं** आदाय गृहीत्वा तत्पूर्वोक्तं लिङ्गद्वयमपि । कथंभूतं । दत्तमिति क्रियाध्याहारः । केन दत्तम् ? **गुरुणा परमेण** दिव्यध्वनिकाले परमागमोपदेशरूपेणार्हद्भट्टारकेण । दीक्षाकाले तु दीक्षागुरुणा, लिङ्गग्रहणानन्तरं **तं णमंसित्ता** तं गुरुं नमस्कृत्य **सोचा** तदनन्तरं श्रुत्वा । काम् ? **किरियं** क्रियां बृहत्प्रतिक्रमणाम् । किं विशिष्टाम् ? **सवदं** सव्रतां व्रतारोपणसहिताम् । **उवट्ठिदो** ततश्चोपस्थितः स्वस्थः सन् **होदि सो समणो** स पूर्वोक्तस्तपोधन इदानीं श्रमणो भवतीति । इतो विस्तरः—पूर्वोक्तलिङ्गद्वयग्रहणानन्तरं पूर्वसूत्रोक्तपञ्चाचारमाश्रयति ततश्चानन्तज्ञानादिगुणस-

---

पका धारक होता है तब इसके मुनिपद कहा है ॥ ५ । ६ । आगे दो प्रकारके लिंगको अंगीकारकर अन्यक्रियाओंकरके ही मुनि होता है इसकारण कुटुंबीलोकोंको पूछने आदिक क्रियासे लेकर आगे जो समस्त क्रिया मुनिपदकी पूर्णतातक हैं उन सब क्रियाओंका जब यह एक कर्ता होता है तब इसके निश्चयकर मुनिपदकी सिद्धि होती है यह कहते हैं;—[**परमेण गुरुणा**] उत्कृष्ट गुरू जो अरहंत केवली अथवा दीक्षा देनेवाले आचार्यगुरू हैं उनसे उपदेशित [**तदपि लिङ्गं**] द्रव्यभावभेदकर दोप्रकारके लिंगको [**आदाय**] अंगीकारकरके, [**तं नमस्कृत्य**] दीक्षाके देनेवाले अर्हंत वा आचार्यको [**नमस्कृत्य**] नमस्कार करके और [**सव्रतां**] पांच महाव्रतोंसहित [**क्रियां**] मुनिकी आचार विधिको [**श्रुत्वा**] सुनकर [**सः**] वह मुनिपदका इच्छुक पुरुष [**उपस्थितः**] मुनिपदको एकाग्रतासे अवलम्बनकर तिष्ठता हुआ [**श्रमणः**] सबमें समदृष्टि होनेसे परिपूर्ण साक्षात् मुनि होता है ॥ **भावार्थ**—जो मुनि होना चाहता है वह प्रथम तो

दीक्षाचार्येण तदादानविधानप्रतिपादकत्वेन व्यवहारतो दीयमानत्वाद्दत्तमादानक्रियया संभाव्य तन्मयो भवति । ततो भाव्यभावकभावप्रवृत्तेतरेतरसंवलनप्रत्यस्तमितस्वपरविभागत्वेन दत्तसर्वस्वमूलोत्तरपरमगुरुनमस्क्रियया संभाव्य भावस्तववन्दनामयो भवति । ततः सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन समये भवन्तमात्मानं जानन् सामायिकमधिरोहति । ततः समस्तावद्यकर्मायतनं कायमुत्सृज्य यथाजातरूपं स्वरूपमेकमेकाग्रेणालम्ब्य व्यवतिष्ठमान उपस्थितो भवति, उपस्थितस्तु सर्वत्र समदृष्टित्वात्साक्षाच्छ्रमणो भवति ॥ ७ ॥

अथाविच्छिन्नसामायिकाधिरूढोपि श्रमणः कदाचिच्छेदोपस्थापनमर्हतीत्युपदिशति;—

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सकमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतयणं ठिदिभोयणमेयभत्तं च ॥ ८ ॥

रणरूपेण भावनमस्कारेण तथैव तद्गुणप्रतिपादकवचनरूपेण द्रव्यनमस्कारेण च गुरुं नमस्करोति । ततः परं समस्तशुभाशुभपरिणामनिवृत्तिरूपं स्वस्वरूपे निश्चलावस्थानं परमसामायिकव्रतमारोहति स्वीकरोति । मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च जगत्त्रये कालत्रयेऽपि समस्तशुभाशुभकर्मभ्यो भिन्ना निजशुद्धात्मपरिणतिलक्षणा या तु क्रिया सा निश्चयेन **बृहत्प्रतिक्रमणा** भण्यते । व्रतारोपणानन्तरं तां च शृणोति । ततो निर्विकल्पं समाधिबलेन कायमुत्सृज्योपस्थितो भवति, ततश्चैवं परिपूर्णश्रमणसामग्र्यां सत्यां परिपूर्णश्रमणो भवतीत्यर्थः ॥७॥ एवं दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथासप्तकं गतम् । अथ निर्विकल्पसामायिकसंयमे यदा च्युतो

गुरूके उपदेशसे दोप्रकारके लिंगको धारण करता है । वह दोप्रकारका लिंग व्यवहारसे गुरूकर दिया हुआ कहा जाता है, क्योंकि गुरूने ही द्रव्यभावलिंगकी विधि वतलाई है । और यह शिष्य जब इस लिंगको स्वीकार करता है तब मानता है कि गुरूने मुझको मुनिपद दीना है ऐसी भावनासे तन्मय होता है । पीछे गुरूको परम उपकारी जानकर नमस्कार करता है उसके बाद बहुत भक्तिसे स्तुति करता है और सब पापयोगोंकी क्रियाके दूर करनेवाले पांच महाव्रतोंको यत्याचाररूप श्रुतज्ञानसे सुनता है । तथा जैसा सिद्धांतमें टंकोत्कीर्ण शुद्ध सिद्ध समान आत्माका स्वरूप कहा है । वैसा ही जानता हुआ रागद्वेषसे रहित सामायिक दशाको प्राप्त होता है और प्रतिक्रमण आलोचन प्रत्याख्यान स्वरूप श्रुतज्ञानसे सुनता है सुनकर तीन कालके कर्मोंसे भी भिन्न अपने स्वरूपका अनुभव करता है । तीन कालकी मनवचनकायकी क्रियासे रहित स्थिर स्वरूपको प्राप्त होता है और जिस शरीरकी क्रियासे पाप होवे ऐसे काययोगका त्यागी होता है तथा यथा जातस्वरूपको धारणकर एकाग्रसे तिष्ठता है । जब इतनी संपूर्ण क्रियायें होती हैं तभी मुनिपदवी होती है ॥ ७ ॥ आगे यद्यपि अखंडित सामायिकदशाको मुनि प्राप्त है तौभी किसी कालमें छेदोपस्थापक होता है यह कहते हैं;—[व्रतसमितीन्द्रि-

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि ॥ ९ ॥ जुम्मं ।

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचैलक्यमस्नानम् ।
क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च ॥ ८ ॥

एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति ॥ ९ ॥ युग्मम् ।

सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतव्यक्तवशेन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहविरत्यात्मकं पञ्चतयं व्रतं तत्परिकरश्च पञ्चतयी समितिः पञ्चतय इन्द्रियरोधो लोचः षट्तयमा-

---

भवति तदा सविकल्पं छेदोपस्थापनचारित्रमारोहतीति प्रतिपादयति;—**वदसमिदिंदियरोधो** व्रतानि च समितयश्चेन्द्रियरोधश्च व्रतसमितीन्द्रियरोधः। **लोचावस्सयं** लोचं चावश्यकानि च लोचावश्यकम् । "समाहारस्यैकवचनं" **अचेलमण्हाणं खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणा मेयभत्तं च** अचेलकास्नानक्षितिशयनदन्तधावनस्थितिभोजनैकभक्तानि ॥ **एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता** एते खलु स्फुटं अष्टाविंशतिमूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः **तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होहि** तेषु मूलगुणेषु यदा प्रमत्तः च्युतो भवति । सः कः। श्रमणस्तपोधनस्तदाकाले छेदोपस्थापको भवति। छेदे व्रतखण्डने सति पुनरप्युपस्थापकश्छेदोपस्थापक इति । तथाहि—निश्चयेन मूलमात्मा तस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणा मूलगुणास्ते च निर्विकल्प समाधिरूपेण परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति । तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणत्वात् निश्चयमूल-

---

यरोधाः] पापयोगक्रियासे रहित पंच महाव्रत पांच समिति और पांच इन्द्रियोंका निरोध (रोकना) [**लोचावश्यकं**] केशोंका लोंच छह आवश्यक क्रियायें [**अचैलक्यं**] दिगंबर अवस्था [**अस्नानं**] अंग प्रक्षालनादि क्रियासे रहित होना [**क्षितिशयनं**] भूमिमें सोवना [**अदन्तधावनं**] दांतोंन नहीं करना [**स्थितिभोजनं**] खड़े होकर भोजन करना [**च**] और [**एकभुक्तः**] एकवार भोजन [**एते**] ये २८ [**मूलगुणाः**] मूलगुण [**श्रमणानां**] मुनीश्वरोंके [**जिनवरैः**] सर्वज्ञवीतरागदेवने [**खलु**] निश्चयकर [**प्रज्ञप्ताः**] कहे हैं, इन मूलगुणोंसे ही यतिपदवी स्थिर रहती है। [**तेषु**] उन मूलगुणोंमें जो किसीसमय [**प्रमत्तः**] प्रमादी हुआ [**श्रमणः**] मुनि हो तो [**छेदोपस्थापकः**] संयमके छेद (भंग) का फिर स्थापनकरनेवाला होता है ॥ **भावार्थ**—ये अट्ठाईस मूलगुण निर्विकल्प सामायिकके भेद हैं इसकारण ये मुनिके मूलगुण हैं इन्हींसे मुनिपदकी सिद्धि होती है जो कभी इन गुणोंमें प्रमादी होजावे तो निर्विकल्प सामायिकका भंग होजाता है इसलिये इनमें सावधान होना योग्य है। जो यह मालूम हो कि मेरे इस भेदमें संयमका भंग हुआ है

वश्यकमाचेलक्यमस्नानं क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्चैवं एते निर्विकल्पसामायिकसंयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव । तेषु यदा निर्विकल्पसामायिकसंयमाधिरूढत्वेनानभ्यस्तविकल्पत्वात्प्रमाद्यति तदा केवलकल्याणमात्रार्थिनः कुण्डलवलयाङ्गुलीयादिपरिग्रहः किल श्रेयान्, न पुनः सर्वथा कल्याणलाभ एवेति संप्रधार्य विकल्पेनात्मानमुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति ॥ ८ । ९ ॥

अथास्य प्रव्रज्यादायक इव छेदोपस्थापकः परोप्यस्तीत्याचार्यविकल्पप्रज्ञापनद्वारेणोपदिशति;—

लिंगग्गहणं तेसिं गुरुत्ति पव्वज्जदायगो होदि ।
छेदेसूवट्ठगा सेसा णिज्जावया समणा ॥ १० ॥

लिङ्गग्रहणं तेषां गुरुरिति प्रव्रज्यादायको भवति ।
छेदयोरुपस्थापका शेषा निर्यापकाः, श्रमणाः ॥ १० ॥

गुणो भवति । यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलभमानस्तत्पर्यायानपि कुण्डलादीन् गृह्णाति न च सर्वथा त्यागं करोति, तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरमसमाध्यभावे छेदोपस्थापनं चारित्रं गृह्णाति । छेदे सत्युपस्थापनं छेदोपस्थापनम् । अथवा छेदेन व्रतभेदेनोपस्थापनं छेदोपस्थापनम् । तच्च संक्षेपेण पञ्चमहाव्रतरूपं भवति । तेषां व्रतानां च रक्षणार्थं पञ्चसमित्यादिभेदेन पुनरष्टाविंशतिमूलगुणभेदा भवन्ति । तेषां च मूलगुणानां रक्षणार्थं द्वाविंशतिपरीषहजयद्वादशविधतपश्चरणभेदेन चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा भवन्ति तेषां च रक्षणार्थं देवमनुष्यतिर्यगचेतनकृतचतुर्विधोपसर्गजयद्वादशानुप्रेक्षाभावनादयश्चेत्यभिप्रायः ॥ ८ । ९ ॥ एवं मूलोत्तरगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले सूत्रद्वयं गतम् । अथास्य तपोधनस्य प्रव्रज्यादायक इवान्योऽपि निर्या-

तो उसीं भेदमें फिर आत्माको स्थापन करे उस अवस्थामें छेदोपस्थापक होता है । जैसे कोई पुरुष सुवर्णका इच्छुक है उस पुरुषको सोनेके जितने कंकण कुंडल मुद्रिका आदि पर्यायभेद हैं वे सब ग्रहण करने कल्याणकारी हैं ऐसा नहीं है कि सोना ही ग्रहण योग्य है उसके भेद ग्रहण योग्य नहीं हों । यदि भेदोंको ग्रहण नहीं करेगा तो सोनेकी प्राप्ति कहांसे होसकती है क्योंकि सोना तो उन भेदोंस्वरूपही है, इसकारण सोनेके सब पर्यायभेद ग्रहण करने योग्य हैं । उसीप्रकार निर्विकल्प सामायिकसंयमका जो अभिलाषी है उसको उस सामायिकके भेद २८ मूलगुण भी ग्रहण करने योग्य हैं क्योंकि सामायिक इन मूलगुणोंरूप है इसकारण इन गुणोंमें वह मुनि सावधान होता है यदि किसीकारणसे कभी भंग होजावे तो फिर स्थापन करता है ॥ ८ । ९ ॥ आगे जैसे इस मुनिको दीक्षाके देनेवाले आचार्य होते हैं उसीप्रकार इसके संयम भंग हुआ हो तो उपदेश देकर संयमके भेदोंमें फिर स्थापन करे इसप्रकार भेदका बतलानेवाला दूसरा

यतो लिङ्गग्रहणकाले निर्विकल्पसामायिकसंयमप्रतिपादकत्वेन यः किलाचार्यः प्रव्रज्यादायकः स गुरुः, यः पुनरनन्तरं सविकल्पछेदोपस्थापनसंयमप्रतिपादकत्वेन छेदं प्रत्युपस्थापकः स निर्यापकः, योपि छिन्नसंयमप्रतिसंधानविधानप्रतिपादकत्वेन छेदे सत्युपस्थापकः सोपि निर्यापक एव । ततश्छेदोपस्थापकः परोप्यस्ति ॥ १० ॥

अथ छिन्नसंयमप्रतिसंधानविधानमुपदिशति;—

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्मि ।
जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया ॥ ११ ॥
छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्मि ।
आसेज्जालोचित्ता उवदिट्ठं तेण कायव्वं ॥ १२ ॥ जुगलं ।

पकसंज्ञो गुरुरस्ति इति गुरुव्यवस्थां निरूपयति;—**लिंगग्गहणे तेसिं** लिङ्गग्रहणे तेषां तपोधनानां **गुरुत्ति होदि** गुरुर्भवतीति । स कः । **पव्वज्जदायगो** निर्विकल्पसमाधिरूपपरमसामायिकप्रतिपादको योऽसौ प्रव्रज्यादायकः स एव दीक्षागुरुः **छेदेसु अवट्ठगा** छेदयोश्च वर्त्तकाः ये **सेसा णिज्जावगा समणा** ते शेषाः श्रमणा निर्यापका भवन्ति शिक्षागुरवश्च भवन्तीति । अयमत्रार्थः—निर्विकल्पकसमाधिरूपसामायिकस्यैकदेशेन च्युतिरेकदेशछेदः, सर्वथा च्युतिः सकलदेशछेद इति देशसकलभेदेन द्विधा छेदः । तयोश्छेदयोर्ये प्रायश्चित्तं दत्वा संवेगवैराग्यजनकपरमागमवचनैः संवरणं कुर्वन्ति ते निर्यापकाः शिक्षागुरवः श्रुतगुरवश्चेति भण्यन्ते । दीक्षादायकस्तु दीक्षागुरुरित्यभिप्रायः॥ १०॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तछेदद्वयस्य प्रायश्चित्तविधानं कथयति;—**पयदं हि समारद्दे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि जायदि जदि** प्रयतायां समारब्धायां छिदः

भी इसका गुरू होता है यह कहते हैं;—[**तेषां**] पूर्वोक्त मुनियोंके [**लिङ्गग्रहणे**] मुनिलिङ्गग्रहणकी अवस्थामें [**गुरुः**] जो गुरु होता है वह [**प्रव्रज्यादायकः**] दीक्षाको देनेवाला [**भवति**] होता है अर्थात् कहा जाता है [**छेदयोः**] एक देश सर्वदेशके भेदकर जो दो प्रकारके छेद अर्थात् संयमके भेद उनके [**उपस्थापकाः**] उपदेश देकर फिर स्थापन करनेवाले [**शेषाः**] अन्य [**श्रमणाः**] यत्याचारमें अतिप्रवीण महामुनि हैं वे [**निर्यापकाः**] निर्यापक गुरु कहे जाते हैं ॥ **भावार्थ**— प्रथम तो जिस आचार्यके पाससे मुनिपदकी दीक्षा लीजावे वह गुरू **दीक्षादायक** कहा जाता है, और दीक्षा लेनेके बाद अंतरंग एकदेश जो कभी संयमका भंग हुआ हो तो जिस गुरूके उपदेशसे फिर उस संयमकी स्थापना कीजावे वह गुरू निर्यापक कहा जाता है अथवा यदि जिस संयमका सर्वथा ही नाश हुआ हो तो वह संयम जिस गुरूके उपदेशसे फिर अंगीकार कियाजावे वह गुरू भी **निर्यापक** कहा जाता है ॥१०॥ आगे जो संयमरूप वृक्ष भंग हुआ हो तो उसके जोड़नेकी विधि दिखलाते हैं;—[**प्रयतायां**] यत्नपूर्वक [**समारब्धायां**] आरंभ हुई [**कायचेष्टायां**] शरीरकी क्रियाके

प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायाम्।
जायते यदि तस्य पुनरालोचनापूर्विका क्रिया ॥ ११ ॥
छेदोपयुक्तः श्रमणः श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते।
आसाद्यालोच्योपदिष्टं तेन कर्तव्यम् ॥ १२ ॥ युगलम्।

द्विविधः किल संयमस्य छेदः, बहिरङ्गोऽन्तरङ्गश्च। तत्र कायचेष्टामात्राधिकृतो बहिरङ्ग, उपयोगाधिकृतः पुनरन्तरङ्गः। तत्र यदि सम्यगुपयुक्तस्य श्रमणस्य प्रयत्नसमारब्धायाः कायचेष्टायाः कथंचिद्बहिरङ्गछेदो जायते तदा तस्य सर्वथान्तरङ्गछेदवर्जितत्वादालोचनपूर्विकया क्रिययैव प्रतीकारः। यदा तु स एवोपयोगाधिकृतछेदत्वेन साक्षाच्छेद एवोपः

श्रमणस्य कायचेष्टायां जायते यदि चेत्। अथ विस्तरः—छेदो जायते यदि चेत्। स्वस्थभावच्युतिलक्षणः छेदो भवति। कस्याम्? कायचेष्टायाम्। कथंभूतायां। प्रयतायां स्वस्थभावलक्षणप्रयत्नपरायां समारब्धायां अशनशयनयानस्थानादिप्रारब्धायाम्। **तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया** तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया। तदा काले तस्य तपोधनस्य स्वस्थभावस्य बहिरङ्गसहकारिकारणभूता प्रतिक्रमणलक्षणालोचनपूर्विका पुनः क्रियैव प्रायश्चित्तं प्रतिकारो भवति नचाधिकम्। कस्मादिति चेत्? अभ्यन्तरे स्वस्थभावचलनाभावादिति प्रथमगाथा गता। **छेदपउत्तो समणो** छेदे प्रयुक्तः श्रमणो निर्विकारस्वसंवित्तिभावनाच्युतिलक्षणछेदेन यदि चेत् प्रयुक्तः सहितः श्रमणो भवति **समणं ववहारिणं जिणमदम्हि** श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते तदा जिनमते व्यवहारज्ञं प्रायश्चित्तकुशलं श्रमणं **आसेज्ज** आसाद्य प्राप्य न केवलमासाद्य **आलोचित्ता** निःप्रपञ्चभावेनालोच्य दोषनिवेदनं कृत्वा **उवदिट्ठं तेण कायव्वं** उपदिष्टं तेन कर्तव्यम्। तेन प्रायश्चित्तपरिज्ञानसहिताचार्येण निर्विकारस्वसंवेदनभावनानुकूलं यदुपदिष्टं प्राय-

---

होनेपर [**यदि**] जो [**श्रमणस्य**] मुनिके [**छेदः**] संयमका भंग [**जायते**] उत्पन्न हो तो [**पुनः**] फिर [**तस्य**] उस मुनिको [**आलोचनपूर्विका क्रिया**] जैसी कुछ यत्याचारग्रंथोंमें आलोचनाक्रिया कही गई है वैसी ही करनी यह उपाय है। [**छेदोपयुक्तः श्रमणः**] अंतरंग उपयोगरूप यतिपद जिसके भंग हुआ हो ऐसा मुनि [**जिनमते व्यवहारिणं**] वीतरागमार्गमें व्यवहार क्रियामें चतुर [**श्रमणं**] महामुनिको [**आसाद्य**] प्राप्तहोकर [**आलोच्य**] और अपने दोष प्रकाशित करैके (**कहकरके**) [**तेन**] उस महामुनिकर [**उपदिष्टं**] उपदेश किया गया जो मुनिपद भंगका दंड वह [**कर्तव्यं**] करना चाहिये ॥ **भावार्थ**—संयमका भंग दोप्रकार होता है, एक तो बहिरंग दूसरा अंतरंग। जो उपयोगके विना शरीरही की क्रियामें भंग हुआ हो वह बहिरंग है और जो उपयोगकर भंग हुआ हो वह अंतरंग है। इसतरह दो प्रकार संयमका भंग जानना। जो मुनि अंतरंगमें उपयोगकी निर्मलतासंयममें सावधान है और बहिरंग चलना बैठना सोवना आदि शरीरकी क्रिया-

युक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहारविधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसंधानम् ॥ ११ । १२ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धा प्रतिषेध्या इत्युपदिशति;—

अधिवासे व विवासे छेदविहूणो भवीय सामण्णे ।
समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिबंधाणि ॥ १३ ॥

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये ।
श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निबन्धान् ॥ १३ ॥

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरञ्जकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

श्चित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम् ॥ ११ ॥ १२ ॥ एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ निर्विकारश्रामण्यछेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति;—**विहरदु** विहरतु विहारं करोतु । स कः । **समणो** शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं । किं कुर्वन्सन्? **परिहरमाणो** परिहरन्सन् । कान्? **णिबंधाणि** चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान् । क विहरतु? **अधिवासे** अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा **विवासे** गुरुविरहितवासे वा । किं कृत्वा । **सामण्णे** निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रे **छेदविहीणो भवीय** छेदविहीनो

ओंमें यत्नसे प्रवर्तते हैं तथा यत्न करनेपर भी जो किसीतरह शरीरमात्र क्रियासे उपयोग विना ही संयमका भंग हुआ हो तो उस मुनिके सर्वथा अंतरंगमें संयमका भंग नहीं हुआ किंतु वहांपर किसी जातिका बहिरंगमें उस मुनिके उस संमयके स्थापन करनेका उपाय आलोचनादिक क्रिया है । आलोचनादिक क्रियासे उस दोषकी निवृत्ति होती है । और जो अंतरंगमें उपयोगकर संयमका घात हुआ हो तो यह साक्षात् संयमका घात है । वह मुनि इस दोषको दूर करनेके लिये जो आचार्य महामुनि भगवंत कथित व्यवहारमार्गमें प्रवीण (चतुर) हो उसके पास जाकर अपना दोष प्रकाशै (कहै) आलोचनादि क्रिया करै । और वह आचार्य जो संयमके शुद्ध करनेका उपाय (आचरण) बतलावै उसको अंगीकार करै । इसप्रकार फिर संयमको स्थापन करना चाहिये । ऐसे यह अंतरंग बहिरंगरूप दो प्रकार संयमका छेदोपस्थापन जानना योग्य है ॥ ॥११।१२॥ आगे मुनिपदके भंगका कारण परद्रव्योंके साथ संबंध है इसलिये परके संबंधोंका निषेध करते हैं;—[**श्रामण्ये**] समताभावरूप यति अवस्थामें [**छेदविहीनो भूत्वा**] अंतरंग बहिरंग भेदसे दोतरहका जो मुनिपदका भंग है उससे रहित होकर [**नित्यं**] सर्वदा (हमेशा) [**निबन्धान्**] परद्रव्यमें इष्ट अनिष्ट संबंधोंको [**परिहरमाणः**] त्यागता हुआ [**अधिवासे**] आत्मामें आत्माको अंगीकार कर जहां गुरुका वास हो वहांपर अर्थात् उन पूज्य गुरुओंकी संगतिमें रहो [**वा**] अथवा [**विवासे**]

छेदायतनानि तदभावादेवाछिन्नश्रामण्यं। अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो भूत्वा श्रमणो वर्तताम् ॥ १३ ॥

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णायतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति;—

चरदि णिबद्धो णिच्चं समणो णाणम्मि दंसणमुहम्मि।
पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो ॥ १४ ॥

चरति निबद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे।
प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः ॥ १४ ॥

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य

भूत्वा रागादिरहितनिजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रच्युतिरूपछेदरहितो भूत्वा।तथाहि— गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भव्यानामानन्दं जनयन् तपःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोषभावनापञ्चकं भावयन् तीर्थंकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन् परेषां प्रकाशयंश्च विहरतीति भावः ॥ १३ ॥ अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्त्तव्यमित्याख्याति;—**चरदि** चरति वर्त्तते। कथंभूतः **णिबंधो** आधीनः **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं। स कः कर्त्ता। **समणो** लाभालाभादिसमचित्तश्रमणः। क्व निबद्धः? **णाणम्मि** वीतरागसर्वज्ञप्रणीत-

---

अथवा उससे दूसरी जगह रहकर [**विहरतु**] व्यवहार कर्म करो॥ **भावार्थ—**जो मुनि अपने गुरुओंके पास रहे तब तो बहुत अच्छी बात है अथवा अन्य जगह रहे तब भी अच्छा है परंतु सब जगह इष्ट अनिष्ट विषयोंमें संबंध (रागद्वेष) का त्याग होना चाहिये तथा मुनिपदवीके भंग होजानेका कारण परद्रव्यके साथ संबंध होना ही है क्योंकि परद्रव्यके संबंधसे अवश्य ही उपयोगभूमिमें रागभाव होता है, जिस जगह रागभाव है वहांपर वीतरागभावरूप यतिपदका भंग होता ही है। इसकारण परद्रव्यके साथ संबंध होने उपयोगकी अशुद्धताके कारण हैं। इसलिये परद्रव्यसंबंध मुनिको सर्वथा निषेध किया है।जब परद्रव्यका संबंध मुनिके दूर होजाइगा तो सहजही अंतरंग संयमका घात न होगा तभी निर्दोष मुनिपदकी सिद्धि होगी। इसतरह परद्रव्यसे विरक्त वीतरागभावोंमें लीन मुनि कहीं भी रहो चाहे गुरूके पास रहौ अथवा अन्य जगह रहो सभी जगह वह निर्दोष है। और जो परभावोंमें रागी द्वेषी होता है तो वह सब जगह संयमका घाती होता है तथा महा सदोष है। इसलिये परद्रव्यके संबंध मुनिको सर्वथा निषेध किये गये हैं॥ १३ ॥ आगे मुनिपदकी पूरणताका कारण अपने आत्माका संबंध है इसलिये आत्मामें लीन होना योग्य है यह कहते हैं;—[**यः**] जो [**श्रमणः**] मुनि [**दर्शनमुखे**] सम्यक् दर्शन आदि अनंतगुण सहित [**ज्ञाने**]

परिपूर्णतायतनं, तत्सद्भावादेव परिपूर्णं श्रामण्यं । अतो नित्यमेव ज्ञाने दर्शनादौ च प्रतिबद्धेन मूलगुणप्रयततया चरितव्यं ज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मद्रव्यप्रतिबद्धशुद्धास्तित्वमात्रेण वर्तितव्यमिति तात्पर्यम् ॥ १४ ॥

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् यतिजनासन्नः सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्धोपि प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;—

भत्ते वा खवणे वा आवसधे वा पुणो विहारे वा ।
उवधिम्मि वा णिबद्धं णेच्छदि समणम्मि विकधम्मि ॥ १५ ॥

भक्ते वा क्षपणे वा आवसथे वा पुनर्विहारे वा ।
उपधौ वा निबद्धं नेच्छति श्रमणे विकथायाम् ॥ १५ ॥

परमागमज्ञाने तत्फलभूतस्वसंवेदनज्ञाने वा **दंसणमुहम्मि** दर्शनं तत्त्वार्थश्रद्धानं तत्फलभूतनिजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वं वा तत्प्रमुखेष्वनन्तसुखादिगुणेषु **पयदो मूलगुणेसु य** प्रयतः प्रयत्नपरश्च । केषु । मूलगुणेषु निश्चयमूलगुणाधारपरमात्मद्रव्ये वा **जो सो पडिपुण्णसामण्णो** य एवं गुणविशिष्टश्रमणः स परिपूर्णश्रामण्यो भवतीति । अयमत्रार्थः—निजशुद्धात्मभावनारतानामेव परिपूर्णश्रामण्यं भवतीति ॥ १४ ॥ अथ श्रामण्यछेदकारणत्वात्प्रासुकाहारादिष्वपि ममत्वं निषेधयति;—**णेच्छदि** नेच्छति । कम्? **णिबद्धं** निबद्धमाबद्धम् । क? **भत्ते वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूतदेहस्थितिहेतुत्वेन गृह्यमाणे भक्ते वा प्रासुकाहारे **खमणे वा** इन्द्रिय-

---

ज्ञानस्वरूप आत्मामें [**नित्यं**] हमेशा [**चरति**] प्रवृत्त (लीन) होता है [**सः**] वह [**मूलगुणेषु**] २८ मूलगुणोंमें [**प्रयत्तः**] सावधान होकर उद्यमी हुआ [**परिपूर्णश्रामण्यः**] अंतरंग बाह्य संयम भंगसे रहित अखंडित यतिपदवी अर्थात् परिपूर्णमुनिपदका धारक होता है ॥ **भावार्थ**—अपने आत्मामें जो रत (लीन) होना वह परिपूर्ण मुनिपदवीका कारण है क्योंकि जब यह अपनेमें रत होता है तभी इसके परद्रव्यमें ममत्वभाव छूटता है । और जिस अवस्थामें यह परद्रव्यसे विरक्त हुआ कि वहीं इसका उपयोगभी निर्मल हो जाता है जिस जगह उपयोगकी निर्मलता है वहां अवश्य ही मुनिपदकी सिद्धि होती है । इसलिये आत्मामें रत होना परिपूर्ण मुनिपदका कारण है । ऐसा समझकर अपने ज्ञान दर्शनादि अनंतगुणोंमें अपना सर्वस्व जान रत होना योग्य है और अट्ठावीस मूलगुणोंमें यत्नसे प्रवृत्त होना योग्य है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि मुनिपदकी पूर्णता एक आत्मामें लीन होनेसे ही होती है इसकारण अन्य परद्रव्यका संबंध त्यागना ही योग्य है ॥ १४ ॥ आगे मुनिके निकटमें यद्यपि सूक्ष्म परद्रव्य भी हैं तथापि उनमें मुनिको रागभावपूर्वक सम्बन्ध निषिद्ध है यह कहते हैं;—जो महामुनि है वह [**भक्ते**] आहारमें [**वा**] अथवा [**क्षपणे**] इन्द्रियोंको उत्तेजित न होने देनेका कारण तथा निर्विकल्प समाधिके कारणभूत अनशनमें [**वा**] अथवा

श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुमात्रत्वेनादीयमाने भक्ते तथाविधशरीरवृत्त्य-विरोधेन शुद्धात्मद्रव्यनीरङ्गनिस्तरङ्गविश्रान्तिसूत्रणानुसारेण प्रवर्तमाने क्षपणे नीरङ्गनि-स्तरङ्गान्तरङ्गद्रव्यप्रसिद्ध्यर्थमध्यास्यमाने गिरीन्द्रकन्दरप्रभृतावावसथे यथोक्तशरीरवृत्ति-हेतुमार्गणार्थमारभ्यमाणे विहारकर्मणि श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमाने केवलदेहमात्रे उपधौ अन्योन्यबोध्यबोधकभावमात्रेण कथंचित्परिचिते श्रमणे शब्दपुद्गलो-ल्लाससंवलनकश्मलितचिद्भित्तिभागायां शुद्धात्मद्रव्यविरुद्धायां चैतेष्वपि तद्विकल्पाचित्रि-तचित्तभित्तितया प्रतिषेध्यः प्रतिबन्धः ॥ १५ ॥

दर्पविनाशकारणभूतत्वेन निर्विकल्पसमाधिहेतुभूते क्षपणे वानशने **आवसहे वा** परमात्मतत्त्वो-पलब्धिसहकारिभूते गिरिगुहाद्यावसथे वा **पुणो विहारे वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूताहारनी-हारार्थव्यवहारार्थव्यवहारे वा । पुनर्देशान्तरविहारे वा **उवधिम्हि** शुद्धोपयोगभावनासहकारि-भूतशरीरपरिग्रहे ज्ञानोपयोगकरणादौ वा **समणम्हि** परमात्मपदार्थविचारसहकारिकारणभूते श्रमणे समशीलसंघातकतपोधने वा । **विकथम्हि** परमसमाधिविघातश्रृङ्गारवीररागादिकथायां चेति । अयमत्रार्थः—आगमविरुद्धाहारविहारादिषु तावत्पूर्वमेव निषिद्धः । योग्याहारविहारादिष्वपि

[आवसथे] गुफा आदिक निवासस्थलमें **[वा पुनः]** अथवा **[विहारे]** विहारकार्यमें **[वा]** अथवा **[उपधौ]** शरीरमात्रपरिग्रहमें **[वा]** अथवा **[श्रमणे]** दूसरे मुनियोंमें **[वा]** अथवा **[विकथायां]** अधर्मचर्चामें **[निबन्धं]** ममत्व-पूर्वकसम्बन्धको **[न]** नहीं **[इच्छति]** चाहता है ॥ **भावार्थ**—मुनिपदका निमित्तकारण शरीर है और शरीरका आधार आहार है इसलिये उसको मुनि ग्रहण करते हैं । और अपनी शक्तिके अनुसार शुद्धात्मामें निश्चल स्थिरताके निमित्तभूत उप-वासको स्वीकार करते हैं । और मनकी चंचलताको रोकनेकेलिये एकान्त पर्वतकी गुफादिकके निवासको तथा शरीरकी प्रवृत्तिकेलिये आहार नीहार क्रियामें विहारका-र्यको भी करते हैं । और उनके मुनिपदवीका निमित्तकारण शरीरमात्र परिग्रह भी है तथा गुरुशिष्यके भेदसे पठन पाठन अवस्थामें दूसरे मुनियोंका सम्बन्ध भी है और शुद्धात्मद्रव्यकी विरोधिनी पौद्गलिक शब्दोंके द्वारा कथा चर्चा भी है । इत्यादि यद्यपि मुनिके परद्रव्यरूप परिग्रह है तथापि इनमें ममत्वबुद्धिरूप चित्तवृत्तिका निषेध है । यद्यपि मुनिने स्थूल परद्रव्यका त्याग तो प्रथम ही करदिया है तथापि मुनिपदमें भी इसप्रका-रके सूक्ष्म परद्रव्यके अस्तित्वमें ममत्वभाव नहीं करने चाहिये, क्योंकि इनमें भी ममत्व भाव करनेसे शुद्धात्मद्रव्यवृत्तिरूप मुनिपदका भंग होजाता है । इसलिये सूक्ष्म परद्रव्योंमें

अथ को नाम छेद इत्युपदिशति;—

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु ।
समणस्स सव्वकालं हिंसा सा संततत्ति मदा ॥ १६ ॥

अप्रयता वा चर्या शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिषु ।
श्रमणस्य सर्वकालं हिंसा सा सन्ततेति मता ॥ १६ ॥

अशुद्धोपयोगो हि छेदः, शुद्धोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदनात् तस्य हिंसनात् । स एव च हिंसा । अतः श्रमणस्याशुद्धोपयोगाविनाभाविनी शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिष्वप्र-

---

ममत्वं न कर्त्तव्यमिति ॥ १५ ॥ एवं संक्षेपेणाचाराराधनादिकथिततपोधनविहारव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम् । अथ शुद्धोपयोगभावनाप्रतिबन्धकछेदं कथयति;—**मदा** मता सम्मता । का? हिंसा शुद्धोपयोगलक्षणश्रामण्यछेदकारणभूता हिंसा । कथंभूता । **संततित्ति** सन्तता निरन्तरेति । का हिंसा मता । **चरिया** चर्या चेष्टा यदि चेत् । कथंभूता । **अपयत्ता वा** अप्रयत्ना वा निःकषायस्वसंवित्तिरूपप्रयत्नरहिता संक्लेशसहितेत्यर्थः । केषु विषयेषु । **सयणासणठाणचंकमादीसु** शयनासनस्थानचङ्क्रमणस्वाध्यायतपश्चरणादिषु । कस्य । **समणस्स** श्रमणस्य तपोधनस्य । क? **सव्वकाले** सर्वकाले । अयमत्रार्थः—बाह्यव्यापाररूपाः शत्रवस्तावत्पूर्वमेव

भी सम्बन्ध करनेका निषेध है ॥ १५ ॥ आगे शुद्धोपयोगरूप यतित्वका मुनिके कौनसा भंग है इस वातको बताते हैं;—[**वा**] अथवा [**श्रमणस्य**] मुनिके [**शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिषु**] सोने बैठने खड़ेहोने चलने आदि अनेक क्रियाओंमें [**या**] जो [**अप्रयता**] यत्नरहित [**चर्या**] प्रवृत्ति होती है [**सा**] वह [**सर्वकालं**] हमेशह [**संतता**] अखण्डित [**हिंसा**] चैतन्य प्राणोंका विनाश करनेवाली हिंसा है [**इति**] इसप्रकार [**मता**] वीतराग सर्वज्ञदेवने कही है ॥ **भावार्थ**—संयमका घात ही अशुद्ध उपयोग है क्योंकि मुनिपद शुद्धोपयोगरूप है । अशुद्धोपयोगसे मुनिपदका नाश होता है और अशुद्धोपयोगका होना यही हिंसा है, क्योंकि अशुद्धोपयोगके होनेसे शुद्धोपयोगरूप आत्मीक भावप्राणका नाश होता है अतः सबसे बड़ी हिंसा ज्ञानदर्शनरूप शुद्धोपयोगके घातसे ही होती है । वह अशुद्धोपयोग मुनिके निरंतर उस समय ही समझना चाहिये जिस समय मुनि सोना बैठना चलना इत्यादि क्रियाओंमें यत्नपूर्वक प्रवृत्ति नहीं करते । यत्नके विना मुनिकी क्रिया अट्ठाईस मूलगुणकी घातिनी है । यत्न उसही समयमें नहीं होता जिस समयमें उपयोगकी चंचलता होती है, यदि उपयोगकी चंचलता न हो तो यत्न अवश्य हो । इसलिये उपयोगकी जो निश्चलता है वही शुद्धोपयोग है । यत्नसहित क्रियासे भंग नहीं होता और यत्नरहित क्रियासे भंग होता है इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि मुनिकी जो यत्नरहित

यता या चर्या सा खलु तस्य सर्वकालमेव सन्तानवाहिनी छेदानर्थान्तरभूता हिंसैव॥१६॥

अथान्तरङ्गबहिरङ्गत्वेन छेदस्य द्वैविध्यमुपदिशति;—

मरदु व जिवदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा ।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदीसु ॥ १७ ॥

म्रियतां वा जीवतु वा जीवोऽयताचारस्य निश्चिता हिंसा ।
प्रयतस्य नास्ति बन्धो हिंसामात्रेण समितिषु ॥ १७ ॥

अशुद्धोपयोगोऽन्तरङ्गछेदः, परप्राणव्यपरोपो बहिरङ्गः । तत्र परप्राणव्यपरोपसद्भावे तदसद्भावे वा तदविनाभाविनाप्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावस्य सुनिश्चितहिंसाभावप्रसिद्धेस्तथा तद्विनाभाविना प्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावपरस्य पर-

---

त्यक्त्वा तपोधनैः अशनशयनादिव्यापारः पुनस्त्यक्तो नायाति । ततः कारणादन्तरङ्गक्रोधादिशत्रुनिग्रहार्थं तत्रापि सङ्क्लेशो न कर्त्तव्य इति ॥ १६ ॥ अथान्तरङ्गबहिरङ्गहिंसारूपेण द्विविधछेदमाख्याति;—**मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा** म्रियतां वा जीवतु वा जीवः प्रयत्नरहितस्य निश्चिता हिंसा भवति बहिरङ्गान्यजीवस्य मरणेऽमरणे वा निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणप्रयत्नरहितस्य निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणव्यपरोपणरूपा निश्चयहिंसा भवति । **पयदस्स णत्थि बंधो** बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नपरस्य नास्ति बन्धः । केन? **हिंसामेत्तेण** द्रव्यहिंसामात्रेण । कथंभूतस्य पुरुषस्य । **समिदस्स** समितस्य शुद्धात्मस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितस्तस्य समितस्य । व्यवहारेणेर्यादिपञ्चसमितियुक्तस्य च । अयमत्रार्थः—स्वस्वभावनारूपनिश्चयप्राणस्य विनाशकारणभूता रागादिपरिणतिर्निश्चयहिंसा हिंसा भण्यते रागाद्युत्पत्ते-

---

क्रियाओंमें प्रवृत्ति है वह सब निरंतर शुद्धोपयोगरूप संयमकी घातनेवाली हिंसा ही है इसलिये मुनिको यत्नसे ही रहना योग्य है ॥ १६ ॥ आगे अन्तरङ्ग बहिरङ्गके भेदसे संयमके घातके भी दो भेद हैं यह दिखाते हैं;—[**जीवः**] दूसरा जीव, [**म्रियतां वा**] अथवा मरै [**जीवतु वा**] अथवा जीवित रहे [**अयताचारस्य**] जिस मुनिका आचार यत्नपूर्वक नहीं है उसके [**हिंसा**] हिंसा [**निश्चिता**] निश्चित है क्योंकि [**समितिषु**] पांचो समितियोंमें [**प्रयतस्य**] यत्नपूर्वक प्रवृत्तिकरनेवाले मुनिके [**हिंसामात्रेण**] बाह्यमें जीवके घातके होनेमात्रसे [**बन्धः**] बन्ध [**नास्ति**] नहीं होता ॥ **भावार्थ**—हिंसा दो प्रकार है एक अन्तरङ्ग दूसरी बहिरङ्ग, ज्ञानप्राणकी घात करनेवाली अशुद्धोपयोगरूप प्रवृत्तिको 'अन्तरङ्ग हिंसा' कहते हैं । बाह्यजीवके प्राणोंका घात करनेको 'बहिरङ्ग हिंसा' कहते हैं । इन दोनोंमें अन्तरङ्गहिंसा बलवती है । क्योंकि बाह्यमें दूसरे जीवका घात हो या न हो किन्तु यदि मुनिके यत्नरहित हलनचलनादि क्रिया हो तो उस मुनिके यत्नरहित आचारसे अवश्यमेव उपयोगकी चंचलता होती है । अतएव अशुद्धोपयोगके होनेसे आत्माके चैतन्य प्राणका घात

प्राणव्यपरोपसद्भावेपि बन्धाप्रसिद्ध्या सुनिश्चितहिंसाऽभावप्रसिद्धेश्चान्तरङ्ग एव छेदो बलीयान् न पुनर्बहिरङ्गः । एवमप्यन्तरङ्गछेदायतनमात्रत्वाद्बहिरङ्गछेदोऽभ्युगम्येतैव ॥ १७ ॥

अथ सर्वथान्तरङ्गछेदः प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;—

अयदाचारो समणो छस्सुवि कायेसु बंधगोत्ति मदो ।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो ॥ १८ ॥

बहिरङ्गनिमित्तभूतः परजीवघातो व्यवहारहिंसेति द्विधा हिंसा ज्ञातव्या । किन्तु विशेषः—बहिरङ्गहिंसा भवतु मा भवतु स्वस्वभावनारूपनिश्चयप्राणघाते सति निश्चयहिंसा नियमेन भवतीति । ततः कारणात्सैव मुख्येति ॥ १७ ॥ अथ तमेवार्थं दृष्टांतदार्ष्टान्ताभ्यां दृढयति;—

उच्चालियम्हि पाए इरियासमिदस्स णिग्गमत्थाए ।
आबाधेज्ज कुलिंगं मरिज्ज तं जोगमासेज्ज ॥ १ ॥
ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहुमो य देसिदो समये ।
मुच्छापरिग्गहोच्चिय अज्झप्पपमाणदो दिट्ठो ॥ २ ॥ जुम्मं ।

उच्चालियम्हि पाए उत्क्षिप्ते चालिते सति पादे । कस्य । **इरियासमिदस्स** ईर्यासमितितपोधनस्य । क? **णिग्गमत्थाए** विवक्षितस्थानान्निर्गमस्थाने **आबाधेज्ज** आबाध्येत पीड्येत । स कः । **कुलिंगं** सूक्ष्मजन्तुः न केवलमाबाध्येत **मरिज्ज** म्रियतां वा । किं कृत्वा । **तं जोगमासेज्ज** तं पूर्वोक्तं पादयोगं पादसंघट्टनमाश्रित्य प्राप्येति । **ण हि तस्स तण्णिमित्तो बंधो सुहमो य देसिदो समये** न हि तस्य तन्निमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि देशितः समये तस्य तपोधनस्य तन्निमित्तं सूक्ष्मजन्तुघातनिमित्तो बन्धः सूक्ष्मोऽपि स्तोकोऽपि नैव दृष्टः समये परमागमे । दृष्टान्तमाह—**मुच्छापरिग्गहोच्चिय** मूर्च्छापरिग्रहश्चैव **अज्झप्पपमाणदो दिट्ठो** अध्यात्मं दृष्टमिति । अयमत्रार्थः—"मूर्च्छा परिग्रहः" इति सूत्रे यथाध्यात्मानुसारेण मूर्च्छारूपरागादिपरिणामानुसारेण परिग्रहो भवति न च बहिरङ्गपरिग्रहानुसारेण तथात्र सूक्ष्म-

---

होता है इसीलिये हिंसा अवश्यमेव है । और यदि मुनि यत्नसे पंचसमितियोंमें प्रवृत्ति करै तो वह मुनि उपयोगकी निश्चलतासे शुद्धोपयोगरूप संयमका रक्षक होता है । इसलिये बाह्यमें कदाचित् दूसरे जीवका घात भी हो तब भी अन्तरङ्ग अहिंसक भावके बलसे बन्ध नहीं होता । इसलिये शुद्धोपयोगरूप संयमकी घातनेवाली अन्तरङ्ग हिंसा ही बलवती है । अन्तरङ्गहिंसासे अवश्यही बन्ध होता है । किन्तु बाह्यहिंसासे बन्ध होता भी है और नहीं भी होता है । यदि यत्न करनेपर भी बाह्य हिंसा होजाय तो बन्ध नहीं होता । और जो यत्न न हो तो अवश्य ही बाह्यहिंसा बन्धका कारण होती है । और बाह्य हिंसाका जो निषेध किया है सो भी अन्तरङ्गहिंसाके निवारण करनेके लिये ही किया है। इसलिये अन्तरङ्गहिंसा त्याज्य है और शुद्धोपयोगरूप अहिंसकभाव उपादेय है ॥ १७॥ आगे सर्वथा अन्तरङ्ग शुद्धोपयोगरूप संयमका घात निषेध करने योग्य है यह कहते

अयताचारः श्रमणः षट्स्वपि कायेषु बन्धक इति मतः।
चरति यतं यदि नित्यं कमलमिव जले निरुपलेपः॥ १८॥

यतस्तदविनाभाविना अप्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावः षट्कायप्राणव्यपरोपप्रत्ययबन्धप्रसिद्ध्या हिंसक एव स्यात्। यतश्च तद्विना भाविना प्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावः परप्रत्ययबन्धलेशस्याप्यभावाज्जलदुर्ललितं कमलमिव निरुपलेपत्व-

जन्तुघातेपि यावतांशेन स्वस्वभावचलनरूपा रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा तावतांशेन बन्धो भवति, न च पादसंघट्टमात्रेण तस्य तपोधनस्य रागादिपरिणतिलक्षणभावहिंसा नास्ति। ततः कारणाद्बन्धोऽपि नास्तीति॥१॥२॥ अथ निश्चयहिंसारूपोन्तरङ्गच्छेदः सर्वथा प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;— **अयदाचारो** निर्मलात्मानुभूतिभावनालक्षणप्रयत्नरहितत्वेन अयताचारः प्रयत्नरहितः। स कः। **समणो** श्रमणस्तपोधनः **छस्सुवि कायेसु वधकरोत्ति मदो** षट्स्वपि कायेषु बधकरो हिंसाकर इति मतः सम्मतः कथितः। **चरदि** आचरति वर्त्तते। कथं यथा भवति। **जदं** यतं यत्नपरं **जदि** यदिचेत् **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं तदा **कमलं व जले णिरुवलेवो** कमलमिव जले निरुपलेप इति। एतावता किमुक्तं भवति—शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणशुद्धोपयोगपरिणतपुरुषः षड्जीवकुले लोके विचरन्नपि यद्यपि बहिरङ्गद्रव्यहिंसामात्रमस्ति तथापि

हैं;—[**अयताचारः**] जिसके यत्नपूर्वक आचार क्रिया नहीं ऐसा [**श्रमणः**] जो मुनि वह [**षट्स्वपि**] छहू [**कायेषु**] पृथिवी आदि कायोंमें [**बन्धकः**] बन्धका करनेवाला है [**इति**] ऐसा [**मतः**] सर्वज्ञदेवने कहा है। [**यदि**] यदि [**नित्यं**] हमेशह [**यतं**] यतिक्रियामें यत्नका [**चरति**] आचरण करता है [**तदा**] तो वह मुनि [**जले**] जलमें [**कमलम्**] कमलकी [**इव**] तरह [**निरुपलेपः**] कर्मबन्धरूप लेपसे रहित होता है॥ **भावार्थ**—जिससमय उपयोग रागादिभावसे दूषित होता है उस समय अवश्यमेव यति क्रियामें शिथिल होकर गुणोंमें यत्नरहित होता है। जहां यत्नरहित क्रिया होती है वहां अवश्यमेव अशुद्धोपयोगका अस्तित्व है। यत्नरहितक्रियासे षट्कायकी विराधना होती है। इससे अशुद्धोपयोगी मुनिके हिंसकभावसे बन्ध होता है। जब मुनिका उपयोग रागादिभावसे रंजित न हो तब अवश्यही यतिक्रियामें सावधान होता हुआ यत्नसे रहता है उस समय शुद्धोपयोगका अस्तित्व होता है। और यत्नपूर्वक क्रियासे जीवकी विराधनाका इसके अंश भी नहीं है। अतएव अहिंसकभावसे कर्मलेपसे रहित है। और यदि यत्न करते हुए भी कदाचित् परजीवका घात होजाय तोभी शुद्धोपयोगरूप अहिंसकभावके अस्तित्वसे कर्मलेप नहीं लगता। जिसप्रकार कमल यद्यपि जलमें डूबा रहता है तथापि अपने अस्पृश्यस्वभावसे निर्लेप ही है, उसीतरह यह मुनिभी होता है। इसलिये जिन २ भावोंसे शुद्धोपयोगरूप अन्तरङ्ग संयमका सर्वथा घात हो उन भावोंका निषेध है और अ-

प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात् । ततस्तैस्तैः सर्वैः प्रकारैरशुद्धोपयोगरूपोन्तरङ्गच्छेदः प्रतिषेध्यो यैर्यैस्तदायतनमात्रभूतः परप्राणव्यपरोपरूपो बहिरङ्गच्छेदो दूरादेव प्रतिषिद्धः स्यात् ॥१८॥

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वादुपधिस्तद्वत्प्रतिषेध्य इत्युपदिशति;—

हवदि व ण हवदि बंधो मदे हि जीवेऽध कायचेट्ठम्मि ।
बंधो धुवमुवधीदो इदि समणा छंडिया सव्वं ॥ १९ ॥

भवति वा न भवति बन्धो मृते हि जीवेऽथ कायचेष्टायाम् ।
बन्धो ध्रुवमुपधेरिति श्रमणास्त्यक्तवन्तः सर्वम् ॥ १९ ॥

यथा हि कायव्यापारपूर्वकस्य परप्राणव्यपरोपस्याशुद्धोपयोगसद्भावासद्भावाभ्यामनैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमनैकान्तिकमिष्टं, न खलु तथोपधेः, तस्य सर्वथा तदविनाभावित्वप्रसिद्ध्यदैकान्तिकाशुद्धोपयोगसद्भावस्यैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमैकान्तिकमेव । अत एव

निश्चयहिंसा नास्ति । ततः कारणाच्छुद्धपरमात्मभावनाबलेन निश्चयहिंसैव सर्वतात्पर्येण परिहर्तव्येति ॥ १८ ॥ अथ बहिरङ्गजीवघाते बन्धो भवति न भवति वा परिग्रहे सति नियमेन भवतीति प्रतिपादयति;—**हवदि व ण हवदि बंधो** भवति वा न भवति बन्धः कस्मिन्सति **मदंहि** जीवे मृते सत्यन्यजीवे । **अथ** अहो । कस्यां सत्याम्? **कायचेट्ठंहि** कायचेष्टायाम् । तर्हि कथं बन्धो भवति । **बंधो धुवमुवधीदो** बन्धो भवति ध्रुवं निश्चितं । कस्मादुपधेः परिग्रहात्सकाशादिति हेतोः **समणा छंडिया सव्वं** श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञाः पूर्वं दीक्षाकाले शुद्धबुद्धैकस्वभावं निजात्मानमेव परिग्रहं कृत्वा शेषं समस्तं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं छर्दितवन्तः । एवं ज्ञात्वा शेषतपोधनैरपि निजपरमात्मपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा

न्तरङ्ग संयमके घातका कारण परजीवकी बाधारूप बहिरङ्ग संयमका भी घात सर्वथा त्याज्य है ॥१८॥ आगे सर्वथा अन्तरङ्ग संयमका घातक होनेसे मुनिको परिग्रहका सर्वथा निषेध करते हैं;—**[अथ]** आगे अर्थात् मुनिको परिग्रहसे संयमका घात दिखाते हैं कि **[कायचेष्टायां]** मुनिकी हलन चलन क्रियाके होनेसे **[जीवे]** त्रस स्थावर जीवके **[मृते सति]** मरनेपर **[हि]** निश्चयसे **[बन्धः]** कर्मलेप **[भवति]** होता है **[वा]** अथवा **[न]** नहीं भी **[भवति]** होता है। किन्तु **[उपधितः]** परिग्रहसे **[बन्धः]** बन्ध **[ध्रुवं]** निश्चयसे होता ही है। **[इति]** ऐसा जानकर **[श्रमणाः]** महामुनि अरहंत देव **[सर्वं]** समस्तही परिग्रहको पहलेही **[त्यक्तवन्तः]** छोड़ते हुए ॥ **भावार्थ**—मुनिके हलनचलनादि क्रियासे परजीवका जो घात होता है उस घातसे मुनिके सर्वथा बन्ध नहीं होता, होता भी है और नहीं भी होता है यहां अनेकान्त है एक नियम नहीं। क्योंकि यदि अन्तरङ्ग शुद्धोपयोग है तो बन्ध नहीं होता। इसलिये बाह्य परप्राणघातसे शुद्ध अशुद्ध उपयोगके होने या न होनसे बन्ध होता भी है और नहीं भी होता है। मुनिके परजीवके घातसे बन्ध होय भी

भगवन्तोऽर्हन्तः परमाः श्रमणाः स्वयमेव सर्वमेवोपधिं प्रतिषिद्धवन्तः। अत एव चापरैरप्यन्तरङ्गच्छेदवत्तदनान्तरीयकत्वात्प्रागेव सर्व एवोपधिः प्रतिषेध्यः। "वक्तव्यमेव किल यत्तदशेषमुक्तमेतावतैव यदि चेतयतेऽत्र कोपि। व्यामोहजालमतिदुस्तरमेव नूनं निश्चेतनस्य वचसामतिविस्तरेपि" ॥ १९ ॥

अथान्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एवायमुपधिप्रतिषेध इत्युपदिशति;—

ण हि णिरवेक्खो चाओ ण हवदि भिक्खुस्स आसवविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिओ ॥ २० ॥

न हि निरपेक्षस्त्यागो न भवति भिक्षोराशवविशुद्धिः।
अविशुद्धस्य च चित्ते कथं नु कर्मक्षयो विहितः ॥ २० ॥

शेषः सर्वोऽपि परिग्रहो मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यजनीय इति। अत्रेदमुक्तं भवति—शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणे रागादिपरिणामरूपनिश्चयहिंसया पातिते सति नियमेन बन्धो भवति। परजीवघाते पुनर्भवति न भवति नियमो नास्ति, परद्रव्ये ममत्वरूपमूर्च्छापरिग्रहेण तु नियमेन भवत्येवेति ॥ १९ ॥ एवं भावहिंसाव्याख्यानमुख्यत्वेन पञ्चमस्थले गाथाषट्कं गतम्। इति पूर्वोक्तक्रमेण 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेनोत्सर्गचारित्रव्याख्याननामा "प्रथमोऽन्तराधिकारः" समाप्तः। अतः परं चारित्रस्य देशकालापेक्षयापहृतसंयमरू-

---

और नहीं भी होय परन्तु यदि मुनि परिग्रहका ग्रहण करै तो बन्ध होय भी नहीं भी होय ऐसा नहीं है किन्तु निश्चयसे बन्ध होता है। क्योंकि परिग्रहके ग्रहणसे सर्वथा अशुद्धोपयोग होता है। अतः अन्तरङ्गसंयमका घात होनेसे बन्ध निश्चित है। अन्तरङ्ग अभिलाषाके विना परिग्रहका ग्रहण कदाचित् नहीं होता, अन्तरङ्ग भावके विना शरीरकी क्रियासे यत्न करते हुए परजीवका घात हो भी जाय, परन्तु परिग्रहका ग्रहण अन्तरङ्गभाव विना शरीरकी चेष्टासे कदाचित् नहीं होता। इसलिये ऐसा जानकर ही भगवान् वीतरागदेव परिग्रहका सर्वथा त्याग करते हुए। और दूसरे मुनियोंको भी यही चाहिये कि वे भी समस्त परिग्रहका त्याग करैं। शुद्धोपयोगरूप अन्तरङ्ग संयमका घात करो या परिग्रहका ग्रहण करो ये दोनों समान हैं। संयमके घातक दोनों हैं। इसलिये मुनिको चाहिये कि जिस प्रकार अन्तरङ्ग संयमके घातका निषेध करै उसही प्रकार परिग्रहको सबसे पहले छोड़ दे। बहुत कहांतक कहैं जो समझनेवाला है वह थोड़ेहीमें समझजाता है और जो समझनेवाला न होय तो उसको जितना वचनका विस्तार दिखायाजाय वह सब ही मोहका समूह अपार वागूजाल होता है समझता किसीप्रकार भी नहीं ॥१९॥ आगे अन्तरङ्गभावसे जो बाह्य परिग्रहका त्याग है वह अन्तरङ्ग शुद्धोपयोगरूप संयमके घातका निषेधक नहीं है ऐसा उपदेश करते हैं;—यदि [निरपेक्षः] परिग्रहकी अपेक्षासे सर्वथा रहित [त्यागः] परिग्रहका त्याग [न] न होय तो [हि] नि-

न खलु बहिरङ्गसङ्गसद्भावे तुषसद्भावे तण्डुलगताशुद्धत्वस्येवाशुद्धोपयोगरूपस्यान्तरङ्गच्छेदस्य प्रतिषेधसद्भावे च न शुद्धोपयोगमूलस्य केवलस्योपलम्भः । ततोऽशुद्धोपयोगस्यान्तर-

---

पेणापवादव्याख्यानार्थं पाठक्रमेण त्रिंशद्गाथाभिर्द्वितीयोन्तराधिकारः प्रारभ्यते ॥ तत्र चत्वारि-स्थलानि भवन्ति, तस्मिन्प्रथमस्थले निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनामुख्यत्वेन 'ण हि णिरवेक्खो चागो' इत्यादि गाथापञ्चकम् । अत्र टीकायां गाथात्रयं नास्ति । तदनन्तरं सर्वसावद्यप्रत्याख्यानलक्षणसामायिकसंयमासमर्थानां यतीनां संयमशौचज्ञानोपकरणनिमित्तमपवादव्याख्यानमुख्यत्वेन 'छेदो जेण ण विज्जदि' इत्यादि सूत्रत्रयम् । तदनन्तरं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणप्रधानत्वेन 'पेच्छदि ण हि इह लोगं' इत्याद्येकादश गाथा भवन्ति । ताश्चामृतचन्द्रटीकायां न सन्ति । ततः परं सर्वोपेक्षासंयमसमर्थस्य तपोधनस्य देशकालापेक्षया किञ्चित्संयमसाधकशरीरस्य निरवद्याहारादिसहकारिकारणं ग्राह्यमिति पुनरप्यपवादविशेषव्याख्यानमुख्यत्वेन 'उवयरणं जिणमग्गं' इत्याद्येकादशगाथा भवन्ति । अत्र टीकायां गाथाचतुष्टयं नास्ति । एवं मूलसूत्राभिप्रायेण त्रिंशद्गाथाभिः टीकापेक्षया पुनर्द्वादशगाथाभिः द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तथाहि—अथ भावशुद्धिपूर्वकबहिरङ्गपरिग्रहपरित्यागे कृते सति अभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः कृत एव भवतीति निर्दिशति;—**ण हि णिरवेक्खो चागो** न हि निरपेक्षस्त्यागः यदि चेत् परिग्रहत्यागः सर्वथा निरपेक्षो न भवति किन्तु किमपि वस्त्रपात्रादिकं ग्राह्यमिति भवता भण्यते तर्हि हे शिष्य **ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसोही** न भवति भिक्षोराशयविशुद्धिः तदा सापेक्षपरिणामे सति भिक्षोस्तपोधनस्य चित्तशुद्धिर्न भवति । **अविसुद्धस्स हि चित्ते** शुद्धात्मभावनारूपशुद्धिरहितस्य तपोधनस्य चित्ते मनसि हि स्फुटं **कहं तु कम्मक्खओ विहिओ** कथं तु कर्मक्षयो विहितः उचितो न कथमपि । अनेनैतदुक्तं भवति—यथा बहिरङ्गतुषसद्भावे सति तण्डुलस्याभ्यन्तरशुद्धिं कर्तुं नायाति तथा विद्यमानेऽविद्यमाने वा बहिरङ्गपरिग्रहेऽभिलाषे सति निर्मलशुद्धात्मानुभूतिरूपां चित्तशुद्धिं कर्तुं नायाति । यदि पुनर्वि-

---

श्चयसे [**भिक्षोः**] मुनिके [**आशयविशुद्धिः**] चित्तकी निर्मलता [**न**] नहीं [**भवति**] होती है [**च**] और [**चित्ते**] ज्ञानदर्शनोपयोगरूप परिणामोंमे [**अविशुद्धस्य**] जो समल है उस मुनिके [**कथं**] किसप्रकार [**नु**] भला [**कर्मक्षयः**] समस्त कर्मका नाश [**विहितः**] हो सकता है । नहीं हो सकता ॥ **भावार्थ**—जो मुनिके बाह्य परिग्रह तुसमात्र भी हो तो अन्तरङ्गमें शुद्धोपयोगरूप संयमका घात अवश्य होता है उतने ही परिग्रहसे अशुद्धभाव अवश्य होते हैं । जिसप्रकार चावलके ऊपर तुसके होनेसे चावलमें अवश्य आरक्त मल होता है उसही प्रकार मुनिके किंचित्मात्र भी बाह्य परिग्रहके होनेसे अभ्यन्तरमें निश्चयसे अशुद्धभाव होते हैं । जिस मुनिके कुछ भी परिग्रह है उसके शुद्धोपयोग नहीं होता, जहां शुद्धोपयोग

---

१ श्वेताम्बरेण.

ङ्गच्छेदस्य प्रतिषेधं प्रयोजनमपेक्ष्योपधेर्विधीयमानः प्रतिषेधोन्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ॥ २० ॥

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधिविस्तरेणोपदिशति;—

किध तम्मि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स ।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि ॥ २१ ॥

शिष्टवैराग्यपूर्वकपरिग्रहत्यागो भवति तदा चित्तशुद्धिर्भवत्येव ख्यातिपूजालाभनिमित्तत्यागे तु न भवति ॥ २० ॥

अथ तमेव परिग्रहत्यागं दृढयति;—

गेह्णदि व चेलखंडं भायणमत्थित्तिभणिदमिह सुत्ते ।
जदि सो चत्तालंबो हवदि कहं वा अणारंभो ॥ १ ॥
वत्थक्खंडं दुद्दियभायणमण्णं च गेह्णदि णियदं ।
विज्जदि पाणारंभो विक्खेवो तस्स चित्तम्मि ॥ २ ॥
गेह्णइ विधुणइ धोवइ सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता
पत्थं च चेलखंडं विभेदि परदो य पालयदि ॥ ३ ॥ विसेसयं ।

गेण्हदि व चेलखंडं गृह्णाति वा चेलखण्डं वस्त्रखण्डं **भायणं** भिक्षाभाजनं वा **अत्थित्ति भणिदं** अस्तीति भणितमास्ते । क । **इह सुत्ते** इह विवक्षितागमसूत्रे **जदि** यदि चेत् ? **सो चत्तालंबो हवदि कहं** निरालम्बनपरमात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् स पुरुषो बहिर्द्रव्यालम्बन-रहितः कथं भवति न कथमपि **वा अणारंभो** निःक्रियनिरारम्भनिजात्मतत्त्वभावनारहि-तत्वेन निरारम्भो वा कथं भवति किन्तु सारम्भ एव, इति प्रथमगाथा । **वत्थक्खडं दुद्दिय-भायणं** वस्त्रखण्डं दुग्धिकाभाजनं **अण्णं च गेण्हदि** अन्यच्च गृह्णाति कम्बलमृदुशयनादिकं यदि चेत् । तदा किं भवति । **णियदं विज्जदि पाणारंभो** निजशुद्धचैतन्यलक्षणप्राणवि-नाशरूपो वा नियतं प्राणारम्भः प्राणवधो विद्यते न केवलं प्राणारम्भः **विक्खेवो तस्स चित्तम्मि** अविक्षिप्तचित्तपरमयोगरहितस्य परिग्रहपुरुषस्य विक्षेपस्तस्य विद्यते चित्ते मनसीति । इति द्वितीयगाथा । **गेण्हइ** स्वशुद्धात्मग्रहणशून्यः सन् गृह्णाति किमपि बहिर्द्रव्यं **विधुणइ** कर्मधूलिं विहाय बहिरङ्गधूलिं विधूनोति विनाशयति । **धोवइ** निर्मलपरमात्मत-त्त्वमलजनकरागादिमलं विहाय बहिरङ्गमलं धौति प्रक्षालयति **सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता** निर्विकल्पध्यानातपेन संसारनदीशोषणमकुर्वन् शोषयति शुष्कं करोति यदं तु यत्नपरं तु

नहीं वहां केवलपदकी प्राप्ति कहांसे होवे । इसलिये जो कोई अशुद्धोपयोगरूप असंयम भावको छोड़ना चाहे वह पुरुष बाह्य परिग्रहका सर्वथा त्याग करै, तब उस पुरुषके अन्तरङ्ग संयमके घातका निषेध अवश्य होता है ॥ २० ॥ आगे यह कहते हैं कि सर्वथा अन्तरङ्ग संयमका घात परिग्रहसे ही है;—[**तस्मिन्**] उस परिग्रहके

कथं तस्मिन्नास्ति मूर्छा आरम्भो वा असंयमस्तस्य ।
तथा परद्रव्ये रतः कथमात्मानं प्रसाधयति ॥ २१ ॥

उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणाया मूर्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमपरिणामलक्षणस्यारम्भस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य वावश्यं भावित्वात्तथोपधिर्द्वितीयस्य परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च ऐकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधेरवधार्यत एव । इदमत्र तात्पर्यमेवंविधत्वमुपधेरवधार्य स सर्वथा संन्यस्तव्यः ॥ २१ ॥

अथ कस्यचित्क्वचित्कदाचित्कथंचित्कश्चिदुपधिरप्रतिषिद्धोप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति;—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २२ ॥

यथा भवति । किं कृत्वा । आतपे निक्षिप्य । किं तत् । **पत्थं च चेलखंडं** पात्रं वस्त्रखण्डं वा **बिभेदि** निर्भयशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् बिभेति भयं करोति । कस्मात्सकाशात्? **परदो य** परतश्चौरादेः **पालयदि** परमात्मभावनां न पालयन्न रक्षयन्परद्रव्यं किमपि पालयतीति तृतीया गाथा ॥ १ । २ । ३ ॥ अथ सपरिग्रहस्य नियमेन चित्तशुद्धिर्नश्यतीति विस्तरेणाख्याति;—**किह तम्हि णत्थि मुच्छा** परद्रव्यममत्वरहितचिच्चमत्कारपरिणतेर्विसदृशमूर्च्छा कथं नास्ति अपि त्वस्त्येव । क? तस्मिन् परिग्रहाकाङ्क्षितपुरुषे **आरंभो वा** मनोवचनकायक्रियारहितपरमचैतन्यप्रतिबन्धक आरम्भो वा कथं नास्ति किन्त्वस्त्येव **असंजमो तस्स** शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणासंयमो वा कथं नास्ति किन्त्वस्त्येव तस्य सपरिग्रहस्य **तह परदव्वम्मि रदो** तथैव निजात्मद्रव्यात्परद्रव्ये रतः **कहमप्पाणं पसाहयदि** स तु सपरिग्रहपुरुषः कथमात्मानं प्रसाधयति? न कथमपीति ॥ २१ ॥ एवं श्वेताम्बरमतानुसारिशिष्यसम्बो-

---

होनेपर [**मूर्च्छा**] ममत्व परिणाम [**वा**] अथवा उस परिग्रहकेलिये [**आरम्भः**] उद्यमसे क्रियाका आरम्भ और [**तस्य**] उस ही मुनिके [**असंयमः**] शुद्धात्माचरणरूप संयमका घात [**कथं**] किसप्रकार [**नास्ति**] न होय अवश्य ही होय [**तथा**] उसही प्रकार जिसके परिग्रह है वह मुनि [**परद्रव्ये**] निजरूपसे भिन्न परद्रव्यरूप परिग्रहमें [**रतः**] रागी होकर [**कथं**] किसतरह [**आत्मानं**] अपने शुद्ध स्वरूपका [**प्रसाधयति**] एकाग्रतासे अनुभव करसकता है? नहीं कर सकता **भावार्थ**—जिसके परिग्रह होता है उसके अवश्यही ममत्वभाव होते हैं । उस परिग्रहके निमित्तसे आरम्भ भी होता है जहां ममता और आरम्भ होता है वहां शुद्धोपयोगरूप आत्मीक प्राणकी हिंसा होती है जहां हिंसा होय वहीं असंयमी होय । और भी परिग्रही मुनिको बड़ा दोष है, परिग्रह परद्रव्य है जो परद्रव्यमें रत होता है उसके शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धिका अभाव होता है शुद्धात्मद्रव्यकी सिद्धि मुनिपदका मूल है जहां यह नहीं वहां मुनिपद नहीं । इसलिये इस कथनका यह अभिप्राय है कि परिग्रह सर्वथा त्यागने योग्य है ॥ २१ ॥ आगे किसी मुनिके किसी एक कालमें

छेदो येन न विद्यते ग्रहणविसर्गेषु सेवमानस्य ।
श्रमणस्तेनेह वर्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय ॥ २२ ॥

आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व एवोपधिः प्रतिषिद्ध इत्युत्सर्गः । अयं तु मिश्रकालक्षेत्रवशात्कश्चिदप्रतिषिद्ध इत्यपवादः । यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावसन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते तदापकृष्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्बहिरङ्गसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते । स तु तथा स्थीयमानो न खलूपधित्वाच्छेदः, प्रत्युत छेदप्रतिषेध एव । यः किलाशुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः ।

धनार्थं निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथापञ्चकं गतम् अथ कालापेक्षया परमोपेक्षासंयमशक्त्यभावे सत्याहारसंयमशौचज्ञानोपकरणादिकं किमपि ग्राह्यमित्यपवादमुपदिशति;—**छेदो जेण ण विज्जदि** छेदो येन न विद्यते । येनोपकरणेन शुद्धोपयोगलक्षणसंयमस्य छेदो विनाशो न विद्यते । कयोः ? **गहणविसग्गेसु** ग्रहणविसर्गयोः यस्योपकरणस्यान्यवस्तुनो वा ग्रहणे स्वीकारे विसर्जने । किं कुर्वतः तपोधनस्य । **सेवमाणस्स** तदुपकरणं सेवमानस्य **समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता** श्रमणस्तेनोपकरणेनेह लोके

किसी एक तरहसे कोई एक परिग्रह अत्याज्य भी है ऐसा अपवादमार्ग दिखलाते हैं;—[**सेवमानस्य**] परिग्रहको सेवनेवाले मुनिके [**ग्रहणविसर्गेषु**] ग्रहण करनेमें अथवा त्यागनेमें [**येन**] जिस परिग्रहकर [**छेदः**] शुद्धोपयोगरूप संयमका घात [**न विद्यते**] नहीं हो [**तेन**] उस परिग्रहकर [**श्रमणः**] मुनि [**कालं क्षेत्रं**] काल और क्षेत्रको [**विज्ञाय**] जानकर [**इह**] इस लोकमें [**वर्तेतां**] प्रवर्तौ (रहो) कोई हानि नहीं है ॥ **भावार्थ**—उत्सर्ग मार्ग वह है कि जहांपर सब परिग्रहका निषेध किया है क्योंकि आत्माके एक अपने भावके सिवाय परद्रव्यरूप दूसरा पुद्गलभाव नहीं है इसकारण उत्सर्गमार्ग परिग्रह रहित है, और यह जो विशेषरूप अपवाद मार्ग है वह काल क्षेत्रके वश किसी एक परिग्रहको ग्रहण करता है इसलिये अपवाद भेदरूप है । यही दिखलाते हैं—जिस समय कोई एक मुनि सब परिग्रहको त्यागकर परम वीतराग संयमको प्राप्त होना चाहता है वही मुनि किसी एक कालकी विशेषतासे अथवा क्षेत्रके विशेषसे हीनशक्ति होता है तब उस वीतराग संयम दशाको नहीं धारण करसकता इसलिये सरागसंयम अवस्थाको अंगीकार करता है और उस अवस्थाका बाह्यसाधन परिग्रह ग्रहण करता है उस परिग्रहको ग्रहणकर तिष्ठते हुए मुनिके उस परिग्रहसे संयमका घात नहीं होता । संयमका घात वहां होता है जहांपर कि मुनिपदका घातक अशुद्धोपयोग होता है । यह परिग्रह तो संयमके घातके दूर करनेके लिये है । मुनिपदवीका सहकारी कारण शरीर है और उस शरीरकी प्रवृत्ति आहार नीहारके ग्रहण त्यागसे होती है उसमें संयमके घातके निषेधकेलिये अंगीकार करते

अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताहारनिर्हारादिग्रहणविसर्जनविषयच्छेदप्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात् ॥ २२ ॥

अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति;—

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदिवियप्पं ॥ २३ ॥

अप्रतिकुष्टमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः ।
मूर्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम् ॥ २३ ॥

यः किलोपधिः सर्वथा बन्धासाधकत्वादप्रतिक्रुष्टः संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतजनाप्रार्थनीयो रागादिपरिणाममन्तरेण धार्यमाणत्वान्मूर्छादिजननरहितश्च भवति स खल्वप्रतिषिद्धः । अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो न पुनरल्पोपि यथोदितविपर्यस्तस्वरूपः ॥ २३ ॥

वर्त्तताम् । किं कृत्वा । कालं क्षेत्रं च विज्ञायेति । अयमत्र भावार्थः—कालं पञ्चमकालं शीतोष्णादिकालं वा क्षेत्रं भरतक्षेत्रं मानुषजाङ्गलादिक्षेत्रं वा विज्ञाय येनोपकरणेन स्वसंवित्तिलक्षणभावसंयमस्य बहिरङ्गद्रव्यसंयमस्य वा छेदो न भवति तेन वर्तत इति ॥ २२ ॥ अथ पूर्वसूत्रोदितोपकरणस्वरूपं दर्शयति;—**अप्पदिकुट्ठं उवधिं** निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिद्धमुपधिमुपकरणरूपोपधिं **अपत्थणिज्जं असंजदजणस्स** अप्रार्थनीयं निर्विकारात्मोपलब्धिलक्षणभावसंयमरहितस्यासंयतजनस्यानभिलषणीयम् । **मुच्छादिजणणरहियं** परमात्मद्रव्यविलक्षणबहिर्द्रव्यममत्वरूपमूर्छारक्षणार्जनसंस्कारादिदोषजननरहितम् । **गेण्हदु समणो जदिवि अप्पं** गृह्णातु श्रमणो यमप्यल्पं पूर्वोक्तमुपकरणोपधिं यद्यप्यल्पं तथापि पूर्वोक्तोचितलक्ष-

---

हैं । इसकारण अशुद्धोपयोगमयी जो संयमका घात है उसको दूर करनेवाला परिग्रह है इसलिये घातक नहीं है ॥ २२ ॥ आगे जिस परिग्रहका मुनिकेलिये निषेध नहीं है उसका स्वरूप दिखलाते हैं;—[**श्रमणः**] अपवादमार्गी मुनि [**उपधिं**] ऐसे परिग्रहको [**गृह्णातु**] ग्रहण करो कुछभी दोष नहीं है । जो परिग्रह [**अप्रतिकुष्टं**] बंधको नहीं करता [**असंयतजनैः**] संयमरहितजनोंकर [**अप्रार्थनीयं**] प्रार्थना करनेके योग्य नहीं है [**मूर्छादिजननरहितं**] ममता आरंभ हिंसादिकभावोंकी उत्पत्तिकर रहित है और वह [**यद्यपि**] यद्यपि [**अल्पं**] थोड़ा है ॥ **भावार्थ**—जिस परिग्रहको असंयमी ग्रहण नहीं कर सकते और जिससे रागादिभाव विना ग्रहण होनेसे मूर्च्छादिभाव नहीं होते ऐसे परिग्रहका मुनिको निषेध नहीं है किंतु ग्रहण करने योग्य है । और जो इससे विपरीत परिग्रह है वह थोड़ा होनेपरभी ग्रहण योग्य नहीं है जैसा कुछ मुनिके योग्य है वही ग्रहण योग्य है ॥ २३ ॥ आगे

अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवाद इत्युपदिशति;—

किं किंचणत्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहेवि ।
संगत्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तिमुद्दिट्ठा ॥ २४ ॥

किं किंचनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोथ देहेपि ।
संग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः ॥ २४ ॥

अत्र श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेत्यन्तमुपात्तदेहेपि परद्रव्यत्वात्परिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तो भगवन्तोऽर्हद्देवाः । अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसंभावनरसिकस्य पुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः । अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो न पुनरपवादः । इदमत्र तात्पर्यं वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलम्ब्यम् ॥ २४ ॥

णमेव ग्राह्यं न च तद्विपरीतमधिकं वेत्यभिप्रायः ॥ २३ ॥ अथ सर्वसङ्गपरित्याग एव श्रेष्ठः शेषमशक्यानुष्ठानमिति प्ररूपयति;—**किं किंचणत्ति तक्कं** किं किंचनमिति तर्कः किं किंचनं परिग्रह इति तर्को विचारः क्रियते तावत् । कस्य ? **अपुणब्भवकामिणो** अपुनर्भवकामिनः अनन्तज्ञानादिचतुष्टयात्ममोक्षाभिलाषिणः **अथ** अहो **देहोवि** देहोऽपि **संगोत्ति** सङ्गः परिग्रह इति हेतोः **जिणवरिंदा** जिनवरेन्द्राः कर्तारः **णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा** निःप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तः । शुद्धोपयोगलक्षणपरमोपेक्षासंयमबलेन देहेपि निःप्रतीकारित्वं कथितवन्त इति । ततो ज्ञायते मोक्षसुखाभिलाषिणां निश्चयेन देहादिसर्वसङ्गपरित्याग एवोचितोऽन्यस्तूप-

---

उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है अपवादमार्ग नहीं ऐसा उपदेश करते हैं;—**[अथ]** अहो देखो कि **[अपुनर्भवकामिनः]** मोक्षके अभिलाषी मुनिके **[देहेपि]** देहके होनेपरभी **[संगः]** परिग्रह है **[इति]** ऐसा जानकर **[जिनवरेन्द्राः]** सर्वज्ञ वीतरागदेव **[अप्रतिकर्मत्वं]** ममत्वभावसहित शरीरकी क्रियाके त्यागका **[उद्दिष्टवन्तः]** उपदेश करते हुए, तब उस मुनिके **[किं]** क्या **[किंचन]** अन्यभी कुछ परिग्रह है **[इति]** ऐसा **[तर्कः]** बड़ाही विचार होता है ॥ **भावार्थ**—जिस मार्गमें मुनिपदका सहकारी शरीरभी परद्रव्यरूप परिग्रह जानकर आदर करने योग्य नहीं है वहभी ममताभावसे रहित होकर त्यागने योग्य है और भगवंतदेवने ममताकर आहार विहारमें प्रवृत्ति होनेको मनै किया है तो उस मार्गमें शुद्धात्म रसके आस्वादी मुनिके अन्य परिग्रह विचारा कैसे बनसकता है ऐसा उन अरहंत देवका प्रगट अभिप्राय है । इससे यह बात सिद्ध होती है कि उत्सर्ग निःपरिग्रह मार्ग है वही वस्तुका धर्म है । परिग्रह रहनेसे अपवाद मार्ग वस्तुका धर्म नहीं है । इससे यह अभिप्राय निकला कि उत्सर्गमार्गही वस्तुका धर्म है इसलिये परम निर्ग्रन्थ पदवी अ-

अथ केपवादविशेषा इत्युपदिशति;—

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं ।
गुरुवयणंपि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं ॥ २५ ॥

उपकरणं जिनमार्गे लिङ्गं यथाजातरूपमिति भणितम् ।
गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च प्रज्ञप्तम् ॥ २५ ॥

चार एवेति ॥ २४ ॥ एवमपवादव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम् । अथैकादशगाथापर्यन्तं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति । तद्यथा—श्वेताम्बरमतानुसारी शिष्यः पूर्वपक्षं करोति;—

पेच्छदि ण हि इह लोगं परं च समणिंददेसिदो धम्मो ।
धम्मम्हि तम्हि कम्हा वियप्पियं लिंग मित्थीणं ॥ १ ॥

पेच्छदि ण हि इह लोगं निरुपरागनिजचैतन्यनित्योपलब्धिभावनाविनाशकं ख्यातिपूजालाभरूपं प्रेक्षते न च हि स्फुटं इह लोकं । न च केवलमिह लोकं **परं च** स्वात्मप्राप्तिरूपं मोक्षं विहाय स्वर्गभोगप्राप्तिरूपं परं च परलोकं च नेच्छति । स कः । **समणिंददेसिदो धम्मो** श्रमणेन्द्रदेशितो धर्मः जिनेन्द्रोपदिष्ट इत्यर्थः । **धम्मम्हि तम्हि कम्हा** धर्मे तस्मिन् कस्मात् **वियप्पियं** विकल्पितं निर्ग्रन्थलिङ्गाद्वस्त्रप्रावरणेन पृथक्कृतं । किं । **लिंगं** सावरणचिह्नं । कासां सम्बन्धि । **इत्थीणं** स्त्रीणामिति पूर्वपक्षगाथा ॥ १ ॥ अथ परिहारमाह;—

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा ।
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं ॥ २ ॥

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा निश्चयतः स्त्रीणां नरकादिगतिविलक्षणानन्तसुखादिगुणस्वभावा तेनैव जन्मना सिद्धिर्न दृष्टा न कथिता । **तम्हा तप्पडिरूवं** तस्मात्कारणात्प्रतियोग्यं सावरणरूपं **वियप्पियं लिंगमित्थीणं** निर्ग्रन्थलिङ्गात्पृथक्त्वेन विकल्पितं कथितं लिङ्गं प्रावरणसहितं चिह्नं । कासां । स्त्रीणामिति ॥ २ ॥ अथ स्त्रीणां मोक्षप्रतिबन्धकं प्रमादबाहुल्यं दर्शयति;—

पइडीपमादमइया एतासिं वित्ति भासिया पमदा ।
तम्हा ताओ पमदा पमादबहुलोत्ति णिद्दिट्ठा ॥ ३ ॥

पइडीपमादमइया प्रकृत्या स्वभावेन प्रमादेन निर्वृत्ता प्रमादमयी । का कर्त्री भवति । **एदासिं वित्ति** एतासां स्त्रीणां वृत्तिः परिणतिः **भासिया पमदा** तत एव नाममालायां प्रमदाः

वलंबन करने योग्य है ॥ २४ ॥ आगे अपवाद मार्गके कौनसे भेद हैं उनको दिखलाते हैं;—[**जिनमार्गे**] सर्वज्ञ वीतरागदेव कथित निर्ग्रन्थ मोक्षमार्गमें [**उपकरणं**] मुनिके उपकारी परिग्रह [**इति**] इसप्रकार [**भणितं**] कहे हैं कि [**यथाजातरूपं लिङ्गं**] जैसा मुनिका स्वरूप चाहिये वैसाही शरीरके द्रव्यलिङ्गका

यो हि नामाप्रतिषिद्धोऽस्मिन्नुपधिरपवादः स खलु निखिलोपि श्रामण्यपर्यायसहका-रिकारणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव न पुनरन्यः। तस्य तु विशेषः सर्वाहार्यवं-

---

प्रमदासंज्ञा भणिता भासिताः स्त्रियः। **तम्हा ताओ पमदा** यत एव प्रमदा संज्ञास्ताः स्त्रियः तस्मात्तत एव **पमादबहुलोत्ति णिद्दिट्ठा** निःप्रमादपरमात्मतत्त्वभावनाविनाशकप्रमाद-बहुला इति निर्दिष्टाः॥ ३॥ अथ तासां मोहादिबाहुल्यं दर्शयति;—

संति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयं दुगुंच्छा य।
चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं॥ ४॥

संति धुवं पमदाणं सन्ति विद्यन्ते ध्रुवं निश्चितं प्रमदानां स्त्रीणां। के ते। **मोहपदोसा भयं दुगुंच्छा य** मोहादिरहितानन्तसुखादिगुणस्वरूपमोक्षकारणप्रतिबन्धकाः मोहप्रद्वेषभयदुगुं-च्छापरिणामाः **चित्ते चित्ता माया** कौटिल्यादिरहितपरमबोधादिपरिणतेः प्रतिपक्षभूता चित्ते मनसि चित्रा विचित्रा माया **तम्हा तासिं ण णिव्वाणं** तत एव तासामव्याबाधसुखाद्यनन्त-गुणाधारभूतं निर्वाणं नास्तीत्यभिप्रायः॥ ४॥ अथैतदेव दृढयति;—

ण विणा वट्टदि णारी एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि॥
ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं॥ ५॥

ण विणा वट्टदि णारी न विना वर्त्तते नारी **एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि** तेषु नि-र्दोषिपरमात्मध्यानविघातकेषु पूर्वोक्तदोषेषु मध्ये जीवलोके त्वेकमपि दोषं विहाय **ण हि संउडं च गत्तं** न हि स्फुटं संवृतं गात्रं च शरीरं **तम्हा तासिं च संवरणं** तत एव च तासां संवरणं वस्त्रावरणं क्रियत इति॥ ५॥ अथ पुनरपि निर्वाणप्रतिबन्धकदोषान्दर्शयति;—

चित्तस्सावो तासिं सित्थिल्लं अत्तवं च पक्खलणं।
विज्जदि सहसा तासु अ उप्पादो सुहममणुआणं॥ ६॥

विज्जदि विद्यते तासु च स्त्रीषु। किं? **चित्तस्साओ** चित्तस्रवः निःकामात्मतत्त्वसंवित्ति-विनाशकचित्तस्य कामोद्रेकेण स्रवो रागसार्द्रभावः **तासिं** तासां स्त्रीणां **सित्थिल्लं** शिथिलस्य भावः शैथिल्यं तद्भवमुक्तियोग्यपरिणामविषये चित्तदार्ढ्याभावः सत्त्वहीनपरिणाम इत्यर्थः। **अत्तवं च पक्खलणं** ऋतौ भवमार्त्तवं प्रस्खलनं रक्तस्रवणं सहसा झटिति मासे मासे दिनत्रयपर्यन्तं चित्तशुद्धिविनाशको रक्तस्रवो भवतीत्यर्थः **उप्पादो सुहममणुआणं** उत्पाद उत्पत्तिः सूक्ष्म-

---

होना। एक तो यह परिग्रह है। [**गुरुवचनं अपि**] तत्त्वके उपदेशक गुरुके वचन-रूप पुद्गलोंका ग्रहण एक यह भी परिग्रह है [**च**] और [**विनयः**] जो कोई शुद्धात्माके अनुभवी महामुनि हैं उनकी विनयमें प्रवर्त होनेंरूप द्रव्यमनके पुद्गल यहभी परिग्रह है [**च**] और [**सूत्राध्ययनं**] वचनात्मक सिद्धान्तोंका पढ़ना यहभी परिग्रह [**प्रज्ञप्तं**] कहा है॥ **भावार्थ**—जिस परिग्रहका अपवाद मार्गमें

जितसहजरूपोपेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरङ्गलिङ्गभूताः कायपुद्गलाः श्रूयमाणतत्कालबो-
धकगुरुगीर्यमाणात्मतत्त्वद्योतकसिद्धोपदेशवचनपुद्गलास्तथाधीयमाननित्यबोधकानादिनि-

---

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामिति ॥ ६ ॥ अथोत्पत्तिस्थानानि कथयति;—

लिंगं हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु ।
भणिदो सुहुमुप्पादो तासिं कह संजमो होदि ॥ ७ ॥

लिंगं हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु स्त्रीणां लिङ्गे योनिप्रदेशे स्तनान्तरे नाभिप्रदेशे कक्षप्रदेशे च **भणिदो सुहुमुप्पादो** एतेषु स्थानेषु सूक्ष्ममनुष्यादिजीवोत्पादो भणितः । एते पूर्वोक्तदोषाः पुरुषाणां किं न भवन्तीति चेत् ? एवं न वक्तव्यं स्त्रीषु बाहुल्येन भवन्ति । नचास्तित्वमात्रेण समानत्वं । एकस्य विषकणिकास्ति द्वितीयस्य च विषं सर्वतोऽस्ति किं समानत्वं भवति ? किन्तु पुरुषाणां प्रथमसंहननबलेन दोषविनाशको मुक्तियोग्यविशेषसंयमोऽस्ति । **तासिं कह संजमो होदि** ततः कारणात्तासां कथं संयमो भवतीति ॥ ७ ॥

अथ स्त्रीणां तद्भवमुक्तियोग्यां सकलकर्मनिर्जरां निषेधयति;—

जदि दंसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता ।
घोरं चरदि व चरियं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा ॥ ८ ॥

जदि दंसणेण सुद्धा यद्यपि दर्शनेन सम्यक्त्वेन शुद्धाः **सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता** एकादशाङ्गसूत्राध्ययनेनापि संयुक्ता **घोरं चरदि व चरियं** घोरं पक्षोपवासमासोपवासादि चरति वा चारित्रं **इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा** तथापि स्त्रीजनस्य तद्भवकर्मक्षययोग्या सकलनिर्जरा न भणितेति भावः । किंच यथा प्रथमसंहननाभावात्स्त्री सप्तमनरकं न गच्छति तथा निर्वाणमपि "पुंवेदं वेदंता पुरिसा जे खवगसेडिमारूढा । सेसोदयेणवि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति" इति गाथाकथितार्थाभिप्रायेण भावस्त्रीणां कथं निर्वाणमिति चेत् ? तासां भावस्त्रीणां प्रथमसंहननमस्ति द्रव्यस्त्रीवेदाभावात्तद्भवमोक्षपरिणामप्रतिबन्धकतीव्रकामोद्रेकोऽपि नास्ति । द्रव्यस्त्रीणां प्रथमसंहननं नास्तीति कस्मान्नागमे कथितमास्त इति चेत् ? तत्रोदाहरणगाथा— "अंतिमतिगसंघडणं णियमेण य कम्मभूमिमहिलाणं । आदिमतिगसंघडणं णत्थिति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ १ ॥" अथ मतं—यदि मोक्षो नास्ति तर्हि भवदीयमते किमर्थमर्जिकानां महाव्रतारोपणम् ? परिहारमाह—तदुपचारेण कुलव्यवस्थानिमित्तम् । नचोपचारः साक्षाद्भवितुमर्हति अग्निवत् क्रूरोऽयं देवदत्त इत्यादिवत् । तथाचोक्तम्—मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते । किन्तु यदि तद्भवे मोक्षो भवति स्त्रीणां तर्हि शतवर्षदीक्षिताया अर्जिकाया अद्यदिने

निषेध नहीं किया गया है वह सभी परिग्रह यति अवस्थाको सहायक है इसलिये उपकारी है अन्य परिग्रह नहीं है । उस मुनिके योग्य परिग्रहके भेद इसप्रकार हैं कि सब वस्त्र आभूषणादिकसे रहित सहज (स्वाभाविक) सुंदर यथाजातरूप बाह्य द्रव्य-

---

१ अन्तिमसंहननत्रयं नियमेन कर्मभूमिमहिलानामस्ति । आदिमसंहननत्रयं नास्तीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।

धनशुद्धात्मतत्त्वद्योतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मसूत्रपुद्गलाश्च शुद्धात्मतत्त्वव्यञ्जक-दर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायवर्तकचित्तपुद्गलाश्च भवन्ति। इदमत्र ता-

दीक्षितः साधुः कथं वन्द्यो भवति। सैव प्रथमतः किं न वन्द्या भवति साधोः। किन्तु भवन्मते मल्लितीर्थंकरः स्त्रीति कथ्यते तदप्ययुक्तम्। तीर्थंकरा हि सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशभावनाः पूर्वभवे भावयित्वा पश्चाद्भवन्ति। सम्यग्दृष्टेः स्त्रीवेदकर्मणो बन्ध एव नास्ति कथं स्त्री भविष्यतीति। किं च यदि मल्लितीर्थकरो वान्यः कोऽपि वा स्त्रीभूत्वा निर्वाणं गतः तर्हि स्त्रीरूपप्रतिमाराधना किं न क्रियते भवद्भिः। यदि पूर्वोक्तदोषाः सन्तः स्त्रीणां तर्हि सीतारुक्मिणीकुन्तीद्रौपदीसुभद्राप्रभृतयो जिनदीक्षां गृहीत्वा विशिष्टतपश्चरणेन कथं षोडशस्वर्गे गता इति चेत्? परिहारमाह—तत्र दोषो नास्ति तस्मात्स्वर्गादागत्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्रे। तद्भवमोक्षो नास्ति भवान्तरे भवतु को दोष इति। इदमत्र तात्पर्यं—स्वयं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यं परं प्रति विवादो न कर्त्तव्यः। कस्मात्? विवादे रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति ततश्च शुद्धात्मभावना नश्यतीति॥ ८॥ अथोपसंहाररूपेण स्थितपक्षं दर्शयति;—

तम्हा तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
कुलरूववओजुत्ता समणीओ तस्समाचारा॥ ९॥

तम्हा यस्मात्तद्भवे मोक्षो नास्ति तस्मात्कारणात् **तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दिट्ठं** तत्प्रतिरूपं वस्त्रप्रावरणसहितं लिङ्गं चिह्नं लाञ्छनं तासां स्त्रीणां जिनवरैः सर्वज्ञैर्निर्दिष्टं कथितम्। **कुलरूववओजुत्ता समणीओ** लोकदुगुञ्छारहितत्वेन जिनदीक्षायोग्यं कुलं भण्यते। अन्तरङ्गनिर्विकारचित्तशुद्धिज्ञापकं बहिरङ्गनिर्विकारं रूपं भण्यते। शरीरभङ्गरहितं वा अतिबालवृद्धबुद्धिवैकल्यरहितं वयो भण्यते। तैः कुलरूपवयोभिर्युक्ताः कुलरूपवयोयुक्ता भवन्ति। काः श्रामण्यर्जिकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः? **तस्समाचारा** तासां स्त्रीणां योग्यस्तद्योग्य आचारशास्त्रविहितसमाचार आचरण यासां तास्तत्समाचारा इति॥ ९॥ अथेदानीं पुरुषाणां दीक्षाग्रहणे वर्णव्यवस्थां कथयति;—

वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणंगो तवोसहो वयसा।
सुमुहो कुंछारहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो॥ १०॥

वण्णेसु तीसु एक्को वर्णेषु त्रिष्वेकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णेष्वेकः **कल्लाणंगो** कल्याणाङ्ग आरोग्यः **तवोसहो वयसा** तपःसहः तपःक्षमः। केन? अतिवृद्धबालत्वरहितवयसा **सुमुहो** निर्विकाराभ्यन्तरपरमचैतन्यपरिणतिविशुद्धिज्ञापकं गमकं बहिरङ्गनिर्विकारं मुखं यस्य मुखावयव-

लिंगस्वरूप काययोग संबंधी पुद्गल, एक तो यह उपकरण है। और शुद्धात्मतत्त्वके प्रकाशक जो वचनात्मक पुद्गल हैं उनको गुरूके पाससे सुनता है तथा जो अनादि अनंत शुद्धात्मतत्त्वका प्रगट करनेवाला श्रुतज्ञान है उसके वचनस्वरूप जो सूत्रपुद्गल हैं उनको पढता है ये भी उपकरण हैं, और जिन महापुरुष मुनीश्वरोंके ज्ञानादि

त्यर्थं कायवद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः ॥ २५ ॥

अथाप्रतिषिद्धशरीरमात्रोपधिपालनविधानमुपदिशति;—

इह लोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ २६ ॥

भङ्गरहितं वा स भवति सुमुखः **कुंछारहिदो** लोकमध्ये दुराचाराद्यपवादरहितः **लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो** एवं गुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति । यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ॥ १० ॥ अथ निश्चयनयाभिप्रायं कथयति;—

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिद्दिट्ठो ।
सेसं भंगेण पुणो ण होदि सल्लेहणाअरिहो ॥ ११ ॥

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहि णिद्दिट्ठो यो रत्नत्रयनाशः स भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टः । विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपो योऽसौ निश्चयरत्नत्रयस्वभावस्तस्य विनाशः स एव निश्चयेन नाशो भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टः **सेसं भंगेण पुणो** शेषभङ्गेन पुनः शेषखण्डमुण्डवातवृषणादिभङ्गेन **ण होदि सल्लेहणाअरिहो** न भवति सल्लेखनार्हः लोकदुगुञ्छाभयेन निर्ग्रन्थरूपयोग्यो न भवति । कौपीनग्रहणेन तु भावनायोग्यो भवतीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥ एवं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणव्याख्यानमुख्यत्वेनैकादशगाथाभिस्तृतीयं स्थलं गतम् । अथ पूर्वोक्तस्योपकरणरूपापवादव्याख्यानस्य विशेषविवरणं करोति;—**इदि भणिदं** कथितम् । किम् ? **उवयरणं** उपकरणं । क ? **जिणमग्गे** जिनोक्तमोक्षमार्गे । किमुपकरणम् ? **लिंगं** शरीराकारपुद्गलपिण्डरूपं द्रव्यलिङ्गम् । किं विशिष्टम् ? **जहजादरूवं** यथाजातरूपं यथाजातशब्देनात्र व्यवहारेण सङ्गपरित्यागयुक्तं निश्चयेनाभ्यन्तरेण शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मस्वरूपं **गुरुवयणं पि य** गुरुवचनमपि निर्विकारपरमचिज्ज्योतिःस्वरूपपरमात्मतत्त्वप्रतिबोधकं सारभूतं सिद्धोपदेशरूपं गुरूपदेशवचनं । न केवलं गुरूपदेशवचनं **सुत्तज्झयणं च** आदिमध्यान्तवर्जितजातिजरामरणरहितनिजात्मद्रव्यप्रकाशकसूत्राध्ययनं च परमागमवाचनमित्यर्थः । **णिद्दिट्ठं** उपकरणरूपेण निर्दिष्टं कथितम् । **विणओ** स्वकीयनिश्चयरत्नत्रयशुद्धिर्निश्चयविनयः तदाधारपुरुषेषु भक्तिपरिणामो व्यवहारविनयः । उभयोऽपि विनयपरिणाम उपकरणं भवतीति निर्दिष्टः । अनेन किमुक्तं भवति—निश्चयेन चतुर्विधमेवोपकरणम् । अन्यदुपकरणं व्यवहार इति ॥ २५॥ अथ युक्ताहारविहारलक्षणतपोधनस्य स्वरूपमाख्याति;—**इहलोगणिरा-**

भाव प्रगट हुए हैं उनमें विनयरूप परिणत हुए जो चित्त पुद्गल हैं ये भी उपकरण है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि मुनिको जैसे शरीरमें ममताभावका निषेध है उसीतरह वचन मनका भी निषेध है क्योंकि ये भी वस्तुके धर्म नहीं हैं इसलिये त्याज्य हैं इनसे ही अपवादमार्गी मुनि कहलाते हैं उत्सर्गमार्ग इनसे रहित है ॥ २५ ॥ आगे मुनिके निषेध नहीं किया जो शरीरमात्र परिग्रह उसके पालनेकी विधि बतलाते हैं;—

इह लोके निरापेक्ष अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके ।
युक्ताहारविहारो रहितकषायो भवेत् श्रमणः ॥ २६ ॥

अनादिनिधनैकरूपशुद्धात्मतत्त्वपरिणतत्वादखिलकर्मपुद्गलविपाकात्यन्तविविक्तस्वभावत्वेन रहितकषायत्वात्तदात्वमनुष्यत्वेपि समस्तमनुष्यव्यवहारबहिर्भूतत्वेनेह लोकनिरापेक्षत्वात्तथा भविष्यदमर्त्यादिभावानुभूतितृष्णाशून्यत्वेन परलोकाप्रतिबद्धत्वाच्च परिच्छेद्यार्थोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थप्रदीपपूरणोत्सर्पणस्थानीयाभ्यां शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भप्रसिद्ध्यर्थतच्छरीरसंभोजनसंचलनाभ्यां युक्ताहारविहारो हि स्यात् श्रमणः । इदमत्र तात्पर्यं—यतो हि रहितकषायः ततो न तच्छरीरानुरागेण दिव्यशरीरानुरागेण वाहारविहारयोरयुक्त्या प्रवर्तते । शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकश्रामण्यपर्यायपालनायैव केवलं युक्ताहारविहारः स्यात् ॥२६॥

वेक्खो इहलोकनिरापेक्षः टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावनिजात्मसंवित्तिविनाशकख्यातिपूजालाभरूपेहलोककाङ्क्षारहितः **अप्पडिबंधो परम्मि लोयम्हि** अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके तपश्चरणे कृते दिव्यदेवस्त्रीपरिवारादिभोगा भवन्तीति, एवंविधपरलोके प्रतिबद्धो न भवति **जुत्ताहारविहारो हवे** युक्ताहारविहारो भवेत् । स कः । **समणो** श्रमणः । पुनरपि कथंभूतः । **रहिदकसाओ** निःकषायस्वरूपसंवित्त्यवष्टंभबलेन रहितकषायश्चेति । अयमत्र भावार्थः—योसौ इहलोकपरलोकनिरपेक्षत्वेन निःकषायत्वेन च प्रदीपस्थानीयशरीरे तैलस्थानीयं ग्रासमात्रं दत्वा घटपटादिप्रकाश्यपदार्थस्थानीयं निजपरमात्मपदार्थमेव निरीक्षते स एव युक्ताहारविहारो भवति

[**श्रमणः**] जो मुनि है वह [**इह लोके निरापेक्षः**] इस लोकमें विषयोंकी अभिलाषारहित हुआ [**परस्मिन् लोके**] परलोकमें अर्थात् होनेवाली देवादिपर्यायोंमें [**अप्रतिबद्धः**] अभिलाषाकर नहीं बंधा हुआ [**रहितकषायः**] रागद्वेषभावरूपकषायोंकर रहित होता हुआ [**युक्ताहारविहारः**] योग्य आहार विहारमें [**भवेत्**] प्रवृत्ति करता है अयोग्यको छोड़ता है ॥ **भावार्थ**—मुनीश्वरने अपना स्वरूप अनादि अनंत पुद्गलसे उत्पन्न हुए भावोंसे भिन्न जान लिया है इसलिये कर्मके उदयसे जो मिली हुई मनुष्यादि पर्याय है उसमें आत्मबुद्धि नहीं करता अर्थात् अपनी नहीं मानता, और कषायोंसे रहित है इसलिये मनुष्य संबंधिनी क्रियाओंसे रहित है इसे इस लोकमें पंचेन्द्री विषयोंकी वांछा नहीं है, तथा आगामी कालके देवादिगतिके दिव्यसुखोंके भोगनेकी वांछासे रहित है इसवास्ते परलोककीभी अभिलाषाकर बंधा हुआ नहीं है । जैसे घटपटादि पदार्थोंके देखनेकेलिये दीपकमें तेल डालते हैं और वत्ती आदिकभी संभालते हैं उसीप्रकार शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये शरीरको भोजनसे तथा चलनादि क्रियासे योग्य आहार विहार क्रियामें प्रवृत्त करता है । इससे यह कथन सिद्ध हुआ कि मुनीश्वर कषायभावोंसे रहित हैं इसलिये अपने वर्तमान शरीरके अनुरागसे प्रवृत्ति नहीं करते किंतु शुद्धात्मतत्त्वकी सिद्धिके-

अथ युक्ताहारविहारः साक्षादनाहारविहार एवेत्युपदिशति;—

जस्स अणेसणमप्पा तंपि तओ तप्पडिच्छगा समणा ।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा ॥ २७ ॥

यस्यानेषण आत्मा तदपि तपः तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः ।
अन्यद्भैक्षमनेषणमथ ते श्रमणा अनाहाराः ॥ २७ ॥

स्वयमनशनस्वभावत्वादेषणादोषशून्यभैक्ष्यत्वाच्च युक्ताहारः साक्षादनाहार एव स्यात् । तथाहि—यस्य सकलकालमेव सकलपुद्गलाहरणशून्यमात्मानमवबुध्यमानस्य सकलाशनतृष्णाशून्यत्वात्स्वयमनशन एव स्वभावः । तदेव तस्यानशनं नाम तपोऽन्तरङ्गस्य

पुनरन्यः शरीरपोषणनिरत इति ॥ २६ ॥ अथ पञ्चदशप्रमादैस्तपोधनः प्रमत्तो भवतीति प्रतिपादयति;—

कोहादिएहि चउविहि विकहाहि तहिंदियाणमत्थेहिं ।
समणो हवदि पमत्तो उवजुत्तो णेहणिद्दाहिं ॥ १ ॥

हवदि क्रोधादिपञ्चदशप्रमादरहितचिच्चमत्कारमात्रात्मतत्त्वभावनाच्युतः सन् भवति । स कः कर्त्ता । **समणो** सुखदुःखादिसमचित्तः श्रमणः । किंविशिष्टो भवति । **पमत्तो** प्रमत्तः प्रमादी । कैः कृत्वा । **कोहादि हि चउविहि** चतुर्भिरपि क्रोधादिभिः **विकहाहि** स्त्रीभक्तचोरराजकथाभिः **तहिंदियाणमत्थेहिं** तथैव पञ्चेन्द्रियाणामर्थैः स्पर्शादिविषयैः । पुनरपि किंरूपः । **उवजुत्तो** उपयुक्तः परिणतः । काभ्याम् ? **णेहणिद्दाहिं** स्नेहनिद्राभ्यामिति ॥ १ ॥ अथ युक्ताहारविहारतपोधनस्वरूपमुपदिशति;—**जस्स** यस्य मुनेः सम्बन्धी **अप्पा** आत्मा । किंविशिष्टः ? **अणेसणं** स्वकीयशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखामृताहारेण तृप्तत्वान्न विद्यते एषणमाहाराकाङ्क्षा यस्य स भवत्यनेषणः । **तंपि तवो** तस्य तदेव निश्चयेन निराहारात्मभावनारूपमुपवासलक्षणं तपः **तं पडिच्छगा समणा** तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः तन्निश्चयोपवासलक्षणं तपः प्रतीच्छन्ति तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः । पुनरपि किं येषां । **अण्णं** निजपरमात्मतत्त्वादन्यद्भिन्नं हेयं । किं । **अणेसणं** अन्नस्याहारस्यैषणं वाञ्छानेषणम् । कथंभूतं ? **भिक्खं** भिक्षायां भवं भैक्ष्यं

लिये मुनिपदवी पालनेके निमित्त केवल योग्यआहारमें प्रवर्तित होते हैं ॥ २६ ॥ आगे कहते हैं कि योग्य आहार विहार करनेपरभी मुनिको साक्षात् आहार विहारसे रहित मानना चाहिये;—[**यस्य आत्मा**] जिस मुनिका जीव [**अनेषणः**] अपने स्वभावकर परद्रव्यके ग्रहणसे रहित निराहारी है [**तत्**] वही आत्माका निराहार स्वभाव [**अपि**] निश्चयसे [**तपः**] अंतरंग तप है । [**तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः**] उस निराहार आत्मस्वभावकी सिद्धिके वांछक जो महामुनि हैं वे [**अनेषणं**] आहारके दोषोंसे रहित [**अन्यत् भैक्ष्यं**] अन्य भिक्षाकेविषें शुद्ध अन्नको ग्रहण करते हैं [**अथ**] इसीलिये ग्रहण करते हुए भी [**ते श्रमणाः**] वे महामुनि

बलीयस्त्वात् इति कृत्वा ये तं स्वयमनशनस्वभावं भावयन्ति श्रमणाः । तत्प्रतिषिद्धये चैषणादोषशून्यमन्यद्भैक्षं चरन्ति । ते किलाहरन्तोप्यनाहरन्त इति युक्ताहारत्वेन स्वभावपरभावप्रत्ययप्रतिबन्धाभावात्साक्षादनाहारा एव भवन्ति । एवं स्वयमविहारस्वभावत्वात्समितिशुद्धविहारत्वाच युक्तविहारः साक्षादविहार एव स्यात् इत्यनुक्तमपि गम्येतेति ॥ २७ ॥

अथ कुतो युक्ताहारत्वं सिद्ध्यतीत्युपदिशति;—

केवलदेहो समणो देहेण ममेत्ति रहिदपरिकम्मो ।
आउत्तो तं तवसा अणिगूहं अप्पणो सत्तिं ॥ २८ ॥

केवलदेहः श्रमणो देहेन ममेति रहितपरिकर्मा ।
आयुक्तवांस्तं तपसा अनिगूहन्नात्मनः शक्तिम् ॥ २८ ॥

यतो हि श्रमणः श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेन केवलदेहमात्रस्योपधेः प्रसह्याप्र-

---

अह अथ अहो **ते समणा अणाहारा** ते अनशनादिगुणविशिष्टाः श्रमणा आहारग्रहणेऽप्यनाहारा भवन्ति । तथैव च निःक्रियपरमात्मानं ये भावयन्ति पञ्चसमितिसहिता विहरन्ति च विहारा भवन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥ अथ तदेवानाहारकत्वं प्रकारान्तरेण प्राह;—**केवलदेहो** केवलदेहोऽन्यपरिग्रहरहितो भवति । स कः कर्ता । **समणो** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तः श्रमणः । तर्हि किं देहे ममत्वं भविष्यति ? नैवं **देहेवि ममत्तरहियपरिकम्मो** देहेऽपि ममत्वरहितपरिकर्मा "ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिं उवट्ठिदो । आलंवणं च मे आदा अवसेसाइं वो-

---

[अनाहाराः] आहार ग्रहणसे रहितही हैं ऐसा मानना चाहिये ॥ **भावार्थ**—जो महामुनीश्वर हैं उन्होंनेभी अपना स्वरूप सदाकाल समस्त परद्रव्यरूप पुद्गलके ग्रहणसे रहित जान लिया है इसलिये भोजन करनेकी तृष्णासे रहित हैं ये ही उनके अंतरंग अनशन नामा तप है । ऐसे निराहार आत्मस्वभावके भावनेवाले मुनि जो शरीरकी स्थितिके निमित्त आहारभी लेते हैं तो सब दोषोंसे रहित शुद्ध अन्नको लेते हैं इसलिये वे मुनि आहार ग्रहण करते हुएभी नहीं लेनेवालेही माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने एक तो अपना स्वभाव निराहार समझ रक्खा है और जो आहार लेते हैं तो रागी होकर नहीं लेते इसलिये बंध नहीं होता । इसकारण निराहार ही मानने । और इसीतरह चलनादि क्रियारूप विहार कर्मको भी निजस्वभाव नहीं मानता है, और जो विहारकर्म करताभी है तो ईर्यासमितिकी शुद्धिसे योग्य विहार करता है । इसलिये विहारक्रिया करने परभी अविहारी मानना चाहिये ॥ २७ ॥ आगे योग्य आहार किससे होता है यह कहते हैं;—**[श्रमणः]** मुनि **[केवलदेहः]** एक शरीरमात्र परिग्रहवाला होता हुआ और **[देहे]** देहके होनेपर भी उसमें **[न मम]** यह मेरा नहीं है **[इति]** इसप्रकार **[रहितपरिकर्मा]** देहसंबंधी अयोग्य आहार वि-

तिषेधकत्वात्केवलदेहत्वे सत्यपि देहे "किं किंचन" मित्यादिप्राक्तनसूत्रद्योतितपरमेश्वराभिप्रायपरिग्रहेण न नाम ममायं ततो नानुग्रहार्हः किंतूपेक्ष्य एवेति परित्यक्तसमस्तसंस्कारत्वाद्रहितपरिकर्मा स्यात् । ततस्तन्ममत्वपूर्वकानुचिताहारग्रहणाभावाद्युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् । यतश्च समस्तामप्यात्मशक्तिं प्रकटयन्ननन्तरसूत्रोदितेनानशनस्वभावलक्षणेन तपसा तं देहं सर्वारम्भेणाभियुक्तवान् स्यात् । तत आहारग्रहणपरिणामात्मकयोगध्वंसाभावाद्युक्तस्यैवाहारेण च युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत् ॥ २८ ॥

अथ युक्ताहारस्वरूपं विस्तरेणोपदिशति;—

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जधा लद्धं ।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं ॥ २९ ॥

सरे ॥ १ ॥" इति श्लोककथितक्रमेण देहेऽपि ममत्वरहितः **आजुत्तो तं तवसा** आयुक्तवान् आयोजितवांस्तं देहं तपसा । किं कृत्वा । **अणिगूहिय** अनिगूह्य प्रच्छादनमकृत्वा । काम्? **अप्पणो सत्तिं** आत्मनः शक्तिमिति । अनेन किमुक्तं भवति—यः कोऽपि देहाच्छेषपरिग्रहं त्यक्त्वा देहेऽपि ममत्वरहितस्तथैव तं देहं तपसा योजयति स नियमेन युक्ताहारविहारो भवतीति ॥ २८ ॥ अथ युक्ताहारत्वं विस्तरेणाख्याति;—**एक्कं खलु तं भत्तं** एककाल एव खलु हि स्फुटं स भक्त आहारो युक्ताहारः कस्मादेकभक्तेनैव निर्विकल्पसमाधिसहकारिकारणभूतश-

---

हार क्रियासे रहित हुआ तथा [**आत्मनः शक्तिं**] अपने थिरताभावस्वरूप बलको [**अनिगूहन्**] नहीं छिपाता हुआ अर्थात् प्रगट करता हुआ [**तं**] उस देहको [**तपसा**] अनशनरूप तपस्यामें [**आयुक्तवान्**] लगाता है ॥ **भावार्थ**—मुनिके अन्य परिग्रह परमाणुमात्रभी नहीं किंतु मुनिअवस्थाका सहकारी कारण एकला देहमात्र परिग्रह है वह किसीप्रकार जबरदस्तीसे भी दूर नहीं किया जासकता है। इसलिये मुनिके केवल शरीरमात्र परिग्रहका निषेध नहीं है। और यद्यपि मुनिके शरीर है तौभी उस शरीरमें ममताभाव नहीं करते । तथा "किं किंचिणत्ति तक्कं" ऐसी पहले गाथा कही गई है उसमें सर्वज्ञ वीतरागका अभिप्राय यह है कि परिग्रह सर्वथा त्याज्य है ऐसा जानके भगवंतकी आज्ञाको ग्रहणकर शरीरमें ममताभावसे रहित होता है, देहके संभालनेमें प्रवृत्त नहीं होता, ममत्व बुद्धिकर अयोग्य आहारको ग्रहण नहीं करता, इस कारण मुनिके योग्यआहारकी सिद्धि होती है । उस शरीरको अयोग्य आहारसे पोषण नहीं करता यथाशक्ति तपस्यामेंही लगाता है । सारांश यह निकला कि मुनिके अंतरंग वीतराग भावका बल है इसलिये सब आरंभकर शरीरको उसमें लगाता है जो कभी आहारभी लेता है तो योग्य लेता है इसलिये वैराग्यके बलसे योग्य आहारकी सिद्धि है ॥ २८ ॥ आगे योग्य आहारका स्वरूप विस्तारसे दिखलाते हैं;—[**स भक्तः**] वह शुद्ध आहार [**खलु**] निश्चयकर [**एकः**]

एकः खलु स भक्तः अप्रतिपूर्णोदरो यथालब्धः ।
भैक्षाचरणेन दिवा न रसापेक्षो न मधुमांसः ॥ २९ ॥

एककाल एवाहारो युक्ताहारः, तावतैव श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरस्य धारणत्वात् । अनेककालस्तु शरीरानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । शरीरानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य अप्रतिपूर्णोदर एवाहारो युक्ताहारः तस्यैवाप्रतिहतयोगत्वात् । प्रतिपूर्णोदरस्तु प्रतिहतयोगत्वेन कथंचित् हिंसायतनीभवन् न युक्तः । प्रतिहतयोगत्वेन न च युक्तस्य यथालब्ध एवाहारो युक्ताहारः तस्यैव विशेषप्रि-

---

रीरस्थितिसम्भवात् । स च कथंभूतः? **अप्पडिपुण्णोदरं** यथाशक्त्या न्यूनोदरः **जहालद्धं** यथालब्धो न च स्वेच्छालब्धः **चरणं भिक्खेण** भिक्षाचरणेनैव लब्धो न च स्वपाकेन **दिवा** दिवैव न च रात्रौ । **ण रसावेक्खं** रसापेक्षो न भवति किन्तु सरसविरसादौ समचित्तः **ण मदुमंसं** अमधुमांसः अमधुमांस इत्युपलक्षणेन आचारशास्त्रकथितपिण्डशुद्धिक्रमेण समस्तायोग्याहाररहित इति । एतावता किमुक्तं भवति? एवंविशिष्टविशेषणयुक्त एवाहारस्तपोध-

---

एक काल (वक्त) ग्रहण किया जाता है तब योग्य आहार होता है । और वह योग्य आहार [**अप्रतिपूर्णोदरः**] नहीं पूर्ण होता है पेट जिससे ऐसा होता है [**यथालब्धः**] जैसा कुछ मिलै वैसाही अंगीकार करने योग्य है [**भिक्षाचरणेन**] भिक्षावृत्ति कर लेना योग्य है [**दिवा**] दिनमेंही लेने योग्य है [**न रसापेक्षः**] जिस आहारमें मिष्ट स्निग्धादि रसकी इच्छा न हो ऐसा तथा [**मधुमांसः न**] शहत और मांसादि अयोग्य वस्तुएं जिसमें नहीं हैं ॥ **भावार्थ**—मुनिको एकही वार आहार करना चाहिये क्योंकि मुनिपर्यायका सहायक शरीर है उस शरीरकी स्थिति एकवार आहार लेनेसे होजाती है इसलिये एक वक्त लेना योग्य है, और जो शरीरके अनुरागसे बार बार लेवे तो वह प्रमाद दशाकर द्रव्यभाव हिंसाका कारण होता है, इसवास्ते बार २ लेना अयोग्य है एकही काल लेना उचित है । और एक वारभी शरीरके अनुरागसे जो लिया जावे तो वहभी अयोग्य है संयमकी सिद्धिका कारण शरीरकी स्थितिके निमित्त जो लेना है वह योग्य है । और एक वारभी पेट भरके आहार लेना है वहभी अयोग्य है क्योंकि बहुत आहारसे योगकी शिथिलता होनेपर प्रमादवशता होजाती है वही हिंसाका कारण है इसलिये उदरभरके भोजन करना योग्य नहीं है ऊनोदर रहना ठीक है, और शरीरके अनुरागकर जो पेटभर भी न लिया जाय तो भी वह योग्य आहार नहीं है संयमका साधन शरीरकी स्थितीके निमित्तही ऊनोदर रहना ठीक है । जैसा कुछ मिलै वैसाही अंगीकार करै ऐसा नहीं कि अपनेलिये करावै इसलिये यथालब्ध आहार ठीक है और यथालब्ध आहारभी जो विशेष इन्द्रियस्वादके अनुरागसे किया जावे तो वह हिंसाका स्थान होता है इस-

यत्वलक्षणानुरागशून्यत्वात् । अयथालब्धस्तु विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य भिक्षाचरणेनैवाहारो युक्ताहारः तस्यैवारम्भशून्यत्वात् । अभैक्षचरणेन त्वारम्भसंभवात्प्रसिद्धहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य दिवस एवाहारो युक्ताहारः तदेव सम्यगवलोकनात् । अदिवसे तु सम्यगवलोकनाभावादनिवार्यहिंसायतनत्वेन न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य अरसापेक्ष एवाहारो युक्ताहारस्तस्यैवान्तःशुद्धिसुन्दरत्वात् । रसापेक्षस्तु अन्तरशुद्ध्या प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः । अन्तरशुद्धिसेवकत्वेन न च युक्तस्य अमधुमांस एवाहारो युक्ताहारः तस्यैवाहिंसायतनत्वात् । समधुमांसस्तु हिंसायतनत्वान्न युक्तः । एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य मधुमांसमत्र हिंसायतनोपलक्षणं तेन समस्तहिंसायतनशून्य एवाहारो युक्ताहारः ॥ २९ ॥

नानां युक्ताहारः । कस्मादिति चेत् ? चिदानन्दैकलक्षणनिश्चयप्राणरक्षणभूता रागादिविकल्पोपाधिरहिता या तु निश्चयनयेनाहिंसा तत्साधकरूपा बहिरङ्गपरजीवप्राणव्यपरोपणनिवृत्तिरूपा द्रव्याहिंसा च सा द्विविधापि तत्र युक्ताहारे सम्भवति । यस्तु तद्विपरीतः स युक्ताहारो न भवति । कस्मादिति चेत्? तद्विलक्षणभूताया द्रव्यरूपाया हिंसाया सद्भावादिति ॥ २९ ॥

कारण निषेध योग्य है, यदि संयमसाधक शरीरकी स्थितिके निमित्त लिया जावे तो वह योग्य है । भिक्षाकर जो आहार लिया जावे तो आरंभ नहीं करना पड़ता और यदि भिक्षाकर नहीं लिया जावे तो हिंसाका कारण आरंभ अवश्य होता है । इसलिये वह निषिद्ध है भिक्षावृत्ति योग्य है तथा रागभावसे अंतरंगकी अशुद्धताकर भिक्षावृत्तिसेभी ग्रहण करना अयोग्य आहार कहा जाता है । संयमसाधक शरीरकी स्थितिके लिये भिक्षा कर लेना योग्य है । दिनमें अच्छीतरह दिखलाई देता है दयाका पालन होता है इसलिये दिनका आहार योग्य है । रात्रिमें अच्छीतरह नहीं दिखलाई देता है । इसकारण अवश्य हिंसा होती है इसलिये रात्रिभोजन निषिद्ध है, और दिनका भी आहार सराग परिणामोंसे करना अयोग्य है संयमसाधनके निमित्त योग्य है । जो आहार सरस होगा उससे अवश्य अंतरंग अशुद्ध होगा ऐसा होनेपर हिंसाका कारण होजायगा इसलिये सरस आहार योग्य नहीं नीरस आहार योग्य है । मधुमांसयुक्त आहार हिंसाका स्थानक है इसलिये निषेध किया गया है इनसे रहित आहार योग्य है और जिन वस्तुओंमें मधुमांसका दोष लगता हो तथा हिंसा होती होवे ऐसी वस्तुओंका आहार योग्य नहीं है निःपाप आहार योग्य है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि जो आहार एक वक्त लिया जावे पेट भरके न लिया जावे भिक्षावृत्तिसे युक्त यथालब्ध दिनमें नीरस मांसादि दोषरहित लिया जावे वह आहार योग्य है इससे अन्यरीतिसे

अथोत्सर्गापवादमैत्रीसौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति;—

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा ।
चरियं चरउ सजोग्गं मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥ ३० ॥

बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा ।
चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति ॥ ३० ॥

बालवृद्धश्रान्तग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथास्य तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः । बालवृद्ध-

---

अथ विशेषेण मांसदूषणं कथयति;—

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु ।
संत्तत्तियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं ॥ १ ॥
जो पक्कमपक्कं वा पेसी मंसस्स खादि पासदि वा ।
सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं ॥ २ ॥ जुम्मं ।

भणित इत्यध्याहारः । स कः । **उववादो** व्यवहारनयेनोत्पादः । किंविशिष्टः । **संत्तत्तियं** सान्ततिको निरन्तरः । केषां सम्बन्धी । **णिगोदाणं** निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावानामनादिनिधनत्वेनोत्पादव्ययरहितानामपि निगोदजीवानाम् । पुनरपि कथंभूतानाम् ? **तज्जादीणं** तद्वर्णतद्गन्धतद्रसतत्स्पर्शत्वेन तज्जातीनां मांसजातीनाम् । कास्वधिकरणभूतासु ? **मंसपेसीसु** मांसपेशीषु मांसखण्डेषु । कथंभूतासु । **पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु** पक्कासु चामासु च विपच्यमानास्विति प्रथमगाथा । **जो पक्कमपक्कं वा** यः कर्त्ता पक्कामपक्कां वा **पेसीं** पेशीं खण्डं । कस्य ? **मंसस्स** मांसस्य **खादि** निजशुद्धात्मभावनोत्पन्नसुखसुधाहारमलभमानः सन् खादति भक्षति **पासदि वा** स्पर्शति वा **सो किल णिहणदि पिंडं** स कर्त्ता किल लोकोत्त्या परमागमोत्त्या वा निहन्ति पिण्डम् । केषाम् ? **जीवाणं** जीवानां । कतिसंख्योपे-

---

जो लेना है वह अयोग्य है ॥ २९ ॥ आगे उत्सर्गमार्ग और अपवादमार्गमें जो मैत्रीभाव होवे तब मुनिके आचारकी स्थिरता होसकती है इसलिये इन दोनोंमें मैत्रीभाव दिखलाते हैं;—[**बालो वा**] बालक हो [**वा**] अथवा [**वृद्धः**] बुड्ढा हो [**वा**] अथवा [**श्रमाभिहतः**] तपस्यासे खिन्न (दुःखी) हुआ हो [**वा पुनः**] अथवा [**ग्लानः**] रोगकर पीड़ित होवे ऐसा मुनि [**यथा मूलच्छेदः**] जिसतरह मूलसंयमका घात [**न भवति**] नहीं हो इसतरहका [**स्वयोग्यां**] अपनी शक्तिके अनुसार [**चर्यां**] आचरण [**चरतु**] करो ॥ **भावार्थ**—उत्सर्गमार्ग वहां है जहांपर मुनि, बाल वृद्ध खेद रोग इन चार अवस्थाओंकर सहित हो परंतु शुद्धात्मतत्त्वके साधनेवाले संयमका भंग (नाश) जिसतरह न हो उसतरह अति कठिन अपने योग्य आचरणको करो वहीं उत्सर्गमार्ग है । और जहांपर बालादि दशायुक्त

श्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः । बालवृद्धश्रान्तग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथास्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात् तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमाचरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः । बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथास्यात्तथा बालवृद्धश्रान्त-

---

तानाम् ? **अणेगकोडीणं** अनेककोटीनामिति । अत्रेदमुक्तं भवति—शेषकन्दमूलाद्याहाराः केचनानन्तकाया अप्यग्निपक्वाः सन्तः प्रासुका भवन्ति मांसं पुनरनन्तकायं भवति तथैव चाग्निपक्वमपक्वं पच्यमानं वा प्रासुकं न भवति । तेन कारणेनाभोज्यमभक्षणीयमिति ॥ १ । २ ॥ अथ पाणिगताहारः प्रासुकोऽप्यन्यस्मै न दातव्य इत्युपादिशति;—

अप्पडिकुट्ठं पिंडं[1] पाणिगयं णेव देयमण्णस्स ।
दत्ता भोत्तुमजोग्गं भुत्तो वा होदि पडिकुट्ठो ॥ ३ ॥

अप्पडिकुट्ठं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स अप्रतिकुष्ट आगमाविरुद्ध आहारः पाणिगतो हस्तगतो नैव देयो न दातव्योऽन्यस्मै **दत्ता भोत्तुमजोग्गं** दत्वा पश्चाद्भोक्तुमयोग्यं **भुत्तो वा होदि पडिकुट्ठो** कथंचित् भुक्तो वा भोजनं कृतवान् तर्हि प्रतिकुष्टो भवति प्रायश्चित्तयोग्यो भवतीति । अयमत्र भावः—हस्तगताहारं योऽसावन्यस्मै न ददाति तस्य निर्मोहात्मतत्त्वभावनारूपं निर्मोहत्वं ज्ञायत इति ॥ ३ ॥ अथ निश्चयव्यवहारसंज्ञयोरुत्सर्गापवादयोः

हुआ शुद्धात्मतत्त्वके साधनेवाले संयमका तथा संयमका साधक शरीरका नाश जिसतरह न हो उसतरह अपनी शक्तिके अनुसार कोमल आचरण करो ऐसा संयम पाले वहां अपवादमार्ग है । इसतरह मुनिमार्गके दो भेद हैं । उत्सर्ग अवस्थामें कैसा ही रोगादि दशाकर पीड़ित हो अपने अतिकठोर आचरण करै संयमको पाले, अपवाद अवस्थामें जो रोगादि अवस्थाकर पीड़ा हो तो शरीरकी रक्षा करै कोमल आचारमें प्रवर्तै संयमको पाले । इसतरह 'कठिन/कोमल' दो प्रकार मुनिके मार्ग हैं । जो इन दोनों मार्गोंमें आपसमें विरोध होवे जैसे कि उत्सर्गमार्गी अपवाद अवस्थाको न धारण करे और अपवादमार्गी उत्सर्ग अवस्थाको न धारण करे तो मुनिसे संयम नहीं पल सकता, क्योंकि जो उत्सर्गमार्गी कठोरही आचरण करे रोगादि अवस्थाके वशसे अन्यदशारूप अपवादमार्गको न धारण करे तो शरीरके नाशसे संयमका नाश करेगा । इसलिये उत्सर्गमार्गीको अपवादमार्गसे मैत्रीभाव रखना योग्य है और अपवादमार्गीको

---

१ 'अप्पडिकुट्ठाहारं' इत्यपि पाठः ।

ग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमथाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गसापेक्षोपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गापवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम् ॥ ३० ॥

कथंचित्परस्परसापेक्षभावं स्थापयन् चारित्रस्य रक्षां दर्शयति;—**चरदि** चरत्याचरति । किं । **चरियं** चारित्रमनुष्ठानम् । कथंभूतं । **सजोग्गं** स्वयोग्यमवस्थायोग्यम् । कथं यथाभवति । **मूलच्छेदो जधा ण हवदि** मूलच्छेदो यथा न भवति । स कः कर्त्ता चरति । **बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा** बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतः पीडितः श्रमाभिहतो वा ग्लानो व्याधिस्थो वेति । *तद्यथा*—उत्सर्गापवादलक्षणं कथ्यते तावत्स शुद्धात्मनः सकाशादन्यद्बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरूपं सर्वं त्याज्यमित्युत्सर्गो 'निश्चयनयः' सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्रासमर्थः पुरुषः शुद्धात्मभावनासहकारिभूतं किमपि प्रासुकाहारज्ञानोपकरणादिकं गृह्णातीत्यपवादो 'व्यवहारनय' एकदेशपरित्यागस्तथाचापहृतसंयमः सरागचारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः । तत्र शुद्धात्मभावनानिमित्तं सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गे दुर्द्धरानुष्ठाने प्रवर्त्तमानस्तपोधनः शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथा छेदो विनाशो न भवति तथा किमपि प्रासुकाहारादिकं गृह्णातीत्यपवादसापेक्ष उत्सर्गो भण्यते । यदा पुनरपवादलक्षणेऽपहृतसंयमे प्रवर्त्तते तथापि शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथोच्छेदो विनाशो न भवति तथोत्सर्गसापेक्षत्वेन प्रवर्त्तते । तथा प्रवर्त्तत इति कोऽर्थः ? यथा संयमविराधना न भवति तथेत्यु-

---

उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव करना योग्य है । जो अपवादमार्गी रोगादिकसे पीडित हुआ शरीरकी रक्षाकेलिये जघन्यही आचरण करनेमें प्रवृत्त होगा तो वह प्रमादी हुआ उत्कृष्ट संयमको नहीं पा सकेगा जघन्य संयमका भी नाश करेगा । इसलिये अपवादमार्गीको उत्सर्गमार्गसे मैत्रीभाव रखना योग्य है । वही मैत्रीभाव दिखलाते हैं—बाल वृद्ध खेद रोग इन दशाओंकर यद्यपि मुनि पीड़ित है तौभी शुद्धात्मतत्त्वका साधनेवाला जो संयम है उसका नाश जिसतरह न हो उसप्रकार अतिकठिन आचरणको आचरे परंतु वही मुनि जिसतरह संयमका कारण शरीरका नाश न हो उसप्रकार अपने योग्य कोमल आचरणभी आचरे । ऐसा मुनि अपवादमार्गकी अपेक्षासहित उत्सर्गमार्गी कहा जाता है । तथा बालवृद्ध खेद रोग इन अवस्थाओंकर सहित मुनि संयमका साधन शरीरका जिसतरह नाश न हो उसतरह अपने योग्य कोमल आचरणको आचरता है परंतु वही मुनि जिसतरह शुद्धात्मतत्त्वका साधक संयमका नाश न हो उसीप्रकार अतिकठोर आचरणको आचरे तो वह उत्सर्गमार्गकी अपेक्षा लियेहुए अपवादमार्गी है । इससे यह बात सिद्ध हुई कि उत्सर्ग और अपवाद इन दोनों मार्गोंमें जो परस्पर मैत्रीभाव होवे तो मुनिके आचारकी स्थिरता अच्छीतरह होसकती है ॥ ३० ॥ आगे

अथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थ्यमाचरणस्योपदिशति;—

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं ।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ ३१ ॥

आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिम् ।
ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्तते यद्यल्पलेपी सः ॥ ३१ ॥

अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरुपवासः । बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः, ततो बालवृद्धश्रान्तग्लाना एव त्वाकृष्यन्ते । अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्त्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव तद्वरमुत्सर्गः । देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य वृद्धाचरणप्रवृत्तत्वा-

---

त्सर्गसापेक्षोपवाद इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥ अथापवादनिरपेक्षमुत्सर्गं तथैवोत्सर्गनिरपेक्षमपवादं च निषेधयंश्चारित्ररक्षणाय व्यतिरेकद्वारेण तमेवार्थं द्रढयति;—**वट्टदि** वर्त्तते । स कः कर्त्ता । **समणो** शत्रुमित्रादिसमचित्तः श्रमणः यदि । किम्? **जदि अप्पलेवी सो** यदि चेदल्पलेपी स्तोकसावद्यो भवति । कयोर्विषययोर्वर्तते । **आहारे य विहारे** तपोधनयोग्याहारविहारयोः । किं कृत्वा । पूर्वं **जाणित्ता** ज्ञात्वा । कान् कर्मतापन्नान्? **देसं कालं समं खमं उपधिं** *देशं कालं मार्गादिश्रमं क्षम क्षमतामुपवासादिविषये शक्तिं उपधिं बालवृद्धश्रान्तग्लानसम्बन्धिनं शरीरमात्रोपधिं परिग्रहमिति पञ्च देशादीन् तपोधनाचरणसहकारिभूतानिति* । तथाहि—पूर्वकथितक्रमेण तावद्दुर्द्धरानुष्ठानरूपोत्सर्गे वर्त्तते । तत्र च प्रासुकाहारादिग्रहणनिमित्तमल्पलेपं दृष्ट्वा

उत्सर्ग अपवादमार्ग इन दोनोंमें जो आपसमें विरोध हो तो मैत्रीभाव न होवे उसके न होनेसे आचारकी स्थिरता नहीं होसकती यह कहते हैं;—**[स श्रमणः]** वह अपवादमार्गी अथवा उत्सर्गमार्गी मुनि **[यदि]** जो **[अल्पलेपी]** थोड़े कर्म बंधकर लिप्त होता है तो **[देशं]** क्षेत्र **[कालं]** शीत उष्णादिकाल **[श्रमं]** मार्गादिकका खेद **[क्षमां]** उपवासादि करनेकी शक्ति **[उपधिं]** और बालवृद्ध रोगादि अवस्थायुक्त शरीररूप परिग्रह **[तान्]** इन पांचोंको **[ज्ञात्वा]** अच्छीतरह जानकर **[आहारे]** मुनियोग्य आहारक्रियामें **[वा]** अथवा **[विहारे]** हलन चलनादि क्रियामें **[वर्तते]** प्रवृत्त होता है ॥ **भावार्थ**—जो परमविवेकी उत्सर्गी अथवा अपवादी मुनि इन देशआदि पांच भेदोंको जानकर जिस क्रियामें कर्मबंध थोड़ा हो और संयमका भंग न हो ऐसी आहार क्रियामें प्रवर्ते तो दोष नहीं है क्योंकि संयमकी रक्षानिमित्त जिसतरह शरीरका नाश न हो उसप्रकार कठोर अथवा कोमल क्रियामें प्रवर्तता है । इसवास्ते देश कालका जाननेवाला उत्सर्गमार्गी मुनि बाल वृद्ध खेद रोग अवस्थाओंके कारण आहारविहारमें प्रवृत्त होता है, कोमल क्रियाको आचरता है और अल्पकर्मबंध भी जिसमें होता है ऐसी अपवाद अवस्थाको

दल्प एव लेपो भवति तद्वरमपवादः । देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपभयेनाप्रवर्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयति । सुरलोकं प्राप्योद्वान्तसमस्तसंयमामृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति । तन्न श्रेयानपवादनिरपेक्ष उत्सर्गः । देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपत्वं विगणय्य यथेष्टं प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयानुत्सर्गनिरपेक्षोपवादः । अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थित्यमाचर-

---

यदि न प्रवर्त्तते तदा आर्त्तध्यानसङ्क्लेशेन शरीरत्यागं कृत्वा पूर्वकृतपुण्येन देवलोके समुत्पद्यते । तत्र संयमाभावान्महान् लेपो भवति । ततः कारणादपवादनिरपेक्षमुत्सर्गं त्यजति । शुद्धात्मभावनासाधकमल्पलेपं बहुलाभमपवादसापेक्षमुत्सर्गं स्वीकरोति तथैव च पूर्वसूत्रोक्तक्रमेणापहृतसंयमशब्दवाच्येऽपवादे प्रवर्त्तते तावत्प्रवर्त्तमानः सन् यदि कथंचिदौषधपथ्यादिसावद्यभयेन व्याधिव्यथादिप्रतीकारमकृत्वा शुद्धात्मभावनां न करोति तर्हि महान् लेपो भवति । अथवा प्रतीकारे

धारता हुआ उत्सर्गमुनि बहुत अच्छा है, जो कि शरीररक्षा करके भी संयमका भंग नहीं होने देता है । और देशकालादिका जाननेवाला अपवादमार्गी मुनि, बाल वृद्ध खेद रोग अवस्थाओंके वश आहार विहार क्रियामें प्रवर्तता हुआ कोमल आचरणोंको आचरता है प्रमादी हुआ अति कोमल आचरणकर संयमका नाश भी नहीं करता है । जहांपर संयमका नाश हुआ जानता है वहां कठोर क्रिया भी करता है, अतिशिथिल भी नहीं होता । शरीरकी रक्षा करके संयमको पालता है अल्पबंध भी होता है ऐसी उत्सर्ग अवस्थाको लिये हुए अपवादमार्गी मुनि बहुत अच्छा है जो कि संयमको भी पालता है और शरीरको भी डिगने नहीं देता । तथा देशकालादिका जाननेवाला उत्सर्गमुनि, बाल वृद्ध रोग खेद अवस्थाओंके होनेपर जो अल्पकर्म बंधके भयसे कोमल आचारको नहीं आचरण करे, आहार विहार क्रियामें नहीं प्रवर्तै और मनमें यह जाने कि मैं इस उत्कृष्ट उत्सर्ग संयमको धारण करता हूं मुझको जघन्यदशास्वरूप अपवाद संयम योग्य नहीं है तथा जो हीन अवस्थाको धारण करूंगा तो बंध होगा ऐसा जानकर उत्कृष्ट ही आचारका आचारण करे तो वह मुनि अतिकठोर तप करके शरीरका नाशकर देवलोकमें जाके उत्पन्न होता है वहां संयमरूप अमृतका वमन (उल्टी) करता है, क्योंकि देवपद तपस्याका कारण नहीं है । इसलिये वहांपर वही जीव महाकर्मबंधसे लिप्त होता है । इसकारण जो उत्सर्गमार्गी अपवाद मार्गसे मैत्रीभाव नहीं करता तो वह उत्सर्गमार्गी अच्छा नहीं है, जो कि शरीरका नाशकर संयमका नाश करता है । तथा जो देशकालादिका जाननेवाला अपवाद मुनि, बालवृद्ध खेद रोग अवस्थाओंके होनेपर आहार विहारमें प्रवृत्ति करे और मनमें यह समझे कि सिद्धान्तोंमें कहा है कि जो अल्प-

विजृम्भमाणक्षोभतया कदाचिद्बुभुक्षाभावितस्य विश्वं स्वयं भोग्यतयोपादाय रागद्वेषदोषकल्माषितचित्तवृत्तेरिष्टानिष्टविभागेन प्रवर्तितद्वैतस्य प्रतिवस्तु परिणममानस्यात्यन्तविसंस्थुलतयाः कृतनिश्चयस्य निःक्रियनिर्भोगं युगपदापीतविश्वमप्यविश्वतयैकं भगवन्तमात्मानमपश्यतः सततं वैयग्र्यमेव स्यात् । न चैकाग्र्यमन्तरेण श्रामण्यं सिद्ध्येत्, यतो नैकाग्र्यस्यानेकमेवेदमिति पश्यतस्तथाप्रत्ययाभिनिविष्टस्यानेकमेवेदमिति जानतस्तथानुभूतिभावितस्यानेकमेवेदमितिप्रत्यर्थविकल्पव्यावृत्तचेतसा संततं प्रवर्तमानस्य तथा वृत्तिदुःस्थितस्य चैकात्मप्रती-

---

अथैकाग्र्यगतः श्रमणो भवति । तच्चैकाग्र्यमागमपरिज्ञानादेव भवतीति प्रकाशयति;—**एयग्गगदो समणो** ऐकाग्र्यगतः श्रमणो भवति । अत्रायमर्थः—जगत्त्रयकालत्रयवर्तिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायैकसमयपरिच्छित्तिसमर्थसकलविमलकेवलज्ञानलक्षणनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपमैकाग्र्यं भण्यते । तत्र गतस्तन्मयत्वेन परिणतः श्रमणो भवति । **एयग्ग णिच्छिदस्स** ऐकाग्र्यं पुनर्निश्चितस्य तपोधनस्य भवति । केषु । **अत्थेसु** टङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतिष्वर्थेषु **णिच्छित्ती आगमदो** सा च पदार्थनिश्चितिरागमतो

चंचल भावकर कभी कर्तृत्व ज्वरके आवेशसे पराधीन हुआ तीन लोकका आप कर्ता होता है संपूर्ण परभावोंके उत्पन्न करनेकी इच्छासे समस्त द्रव्योंके व्यापाररूप परिणमन करता है और समय समयमें अहंताबुद्धिसे क्षोभभावकर हवासे क्षोभित समुद्रकी तरह क्षोभित हुआ कभी भोगनेकी इच्छा करता है, समस्त त्रैलोक्यका भोक्ता अपनेको मानता है सबको भोग्य जानता है कि यह मेरी वस्तु है मैं इसका भोगनेवाला हूं । और रागद्वेष भावोंकर कलंकित (मलीन) चित्त होता है इष्ट अनिष्ट वस्तुओंमें द्विविधभेद मानकर प्रवर्तता है हरएक वस्तुमें आत्म बुद्धिकर परिणमता है अत्यंत शिथिल भावकर बहिर्मुख हुआ परमें आत्माका निश्चय करता है । और वह अकर्ता अभोक्ता अपनी ज्ञानशक्तिकर एकही समय समस्त लोकालोकका पीनेवाला (जाननेवाला) और अपने स्वरूपसे एक है ऐसे भगवंत आत्माको देखता जानता नहीं है हमेशा चंचलतासे क्लेशयुक्त रहता है । इसकारण पदार्थोंके निश्चयविना एकाग्रता नहीं होती इसीसे पदार्थोंका निश्चय करना योग्य है । एकाग्रता विना मुनिपदकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि वह स्वरूपको पर उपाधिकर अनेकरूप देखता है अनेकतारूप प्रतीतिके आवेशसे अनेकरूप जानता है अनेकही स्वरूप देखता है । अनेकरूप अनुभव करता है कि मेरा स्वरूप अनेक है सब परभावोंसे रहित एक स्वरूपको देखता जानता अनुभवता नहीं है, इसीलिये हरएक पदार्थमें निरंतर आत्मभावसे प्रवर्तता है संकल्प विकल्परूप चित्तकी प्रवृत्ति धारण करता है । इसप्रकार एकाग्रताविना अथिर दुस्थित हुआ पुरुष अपने एक स्वरूपके अनुभवकी प्रवृत्तिकर ज्ञानदर्शन चारित्ररूप आत्मतत्वकी एकाग्रताको कैसे पासकता है । जहांपर एकाग्रता न हो वहां शुद्धात्मतत्त्वअनुभवरूप मुनिपद

मूतिवृत्तिस्वरूपसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र [illegible] प्रवृत्तदृशिज्ञप्तिवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकाग्र्याभा- शुद्धात्मतत्त्वप्रवृत्तिरूपं श्रामण्यमेव [illegible] स्यात्। अतः सर्वथा मोक्षमार्गापरनाम्नः [illegible]ण्यस्य सिद्धये भगवदर्हत्सर्वज्ञोपज्ञे प्रक[illegible]नेकान्तकेतने शब्दब्रह्मणि निष्णातेन मुमु- [illegible]णा भवितव्यम् ॥ ३२ ॥

अथागमहीनस्य मोक्षाख्यं कर्मक्षपणं न सम्भवतीति प्रतिपादयति;—

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।
अविजाणंतो अत्थे खवेदि कम्माणि किध भिक्खू ॥ ३३ ॥

आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं विजानाति।
अविजानन्नर्थान् क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुः ॥ ३३ ॥

न खल्वागममन्तरेण परात्मज्ञानं परमात्मज्ञानं वा स्यात्, न च परात्मज्ञानशून्यस्य [illegible]रमात्मज्ञानशून्यस्य [illegible] मोहादिद्रव्यभावकर्मणां ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां वा क्षपणं स्यात्। [illegible]थाहि—न तावन्निरागमस्य निरवधिभवापगाप्रवाहवाहिमहामोहमलमलीमसस्यास्य ज-

[illegible]वति। तथाहि—जीवभेदकर्मभेदप्रतिपादकागमाभ्यासाद्भवति न केवलमभ्यासात्तथैवागमपदे [illegible]तरभ [illegible]कपरमात्मतत्त्वप्रकाशकादध्यात्माभिधानात्परमागमाच्च पदार्थपरिच्छित्तिर्भवति [illegible] तदो जेट्ठा ततः कारणादेव मुक्तलक्षणागमपरमागमे च चेष्टा प्रवृत्तिः ज्येष्ठा [illegible]र्थः ॥ ३२ ॥ अथागमपरिज्ञानहीनस्य कर्मक्षपणं न भवतीति प्ररूपयति;— [आ]गमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि आगमहीनः श्रमणो नैवात्मानं परं [illegible] विजानाति अविजाणंतो अट्ठे अविजानन्नर्थान्परमात्मादिपदार्थान् खवेदि कम्माणि [कि]ह भिक्खू क्षपयति कर्माणि कथं भिक्षुर्न कथमपि इति। इतो विस्तरः—"गुणजीवा-

किसतरह हो सके? नहीं होता। इससे यह बात सिद्ध हुई कि जिसका दूसरा नाम मोक्षमार्ग है ऐसा जो यह मुनिपद है उसकी सिद्धिके निमित्त अर्हत सर्वज्ञ कथित प्रगट अनेकान्त ध्वजासहित ब्रह्मरूप सिद्धांत मुक्तिवांछक पुरुषोंकर आदर करने योग्य है। सि[द्धा]न्तके अभ्याससे पदार्थोंका निश्चय होता है उस निश्चयसे एकाग्रता होती है उस एकाग्रतासे मुनिपद होता है, मुनिपद और मोक्षमार्ग एक है। इसकारण मोक्षाभिला- [षि]योंको आगम अभ्यास करना उचित है ॥ ३२ ॥ आगे आगमकर जो रहित है उसके [illegible] कर्मोंकी क्षपणा (क्षय) नहीं होती यह कहते हैं;—[आगमहीनः श्र- [illegible]] [illegible]कर रहित मुनि [आत्मानं] नोकर्म द्रव्यकर्म भावकर्मसे रहित [illegible] और [परं] पर शरीरादि द्रव्य भाव कर्मोंको [नैव] निश्चयकर नहीं [[illegible]] जानता है, और [अर्थान्] जीव अजीवादि पदार्थोंको [अवि- जानन्] [illegible] हुआ [भिक्षुः] मुनि [कर्माणि] द्रव्यभावरूप समस्त कर्मोंको [[illegible]] [illegible] [[illegible]पयति] नाश कर सकता है ॥ भावार्थ—जिस जी-

गतः पीतोन्मत्तकस्येवावकीर्णविवेकस्याविविक्तेन ज्ञानज्योतिषा निरूपयतोप्यात्मात्म निश्चितशरीरादिद्रव्येषूपयोगमिश्रितमोहरागद्वेषादिभावेषु च स्वपरनिश्चायकागमोपदे कस्वानुभवाभावादयं परोऽयमात्मेति ज्ञानं सिद्ध्येत् । तथाच त्रिसमयपरिपाटीप्र विचित्रपर्यायप्राग्भारागाधगम्भीरस्वभावं विश्वमेव ज्ञेयीकृत्य प्रतपतः परमात्मनिश्चाय गमोपदेशपूर्वकस्वानुभवाभावात् ज्ञानस्वभावस्यैकस्य परमात्मनो ज्ञानमपि न सिद्ध्येत परात्मपरमात्मज्ञानशून्यस्य तु द्रव्यकर्मारब्धैः शरीरादिभिस्तत्प्रत्ययैर्मोहरागद्वेषादिभावैः सहैक्यमाकलयतो वध्यघातकविभागाभावान्मोहादिद्रव्यभावकर्मणां क्षपणं न सिद्ध्येत्

पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य। उवओगोवि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा" इति गाथाकथिताद्यागममजानन् तथैव "भिण्णउ जेण ण जाणियउ णियदेहहपरमत्थु । अट्उ अवरद्दाहं किं वादरिसइपत्थु" इति दोहकसूत्रकथिताद्यागमपदसारभूतमध्यात चाजानन् पुरुषो रागादिदोषरहिताव्याबाधसुखादिगुणस्वरूपनिजात्मद्रव्यस्य भावकर्म मिधेयै रागादिनानाविकल्पजालैर्निश्चयेन कर्मभिः सह भेदं न जानाति तथैव क विध्वंसकस्वकीयपरमात्मतत्त्वस्य ज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मभिरपि सह पृथक्त्वं न वेत्ति । चाशरीरलक्षणशुद्धात्मपदार्थस्य शरीरादिनोकर्मकर्मभिः सहान्यत्वं न जानाति । इत्य

वको सिद्धान्तका ज्ञान न हो और आगमके पढने सुननेरूप अभ्याससे रहित हो उसको अपना और परका ज्ञान नहीं होता और निर्विकल्परूप परमात्माकाभी ज्ञान नहीं होता है । इसीको दिखलाते हैं—अनंत संसाररूप नदीका बढानेवाला जो यह महा मोह है उससे कलंकी (मलीन) हुए जगतजीव हैं वे भगवंतप्रणीत आगमविना विवेकसे रहित हैं जैसे धतूरेको पीकर उन्मत्त (बावला) हुआ मनुष्य करने योग्य और अकार्यको नहीं जानता उसतरह अनजान हो रहे हैं, पर और आत्माको एक स्वरूप देखते हैं जानते हैं शरीरादि परद्रव्यमें और उपयोगसे मिले हुए रागद्वेष मोहभावोंमें एकता मानते हैं । स्वपरभेदका कारण जो सिद्धांत उसके उपदेशसे जिसके आत्माका अनुभव नहीं हुआ है इसकारण उसके यह आत्मा है यह पर है ऐसे भेदविज्ञानकी सिद्धि नहीं होती और निर्विकल्प समाधिकर एक परमात्मज्ञानकी भी सिद्धि नहीं होती । वह परमात्मा तीन कालसंबंधी अनंत नानाप्रकार पर्यायोंसहित लोक अलोकरूप समस्त ज्ञेयको एक समयमें जानकर प्रकाशमान है ऐसे केवलज्ञानस्वभावरूप आत्मा[illegible] जानता है । जो परमात्माके भेद विज्ञानकर शून्य है और परमात्मज्ञानकर [illegible] है वह पुरुष द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मसे आत्माको एक (मिला हुआ) मानता है ऐसा नहीं समझता कि ये कर्म आत्माके घातक हैं आत्मा इनसे घाता [illegible] इसीलिये आत्माके स्वभाव नहीं हैं ऐसा भेद नहीं जानता और समस्त विकल्पोंसे रहित होके स्वरूपको नहीं अनुभवता तो बतलाइये कि ऐसे जीवके मोह [illegible] द्रव्यभावकर्मोंका

तथाच ज्ञेयनिष्ठतया प्रतिवस्तु पातोत्पातपरिणतत्वेन ज्ञप्तेरासंसारात्परिवर्तमानायाः परमात्मनिष्ठत्वमन्तरेणानिवार्यपरिवर्ततया ज्ञप्तिपरिवर्तरूपकर्मणां क्षपणमपि न सिद्ध्येत् । अतः कर्मक्षपणार्थिभिः सर्वथागमः पर्युपास्यः ॥ ३३ ॥

अथागम एवैकश्चक्षुर्मोक्षमार्गमुपसर्पतामित्यनुशास्ति;—

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू ॥ ३४ ॥

आगमचक्षुः साधुरिन्द्रियचक्षूंषि सर्वभूतानि ।
देवाश्चावधिचक्षुषः सिद्धाः पुनः सर्वतश्चक्षुषः ॥ ३४ ॥

इह तावद्भगवन्तः सिद्धा एव शुद्धज्ञानमयत्वात्सर्वतश्चक्षुषः शेषाणि तु सर्वाण्यपि भूतानि मूर्तद्रव्यावसक्तदृष्टित्वादिन्द्रियचक्षूंषि, देवास्तु सूक्ष्मत्वविशिष्टमूर्तद्रव्यग्राहित्वाद-

---

भेदज्ञानाभावाद्देहस्थमपि निजशुद्धात्मानं न रोचते । समस्तरागादिपरिहारेण न च भावयति । ततश्च कथं कर्मक्षयो भवति न कथमपीति । ततः कारणान्मोक्षार्थिना परमागमाभ्यास एव कर्त्तव्य इति तात्पर्यार्थः ॥ ३३ ॥ अथ मोक्षमार्गार्थिनामागम एव दृष्टिरित्याख्याति;—**आगमचक्खू** शुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादकपरमागमचक्षुषो भवन्ति । के ते । **साहू** निश्चयरत्नत्रयाधारेण निजशुद्धात्मसाधकाः साधवः **इंदियचक्खूणि** निश्चयेनातीन्द्रियामूर्तकेवलज्ञानादिगुणस्वरूपाण्यपि व्यवहारेणानादिकर्मबन्धवशादिन्द्रियाधीनत्वेनेन्द्रियचक्षूंषि भवन्ति । कानि कर्तॄणि ।

क्षय किस तरहसे होवे? नहीं हो सकता। और वही जीव अपनी भूलसे पर ज्ञेयोंमें तिष्ठता है हर एक पदार्थमें ग्रहण और त्यागसे राग द्वेषभावरूप परिणमन करता है इसलिये उस जीवका ज्ञान अनादि कालसे उलटा हो रहा है परमात्मस्वरूपमें स्थिर नहीं होता। ऐसे जीवके अथिर शुद्धक्षयोपशमरूप ज्ञानकर्मकी भी क्षपणा नहीं होती जो कि भेदविज्ञानकर शून्य है और परमात्मज्ञानकर शून्य है। इसकारण अज्ञानीके द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म अथिर ज्ञानकर्म इनका नाश नहीं होता। इसलिये इन कर्मोंके क्षयके निमित्त आगमका अभ्यास योग्य है ॥ ३३ ॥ आगे मोक्षमार्गी जीवोंके एक सिद्धांतही नेत्र है यह कहते हैं;—[**साधुः**] मुनि [**आगमचक्षुः**] सिद्धांतरूपी नेत्रोंवाला होता है अर्थात् मुनिके मोक्षमार्गकी सिद्धिके निमित्त आगम नेत्र होते हैं [**सर्वभूतानि**] समस्त संसारी जीव [**इंद्रियचक्षूंषि**] मनसहित स्पर्शनादि छह इन्द्रियोंरूप चक्षुवाले हैं अर्थात् संसारी जीवोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंके जाननेकेलिये इंद्रियही नेत्र हैं [**च**] और [**देवाः**] चार तरहके देव [**अवधिचक्षुषः**] अवधिज्ञानरूप नेत्रोंवाले हैं अर्थात् देवताओंके सूक्ष्म मूर्तीक द्रव्य देखनेको अवधिज्ञान नेत्र हैं लेकिन वह अवधिज्ञान इंद्रियज्ञानसे विशेष नहीं क्योंकि अवधि मूर्तद्रव्यको ग्रहण करता है और इन्द्रिय नेत्रभी मूर्तीकको ग्रहण करता है इससे इन

वधिचक्षुषः । अथ च तेपि रूपिद्रव्यमात्रदृष्टत्वेनेन्द्रियचक्षुर्भ्योऽविशिष्यमाणा इन्द्रियचक्षुष एव । एवममीषु समस्तेष्वपि संसारिषु मोहोपहततया ज्ञेयनिष्ठेषु सत्सु ज्ञाननिष्ठत्वमूलशुद्धात्मतत्त्वसंवेदनसाध्यं सर्वतश्चक्षुस्त्वं न सिद्ध्येत् । अथ तत्सिद्धये भगवन्तः श्रमणा आगमचक्षुषो भवन्ति । तेन ज्ञेयज्ञानयोरन्योन्यसंवलनेनाशक्यविवेचनत्वे सत्यपि स्वपरविभागमारचय्य निर्भिन्नमहामोहाः सन्तः परमात्मानमवाप्य सततं ज्ञाननिष्ठा एवावतिष्ठन्ते । अतः सर्वमप्यागमचक्षुषैव मुमुक्षूणां द्रष्टव्यम् ॥ ३४ ॥

अथागमचक्षुषा सर्वमेव दृश्यत एवेति समर्थयति;—

सव्वे आगमसिद्धा अत्था गुणपज्जएहिं चित्तेहिं ।
जाणंति आगमेण हि पेच्छित्ता तेवि ते समणा ॥ ३५ ॥

सर्वे आगमसिद्धा अर्था गुणपर्यायैश्चित्रैः ।
जानन्त्यागमेन हि दृष्ट्वा तानपि ते श्रमणाः ॥ ३५ ॥

आगमेन तावत्सर्वाण्यपि द्रव्याणि प्रमीयन्ते, अविशिष्टतर्कणस्य सर्वद्रव्याणामविरु-

---

सव्वभूदाणि सर्वभूतानि सर्वसंसारिजीवा इत्यर्थः **देवावि ओहिचक्खू** देवा अपि सूक्ष्ममूर्तपुद्गलद्रव्यविषयावधिचक्षुषः **सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू** सिद्धाः पुनः शुद्धबुद्धैकस्वभावजीवाजीवलोकाकाशप्रमितशुद्धासंख्येयसर्वप्रदेशचक्षुष इति । अनेन किमुक्त भवति सर्वशुद्धात्मप्रदेशे लोचनोत्पत्तिनिमित्तं परमागमोपदेशादुत्पन्नं निर्विकारं मोक्षार्थिभिः स्वसंवेदनज्ञानमेव भावनीयमिति ॥ ३४ ॥ अथागमलोचनेन सर्वं दृश्यत इति प्रज्ञापयति;— **सव्वे आगमसिद्धा** सर्वेऽप्यागमसिद्धा आगमेन ज्ञाताः । के ते । **अत्था** विशुद्धज्ञान-

---

दोनोंमें समानता है [**पुनः**] तथा [**सिद्धाः**] अष्टकर्मरहित सिद्ध भगवान् [**सर्वतः चक्षुषः**] सब ओरसे नेत्रोंवाले हैं ॥ **भावार्थ**—संसारमें जितने संसारी जीव हैं वे सब अज्ञानकर आच्छादित हैं इसकारण परज्ञेय पदार्थोंमें मोहित हैं ज्ञानस्वरूप शुद्धात्मज्ञानसे रहित हैं इससे इनके अतीन्द्रिय सबका देखनेवाला नेत्र नहीं है सर्वदर्शी तो एक सिद्ध भगवान् हैं, उस सिद्धपदकी प्राप्तिके निमित्त जो मोक्षमार्गी महामुनि हैं वे आगमनेत्रके धारक होते हैं उस आगमनेत्रसे स्वरूप पररूपका भेद करते हैं । यद्यपि ज्ञेय ज्ञानकी परस्पर एकता हो रही है भेद नहीं किया जाता है तौभी आगमनेत्रके बलसे लक्षणभेद जुदे २ किये जाते हैं इस भेदविज्ञानकी शक्तिकर प्राणी महामोहको जीतता है पीछे परमात्मतत्त्वको पाता है तब निरंतर आनंदज्ञानमें तिष्ठता है । इसलिये सर्वदर्शी सिद्धपदका साधक आगमको जानकर मुक्तिके इच्छुक महामुनि सबको आगमनेत्रकर देखते हैं आगम बड़ा नेत्र है ॥ ३४ ॥ आगे आगम नेत्रकर सब देखा जाता है यह बात दृढ करते हैं;—[**सर्वे अर्थाः**] सभी जीव अजीवादि पदार्थ हैं वे [**चित्रैः**] नानाप्रकारके [**गुणपर्यायैः**] गुण पर्या-

द्भत्वात्। विचित्रगुणपर्यायविशिष्टानि च प्रतीयन्ते, सहक्रमप्रवृत्तानेकधर्मव्यापकानेकान्तमयत्वेनैवागमस्य प्रमाणत्वोपपत्तेः। अतः सर्वेऽर्था आगमसिद्धा एव भवन्ति। अथ ते श्रमणानां ज्ञेयत्वमापद्यन्ते स्वयमेव, विचित्रगुणपर्यायविशिष्टसर्वद्रव्यव्यापकानेकान्तात्मकश्रुतज्ञानोपयोगीभूय विपरिणमनात्। अतो न किंचिदप्यागमचक्षुषामदृश्यं स्यात्॥ ३५॥

अथागमज्ञानतत्पूर्वतत्त्वार्थश्रद्धानतदुभयपूर्वसंयतत्वानां यौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति;—

आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स।
णत्थित्ति भणइ सुत्तं असंजदो हवदि किध समणो॥ ३६॥

दर्शनस्वभावो योऽसौ परमात्मपदार्थस्तत्प्रभृतयोऽर्थाः। कथं सिद्धाः। **गुणपज्जएहिं चित्तेहिं** विचित्रगुणपर्यायैः सह। **जाणंति** जानन्ति। कान्। **तेवि** तान् पूर्वोक्तार्थगुणपर्यायान्। किंकृत्वा पूर्वं। **पेच्छित्ता** दृष्ट्वा ज्ञात्वा। केन? **आगमेण य** आगमेनैव। अयमत्रार्थः—पूर्वमागमं पठित्वा पश्चाज्जानन्ति **ते समणा** ते श्रमणा भवन्तीति। अत्रेदं भणितं भवति—सर्वे द्रव्यगुणपर्यायाः परमागमेन ज्ञायन्ते। कस्मात्? आगमस्य परोक्षरूपेण केवलज्ञानसमानत्वात्, पश्चादागमाधारेण स्वसंवेदनज्ञाने जाते स्वसंवेदनज्ञानबलेन केवलज्ञाने च जाते प्रत्यक्षा अपि भवन्ति। ततः कारणादागमचक्षुषा परंपरया सर्वं दृश्यं भवतीति॥ ३५॥ एवमागमाभ्यासकथनरूपेण प्रथमस्थले सूत्रचतुष्टयं गतम्। अथागमपरिज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-

---

योंकर [**आगमसिद्धाः**] सिद्धांतमें सिद्ध हैं [**तान् अपि**] गुण पर्यायोंसहित उन पदार्थोंकोभी [**ते श्रमणाः**] वे मोक्षमार्गी महामुनि [**हि**] निश्चयकर [**आगमेन दृष्ट्वा**] सिद्धांत नेत्रसे देखकर [**जानन्ति**] जानते हैं॥ **भावार्थ**—जितने जीव अजीवादि पदार्थ हैं उनके गुणपर्यायोंके भेदसे जो स्वरूप है वह अनादि निधन सिद्धान्तमें अच्छीतरह सिद्ध किया है अर्थात् सिद्धांतमें द्रव्यगुणपर्यायका स्वरूप यथार्थ कहा है किसी तर्क (न्याय) से खंडित नहीं होता अविरोधरूप है। सहभावी गुण और क्रमवर्ती पर्याय इन दो भेदोंकर द्रव्यमें जो अनंतधर्म हैं उन स्वरूप अनेकांतको आगम कहा है इससे प्रमाण है, क्योंकि नाना प्रकारके गुणपर्याय सहित सब द्रव्योंके अनेकांतस्वरूपका कहनेवाला है। ऐसे आगम नेत्रकर महामुनि सकल पदार्थोंके स्वरूपको देखते हैं जानते हैं। सब पदार्थ ज्ञेय हैं महामुनि ज्ञाता हैं द्रव्यश्रुत आगमको जानकर भावश्रुत ज्ञानके उपयोगी होकर परिणमे हैं इसकारण महामुनि आगमके बलसे सबको देखते हैं इसीलिये आगम नेत्रकर कुछभी अन दीखता नहीं रहता। इसकारण मोक्षाभिलाषीको अभ्यास करना योग्य है॥ ३५॥ आगे सिद्धांतका ज्ञान और उस सिद्धांतके अनुसार श्रद्धान और ज्ञान श्रद्धान संयुक्त संयम ये तीनों जो

आगमपूर्वा दृष्टिर्न भवति यस्येह संयमस्तस्य ।
नास्तीति भणति सूत्रमसंयतो भवति कथं श्रमणः ॥ ३६ ॥

इह हि सर्वस्यापि स्यात्कारकेतनागमपूर्विकया तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणया दृष्ट्या शून्यस्य स्वपरविभागाभावात् कायकषायैः सहैक्यमध्यवसतो निरुद्धविषयाभिलाषतया षड्जीवनिकायघातिनो भूत्वा सर्वतोपि कृतप्रवृत्तेः सर्वतो निवृत्त्यभावात्तथा परमात्मज्ञानाभावाद् ज्ञेयचक्रमाक्रमणनिर्मलज्ञप्तितया ज्ञानरूपात्मतत्त्वैकाग्र्यप्रवृत्त्यभावाच्च संयम एव न तावत् सिद्ध्येत् । असिद्धसंयमस्य तु सुनिश्चितैकाग्र्यगतत्वरूपं मोक्षमार्गापरनामश्रामण्यमेव न

तदुभयपूर्वकसंयतत्वत्रयस्य मोक्षमार्गत्वं नियमयति;—**आगमपुव्वा दिट्ठी ण हवदि जस्सेह** आगमपूर्विका दृष्टिः सम्यक्त्वं नास्ति यस्येह लोके **संजमो तस्स णत्थि** संयमस्तस्य नास्ति **इदि भणदि** इत्येवं भणति कथयति । किं कर्तृ । **सुत्तं** सूत्रमागमः **असंजदो होदि किह समणो** असंयतः सन् श्रमणस्तपोधन कथं भवति न कथमपीति । तथाहि—यदि निर्दोषिनिजपरमात्मैवोपादेय इति रुचिरूपं सम्यक्त्वं नास्ति तर्हि परमागमबलेन विशदैक-

एक कालमें होवें तो मोक्षमार्ग होता है ऐसा निश्चय करते हैं;—[**इह**] इस लोकमें [**यस्य**] जिस जीवके [**आगमपूर्वा**] पहले अच्छीतरह सिद्धान्तको जानकर [**दृष्टिः**] सम्यग्दर्शन [**न भवति**] नहीं हो [**तस्य**] तो उसके [**संयमः**] मुनिकी क्रियारूप आचार [**नास्ति**] नहीं होता [**इति**] यह बात [**सूत्रं**] जिनप्रणीत सिद्धांत [**भणति**] कहता है [**असंयतः**] और जिसके संयमभाव नहीं है वह पुरुष [**कथं**] कैसे [**श्रमणः**] मुनि [**भवति**] होसकता है? नहीं हो सकता ॥ भावार्थ—जिस पुरुषके प्रथमही आगमको जानकर पदार्थोंका श्रद्धान न हुआ हो उस पुरुषके संयमभावभी नहीं होता यह निश्चय है और जिसके संयम नहीं हैं वह मुनि नहीं कहा जाता । जिसके आगमको जानकर श्रद्धान हुआ हो वही मुनि कहलाता है अन्यथा नहीं कहा जाता इसी कथनको विशेष कर दिखलाते हैं—ज्ञानदर्शन चारित्रका जो एक ही वार होना उसको मोक्षमार्ग कहते हैं क्योंकि जो जीव अनेकांत ध्वजाकर विराजमान आगमज्ञानके अनुसार श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शनसे रहित है उसके भेद विज्ञानके अभावसे स्वपरका भेद नहीं होता, कषाय परिणामोंसे एकताका अभ्यास होता है वहांपर रागद्वेष मोहभावसे विषयाभिलाषाका निरोध नहीं होता इन्द्रियें विषयोंमें प्रवर्तती है षट्काय जीवोंकी हिंसा होती है अटकसे रहित हुआ यथेच्छाचारी होता है सर्व त्यागरूप मुनिव्रत नहीं होता उसीप्रकार निर्विकल्प समाधिकर परमात्मज्ञानभी नहीं होता और ज्ञेय पदार्थोंमें प्रवर्तनेवाली स्वच्छंद ज्ञानवृत्तिउसे स्वरूपमें एकाग्रताभावकर ज्ञानप्रवृत्तिका अभाव है । इसकारण ऐसे जीवके आगमज्ञानपूर्वक श्रद्धान-

१ निरर्गल इत्यपि पाठः ।

सिद्ध्येत् । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं नियम्येत ॥ ३६ ॥

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति;—

ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि ण अत्थि अत्थेसु ।
सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि ॥ ३७ ॥

न ह्यागमेन सिद्ध्यति श्रद्धानं यदि नास्त्यर्थेषु ।
श्रद्दधान अर्थानसंयतो वा न निर्वाति ॥ ३७ ॥

श्रद्धानशून्येनागमजनितेन ज्ञानेन तदविनाभाविना श्रद्धानेन च संयमशून्येन न तावत्सिद्धति । तथाहि—आगमबलेन सकलपदार्थान् विस्पष्टं तर्कयन्नपि यदि सकलपदार्थ-

ज्ञानरूपमात्मानं जानन्नपि सम्यग्दृष्टिर्न भवति ज्ञानी च न भवति तद्द्वयाभावे सति पञ्चेन्द्रियविषयाभिलाषषड्जीववधव्यावर्त्तोपि संयतो न भवति । ततः स्थितमेतत् परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वत्रयमेव मुक्तिकारणमिति ॥ ३६ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्याभावे मोक्षो नास्तीति व्यवस्थापयति;—**ण हि आगमेण सिज्झदि** आगमजनितपरमात्मज्ञानेन न सिद्ध्यति **सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु** श्रद्धानं यदि च नास्ति परमात्मादिपदार्थेषु । **सद्दहमाणो अत्थे** श्रद्दधानो वा चिदानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थान् । **असंजदो वा ण णिव्वादि** विषयकषायाधीनत्वे-

विना संयमभावकी कैसे सिद्धि होवे? किसीतरह नहीं । जिसके संयमकी सिद्धि न हुई उसके निश्चित एकाग्रतारूप मोक्षमार्गनामा मुनि पदकीभी सिद्धि नहीं होती । इसलिये आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी एकता जब होवे तभी मोक्षमार्गकी सिद्धि होती है ॥ ३६ ॥ आगे आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इन तीनोंकी एकता हो तभी मोक्षमार्ग होवे यह कहते हैं;—[यदि] जो [अर्थेषु] जीवाजीवादि पदार्थोंमें [श्रद्धानं] रुचिरूप प्रतीति [नास्ति] नहीं है तो [आगमेन हि] सिद्धान्तके जाननेसे भी [न सिद्ध्यति] नहीं मुक्त होता [वा] अथवा [अर्थान्] जीवाजीवादिक पदार्थोंका [श्रद्दधानः अपि] श्रद्धान करता हुआ भी जो [असंयतः] असंयमी होवे तो वह [न] नहीं [निर्वाति] मुक्त होता ॥ **भावार्थ**—यद्यपि आगमके बलसे सब पदार्थोंको विशेष रूपसे जानता है परंतु सकल पदार्थोंके जाननेसे प्रतिबिंबित निर्मल ज्ञानाकार आत्मा जैसा है उसको उसीप्रकार न जाने, वैसाही श्रद्धान न करे और जैसा कुछ कहा है वैसाही जो न अनुभवे तो परज्ञेयमें मग्न हुआ अज्ञानी जीव अकेले आगमके जाननेसे ही श्रद्धान विना ज्ञानी कैसे हो सकता है? किसी प्रकारभी नहीं । यदि आगमको जाने और तत्त्वार्थका श्रद्धान करे तभी ज्ञानी होसकता है अन्यप्रकार नहीं । यद्यपि आगम सकल पदार्थोंको प्रगट

ज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं न तथा प्रत्येति तदा यथोदितात्मनः श्रद्धानशून्यतया यथोदितमात्मानमननुभवन् कथं नाम ज्ञेयनिमग्नो ज्ञानविमूढोऽज्ञानी स्यात् । अज्ञानिनश्च ज्ञेयद्योतको भवन्नप्यागमः किं कुर्यात् । ततः श्रद्धानशून्यादागमान्नास्ति सिद्धिः । किंच—सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्दधानोऽप्यनुभवन्नपि यदि स्वस्मिन्नेव संयम्य न वर्तयति तदानादिमोहरागद्वेषवासनोपजनितपरद्रव्यचङ्क्रमणस्वैरिण्याश्चिद्वृत्तेः स्वस्मिन्नेव स्थानान्निर्वासननिःकम्पैकतत्त्वमूर्च्छितचिद्वृत्त्यभावात्कथं नाम संयतः स्यात् । असंयतस्य च यथोदितात्मतत्त्वप्रतीतिरूपं श्रद्धानं यथोदितात्मतत्त्वानुभूतिरूपं ज्ञानं वा किं कुर्यात् । ततः संयमशून्यात् श्रद्धानात् ज्ञानाद्वा नास्ति सिद्धिः । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानामयौगपद्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटेतैव ॥ ३७ ॥

नासंयतो वा न निर्वाति निर्वाणं न लभत इति । तथाहि—यथा प्रदीपसहितपुरुषस्य कूपपतनप्रस्तावे कूपपतनान्निवर्त्तनं मम हितमिति निश्चयरूपं श्रद्धानं यदि नास्ति तदा प्रदीपः किं करोति न किमपि । तथा जीवस्यापि परमागमाधारेण सकलपदार्थज्ञेयाकारकरावलम्बितविशदैकज्ञानरूपं स्वात्मानं जानतोऽपि ममात्मैवोपादेय इति निश्चयरूपं यदि श्रद्धानं नास्ति तदास्य प्रदीपस्थानीय आगमः किं करोति न किमपि । यथा वा स एव प्रदीपसहितपुरुषः स्वकीयपौरुषबलेन कूपपतनाद्यदि न निवर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं प्रदीपो दृष्टिर्वा किं करोति न किमपि । तथायं जीवः श्रद्धानज्ञानसहितोऽपि पौरुषस्थानीयचारित्रबलेन रागादिविकल्परूपादसंयमाद्यदि न निवर्त्तते तदा तस्य श्रद्धानं ज्ञानं वा किं कुर्यान्न किमपीति । अतः एतदायाति परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां मध्ये द्वयेनैकेन वा निर्वाणं नास्ति किन्तु त्रयेणेति ॥ ३७ ॥ एवं

करता है तौभी अज्ञानीको कुछ कार्यकारी नहीं होसकता क्योंकि अज्ञानी श्रद्धानसे रहित है इसलिये उसको आगमसे कुछ फलकी सिद्धि नहीं होती । यद्यपि सकल ज्ञेय पदार्थोंकर प्रतिबिंबित निर्मल ज्ञानाकार आत्माका कोई श्रद्धानभी करता है कोई जीव अनुभवभी करता है तौभी वही जीव अपनेमें जो संयम भावधर निश्चल होके नहीं प्रवर्ते तो उस संयमीके जैसा कुछ कहा है वैसाही आत्मतत्त्वकी प्रतीतिरूप श्रद्धान क्या करे और यथार्थ आत्मतत्त्वकी अनुभूतिरूप ज्ञानभी संयम भावविना क्या करे क्योंकि यह जीव अनादि कालसे लेकर रागद्वेष मोहकी वासनासे परमें लगा हुआ है इसकारण इस जीवकी अशुद्धचेतनारूप व्यभिचारिणी स्त्री परभावोंमें रमती है अपने आत्मीकरसमें मग्न नहीं होती । परवासनासे रहित निष्कंप एक आत्मीक तत्त्वमें संयमभाव विना स्थिरता नहीं होती इसलिये संयम भावरहित श्रद्धानसे वा ज्ञानसे मोक्ष नहीं होती जब आगमज्ञान तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयमभाव इन तीनोंकी एकता हो तभी मोक्षमार्ग होता है ऐसा तात्पर्य समझना ॥ ३७ ॥ आगे आगमज्ञान, तत्त्वार्थ-

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येप्यात्मज्ञानस्य मोक्षमार्गसाधकतमत्वं द्योतयति;—

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं ।
तं णाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेण ॥ ३८ ॥

यदज्ञानी कर्म क्षपयति भवशतसहस्रकोटिभिः ।
तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुप्तः क्षपयत्युच्छ्वासमात्रेण ॥ ३८ ॥

यदज्ञानी कर्म क्रमपरिपाट्या बालतपोवैचित्र्योपक्रमेण च पच्यमानमुपात्तरागद्वेषतया सुखदुःखादिविकारभावपरिणतः पुनरारोपितसंतानं भवशतसहस्रकोटीभिः कथंचन निस्तरति, तदेव ज्ञानी स्यात्कारकेतनागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यातिशयप्रसादासादि-

---

भेदाभेदरत्नत्रयात्मकमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन द्वितीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । किंच बहिरात्मावस्थान्तरात्मावस्थापरमात्मावस्था मोक्षावस्थात्रयं तिष्ठति । अवस्थात्रयेऽनुगताकारद्रव्यं तिष्ठति । एवं परस्परसापेक्षद्रव्यपर्यायात्मको जीवपदार्थः । तत्र मोक्षकारणं चिन्त्यते । मिथ्यात्वरागादिरूपा बहिरात्मावस्था तावदशुद्धा मुक्तिकारणं न भवति । मोक्षावस्था शुद्धात्मफलभूता साचाग्रे तिष्ठति । एताभ्यां द्वाभ्यां भिन्ना यान्तरात्मावस्था सा मिथ्यात्वरागादिरहितत्वेन शुद्धा यथा सूक्ष्मनिगोतज्ञाने शेषावरणे सत्यपि क्षयोपशमज्ञानावरणं नास्ति तथात्रापि केवलज्ञानावरण सत्यप्येकदेशक्षयोपशमज्ञानापेक्षया नास्त्यावरणम् । यावतांशेन निरावरणरागादिरहितत्वेन शुद्धा च तावतांशेन मोक्षकारण भवति तत्र शुद्धपारिणामिकभावरूपं परमात्मद्रव्यं ध्येयं भवति तच्च तस्मादन्तरात्मध्यानावस्थाविशेषात्कथंचिद्भिन्नम् । यदैकान्तेनाभिन्नं भवति तदा मोक्षेऽपि ध्यानं प्राप्नोति, अथवास्य ध्यानपर्यायस्य विनाशे सति तस्य पारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति । एवं बहिरात्मान्तरात्मपरमात्मकथनरूपेण मोक्षमार्गो ज्ञातव्यः । अथ परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां मेलापकेऽपि यदभेदरत्नत्रयात्मकं निर्विकल्पसमाधिलक्षणमात्मज्ञानं निश्चयेन तदेव मुक्तिकारणमिति प्रतिपादयति;—**जं अण्णाणी कम्मं खवेइ** निर्विकल्पसमाधिरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकविशिष्टभेदज्ञानाभावादज्ञानी जीवो यत्कर्म क्षपयति । काभिः कर्मभूताभिः । **भवसयसहस्सकोडीहिं** भवशतसहस्रकोटिभिः **तण्णाणी-तिहि गुत्तो** तत्कर्म ज्ञानी जीवस्त्रिगुप्तिगुप्तः सन् **खवेइ उस्सासमेत्तेण** क्षपयत्युच्छ्वासमात्रे-

---

श्रद्धान और संयमभाव इस रत्नत्रयकी एकताके होनेपरभी आत्मज्ञानको मुख्यरूप मोक्षमार्गका साधक दिखलाते हैं;—[**अज्ञानी**] परमात्मज्ञानरहित पुरुष [**यत् कर्म**] जो ज्ञानावरणादि अनेक कर्म [**भवशतसहस्रकोटीभिः**] सौ हजार कोड़ (अनेक) पर्यायोंकर [**क्षपयति**] क्षय करता है [**त्रिभिर्गुप्तः**] मनवचनकायकी क्रियाओंके निरोधकर स्वरूपमें लीन [**ज्ञानी**] परमात्मभावका अनुभवी ज्ञाता [**तत्**] उन ज्ञानावरणादि असंख्यात लोकमात्र कर्मोंको [**उच्छ्वासमात्रेण**]

तशुद्धज्ञानमयात्मकत्वानुभूतिलक्षणज्ञानित्वसद्भावात्कायवाङ्मनःकर्मोपरमप्रवृत्तत्रिगुप्तत्वात् प्रचण्डोपक्रमपच्यमानमपहस्तितरागद्वेषतया दूरनिरस्तसमस्तसुखदुःखादिविकारः पुनरनारोपितसन्तानमुच्छ्वासमात्रेणैव लीलयैव पातयति । अत आगमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वे यौगपद्येप्यात्मज्ञानमेव मोक्षमार्गसाधकतममनुमन्तव्यं ॥ ३८ ॥

अथात्मज्ञानशून्यस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्करमित्यनुशास्ति;—

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादियेसु जस्स पुणो ।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरोवि ॥ ३९ ॥

णेति । तद्यथा—बहिर्विषये परमागमाभ्यासबलेन यत्सम्यक्परिज्ञानं तथैव श्रद्धानं व्रताद्यनुष्ठानं चेति त्रयं तत्रयाधारेणोत्पन्नं सिद्धजीवविषये सम्यक्परिज्ञानं श्रद्धानं तद्गुणस्मरणानुकूलमनुष्ठानं चेति त्रयं तत्रयाधारेणोत्पन्नं विशदाखण्डैकज्ञानाकारे स्वशुद्धात्मनि परिच्छित्तिरूपं सविकल्पज्ञानं स्वशुद्धात्मोपादेयभूतरुचिविकल्परूपं सम्यग्दर्शनम् तत्रैवात्मनि रागादिविकल्पनिवृत्तिरूपं सविकल्पचारित्रमिति त्रयम् । तत्रयप्रसादेनोत्पन्नं यन्निर्विकल्पसमाधिरूपं निश्चयरत्नत्रयलक्षणं विशिष्टस्वसंवेदनज्ञानं तदभावादज्ञानी जीवो बहुभवकोटिभिर्यत्कर्म क्षपयति तत्कर्म ज्ञानी जीवः पूर्वोक्तज्ञानगुणसद्भावात् त्रिगुप्तिगुप्तः सन्नुच्छ्वासमात्रेण लीलयैव क्षपयतीति । ततो ज्ञायते परमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां भेदरत्नत्रयरूपाणां सद्भावेऽप्यभेदरत्नत्रयरूपस्य स्वसंवेदनज्ञानस्यैव प्रधानत्वमिति ॥ ३८ ॥ अथ पूर्वसूत्रोक्तात्मज्ञानरहितस्य सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धान-

---

एक उस्वासमात्र (थोड़े) कालमेंही [**क्षपयति**] क्षय कर देता है ॥ **भावार्थ**—अज्ञानी जीव क्रियाकांडकी परिपाटीकर अनेक प्रकार अज्ञानतपके बलसे जो कर्म क्षय करता है उसी कर्मके उदयसे रागद्वेष भावोंकर सुखदुःखादि विकारभावोंरूप परिणमता है पश्चात् नवीन बंधकर संतान बढाता है इसकारण अनेक सौ हजार कोटि पर्यायोंमेंभी कर्मोंका क्षय नहीं करता मुक्त नहीं होता, अज्ञानीके कर्मकी निर्जरा बंधका ही कारण है । और ज्ञानी जो है वह स्याद्वाद ध्वजाकर चिन्हित आगमका जानना, तत्त्वार्थ श्रद्धान और संयमभाव इन तीन रत्नत्रयभावोंकी अधिकताके प्रसादसे अंगीकार कीगई शुद्ध ज्ञानमयी आत्मतत्त्वकी अनुभूति उसरूप ज्ञानके होनेसे मनवचन कायकी क्रियाके निरोधसे स्वरूपमें गुप्त है इसकारण वह ज्ञानी अपनी ज्ञान वैराग्यकी शक्तिके बलसे एक क्षणमें विनाही यत्नके अपनी लीलाही कर असंख्यात लोकमात्र कर्मोंको क्षय करडालता है, कर्मके उदयमें रागद्वेष मोहभावोंसे रहित है इसलिये इष्ट अनिष्ट पदार्थोंके संयोगसे सुखदुःख विकारको नहीं धारण करता इसीकारण नूतन बंधका कर्ता नहीं है संसारकी संतानका उच्छेदक है सहजही मुक्त होता है । इससे यह तात्पर्य जानना कि आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकताके होनेपरभी आत्मज्ञानहीकी मोक्षके साधनेकी अधिकता है ॥ ३८ ॥ आगे आत्मज्ञानशून्य पुरुषके

परमाणुप्रमाणं वा मूर्छा देहादिकेषु यस्य पुनः ।
विद्यते यदि स सिद्धिं न लभते सर्वागमधरोपि ॥ ३९ ॥

यदि करतलामलकीकृतसकलागमसारतया भूतभवद्भावि च स्वोचितपर्यायविशिष्टमशेषद्रव्यजातं जानन्तमात्मानं जानन् श्रद्दधानः संयमयंश्चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येपि मनाङ्मोहमलोपलिप्तत्वात् यदा शरीरादिमूर्छोपरक्ततया निरुपरागोपयोगपरिणतं कृत्वा ज्ञानात्मानमात्मानं नानुभवति तदा तावन्मात्रमोहमलकलङ्ककीलिकाकीलितैः कर्मभिरविमुच्यमानो न सिद्ध्यति । अत आत्मज्ञानशून्यमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यमप्यकिंचित्करमेव ॥ ३९ ॥

संयतत्वानां यौगपद्यमप्यकिंचित्करमित्युपदिशति;—**परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो विज्जदि जदि** परमाणुमात्रं वा मूर्च्छा देहादिषु विषयेषु यस्य पुरुषस्य पुनर्विद्यते यदि चेत्? **सो सिद्धिं ण लहदि** स सिद्धिं मुक्तिं न लभते । कथंभूतः । **सव्वागमधरोवि** सर्वागमधरोपीति । अयमत्रार्थः—सर्वागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्ये सति यस्य देहादिविषये स्तोकममत्वं विद्यते तस्य पूर्वसूत्रोक्तं निर्विकल्पसमाधिलक्षणं निश्चयरत्न-

---

आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकताभी अकार्यकारी है ऐसा कहते हैं;—[**यस्य**] जिस पुरुषके [**पुनः**] फिर [**परमाणुप्रमाणं वा**] परमाणुबराबरभी अतिसूक्ष्म [**देहादिकेषु**] शरीरादि परद्रव्योंमें [**मूर्च्छा**] ममताभाव [**यदि**] जो [**विद्यते**] मौजूद है तो [**सः**] वह पुरुष उतनेही मोह कलंककर [**सर्वागमधरोपि**] द्वादशांगका पाठी होता हुआभी [**सिद्धिं**] मोक्षको [**न**] नहीं [**लभते**] पाता ॥ **भावार्थ**—जैसे हाथमें निर्मल स्फटिकका मणिका अंतर बाहिरसे अच्छा दीखता है उसीतरह जिन पुरुषोंने समस्त आगमका रहस्य जान लिया है और उसी आगमके अनुसार त्रिकाल संबंधी सकल पर्यायसहित संपूर्ण द्रव्योंके जाननेवाले आत्माको वे जानते हैं श्रद्धान करते हैं और आचरण करते हैं। इसीतरह जिस पुरुषके आगमज्ञान तत्वार्थ श्रद्धान संयम इन रत्नत्रयकी एकताभी हुई है परंतु वही पुरुष जो किसी कालमें शरीरादि परद्रव्योंमें रागभावमलकर मलीन हुआ ज्ञानस्वरूप आत्माको वीतराग उपयोग भावरूप नहीं अनुभव करता है तो वही पुरुष उतनेही सूक्ष्म मोहकलंककर कीलित कर्मोंसे नहीं छूटता मुक्त नहीं होता । इससे यह बात सिद्ध हुई कि वीतराग निर्विकल्प समाधिकर आत्मज्ञानसे शून्य पुरुषके आगमज्ञान तत्वार्थश्रद्धान संयमभावोंकी एकताभी कार्यकारी नहीं है जो आत्मज्ञानसहित हो तभी मोक्षका साधक होसके इसकारण आत्मज्ञान मोक्षका मुख्य साधन है ॥ ३९ ॥ आगे

अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं साधयति;—

पंचसमिदो तिगुत्तो पंचेंदियसंवुडो जिदकसाओ ।
दंसणणाणसमग्गो समणो सो संजदो भणिदो ॥ ४० ॥

पञ्चसमितस्त्रिगुप्तः पञ्चेन्द्रियसंवृतो जितकषायः ।
दर्शनज्ञानसमग्रः श्रमणः स संयतो भणितः ॥ ४० ॥

यः खल्वनेकान्तकेतनागमज्ञानबलेन सकलपदार्थज्ञेयाकारकरम्बितविशदैकज्ञानाकारमात्मानं श्रद्दधानोऽनुभवंश्चात्मन्येव नित्यनिश्चलां वृत्तिमिच्छन् समितिपञ्चकाङ्कुशितप्रवृत्तिप्रवर्तितसंयमसाधनीकृतशरीरपात्रः क्रमेण निश्चलनिरुद्धपञ्चेन्द्रियद्वारतया समुपरतकायवाङ्मनोव्यापारो भूत्वा चिद्वृत्तेः परद्रव्यचङ्क्रमणनिमित्तमत्यन्तमात्मना सममन्योन्यसं-

---

त्रयात्मकं स्वसंवेदनज्ञानं नास्तीति ॥ ३९ ॥ अथ द्रव्यभावसंयमस्वरूपं कथयति;—

चागो य अणारंभो विसयविरागो खओ कसायाणं ।
सो संजमोत्ति भणिदो पव्वज्जाए विसेसेण ॥ १ ॥

चागो य निजशुद्धात्मपरिग्रहं कृत्वा बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहनिवृत्तिस्त्यागः **अणारंभो** निःक्रियनिजशुद्धात्मद्रव्ये स्थित्वा मनोवचनकायव्यापारनिवृत्तिरनारम्भः **विसयविरागो** निर्विषयस्वात्मभावनोत्थसुखे तृप्तिं कृत्वा पञ्चेन्द्रियसुखाभिलाषत्यागो विषयविरागः । **खओ कसायाणं** निःकषायशुद्धात्मभावनाबलेन क्रोधादिकषायत्यागः कषायक्षयः । **सो संजमोत्ति भणिदो** स एवं गुणविशिष्टः संयम इति भणितः । **पव्वज्जाए विसेसेण** सामान्येनापि तावदिदं संयमलक्षणं प्रव्रज्यायां तपश्चरणावस्थायां विशेषेणेति । अत्राभ्यन्तरशुद्धा संवित्तिर्भावसंयमो बहिरङ्गनिवृत्तिश्च द्रव्यसंयम इति ॥ १ ॥ अथागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां त्रयाणां यत्सविकल्पं यौगपद्यं तथा निर्विकल्पात्मज्ञानं चेति द्वयोः सम्भवं दर्शयति;—**पंचसमिदो** व्यवहारेण पञ्चसमितिभिः समितः संवृतः पञ्चसमितः निश्चयेन तु स्वस्वरूपे सम्यगितो गतः

जिसके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावकी एकता है, आत्मज्ञानकी एकता है उस पुरुषका स्वरूप कहते हैं;—[**स श्रमणः**] वह महामुनि [**संयतः**] संयमी [**भणितः**] भगवंतदेवने कहा है जो कि [**पञ्चसमितः**] ईर्यादि पांच समितियोंको पालता है [**त्रिगुप्तः**] तीन योगोंके निरोधसे तीन गुप्तिवाला है [**पञ्चेन्द्रियसंवृतः**] पांच इन्द्रियोंको रोकनेवाला [**जितकषायः**] कषायोंको जीतनेवाला और [**दर्शनज्ञानसमग्रः**] दर्शन ज्ञानसे परिपूर्ण है ॥ भावार्थ—जो पुरुष स्याद्वादरूप आगमसे सकल ज्ञेयाकारकर प्रतिबिंबित निर्मल ज्ञानस्वरूप आत्माको जानता है श्रद्धान करता है,अनुभवता है, अपनेमें निश्चल वृत्तिको चाहता है, जिसने पांच समितिके आचरणसे स्वेच्छाचार वृत्तिको रोककर अपना शरीर संयमका साधन किया है, क्रमसे निश्चल होके पंचेन्द्रियका निरोध किया है, जिसके मनवचनकायकर कषाय दूर हुए

वलनादेकीभूतमपि स्वभावभेदपरत्वेन निश्चित्यात्मनैव कुशलो मल्ल इव सुनिर्भरं निष्पीड्य निष्पीड्य कषायचक्रमक्रमेण जीवं त्याजयति, स खलु सकलपरद्रव्यशून्योपि विशुद्धदृशि-ज्ञप्तिमात्रस्वभावभूतावस्थापितात्मतत्त्वोपजातनित्यनिश्चलवृत्तितया साक्षात्संयत एव स्यात्। तस्यैव चागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यं सिद्ध्यति ॥ ४० ॥

अथास्य सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतस्य कीदृग्लक्षणमित्यनुशास्ति;—

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खोपसंसणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ ४१ ॥

समशत्रुबन्धुवर्गः समसुखदुःखः प्रशंसानिंदासमः।
समलोष्ठकाञ्चनः पुनर्जीवितमरणे समः श्रमणः ॥ ४१ ॥

संयमः सम्यग्दर्शनज्ञानपुरःसरं चारित्रं, चारित्रं धर्मः, धर्मःसाम्यं साम्यं मोहक्षोभविहीनः

परिणतः समितः **तिगुत्तो** व्यवहारेण मनोवचनकायनिरोधत्रयेण गुप्तः त्रिगुप्तः निश्चयेन स्वरूपे गुप्तः परिणतः **पंचेंदियसंवुडो** व्यवहारेण पञ्चेन्द्रियविषयव्यावृत्त्या संवृत्तः पञ्चेन्द्रिय-संवृतः निश्चयेन वातीन्द्रियसुखस्वादरतः **जियकसाओ** व्यवहारेण क्रोधादिकषायजयेन जित-कषायः निश्चयेन चाकषायात्मभावनारतः **दंसणणाणसमग्गो** अत्र दर्शनशब्देन निजशु-द्धात्मश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं ग्राह्यम्। ज्ञानशब्देन तु स्वसंवेदनज्ञानमिति ताभ्यां समग्रो दर्शनज्ञानसमग्रः **समणो सो संजदो भणिदो** स एवं गुणविशिष्टः श्रमणः संयत इति भणितः। अत एतदायातं व्यवहारेण यद्बहिर्विषये व्याख्यानं कृतं तेन सविकल्पं सम्यग्दर्श-नज्ञानचारित्रत्रयं यौगपद्यं ग्राह्यम्। अभ्यन्तरव्याख्यानेन तु निर्विकल्पात्मज्ञानं ग्राह्यमिति सविकल्पयौगपद्यं निर्विकल्पात्मज्ञानं च घटत इति ॥ ४० ॥ अथागमज्ञानतत्वार्थश्रद्धानसंयतत्व-लक्षणेनविकल्पत्रययौगपद्येन तथा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च युक्तो योऽसौ संयतस्तस्यकिं लक्ष-

---

हैं जिन कषायोंसे यह चैतन्यवृत्ति परद्रव्यमें गमन करती है और जो कषाय आत्माके साथ परस्पर मिलनेसे एकताको धारण करते हैं उन कषायशत्रुओंको निश्चयकर अपनेसे जुदे जान उनको एकही वार अपने ज्ञानकी अधिकतासे चूर २ करडाला है जैसे प्रवीण मल्ल अपने शत्रुमल्लको मसलि २ कर प्राणरहित करदेता है उसीतरह विनाश किया है ऐसा वह महामुनि सुभट सब परद्रव्यसे रहित हुआ ज्ञानदर्शन चारित्रकी स्थिरतासे साक्षात् संयमी है और उसी मुनिके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमकी एकता है तथा आत्मज्ञानकी एकता है ॥ ४० ॥ आगे आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावका एकत्व और आत्मज्ञानका एकत्व जिस मुनीको सिद्ध हुआ है वह जिन लक्षणोंसे मालूम होता है उनको दिखाते हैं—[**श्रमणः**] समताभावमें लीन महामुनि है वह [**समशत्रुबन्धुवर्गः**] शत्रु कुटुंबके लोक इनमें समानभाववाला है [**समसुखदुःखः**]

आत्मपरिणामः । ततः संयतस्य साम्यं लक्षणं । तत्र शत्रुबन्धुवर्गयोः सुखदुःखयोः प्रशंसानिन्दयोः लोष्ठकाञ्चनयोर्जीवितमरणयोश्च समं । अयं मम परोऽयं स्वः, अयमाह्लादोऽयं परितापः, इदं ममोत्कर्षणमिदमपकर्षणमयं ममाकिञ्चित्कर इदमुपकारकमिदं ममात्मधारणमयमत्यन्तविनाश इति मोहाभावात् सर्वत्राप्यनुदितरागद्वेषद्वैतस्य सततमपि विशुद्धदृष्टिज्ञप्तिस्वभावमात्मानमनुभवतः शत्रुबन्धुसुखदुःखप्रशंसानिन्दालोष्ठकाञ्चनजीवितमरणानि निर्विशेषमेव ज्ञेयत्वेनाक्रम्य ज्ञानात्मन्यात्मन्यचलितवृत्तेर्यत्किल सर्वतः साम्यं तत्सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यस्य संयतस्य लक्षणमालक्षणीयम् ॥ ४१ ॥

णमित्युपदिशति । इत्युपदिशति कोऽर्थः इति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति । एवं प्रश्नोत्तरपातनिकाप्रस्तावे कापि कापि यथासंभवमितिशब्दस्यार्थो ज्ञातव्यः—स श्रमणः संयतस्तपोधनो भवति । यः किं विशिष्टः । शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्ठकाञ्चनजीवितमरणेषु समः समचित्तः इति । ततः एतदायाति । शत्रुबन्धुसुखदुःखनिन्दाप्रशंसालोष्ठकाञ्चनजीवितमरणसमताभावनापरिणतनिजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिर्विकल्पसमाधिसमुत्पन्ननिर्विकारपरमाह्लादैकलक्षणसुखामृतपरिणतिस्वरूपं यत्परमसाम्यं तदेवपरमागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वानां यौगपद्येन तदा निर्विकल्पात्मज्ञानेन च परिणततपोधनस्य लक्षणं ज्ञातव्यमिति

सुख और दुःख जिसके समान हैं [**प्रशंसानिन्दासमः**] बड़ाई और दोषकथन इन दोनोंमें समान है [**समलोष्टकाञ्चनः**] लोहा और सोना जिसके समान हैं और [**जीवितमरणे समः**] प्राणधारण और प्राणत्याग इन दोनोंमें भी समान है ॥ **भावार्थ**—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानयुक्त जो चारित्र है उसको संयम कहते हैं वही धर्म है और उसीका नाम साम्यभाव भी है । मोहक्षोभसे रहित जो आत्माका परिणाम वह साम्यभाव है इससे संयमीका लक्षण साम्यभाव है। शत्रुमित्र सुखदुःख स्तुतिनिंदा सोना लोहा जीवनमरण इत्यादि इष्ट अनिष्ट विषयोंमें मुनिके भेद नहीं है समताभाव है । यह मेरा है यह पर है यह आनंद है यह दुःख है यह मुझको उत्तम है यह मुझको हीन है यह उपकारी है यह कुछ नहीं यह जीवन है यह मेरा विनाश है इत्यादि जो अनेक विकल्प हैं वे मोहके अभावसे मुनिके नहीं होते इसलिये महामुनि रागद्वेषसे रहित हैं सदाकाल निर्मलज्ञानदर्शनमयी आत्माको अनुभवते हैं, सब इष्ट अनिष्ट विषयोंको ज्ञेय रूप जानते हैं रागी होके कर्ता नहीं हैं स्वरूपमें समस्त संकल्पविकल्पोंसे रहित होके निश्चल तिष्ठे हुए हैं ऐसे मुनिके जो समताभाव है वही महामुनिका लक्षण है इसी लक्षणसे मुनिके आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभाव इनकी एकता और आत्मज्ञानकी एकता सिद्ध हुई जानपड़ती है इसलिये समभाव मुनिका प्रगट लक्षण है ॥ ४१ ॥

अथेदमेव सिद्धागमज्ञानतत्त्वार्थश्रद्धानसंयतत्वयौगपद्यात्मज्ञानयौगपद्यसंयतत्वमैकाग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनाम मोक्षमार्गत्वेन समर्थयति;—

दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदोत्ति मदो सामण्णं तस्स परिपुण्णं ॥ ४२ ॥

दर्शनज्ञानचरित्रेषु त्रिषु युगपत्समुत्थितो यस्तु।
एकाग्रगत इति मतः श्रामण्यं तस्य परिपूर्णम् ॥ ४२ ॥

ज्ञेयज्ञातृतत्त्वं तथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथानुभूतिलक्षणेन ज्ञानपर्यायेण ज्ञेयज्ञातृक्रियान्तरनिवृत्तिसूत्र्यमाणद्रष्टृज्ञातृतत्त्ववृत्तिलक्षणेन चारित्रपर्यायेण च त्रिभिरपि यौगपद्येन भाव्यभावकभावविजृम्भितातिनिर्भरेतरेतरसंवलनबलादङ्गाङ्गिभावेन

॥ ४१ ॥ अथ यदेवसंयततपोधनस्य साम्यलक्षणं भणितं तदेव श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो भण्यत इति प्ररूपयति;—**दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु** दर्शनज्ञानचारित्रेषु त्रिषु युगपत्सम्यगुपस्थित उद्यतो यस्तु कर्त्ता **एयग्गगदोत्ति मदो** स ऐकाग्र्यगत इति मतः सम्मतः **सामण्णं तस्स पडिपुण्णं** श्रामण्यं चारित्रं यतित्वं तस्य परिपूर्णमिति। तथाहि—भावकर्मद्रव्यकर्मनोकर्मभ्यः शेषपुद्गलादिपञ्चद्रव्येभ्योऽपि भिन्नं सहजशुद्धनित्यानन्दैकस्वभावं ममसम्बन्धि यदात्मद्रव्यं तदेव ममोपादेयमितिरुचिरूपं 'सम्यग्दर्शनम्' तत्रैव परिच्छित्तिरूपं सम्यग्ज्ञानं तस्मिन्नेव स्वरूपे निश्चलानुभूतिलक्षणं चारित्रं

आगे पूर्ण सिद्ध हुई जो यह आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयमभावकी एकता और आत्मज्ञानकी एकता यही एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग है इसीका दूसरानाम मुनिपदवी है यह कहते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**दर्शनज्ञानचारित्रेषु**] सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र [**त्रिषु**] इन तीन भावोंमें [**युगपत्**] एक ही समय [**समुत्थितः**] अच्छीतरह उद्यमी हुआ प्रवर्तता है वह [**एकाग्रगतः**] एकाग्रताको प्राप्त है [**इति मतः**] ऐसा कहा है [**तु**] और [**तस्य**] उसी पुरुषके [**श्रामण्यं**] यतिपद [**परिपूर्णं**] पूर्ण हुआ जानना॥ **भावार्थ**—ज्ञेयज्ञायकतत्त्वकी यथावत्प्रतीतिका होना सम्यग्दर्शन है, ज्ञेयज्ञायकका यथार्थ जानलेना सम्यग्ज्ञान है और अन्यक्रियासे निवृत्त होके दर्शनस्वरूप आत्मामें प्रवृत्ति 'चारित्र' कहा जाता है। इन तीनोंही भावोंका आत्मा भावक है ये भाव्य हैं इन भाव्यभावोंके बढनेसे अति परिपूर्ण परस्पर मिलाप है आत्मा अंगी है ये तीनों भाव अंग हैं अंगअंगीकी एकता है। इसप्रकार एकभावको परिणत हुए आत्माके स्वरूपमें लीन होनेरूप जो संयमभाव है वह यद्यपि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रके भेदकर अनेक है तथापि एकस्वरूपही है। जैसे आम तथा इमली आदिका बनाया हुआ 'पना' मिष्ट खट्टा चरपरा सुगंधद्रव्यआदिके भेदसे अनेक है तथापि सबको मिलकर एक पर्याय धारण करता है इससे एक है उसीप्रकार वह संयम यद्यपि रत्नत्र-

परिणतस्यात्मनो यदात्मनिष्ठत्वे सति संयतत्वं तत्पानकवदनेकात्मकस्यैकस्यानुभूयमानतायामपि समस्तपरद्रव्यपरावर्तत्वादभिव्यक्तैकाग्र्यलक्षणश्रामण्यापरनामा मोक्षमार्ग एवावगन्तव्यः । तस्य तु सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेनैकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वाद्द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन विश्वस्यापि भेदाभेदात्मकत्वात्तदुभयमिति प्रमाणेन प्रज्ञप्तिः । "इत्येवं प्रतिपत्तुराशयवशादेकोप्यनेकीभवंस्त्रैलक्षण्यमथैकतामुपगतो मार्गोपवर्गस्य यः । द्रष्टृज्ञातृनिबद्धवृत्तिमचलं लोकस्तमास्कन्दतादास्कन्दत्यचिराद्विकाशमतुलं येनोल्लसन्त्याश्रितेः ॥ ४२ ॥

अथानैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वं विघटयति;—

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज ।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ॥ ४३ ॥

चेत्युक्तस्वरूपं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं पानकवदनेकमप्यभेदनयेनैकं यत् तत्सविकल्पावस्थायां व्यवहारेणैकाग्र्यं भण्यते । निर्विकल्पसमाधिकाले तु निश्चयेनेति तदेव च नामान्तरेण परमसाम्यमिति तदेव परमसाम्यं पर्यायनामान्तरेण शुद्धोपयोगलक्षणः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गो ज्ञातव्य इति । तस्य तु मोक्षमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग इति भेदात्मकत्वात्पर्यायप्रधानेन व्यवहारनयेन निर्णयो भवति । ऐकाग्र्यं मोक्षमार्ग इत्यभेदात्मकत्वात् द्रव्यप्रधानेन निश्चयनयेन निर्णयो भवति । समस्तवस्तुसमूहस्यापि भेदाभेदात्मकत्वान्निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गद्वयस्यापि प्रमाणेन निश्चयो भवतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥ एवं निश्चयव्यवहारसंयमप्रतिपादनमुख्यत्वेन तृतीयस्थले गाथाचतुष्टयं गतम् । अथ यः स्वशुद्धात्मन्येकाग्रो न भवति तस्य

यकर भेद लिये हुए है तौभी तीनों भावोंका एक संयमरूप पर्याय है इसलिये एकरूप है एकरूप संयमभाव सब परद्रव्यसे रहित है प्रगट एकाग्रतारूप मुनिपद है और यही मोक्षमार्ग जानना । उस मोक्षमार्गको जो दर्शनज्ञान चारित्र ऐसे भेदकर कहना है यह भेदस्वरूप पर्यायकी विवक्षाकर व्यवहारनयसे है और एकाग्रतारूप मोक्षमार्ग ऐसा जो कथन है वह अभेदस्वरूप द्रव्यार्थिककी विवक्षाकर निश्चयनयसे जानना । जितने कुछ पदार्थ संसारमें हैं वे सब भेद अभेदस्वरूप हैं । इसलिये भेदकर कहना वह व्यवहार है और अभेदकर कहना वह निश्चय है इन दोनोंकी सिद्धि प्रमाणसे होती है । यह मोक्षमार्ग निश्चयकर एक है व्यवहारकर अनेक होजाता है ज्ञान दर्शन चारित्र इन तीन भेदोंको लिए हुए यद्यपि अनेक है तौभी एकाग्रताकर एक है । ऐसा एक अनेकस्वरूप यह मोक्षमार्ग ज्ञातापुरुषोंके विचारसे सिद्ध हुआ है । ऐसे मोक्षमार्गको हे जगत्के भव्यजीवो ! तुम अंगीकार करो जिससे कि यह चिदानंद अपने अनंत प्रकाशको प्राप्त होवे ॥ ४२ ॥ आगे जिसके एकाग्रता नहीं है उसके मोक्षमार्ग भी नहीं यह कहते हैं;—[यदि] जो [अज्ञानी] आत्मज्ञानसे रहित [श्रमणः] मुनि [अन्यत्

मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा द्रव्यमन्यदासाद्य ।
यदि श्रमणोऽज्ञानी बध्यते कर्मभिर्विविधैः ॥ ४३ ॥

यो हि न खलु ज्ञानात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति सोऽवश्यं ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति। तदासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानाद्भ्रष्टः स्वयमज्ञानीभूतो मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा तथाभूतश्च बध्यत एव न तु विमुच्यते। अत अनैकाग्र्यस्य न मोक्षमार्गत्वं सिद्ध्येत्॥४३॥

अथैकाग्र्यस्य मोक्षमार्गत्वमवधारयन्नुपसंहरति;—

अत्थेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुपयादि ।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविधाणि ॥ ४४ ॥

अर्थेषु यो न मुह्यति न हि रज्यति नैव दोषमुपयाति ।
श्रमणो यदि स नियतं क्षपयति कर्माणि विविधानि ॥ ४४ ॥

यस्तु ज्ञात्मानमात्मानमेकमग्रं भावयति स न ज्ञेयभूतं द्रव्यमन्यदासीदति । तदनासाद्य च ज्ञानात्मात्मज्ञानादभ्रष्टः स्वयमेव ज्ञानीभूतस्तिष्ठन्न मुह्यति न रज्यति न द्वेष्टि

मोक्षाभावं दर्शयति;—**मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज जदि** मुह्यति वा रज्यति वा द्वेष्टि वा यदि चेत्? । किं कृत्वा । द्रव्यमन्यदासाद्य प्राप्य । स कः । **समणो** श्रमणस्तपोधनः । तदा काले **अण्णाणी** अज्ञानी भवति । अज्ञानी सन् **बज्झदि कम्मेहि विविहेहिं** बध्यते कर्मभिर्विविधैरिति । तथाहि—यो निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानेनैकाग्रो भूत्वा स्वात्मानं न जानाति तस्य चित्तं बहिर्विषयेषु गच्छति । ततश्चिदानन्दैकनिजस्वभावाच्च्युतो भवति। ततश्च रागद्वेषमोहैः परिणमति तत्परिणमन् बहुविधकर्मणा बध्यत इति । ततः कारणान्मोक्षार्थिभिरेकाग्रत्वेन स्वस्वरूपं भावनीयमित्यर्थः ॥ ४३ ॥ अथ निजशुद्धात्मनि योऽसावेकाग्रस्तस्यैव मोक्षो भवतीत्युपदिशति;—**अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि**

द्रव्यं] आत्मासे भिन्न परद्रव्यको [**आसाद्य**] अंगीकार कर [**मुह्यति वा**] मोहको प्राप्त होता है [**रज्यति वा**] अथवा रागी होता है [**वा द्वेष्टि**] अथवा द्वेषी होता है तो वह अज्ञानी मुनि [**विविधैः**] अनेकतरहके [**कर्मभिः**] ज्ञानावरणादिकर्मोंसे [**बध्यते**] बंध जाता है ॥ **भावार्थ**—जो कोई ज्ञानस्वरूप आत्माको एकाग्र होकर नहीं चिंतता है वह अवश्य ही परद्रव्यको स्वीकार करता है और परद्रव्यमें लग्नहुआ ज्ञानस्वरूप आत्मासे भ्रष्ट होता है । अज्ञानी हुआ रागी द्वेषी मोही होता है ऐसा होनेपर कर्मोंसे बंधता है मुक्त नहीं होता । इसलिये जो एकाग्रताकर रहित है उसके मोक्षमार्गकी सिद्धि नहीं है ॥ ४३ ॥ आगे जो एकाग्रताको प्राप्त है उसीके मोक्षमार्ग है ऐसा कहकर व्याख्यानको संकोच करते हैं;—[**यः**] जो ज्ञानस्वरूप आत्माका जाननेवाला [**श्रमणः**] मुनि [**यदि**] यदि [**अर्थेषु**] परस्वरूपपदार्थोंमें [**न मुह्यति**] मोही नहीं होता [**न हि रज्यति**] निश्चयकर रागी नहीं

तथाभूतः सन् मुच्यत एव न तु बध्यते । अत ऐकाग्र्यस्यैव मोक्षमार्गत्वं सिद्ध्येत् ॥४४॥
इति मोक्षमार्गप्रज्ञापनम् । अथ शुभोपयोगप्रज्ञापनम् ।

तत्र शुभोपयोगिनः श्रमणत्वेनान्वाचिनोति;—

समणा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता य होंति समयम्मि ।
तेसुवि सुद्धुवजुत्ता अणासवा सासवा सेसा ॥ ४५ ॥

श्रमणाः शुद्धोपयुक्ताः शुभोपयुक्ताश्च भवन्ति समये ।
तेष्वपि शुद्धोपयुक्ता अनास्रवाः सास्रवाः शेषाः ॥ ४५ ॥

ये खलु श्रामण्यपरिणतिं प्रतिज्ञायापि जीवितकषायकणतया समस्तपरद्रव्यनिवृत्तिप्रवृ-

---

णेव दोसमुवयादि अर्थेषु बहिःपदार्थेषु यो न मुह्यति न रज्यति हि स्फुटं नैव द्वेषमुपयाति **जदि** यदि चेत् **सो समणो** स श्रमणः **णियदं** निश्चितं **खवेदि विविहाणि कम्माणि** क्षपयति कर्माणि विविधानि इति । अथ विशेषः—योऽसौ दृष्टश्रुतानुभूतभोगाकाङ्क्षारूपापध्यानत्यागेन निजस्वरूपं भावयति तस्य चित्तं बहिःपदार्थेषु न गच्छति ततश्च बहिःपदार्थे चिन्ताभावान्निर्विकारचिच्चमत्कारमात्राच्च्युतो न भवति । तदच्यवनेन च रागाद्यभावाद्विविधकर्माणि विनाशयतीति । ततो मोक्षार्थिना निश्चलचित्तेन निजात्मनि भावना कर्त्तव्येति । इत्थं वीतरागचारित्रव्याख्यानं श्रुत्वा केचन वदन्ति—सयोगिकेवलिनामप्येकदेशेन चारित्रं, परिपूर्णचारित्रं पुनरयोगिचरमसमये भविष्यति तेन कारणेनेदानीमस्माकं सम्यक्त्वभावनया भेदज्ञानभावनया च पूर्यते चारित्रं पश्चाद्भविष्यतीति नैवं वक्तव्यम् । अभेदनयेन ध्यानमेव चारित्रं तच्च ध्यानं केवलिनामुपचारेणोक्तं चारित्रमप्युपचारेणेति । यत्पुनः समस्तरागादिविकल्पजालरहितं शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं सम्यग्दर्शनज्ञानपूर्वकं वीतरागछद्मस्थचारित्रं तदेव कार्यकारीति । कस्मादिति चेत्? तेनैव केवलज्ञानं जातस्तस्माच्चारित्रे तात्पर्यं कर्त्तव्यमिति भावार्थः । किंच उत्सर्गव्याख्यानकालेऽपि श्रामण्यं व्याख्यातमत्र पुनरपि किमर्थमिति परिहारमाह—तत्र सर्वपरित्यागलक्षण उत्सर्ग एव मुख्यत्वेन च मोक्षमार्गः अत्र तु श्रामण्यव्याख्यानमस्ति परं किन्तु श्रामण्यं मोक्षमार्गो भवतीति मुख्यत्वेन विशेषोऽस्ति ॥ ४४ ॥ एवं श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गो-

---

होता और [**द्वेषं**] द्वेषभावको भी [**नैव उपयाति**] नहीं प्राप्त होता [**सः**] वह मुनि [**नियतं**] निश्चित एकाग्रताकर सहित हुआ [**विविधानि**] अनेकप्रकारके [**कर्माणि**] ज्ञानावरणादि कर्मोंको [**क्षपयति**] क्षय करता है ॥ **भावार्थ—** जो पुरुष ज्ञानस्वरूप आत्माको एकाग्रताकर चिंतवन करता है वह ज्ञेयरूप परद्रव्यको अंगीकार नहीं करता परको त्यागकर ज्ञानस्वरूप आत्मामें लीन होजाता है वहां आपही ज्ञानी हुआ मोही रागी द्वेषी नहीं होता ऐसी वीतराग अवस्थाकर मुक्त होता है । कर्मोंसे नहीं बंधता । इसलिये जो मुनि एकाग्रभावको प्राप्त है उसको ही मोक्षमार्गकी सिद्धि है संदेह नहीं है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार **मोक्षमार्गाधिकार** संपूर्ण हुआ ।

त्सुविशुद्धदर्शनज्ञानस्वभावात्मतत्त्ववृत्तिरूपां शुद्धोपयोगभूमिकामधिरोढुं न क्षमन्ते। ते तदुपकण्ठनिविष्टाः कषायकुण्ठीकृतशक्तयो नितान्तमुत्कण्ठुलमनसः श्रमणाः किं भवेयुर्न वेत्यत्राभिधीयते। "धम्मेण परिणदप्पा" इति स्वयमेव निरूपितत्वादस्ति तावच्छुभोपयोगस्य धर्मेण सहैकार्थसमवायः। ततः शुभोपयोगिनोपि धर्मसद्भावाद्भवेयुः श्रमणाः किन्तु तेषां शुद्धोपयोगिभिः समं समकाष्ठत्वं न भवेत्, यतः शुद्धोपयोगिनो निरस्तसमस्त-

पसंहारमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथाद्वयं गतम्। अथ शुभोपयोगिनां शास्रवत्वाद्व्यवहारेण श्रमणत्वं व्यवस्थापयति;—**संति** विद्यन्ते। क? **समयम्हि** समये परमागमे। के सन्ति। **समणा** श्रमणास्तपोधनाः। किंविशिष्टाः। **सुद्धुवजुत्ता** शुद्धोपयोगयुक्ता शुद्धोपयोगिन इत्यर्थः **सुहोपजुत्ता य** न केवलं शुद्धोपयोगयुक्ताः शुभोपयोगयुक्ताश्च। चकारोत्र अन्वयार्थे गौणार्थे ग्राह्यः। तत्र दृष्टान्तः। यथा निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावाः सिद्धजीवा एव जीवा भण्यन्ते व्यवहारेण चतुर्गतिपरिणता अशुद्धजीवाश्च जीवा इति तथा शुद्धपयोगिनां मुख्यत्वं शुभोपयोगिनां तु चकारसमुच्चयव्याख्यानेन गौणत्वम्। कस्माद्गौणत्वजातमितिचेत्? **तेसुवि सुद्धुपउत्ता अणासवा सासवा सेसा** तेष्वपि मध्ये शुद्धोपयोगयुक्ता अनास्रवाः शेषाः सास्रवा इति यतः कारणात्। तद्यथा—निजशुद्धात्मभावनाबलेन समस्तशुभाशुभसंकल्पविकल्परहितत्वाच्छुद्धोपयोगिनो निरास्रवा एव शेषा-

आगे शुभोपयोगका कथन करते हुए पहले शुभोपयोगीको मुनिपदवीसे जघन्य दिखलाते हैं;—[**समये**] परमागममें [**श्रमणाः**] मुनि [**शुद्धोपयुक्ताः**] शुद्धोपयोगी [**च**] और [**शुभोपयुक्ताः**] शुभोपयोगी इसतरह दोप्रकारके [**भवन्ति**] होते हैं [**तेषु अपि**] उन दोतरहके मुनियोंमें भी [**शुद्धोपयुक्ताः**] शुद्धोपयोगी महामुनि [**अनास्रवाः**] कर्मोंके आस्रवसे रहित हैं [**शेषाः**] बाकी जो शुभोपयोगी मुनि हैं वे [**सास्रवाः**] आस्रवभावसहित हैं ॥ **भावार्थ—**जो जीव यतिपरिणतिकी प्रतिज्ञा करके भी कषायके अंशके उदयसे सब परद्रव्योंसे निवृत्त होकेभी निर्मल ज्ञानदर्शन स्वभावकर आत्मतत्त्वकी प्रवृत्तिरूप शुद्धोपयोग भूमिकाके ऊपर चढनेको असमर्थ हैं शुद्धोपयोगी महामुनिके समीपवर्ती हैं और जिनकी कषायके उदयसे शक्ति क्षीण होरही है जिनका मन चंचल है ऐसे शुभोपयोगी मुनि मुनि होसकते हैं कि नहीं? ऐसा शिष्यका प्रश्न है उसका उत्तर यह है कि "धम्मेण परिणदप्पा" इत्यादि गाथामें हम समाधान कर आये हैं। शुभोपयोगका धर्मके साथ एकार्थसमवाय है। एकार्थसमवाय उसे कहते हैं कि जहां आत्मामें ज्ञानदर्शनपरिणति है और रागपरिणति भी है इसतरह एक आत्मापदार्थमें दोनोंका समवाय है इसकारण शुभोपयोगीके भी धर्मका अस्तित्व है इसीलिये शुभोपयोगीभी परमागममें मुनि कहे हैं परंतु इतना विशेष है कि, शुभोपयोगी शुद्धोपयोगीकी दशाकी समानता नहीं है क्योंकि शुद्धोपयोगी समस्तकषायोंसे रहित है निरास्रव है और शुभोपयोगी कषायअंशसे रहित नहीं है इसके कषायका अंश जीवित

कषायत्वादनास्रवा एव । इमे पुनरनवकीर्णकषायकणत्वात्सास्रवा एव । अतएव च शुद्धोपयोगिभिः सममभी न समुच्चीयन्ते केवलमन्वाचीयन्त एव ॥ ४५ ॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणलक्षणमासूत्रयति;—

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु ।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया ॥ ४६ ॥

अर्हदादिषु भक्तिर्वत्सलता प्रवचनाभियुक्तेषु ।
विद्यते यदि सामान्ये सा शुभयुक्ता भवेच्चर्या ॥ ४६ ॥

सकलसंगसंन्यासात्मनि श्रामण्ये सत्यपि कषायलवावेशवशात् स्वयं शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थातुमशक्तस्य परेषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रेणावस्थितेष्वर्हदादिषु शुद्धात्मवृत्तिमात्रावस्थितिप्रतिपादकेषु प्रवचनाभियुक्तेषु च भक्त्या वत्सलतया च प्रचलितस्य तावन्मात्ररागप्रव-

शुभोपयोगिनो मिथ्यात्वविषयकषायरूपाशुभास्रवनिरोधेऽपि पुण्यास्रवसहिता इति भावः ॥४५॥ अथ शुभोपयोगिश्रमणानां लक्षणमाख्याति;—**सा सुहजुत्ता हवे चारिया** सा चर्या शुभयुक्ता भवेत् । कस्य । तपोधनस्य । कथंभूतस्य । समस्तरागादिविकल्परहितपरमसमाधौ स्थातुमशक्यस्य । यदि किम्? **विज्जदि जदि** विद्यते यदि चेत् । क? **सामण्णे** श्रामण्ये चारित्रे। किं विद्यते? **अरहंतादिसु भत्ती** अनन्तगुणयुक्तेष्वर्हत्सिद्धेषु गुणानुरागयुक्ता भक्तिः **वच्छलदा** वत्सलस्य भावो वत्सलता वात्सल्यं विनयोऽनुकूलवृत्तिः । केषु विषयेषु? **पवयणाहिजुत्तेसु** प्रवचनाभियुक्तेषु । प्रवचनशब्देनात्रागमो भण्यते संघो वा तेन प्रवचनेनाभियुक्ताः प्रवचनाभियुक्ता आचार्योपाध्यायसाधवस्तेष्विति । एतदुक्तं भवति—स्वयं शुद्धोपयोगलक्षणे परमसामयिके स्थातुमसमर्थस्यान्येषु शुद्धोपयोगफलभूतकेवलज्ञानेन परिणतेषु तथैव शुद्धोपयोगाराधकेषु च

हैं सास्रव है । इसलिये शुद्धोपयोगीके वराबर नहीं है जघन्य है ॥ ४५ ॥ आगे शुभोपयोगी मुनिका लक्षण कहते हैं;—[**यदि**] जो [**श्रामण्ये**] मुनि अवस्थामें [**अर्हदादिषु भक्तिः**] अरहंतादि पंचपरमेष्ठियोंमें अनुराग और [**प्रवचनाभियुक्तेषु**] परमागमकर युक्त शुद्धात्मस्वरूपके उपदेशक महामुनियोंमें [**वत्सलता**] प्रीति अर्थात् जिसतरह गौ अपने बछरेमें अनुरागिणी होती है उसीतरह [**विद्यते**] प्रवर्ते तो [**सा**] वह [**शुभयुक्ता**] शुभरागकर संयुक्त [**चर्या**] आचारकी प्रवृत्ति [**भवेत्**] होती है ॥ **भावार्थ**—जो मुनि समस्त परिग्रहके त्याग करनेसे मुनि अवस्थाकोभी प्राप्त है परंतु कषाय अंशके उदय वशसे आप शुद्धात्मामें स्थिर होनेको अशक्त है तो वह मुनि, जो शुद्धात्मस्वरूपके उपदेष्टा हैं उनमें भक्तिसे प्रीतिकर प्रवर्तता है उस मुनिके इतनीही रागप्रवृत्तिकर परद्रव्यमें प्रवृत्ति होती है और वह शुद्धात्मतत्त्वकी स्थिरतासे चलित होता है । ऐसे मुनिके शुभोपयोगरूप चारित्रभाव जानना । ये ही पंच परमेष्ठियोंमें भक्ति सेवा प्रीति शुभोपयोगी मुनीश्वरका

र्तितपरद्रव्यप्रवृत्तिसंवलितशुद्धात्मवृत्तेः शुभोपयोगि चारित्रं स्यात्। अतः शुभोपयोगिश्रमणानां शुद्धात्मानुरागयोगि चारित्रत्वलक्षणम् ॥ ४६ ॥

अथ शुभोपयोगिश्रमणानां प्रवृत्तिमुपदर्शयति;—

वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती।
समणेसु समावणओ ण णिंदिया रायचरियम्मि ॥ ४७ ॥

वन्दननमस्करणाभ्यामभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः।
श्रमणेषु श्रमापनयो न निन्दिता रागचर्यायाम् ॥ ४७ ॥

शुभोपयोगिनां हि शुद्धात्मानुरागयोगिचारित्रतया समधिगतशुद्धात्मवृत्तिषु श्रमणेषु वन्दननमस्करणाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता श्रमापनयनप्रवृत्तिश्च न दुष्येत् ॥ ४७ ॥

अथ शुभोपयोगिनामेवैवंविधाः प्रवृत्तयो भवन्तीति प्रतिपादयति;—

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य ॥ ४८ ॥

याऽसौ भक्तिस्तच्छुभोपयोगिश्रवणानां लक्षणमिति ॥ ४६ ॥ अथ शुभोपयोगिनां शुभप्रवृत्तिं दर्शयति;—**ण णिंदिदा** नैव निषिद्धा। क? **रायचरियम्हि** शुभरागचर्यायां सरागचारित्रावस्थायाम्। का न निन्दिता? **वंदणणमंसणेहिं अब्भुट्ठाणाणुगमणपडिवत्ती** वन्दननमस्काराभ्यां सहाभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिप्रवृत्तिः। **समणेसु समापणओ** श्रमणेषु श्रमापनयः रत्नत्रयभावनाभिघातकश्रमस्य खेदस्य विनाश इति। अनेन किमुक्तं भवति—शुद्धोपयोगसाधके शुभोपयोगे स्थितानां तपोधनानां इत्थंभूताः शुभोपयोगप्रवृत्तयो रत्नत्रयाराधकस्वरूपेषु विषये युक्ता एव विहिता एवेति ॥ ४७ ॥ अथ शुभोपयोगिनामेवेत्थंभूताः प्र-

---

लक्षण प्रगट है ॥ ४६ ॥ आगे शुभोपयोगी मुनीश्वरकी प्रवृत्ति दिखलाते हैं:—**[रागचर्यायां]** सरागचारित्र अवस्थामें जो शुभोपयोगी मुनि हैं उनको **[श्रमणेषु]** शुद्धस्वरूपमें थिर ऐसे महामुनियोंमें **[श्रमापनयः]** अनिष्ट वस्तुके संयोगसे हुआ जो खेद उसका दूर करना और **[वन्दननमस्काराभ्यां]** गुणानुवादरूप स्तुति और नमस्कारसहित **[अभ्युत्थानानुगमनप्रतिपत्तिः]** आते हुए देखके उठकर खड़ा हो जाना पीछे २ चलना ऐसी प्रवृत्तिकी सिद्धि **[न निन्दिता]** निषेधरूप नहीं कीगई है ॥ **भावार्थ**—शुभोपयोगी मुनि जो महामुनीश्वरोंकी स्तुति करे नमस्कार करे उनको देखकर उठके खड़ा हो और पीछे २ चले इत्यादि विनयपूर्वक प्रवर्ते तो योग्य है निषेध नहीं है और जो महामुनिके स्थिरताके घातक कभी उपसर्गादिसे खेद हुआ हो तो उसके दूर करनेको वैयावृत्ति क्रियाभी निषेधरूप नहीं है शुद्धात्मभावकी थिरताके लिये योग्य है खेदके नाश होनेपर मुनिके समाधि होती है इसलिये योग्य है ॥ ४७ ॥ आगे शुभोपयोगियोंके ही ऐसी प्रवृत्तियां होती हैं यह कहते हैं;—**[हि]**

दर्शनज्ञानोपदेशः शिष्यग्रहणं च पोषणं तेषाम् ।
चर्या हि सरागाणां जिनेन्द्रपूजोपदेशश्च ॥ ४८ ॥

अनुजिघृक्षापूर्वकदर्शनज्ञानोपदेशप्रवृत्तिः शिष्यसंग्रहणप्रवृत्तिस्तत्पोषणप्रवृत्तिर्जिनेन्द्रपूजोपदेशप्रवृत्तिश्च शुभोपयोगिनामेव भवन्ति न शुद्धोपयोगिनाम् ॥ ४८ ॥

अथ सर्वा एव प्रवृत्तयः शुभोपयोगिनामेव भवन्तीत्यवधारयति;—

उवकुणदि जोवि णिच्चं चादुव्वण्णस्स समणसंघस्स ।
कायविराधणरहिदं सोवि सरागप्पधाणो से ॥ ४९ ॥

उपकरोति योपि नित्यं चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य ।
कायविराधनरहितं सोपि सरागप्रधानः स्यात् ॥ ४९ ॥

वृत्तयो भवन्ति न च शुद्धोपयोगिनामिति प्ररूपयति;—**दंसणणाणुवदेसो** दर्शनं मूढत्रयादिरहितं सम्यक्त्वं ज्ञानं परमागमोपदेशः तयोरुपदेशो दर्शनज्ञानोपदेशः **सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं** रत्नत्रयाराधनाशिक्षाशीलानां शिष्याणां ग्रहणं स्वीकारस्तेषामेव पोषणमशनशयनादिचिन्ता **चरिया हि सरागाणं** इत्थंभूता चर्या चारित्रं भवति हि स्फुटं । केषां । सरागाणां धर्मानुरागचारित्रसहितानाम् । न केवलमित्थंभूता **जिणिंदपूजोवदेसो य** यथासम्भवं जिनेन्द्रपूजादिधर्मोपदेशश्चेति । ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते । श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति । परिहारमाह—युक्तमुक्तं भवता परं किन्तु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्त्तन्ते । यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते । येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्त्तन्ते तथापि शुद्धोपयोगिन एव । कस्मात् ? बहुपदस्य प्रधानत्वादाम्रवननिम्बवनवदिति ॥ ४८ ॥ अथ काश्चिदपि या प्रवृत्तयस्ताः शुभोपयोगिनामेवेति नियमति;—**उवकुणदि जो वि णिच्चं**

निश्चयकर [**सरागाणां**] शुभोपयोगी मुनियोंकी [**चर्या**] यह क्रिया है जो कि, [**दर्शनज्ञानोपदेशः**] सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानका उपदेश देना [**शिष्यग्रहणं**] शिष्यशाखाओंका संग्रह करना [**च तेषां पोषणं**] और उन शिष्योंका समाधान करना [**च**] और [**जिनेन्द्रपूजोपदेशः**] भगवान् वीतरागकी पूजाका उपदेश देना इत्यादि ॥ **भावार्थ**—पूर्व कहीं जो क्रिया वे शुभोपयोगी मुनिके होती हैं शुद्धोपयोगीयोंके नहीं होतीं क्योंकि शुद्धोपयोगी वीतराग हैं और शुभोपयोगी सराग हैं इसलिये इनके धर्मानुरागसे ऐसी इच्छा होती है कि जीव धर्मको ग्रहण करै तो बहुत अच्छा है ऐसा जानकर ज्ञानदर्शनका उपदेश देते हैं शिष्योंको रखते हैं पोषते हैं भगवानकी भक्तिका उपदेश करते हैं ऐसीं शुभोपयोगी मुनिकी क्रिया हैं ॥४८॥ आगे समस्त ही वैयावृत्यादिक क्रिया शुभोपयोगियोंके भी नहीं होती यह कहते हैं;—[**यः अपि**] जो मुनि

प्रतिज्ञातसंयमत्वात् षट्कायविराधनरहिता या काचनापि शुद्धात्मवृत्तित्राणनिमित्ता चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्योपकारकरणप्रवृत्तिः सा सर्वापि रागप्रधानत्वात् शुभोपयोगिनामेव भवति न कदाचिदपि शुद्धोपयोगिनाम् ॥ ४९ ॥

अथ प्रवृत्तेः संयमविरोधित्वं प्रतिषेधयति;—

जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो समणो।
ण हवदि हवदि अगारी धम्मो सो सावयाणं से ॥ ५० ॥

यदि करोति कायखेदं वैयावृत्त्यर्थमुद्यतः श्रमणः।
न भवति भवत्यगारी धर्मः स श्रावकाणां स्यात् ॥ ५० ॥

यो हि परेषां शुद्धात्मवृत्तित्राणाभिप्रायेण वैयावृत्त्यप्रवृत्त्या स्वस्य संयमं विराधयति स

चाउव्वण्णस्स समणसंघस्स उपकरोति योऽपि नित्यं कस्य चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य। अत्र श्रमणशब्देन श्रमणशब्दवाच्या ऋषिमुनियत्यनगारा ग्राह्याः। "देशप्रत्यक्षवित्केवलभृदिहमुनिः स्यादृषिः प्रसृतर्द्धिरारूढः श्रेणियुग्मेऽजनि यतिरनगारोऽपरः साधुवर्गः। राजा ब्रह्मा च देवपरम इति ऋषिर्विक्रियाक्षीणशक्तिप्राप्तो बुद्ध्यौषधीशो वियदयनपटुर्विश्ववेदी क्रमेण ॥ १ ॥" ऋषय ऋद्धिप्राप्तास्ते चतुर्विधा राजब्रह्मदेवपरमऋषिभेदात्। तत्र राजर्षयो विक्रियाक्षीणर्द्धिप्राप्ता भवन्ति। ब्रह्मर्षयो बुद्ध्यौषधर्द्धियुक्ता भवन्ति। देवर्षयो गगनगमनर्द्धिसम्पन्ना भवन्ति परमर्षयः केवलिनः केवलज्ञानिनो भवन्ति मुनयः अवधिमनःपर्ययकेवलिनश्च। यतय उपशमकक्षपकश्रेण्यारूढाः। अनगाराः सामान्यसाधवः। कस्मात्? सर्वेषां सुखदुःखादिविषये समतापरिणामोऽस्तीति। अथवा श्रमणधर्मानुकूलश्रावकादिचातुर्वर्णसंघः। कथं यथा भवति। **कायविराहणरहिदं** स्वस्वभावनास्वरूपं स्वकीयशुद्धचैतन्यलक्षणं निश्चयप्राणं रक्षन् परकीयषट्कायविराधनारहितं यथा भवति **सो वि सरागप्पधाणो से** सोऽपीत्थंभूतस्तपोधनो धर्मानुरागचारित्रसहितेषु मध्ये प्रधानः श्रेष्ठः स्यादित्यर्थः ॥ ४९ ॥ अथ वैयावृत्त्यकालेऽपि स्वकीयसंय-

---

निश्चयसे [**नित्यं**] सदाकाल [**चातुर्वर्ण्यस्य**] चार प्रकारके [**श्रमणसंघस्य**] मुनीश्वरोंके संघका [**कायविराधनरहितं**] षट्कायजीवोंकी विराधनारहित [**उपकरोति**] यथायोग्य वैयावृत्यादिक कर उपकार करता है [**सोपि**] वह भी चतुर्विध संघका उपकारी मुनि [**सरागप्रधानः**] सरागधर्म है प्रधान जिसके ऐसा शुभोपयोगी [**स्यात्**] होता है ॥ **भावार्थ—**जो चारतरहके संघका उपकारी होता है वह एक शुद्धात्माके आचरणकी रक्षाके लिये होता है। चतुर्विधसंघ शुद्धात्माका आचरण करता है इससे उसकी रक्षाकेलिये वह ऐसा उपकार करता है जिसमें कि षट्कायकी विराधना (हिंसा) न होवे क्योंकि यह मुनि भी संयमी है इसलिये अपना संयम भी रखता है उपकार करता है इसकारण यह संयमी शुभोपयोगी है, शुद्धोपयोगियोंके ऐसी क्रिया नहीं होती ॥ ४९ ॥ आगे ऐसी वैयावृत्यादिकक्रिया नहीं करे जो कि अपने संय-

गृहस्थधर्मानुप्रवेशात् श्रामण्यात् प्रच्यवते । अतो या काचन प्रवृत्तिः सा सर्वथा संयमाविरोधेनैव विधातव्या । प्रवृत्तावपि संयमस्यैव साध्यत्वात् ॥ ५० ॥

अथ प्रवृत्तेर्विषयविभागं दर्शयति;—

जोण्हाणं णिरवेक्खं सागारणगारचरियजुत्ताणं ।
अणुकंपयोवयारं कुव्वदु लेवो यदिवियप्पं ॥ ५१ ॥

जैनानां निरपेक्षं साकारानाकारचर्यायुक्तानाम् ।
अनुकम्पयोपकारं करोतु लेपो यद्यप्यल्पः ॥ ५१ ॥

या किलानुकम्पापूर्विका परोपकारलक्षणा प्रवृत्तिः साखल्वनेकान्तमैत्रीपवित्रितचित्तेषु

मविराधनाकर्त्तव्येत्युपदिशति;—**जदि कुणदि कायखेदं वेज्जावच्चत्थमुज्जदो** यदि चेत् करोति कायखेदं षट्कायविराधनां । कथंभूतः सन् । वैयावृत्त्यर्थमुद्यतः **समणो ण हवदि** तदा श्रमणस्तपोधनो न भवति । तर्हि किं भवति ? **हवदि अगारी** अगारी गृहस्थो भवति । कस्मात् । **धम्मो सो सावयाणं से** षट्कायविराधनां कृत्वा योऽसौ धर्मः स श्रावकाणां स्यात् न च तपोधनानामिति । इदमत्र तात्पर्यम्—योऽसौ स्वशरीरपोषणार्थं शिष्यादिमोहेन वा सावद्यं नेच्छति तस्येदं व्याख्यानं शोभते यदि पुनरन्यत्र सावद्यमिच्छति वैयावृत्त्यादिस्वकीयावस्थायोग्ये धर्मकार्ये नेच्छति तदा तस्य सम्यक्त्वमेव नास्तीति ॥ ५० ॥ अथ यद्यप्यल्पलेपो भवति परोपकारे तथापि शुभोपयोगिभिर्धर्मोपकारः कर्त्तव्य इत्युपदिशति;—**कुव्वदु** करोतु । स कः कर्त्ता । शुभोपयोगी पुरुषः । कं करोतु । **अणुकंपओवयारं** अनुकम्पासहितोपकारं दयास-

---

मकी विरोधिनी होवे यह कहते हैं;—[**वैयावृत्त्यर्थं उद्यतः**] अन्य मुनीश्वरोंकी सेवाकेलिये उद्यमवान् हुआ जो शुभोपयोगी मुनि वह [**यदि**] जो [**कायखेदं**] षट्कायकी विराधनारूप हिंसाको [**करोति**] करता है तो वह [**श्रमणः**] अपने संयमका धारक मुनि [**न भवति**] नहीं होता किं तु [**अगारी भवति**] गृहस्थ होता है क्योंकि [**सः**] वह जीवकी विराधनायुक्त वैयावृत्त्यादिक्रिया [**श्रावकाणां**] गृहवासी श्रावकोंका [**धर्मः**] धर्म [**स्यात्**] है ॥ **भावार्थ**—जो कोई सरागचारित्री मुनि अन्य मुनीश्वरोंकी शुद्धात्माचरणकी रक्षाकेलिये वैयावृत्त्य क्रियाकर अपनेमें विराधना करता है वह गृहस्थधर्मको करता है मुनिपदसे गिरता है क्योंकि हिंसासहित गृहस्थका धर्म है, इसलिये शुद्धोपयोगी मुनिके संयमका घात न होवे इसतरह सेवादि क्रियामें प्रवर्तता है क्योंकि अन्यकी सेवामें जो प्रवर्तता है वह भी संयमकी ही वृद्धिके लिये । इसकारण संयमका घात करना योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ आगे परोपकार प्रवृत्ति किसकी करे यह भेद दिखलाते हैं;—[**साकारानाकारचर्यायुक्तानां**] श्रावक मुनिकी आचार क्रिया सहित जो [**जैनानां**] जिनमार्गानुसारी श्रावक मुनि हैं उनका [**निरपेक्षं**] फलकी अभिलाषा रहित होके [**अनुकम्पया**]

शुद्धेषु जैनेषु शुद्धज्ञानदर्शनप्रवृत्तवृत्तितया साकारानाकारचर्यायुक्तेषु शुद्धात्मोपलम्भेतर-सकलनिरपेक्षतयैवाल्पलेपाप्यप्रतिषिद्धा न पुनरल्पलेपेति सर्वत्र सर्वथैवाप्रतिषिद्धा, तत्र तथा प्रवृत्त्याशुद्धात्मवृत्तित्राणस्य परात्मनोरनुपपत्तेरिति ॥ ५१ ॥

अथ प्रवृत्तेः कालविभागं दर्शयति;—

रोगेण वा छुधाए तण्हणया वा समेण वा रूढं ।
दिट्ठा समणं साधू पडिवज्जदु आदसत्तीए ॥ ५२ ॥

रोगेण वा क्षुधया तृष्णया वा श्रमेण वा रूढम् ।
दृष्ट्वा श्रमणं साधुः प्रतिपद्यतामात्मशक्त्या ॥ ५२ ॥

यदा हि समधिगतशुद्धात्मवृत्तेः श्रमणस्य तत्प्रच्यावनहेतोः कस्याप्युपसर्गस्योपनिपातः

हितं धर्मवात्सल्यम् । यदि किम्? **लेवो जदि वियप्पो** "सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ" इति इति दृष्टान्तेन यद्यप्यल्पलेपः स्तोकसावद्यं भवति । केषां करोतु । **जेण्हाणं** निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गपरिणतजैनानाम् । कथम् । **णिरवेक्खं** निरपेक्षं शुद्धात्मभावनाविनाशकख्यातिपूजालाभवाञ्छारहितं यथा भवति । कथंभूतानां जैनानाम्? **सागारणगारचरियजुत्ताणं** सागारानागारचर्यायुक्तानां श्रावकतपोधनाचरणसहितानामित्यर्थः ॥ ५१ ॥ कस्मिन्प्रस्तावे वैयावृत्त्यं कर्तव्यमित्युपदिशति;—**पडिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु । कया । **आदसत्तीए** स्वशक्त्या स कः कर्ता । **साहू** रत्नत्रयभावनया स्वात्मानं साधयतीति साधुः । कम्? **समणं** जीवितमरणादिसमपरिणतत्वाच्छ्रमणस्तं श्रमणम् **दिट्ठा** दृष्ट्वा । कथंभूतं । **रूढं** रूढं व्याप्तं पीडितं

दयाभावसे [**उपकारं**] उपकार अर्थात् यथायोग्य सेवादिक क्रिया [**करोतु**] शुभोपयोगी करो कोई दोष नहीं [**यद्यपि**] लेकिन इस शुभाचारकर [**अल्पलेपः**] थोड़ासा शुभकर्म बंधता है परंतु तौभी दोष नहीं है ॥ **भावार्थ**—जो यह दयाभावकर परोपकाररूप प्रवृत्ति कही है वह अनेकान्तसे पवित्र है चित्त जिनका ऐसे उत्तम जैनी यति श्रावकोंमें करनी योग्य है शुद्धात्मकी प्राप्तिसे अन्य समस्त शुभफलकी वांछासे रहित सहजही जो अल्पकर्म लेप भी है तोभी अच्छा है और जो शुद्धात्माकी प्राप्तिसे रहित मिथ्यादृष्टि हैं उनकी सेवादिक निषेध की गई है । जो उनकी सेवादिककर थोड़ाभी कर्मबंध है तोभी निषेध है क्योंकि उन मिथ्यादृष्टियोंकी सेवासे न तो अपनेको शुद्धात्मतत्त्वकी प्राप्ति है और न उनके शुद्धात्मतत्त्वकी रक्षा है दोनों जगह धर्मकी वृद्धि नहीं है इससे उसका निषेध है ॥ ५१ ॥ आगे किस समय धर्मात्माओंके वैयावृत्त्यादिक क्रिया होती है यह कहते हैं;—[**साधुः**] शुभोपयोगी मुनि [**रोगेण**] रोगकर [**वा**] अथवा [**क्षुधया**] भूखकर [**वा**] अथवा [**तृष्णया**] प्यासकर [**वा**] अथवा [**श्रमेण**] परीसहादिकके खेदकर [**रूढं**] पीडित हुए [**श्रमणं**] महामुनीश्वरको [**दृष्ट्वा**] देखकर [**आत्मशक्त्या**] अपनी शक्तिके अनुसार [प्र-

स्यात् स शुभोपयोगिनः स्वशक्त्या प्रतिचिकीर्षा प्रवृत्तिकालः । इतरस्तु स्वयं शुद्धात्मवृत्तेः समधिगमनाय केवलनिवृत्तिकाल एव ॥ ५२ ॥

अथ लोकसंभाषणप्रवृत्तिं सनिमित्तविभागं दर्शयति;—

वेज्जावच्चणिमित्तं गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं ।
लोगिगजणसंभासा ण णिंदिदा वा सुहोवजुदा ॥ ५३ ॥

वैयावृत्त्यनिमित्तं ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम् ।
लौकिकजनसंभाषा न निन्दिता वा शुभोपयुता ॥ ५३ ॥

कदर्थितम् । केन? **रोगेण वा** अनाकुलत्वलक्षणपरमात्मनो विलक्षणेनाकुलत्वोत्पादकेन रोगेण व्याधिविशेषेण वा **छुहाए** क्षुधया **तण्हाए वा** तृषया वा **समेण वा** मार्गोपवासादिश्रमेण वा । अत्रेदं तात्पर्यम्—स्वस्वभावनाविघातकरोगादिप्रस्तावे वैयावृत्त्यं करोति शेषकाले स्वकीयानुष्ठानं करोतीति ॥ ५२ ॥ अथ शुभोपयोगिनां तपोधनवैयावृत्त्यनिमित्तं लौकिकसंभाषणविषये निषेधो नास्तीत्युपदिशति;—**ण णिंदिदा** शुभोपयोगितपोधनानां न निन्दिता न निषिद्धा । का कर्मतापन्ना । **लोगिगजणसंभासा** लौकिकजनैः सह संभाषा वचनप्रवृत्तिः **सुहोवजुदा वा** अथवा सापि शुभोपयोगयुक्ता भण्यते । किमर्थं न निषिद्धा? **वेज्जावच्चनिमित्तं** वैयावृत्त्यनिमित्तम् । केषां वैयावृत्त्यम्? **गिलाणगुरुबालवुड्ढसमणाणं** ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानाम् । अत्र गुरुशब्देन स्थूलकायो भण्यते अथवा पूज्यो वा गुरुरिति । तथाहि—यदा कोऽपि शुभोपयोगयुक्त आचार्यः सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगिनां वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धो-

---

तिपद्यतां] वैयावृत्त्यादिक क्रिया करो । यही सेवादिकका समय जानना ॥ **भावार्थ**—जो मुनि अच्छीतरह शुद्धस्वरूपमें लीन हुए हैं उनके किसीएक संयोगसे स्वरूपसे चलायमान होनेका कारण कोईएक उपसर्ग आगया हो तो वह शुभोपयोगी मुनिका वैयावृत्त्यादिकका काल है । उस समय ऐसा कार्य करै जो उनका उपसर्ग दूर होके स्वरूपमें थिरता हो । इससे अन्य जो शुभोपयोगियोंका काल है वह अपने शुद्धात्मस्वरूपके आचरणके निमित्त है सेवादिकके निमित्त नहीं । वे मुनि उससमय ध्यानादिकमें प्रवर्तते हैं ॥ ५२ ॥ आगे शुभोपयोगियोंके वैयावृत्त्यादिकके लिये अज्ञानी लोकोंसे भी बोलना पड़ता है ऐसा भेद दिखलाते हैं;—[**ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानां**] रोगपीडित, पूज्य आचार्य, बरसोंमें छोटे, और बरसोंमें बड़े ऐसे चार तरहके मुनियोंकी [**वैयावृत्त्यनिमित्तं**] सेवाके लिये [**शुभोपयुक्ता**] शुभभावोंकर सहित [**लौकिकजनसंभाषा वा**] अज्ञानी चारित्रभ्रष्ट जीवोंसे वचनकी प्रवृत्ति करनी (बोलना) भी [**न निन्दिता**] निषेधित नहीं की गई है ॥ **भावार्थ**—जो धर्मात्मा मुनि हैं वे अज्ञानी लोकोंसे वचनालाप नहीं करते हैं परंतु किसी समय उन लोकोंसे बोलनेसे जो महामुनीश्वरोंका उपसर्ग दूर होजावेगा ऐसा मालूम पड़ जाय

समधिगतशुद्धात्मवृत्तीनां ग्लानगुरुबालवृद्धश्रमणानां वैयावृत्त्यनिमित्तमेव शुद्धात्मवृत्तिशून्यजनसंभाषणं प्रसिद्धं न पुनरन्यनिमित्तमपि ॥ ५३ ॥

अथैवमुक्तस्य शुभोपयोगस्य गौणमुख्यविभागं दर्शयति;—

एसा पसत्थभूता समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।
चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं ॥ ५४ ॥

एषा प्रशस्तभूता श्रमणानां वा पुनर्गृहस्थानाम्।
चर्या परेति भणिता तयैव परं लभते सौख्यम् ॥ ५४ ॥

एवमेष शुद्धात्मानुरागयोगिप्रशस्तचर्यारूप उपवर्णितः शुभोपयोगः तदयं शुद्धात्मप्रकाशिकां समस्तविरतिमुपेयुषां कषायकणसद्भावात्प्रवर्तमानः शुद्धात्मवृत्तिविरुद्धरागसंगतत्वाद्गौणः श्रमणानां, गृहिणां तु समस्तविरतेरभावेन शुद्धात्मप्रकाशनस्याभावात्कषायस-

---

पयोगिनां वैयावृत्यं करोति तदाकाले तद्वैयावृत्यनिमित्तं लौकिकजनैः सह सम्भाषणं करोति न शेषकाल इति भावार्थः ॥ ५३ ॥ एवं गाथापञ्चकेन लौकिकव्याख्यानसम्बन्धिप्रथमस्थलं गतम्। अथायं वैयावृत्यादिलक्षणशुभोपयोगस्तपोधनैर्गौणवृत्त्या श्रावकैस्तु मुख्यवृत्त्या कर्त्तव्य इत्याख्याति;—**भणिदा** भणिता कथिता। का कर्मतापन्ना? **चरिया** चारित्रमनुष्ठानम्। किं विशिष्टा। **एसा** एषा प्रत्यक्षीभूता। पुनश्च किंरूपा? **पसत्थभूदा** प्रशस्तभूता धर्मानुरागरूपा। केषां सम्बन्धिनी। **समणाणं वा** श्रमणानां वा **पुणो घरत्थाणं** गृहस्थानां वा पुनरियमेव चर्या **परेत्ति** परा सर्वोत्कृष्टेति **ताएव परं लहदि सोक्खं** तयैव शुभोपयोगचर्यया परंपरया मोक्षसुखं लभते गृहस्थ इति। तथाहि—तपोधनाः शेषतपोधनानां वैयावृत्यं कुर्वाणाः सन्तः कायेन किमपि निरवद्यवैयावृत्यं कुर्वन्ति। वचनेन धर्मोपदेशं च। शेषमौषधान्नपानादिकं गृहस्थानामधीनं तेन कारणेन वैयावृत्यरूपो धर्मो गृहस्थानां मुख्यः तपोधनानां गौणः। द्वितीयं च कारणं निर्विकारचिच्चमत्कारभावनाप्रतिपक्षभूतेन विषयकषायनिमित्तोत्पन्नेनार्त्तरौद्रध्यान-

---

तो उन मुनियोंकी वैयावृत्यकेलिये उन लोगोंसे वचनालाप करनेका निषेध नहीं है अन्यकार्यके लिये निषेध है ॥ ५३ ॥ आगे शुभोपयोग किसके गौण है और किसके मुख्य है यह दिखलाते हैं;—[**एषा**] यह [**प्रशस्तभूता**] शुभरागरूप [**चर्या**] आचारप्रवृत्ति [**श्रमणानां**] मुनीश्वरोंके होती है [**वा पुनः**] और [**गृहस्थानां**] श्रावकोंके [**परा**] उत्कृष्ट होती है [**इति भणिता**] ऐसी परमागममें कही गई है [**तया एव**] उसी शुभरागरूप आचार प्रवृत्तिकर श्रावक [**परं सौख्यं**] उत्कृष्ट मोक्ष सुखको [**लभते**] परंपराकर पाता है ॥ **भावार्थ**—शुद्धात्मामें अनुरागरूप जो शुभाचार है वह शुद्धात्माकी प्रकाशनेवाली महाविरतिको प्राप्त मुनीश्वरोंके कषाय अंशके उदयसे गौणरूप प्रवर्तता है क्योंकि यह शुभाचार शुद्धात्माके आचरणके विरोधी रागके संबंधसे होता है, और श्रावकके यह शुभाचार मुख्य है क्योंकि गृहस्थके

स्वात्मवर्तमानोऽपि स्फटिकसंपर्केणार्कतेजस इवैधसां रागसंयोगेनाशुद्धात्मनोऽनुभवात्क्र-
मतः परमनिर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च मुख्यः ॥ ५४ ॥

अथ शुभोपयोगस्य कारणवैपरीत्यात् फलवैपरीत्यं साधयति;—

रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं ।
णाणाभूमिगदाणि हि बीयाणिव सस्सकालम्मि ॥ ५५ ॥

रागः प्रशस्तभूतो वस्तुविशेषेण फलति विपरीतम् ।
नानाभूमिगतानि हि बीजानीव सस्यकाले ॥ ५५ ॥

यथैकेषामपि बीजानां भूमिवैपरीत्यान्निष्पत्तिवैपरीत्यं तथैकस्यापि प्रशस्तरागलक्षणस्य

द्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चयधर्मस्यावकाशो नास्ति वैयावृत्त्यादिधर्मेण दुर्ध्यानवञ्चना भवति तपोधनसंसर्गेण निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गोपदेशलाभो भवति । ततश्च परंपरया निर्वाणं लभत इत्यभिप्रायः ॥ ५४ ॥ एवं शुभोपयोगितपोधनानां शुभानुष्ठानकथनमुख्यतया गाथाष्ट-केन द्वितीयस्थलं गतम् । इत ऊर्द्ध्वं गाथाषट्कपर्यन्तं पात्रापात्रपरीक्षामुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति । अथ शुभोपयोगस्य पात्रभूतवस्तुविशेषात्फलविशेषं दर्शयति;—**फलदि** फलति फलं ददाति । स कः । **रागो** रागः । कथंभूतः । **पसत्थभूदो** प्रशस्तभूतो दानपूजादिरूपः । किं फलति ? **विवरीदं** विपरीतमन्यादृशं भिन्नभिन्नफलम् । केन कारणभूतेन । **वत्थुविसेसेण** जघन्यमध्य-मोत्कृष्टभेदभिन्नपात्रभूतवस्तुविशेषेण । अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—**णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि** नानाभूमिगतानीह बीजानि इव सस्यकाले धान्यनिष्पत्तिकाल इति । अयम-त्रार्थः—यथा जघन्यमध्यमोत्कृष्टभूमिवशेन तान्येव बीजानि भिन्नभिन्नफलं प्रयच्छन्ति तथा स एव बीजास्थानीयशुभोपयोगो भूमिस्थानीयपात्रभूतवस्तुविशेषेण भिन्नभिन्नफलं ददाति । तेन किं सिद्धम् । यदा पूर्वसूत्रकथितन्यायेन सम्यक्त्वपूर्वकः शुभोपयोगो भवति तदा मुख्यवृत्त्या

महाविरतिका तो अभाव है इसलिये शुद्धात्माचरणकी थिरताके प्रकाशका अभाव है इसी-कारण कषायोंके उदयसे मुख्य है । यह शुभोपयोग रागके संयोगसे गृहस्थके शुद्धा-त्माके अनुभवसे परंपरा मोक्षका कारण होता है । जैसे स्फटिकमणिके संबंधसे ईंधनमें सूर्यसे आग परंपराकर प्रगट होती है उसीप्रकार गृहस्थके यह शुभोपयोग परंपरा मोक्षका कारण है ॥ ५४ ॥ आगे इस शुभोपयोगके कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता सिद्ध होती है;—[**प्रशस्तभूतः**] शुभरूप [**रागः**] रागभाव अर्थात् शुभोपयोग [**वस्तुविशेषेण**] पुरुषके भेदकर [**विपरीतं**] विपरीतफलको [**फलति**] फलता है जैसे [**सस्यकाले**] खेतीके समयमें [**नानाभूमिगतानि**] नानाप्रकारकी खोटी भूमिमें डाले हुए [**हि**] निश्चयसे [**बीजानि इव**] बीजधान्य विपरीत फलको करते हैं उसतरह ॥ **भावार्थ**—कोई कोई भूमियां ऐसीं खराब हैं कि जिनमें जमनेकेलिये बोयागया अन्न खराब होजाता है उसीतरह यह शुभोपयोग

शुभोपयोगस्य पात्रवैपरीत्यात्फलवैपरीत्यं कारणविशेषात्कार्यविशेषस्यावश्यं भावित्वात् ॥५५॥

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये दर्शयति;—

छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो ।
ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि ॥ ५६ ॥

छद्मस्थविहितवस्तुषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः ।
न लभते अपुनर्भावं भावं सातात्मकं लभते ॥ ५६ ॥

शुभोपयोगस्य सर्वज्ञव्यवस्थापितवस्तुषु प्रणिहितस्य पुण्योपचयपूर्वकोपुनर्भावोपलम्भः किल फलं, तत्तु कारणवैपरीत्याद्विपर्यय एव । तत्र छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं

पुण्यबन्धो भवति परंपरया निर्वाणं च । नो चेत्पुण्यबन्धमात्रमेव ॥ ५५ ॥ अथ कारणवैपरीत्यात्फलमपि विपरीतं भवति तमेवार्थं दृढयति;—**ण लहदि** न लभते । स कः कर्ता? **वणियमज्झयणझाणदाणरदो** व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः । केषु विषयेषु? यानि व्रतादीनि? **छदुमत्थविहिदवत्थसु** छद्मस्थविहितवस्तुषु अल्पज्ञानिपुरुषव्यवस्थापितपात्रभूतवस्तुषु । इत्थंभूतः पुरुषः किं न लभते । **अपुणब्भावं** अपुनर्भवशब्दवाच्यं मोक्षं । तर्हि किं लभते । **भावं सादप्पगं लहदि** भावं सातात्मकं लभते । भावशब्देन सुदेवमनुष्यत्वपर्यायो ग्राह्यः । स च कथंभूतः । सातात्मकः सद्वेद्योदयरूप इति । तथाहि—ये केचन निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गं न जानन्ति पुण्यमेव मुक्तिकारणं भणन्ति ते छद्मस्थशब्देन गृह्यन्ते न च गणधरदेवादयः । तैः छद्मस्थैरज्ञानिभिः शुद्धात्मोपदेशशून्यैर्ये दीक्षितास्तानि छद्मस्थविहितवस्तूनि भण्यन्ते । तत्पात्रसंसर्गेन यद्व्रतनियमाध्ययनदानादिकं करोति तदपि शु-

पात्रके भेदकर विपरीत फलकोभी देता है जिसतरहका पुरुष खराव अच्छा होता है वहां वैसे फलको उत्पन्न करता है कारणके भेदसे कार्यमें भेद अवश्य होजाता है॥५५॥ आगे कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता दिखलाते हैं;—[**छद्मस्थविहितवस्तुषु**] अज्ञानी जीवोंकर अपनी बुद्धिसे कल्पित देव गुरु धर्मादिक पदार्थोंमें [**व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतः**] जो पुरुष व्रत नियम पठन ध्यान दानादि क्रियाओंमें लीन है वह पुरुष [**अपुनर्भावं**] मोक्षको [**न**] नहीं [**लभते**] पाता किंतु [**सातात्मकं भावं**] पुन्यरूप उत्तम देवमनुष्यपदवीको [**लभते**] पाता है ॥ **भावार्थ**—सर्वज्ञवीतरागकर स्थापित देव गुरु धर्मादिकमें जो शुभोपयोगरूपभाव निश्चल होते हैं उनका फल साक्षात् पुन्य है परंपरा मोक्ष है और येही शुभोपयोग कारणकी विपरीततासे विपरीत होता है और विपरीत फलको करता है यही दिखलाते हैं—जिन अज्ञानी जीवोंने देव गुरु धर्मादिक वस्तु स्थापित कीं हैं वे कारण विपरीत हैं उनमें व्रत नियम पठन पाठन ध्यान दानादिककर अति प्रीतिसे लगनेरूप जो शुभोपयोग है उसकर मोक्षकी प्राप्ति नहीं है कणकेविना अकेले पयाल (तुस)की तरह पुन्यरूप

तेषु व्रतनियमाध्ययनध्यानदानरतत्वप्रणिहितस्य शुभोपयोगस्यापुनर्भावशून्यकेवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं तत्सुदेवमनुजत्वम् ॥ ५६ ॥

अथ कारणवैपरीत्यफलवैपरीत्ये एव व्याख्याति;—

अविदिदपरमत्थेसु य विसयकसायाधिगेसु पुरिसेसु ।
जुट्ठं कदं व दत्तं फलदि कुदेवेसु मणुजेसु ॥ ५७ ॥

अविदितपरमार्थेषु च विषयकषायाधिकेषु पुरुषेषु ।
जुष्टं कृतं वा दत्तं फलति कुदेवेषु मनुजेषु ॥ ५७ ॥

यानि हि छद्मस्थव्यवस्थापितवस्तूनि कारणवैपरीत्यं ये खलु शुद्धात्मपरिज्ञानशून्यतयानवाप्तशुद्धात्मवृत्तितया चाविदितपरमार्था विषयकषायाधिकाः पुरुषाः तेषु शुभोपयोगात्मकानां जुष्टोपकृतदत्तानां या केवलपुण्यापसदप्राप्तिः फलवैपरीत्यं तत्कुदेवमनुजत्वम् ॥५७॥

अथ कारणवैपरीत्यात् फलमविपरीतं न सिद्ध्यतीति श्रद्धापयति;—

जदि ते विसयकसाया पावत्ति परूविदा व सत्थेसु ।
कह ते तप्पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति ॥ ५८ ॥

द्धात्मभावनानुकूलं न भवति ततः कारणान्मोक्षं न लभते सुदेवमनुष्यत्वं लभत इत्यर्थः ॥५६॥ अथ सम्यक्त्वव्रतरहितपात्रेषु भक्तानां कुदेवमनुजत्वं भवतीति प्रतिपादयति;—**फलदि** फलति । केषु ? **कुदेवेसु मणुवेसु** कुत्सितदेवेषु मनुजेषु । किं कर्तृ । **जुट्ठं** जुष्टं सेवा कृता **कदं व** कृतं वा किमपि वैयावृत्यादिकम् । **दत्तं** दत्तं किमप्याहारादिकम् । केषु ? **पुरुसेसु** पुरुषेषु पात्रेषु । किंविशिष्टेषु ? **अविदिदपरमत्थेसु अ** अविदितपरमार्थेषु च परमात्मतत्त्वश्रद्धानज्ञानशून्येषु । पुनरपि किं रूपेषु ? **विसयकसायादिगेसु** विषयकषायादिकेषु विषयकषायाधीनत्वेन निर्विषयशुद्धात्मस्वरूपभावनारहितेषु इत्यर्थः ॥ ५७ ॥ अथ तमेवार्थं प्रकारान्तरेण दृढयति;—

फल होता है वह फल उत्तम देवता उत्तम मनुष्यगतिरूप जानना ॥ ५६ ॥ आगे कारणकी विपरीततासे फलकी विपरीतता फिर भी दिखलाते हैं;–[**अविदितपरमार्थेषु**] नहीं जाना है शुद्धात्मपदार्थ जिन्होंने [**च**] और [**विषयकषायाधिकेषु**] इन्द्रियोंके विषय तथा क्रोधादिकषाय जिनके अधिक हैं ऐसे [**पुरुषेषु**] अज्ञानी मनुष्योंकी [**जुष्टं**] बहुत प्रीतिकर सेवा करना [**कृतं**] टहल चाकरी करना [**वा**] अथवा [**दत्तं**] उनको आहारादिकका देना है वह [**कुदेवेषु**] नीच देवोंमें [**मनुजेषु**] नीचमनुष्योंमें [**फलति**] फलता है ॥ **भावार्थ**—जिन अज्ञानी छद्मस्थजीवोंने विपरीत गुरु स्थापन किये हैं वे कारणविपरीत हैं आत्माके जानने विना और आचरण विना परमार्थज्ञानसे रहित हैं तथा विषयकषायोंके सेवनेवाले हैं । ऐसे गुरुओंकी सेवा भक्ति करना वैयावृत्त्यका करना और आहारादिकका देना इन क्रियाओंसे जो पुण्य होता है उसका फल नीचदेव और नीचमनुष्य होना है ॥ ५७ ॥

यदि ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिता वा शास्त्रेषु ।
कथं ते तत्प्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारका भवन्ति ॥ ५८ ॥

विषयकषायास्तावत्पापमेव तद्वन्तः पुरुषा अपि पापमेव तद्रक्ता अपि पापानुरक्तत्वात् पापमेव भवन्ति । ततो विषयकषायवन्तः स्वानुरक्तानां पुण्यानुयायिनः कल्प्यन्ते कथं पुनः संसारनिस्तारणाय । ततो न तेभ्यः फलमविपरीतं सिद्ध्येत् ॥ ५८ ॥

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं दर्शयति;—

उपरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु ।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस्स ॥ ५९ ॥

उपरतपापः पुरुषः समभावो धार्मिकेषु सर्वेषु ।
गुणसमितितोपसेवी भवति स भागी सुमार्गस्य ॥ ५९ ॥

उपरतपापत्वेन सर्वधर्मिमध्यस्थत्वेन गुणग्रामोपसेवित्वेन च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयौ-

---

जदि ते विसयकसाया पावत्ति परूविदा य सत्थेसु यदि च ते विषयकषायाः पापमिति प्ररूपिताः शास्त्रेषु **किह ते तं पडिबद्धा पुरिसा णित्थारगा होंति** कथं ते तत्प्रतिबद्धा विषयकषायप्रतिबद्धाः पुरुषा निस्तारकाः संसारोत्तारका दातॄणां ? न कथमपीति । एतदुक्तं भवति—विषयकषायास्तावत्पापस्वरूपास्तद्वन्तः पुरुषा अपि पापा एव ते च स्वकीयभक्तानां दातॄणां पुण्यविनाशका एवेति ॥ ५८ ॥ अथ पात्रभूततपोधनलक्षणं कथयति;—उपरत-

---

आगे कारणकी विपरीततासे उत्तम फलकी सिद्धि नहीं होती यह कहते हैं,—[**यदि**] जो [**ते**] वे [**विषयकषायाः**] स्पर्शआदिक पांच विषय क्रोधादि चार कषाय [**शास्त्रे**] सिद्धांतमें [**पापं**] पापरूप हैं [**इति प्ररूपिताः**] ऐसे कहे गये हैं [**वा**] तो [**तत्प्रतिबद्धाः**] उन विषयकषायोंसे युक्त [**ते पुरुषाः**] वे पापी पुरुष अपने भक्तोंके [**कथं**] किसतरह [**निस्तारकाः**] तारनेवाले [**भवन्ति**] हो सकते हैं ? नहीं होसकते ॥ **भावार्थ**—विषय कषाय ये दोनों संसारमें बड़ेभारी पाप हैं जो जीव विषय-कषायोंकर पापी हैं और अपनेको गुरू मानते हैं अपने भक्तोंको पुण्यात्मा कहते हैं वे पापी संसारके तारनेवाले कैसे कहलाये जासकते हैं । उनसे उत्तम फल कैसे सिद्ध होसकता है ? किसीतरह भी नहीं, क्योंकि संसारमें विषय कषाय महापाप हैं । इसलिये विषय कषायवाले तरन तारन नहीं होसकते ॥५८॥ आगे उत्तम फलका कारण उत्तम पात्र दिखलाते हैं;—[**सः**] वह [**पुरुषः**] परममुनि [**सुमार्गस्य**] रत्नत्रयकी एकतासे एकाग्रतारूप मोक्षमार्गका [**भागी**] सेवनेवाला पात्र [**भवति**] होता है । जोकि [**उपरतपापः**] समस्त विषयकषायरूप पापोंसे रहित हो [**सर्वेषु**] सभी [**धार्मिकेषु**] धर्मोंमें [**समभावः**] समदृष्टि हो

गपद्यपरिणतिनिर्वृत्तैकाग्र्यात्मकसुमार्गभागी स श्रमणः स्वयं परस्य मोक्षपुण्यायतनत्वाद-विपरीतकारणं कारणमविपरीतं प्रत्येयम् ॥ ५९ ॥

अथाविपरीतफलकारणं कारणमविपरीतं व्याख्याति;—

असुभोवयोगरहिदा सुद्धुवजुत्ता सुहोवजुत्ता वा ।
णित्थारयंति लोगं तेसु पसत्थं लहदि भत्तो ॥ ६० ॥

अशुभोपयोगरहिताः शुद्धोपयुक्ता शुभोपयुक्ता वा ।
निस्तारयन्ति लोकं तेषु प्रशस्तं लभते भक्तः ॥ ६० ॥

यथोक्तलक्षणा एव श्रमणा मोहद्वेषाप्रशस्तरागोच्छेदादशुभोपयोगवियुक्ताः सन्तः सकलकषायोदयविच्छेदात् कदाचित् शुद्धोपयुक्ताः प्रशस्तरागविपाकात्कदाचिच्छुभोपयुक्ताः स्वयं मोक्षायतनत्वेन लोकं निस्तारयन्ति तद्भक्तिभावानां प्रवृत्तप्रशस्तभावा भवन्ति परे च पुण्यभाजः ॥ ६० ॥

पापत्वेन सर्वधार्मिकसमदर्शित्वेन गुणग्रामसेवकत्वेन च स्वस्य मोक्षकारणत्वात्परेषां पुण्यकारणत्वाच्चेत्थंभूतगुणयुक्तः पुरुषः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यलक्षणनिश्चयमोक्षमार्गस्य भाजनं भवतीति ॥ ५९ ॥ अथ तेषामेव पात्रभूततपोधनानां प्रकारान्तरेण लक्षणमुपलक्षयति;— शुद्धोपयोगशुभोपयोगपरिणतपुरुषाः पात्रं भवन्तीति । तद्यथा—निर्विकल्पसमाधिबलेन शुभाशुभोपयोगद्वयरहितकाले कदाचिद्वीतरागचारित्रलक्षणशुद्धोपयोगयुक्ताः कदाचित्पुनर्मोहद्वेषाशुभरागरहितकाले सरागचारित्रलक्षणशुभोपयोगयुक्ताः सन्तो भव्यलोकं निस्तारयन्ति, तेषु च भव्यो भक्तो भव्यवरपुण्डरीकः प्रशस्तफलभूतं स्वर्गं लभते परंपरया मोक्षं चेति भावार्थः

अर्थात् अनंतनयस्वरूप अनेक धर्मोंमें पक्षपाती नहीं हो मध्यस्थ हो और [**गुणसमितितोपसेवी**] ज्ञानादि अनेक गुणोंके समूहका सेवनेवाला हो ॥ **भावार्थ**—पूर्वोक्त गुणोंसहित ऐसे महापुरुष मुनि तरन तारन समर्थ हैं आप और दूसरेको पुण्य और मोक्ष देनेके ठिकाने हैं । ऐसा यह उत्तमपात्र उत्तम फलका कारण समझना ॥ ५९ ॥ आगे फिर भी उत्तम फलका उत्तमकारण दिखलाते हैं;—[**अशुभोपयोगरहिताः**] खोटे रागरूप मोहद्वेषभावोंसे रहित हुए ऐसे [**शुद्धोपयुक्ताः**] सकल कषायोंके उदयके अभावसे कोई शुद्धोपयोगी [**वा**] अथवा [**शुभोपयुक्ताः**] उत्तम रागके उदयसे कोई शुभोपयोगी इसतरह दोनों प्रकारके मुनि [**लोकं**] उत्तम भव्य जीवोंको [**निस्तारयन्ति**] तारते हैं । [**तेषु**] उन दोनों तरहके मुनियोंका [**भक्तः**] सेवक महापुरुष [**प्रशस्तं**] उत्तमस्थानको [**लभते**] पाता है । **भावार्थ**—ये उत्तम मुनि आप मोक्षके ठिकाने हैं इसलिये जगतके उद्धार करनेवाले हैं जो इन मुनियोंकी भक्ति करता है वह उत्तमभावोंसहित होता है और जो अनुमोदना करता है

अथाविपरीतफलकारणाविपरीतकारणसमुपासनप्रवृत्तिं सामान्यविशेषतो विधेयतया सूत्रद्वैतेनोपदर्शयति;—

दिट्ठा पगदं वत्थू अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं ।
वट्टदु तदो गुणादो विसेसिदव्वोत्ति उवदेसो ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वा प्रकृतं वस्त्वभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः ।
वर्ततां ततो गुणाद्विशेषितव्य इति उपदेशः ॥ ६१ ॥

श्रमणानामात्मविशुद्धिहेतौ प्रकृते वस्तुनि तदनुकूलक्रियाप्रवृत्त्या गुणातिशयाधानमप्रतिषिद्धम् ॥ ६१ ॥

अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं ।
अंजलिकरणं पणमं भणिदं इह गुणाधिगाणं हि ॥ ६२ ॥

॥ ६० ॥ एवं पात्रापात्रपरीक्षाकथनमुख्यतया गाथापञ्चकेन तृतीयस्थलं गतम् । इत ऊर्ध्वं आचारकथितक्रमेण पूर्वं कथितमपि पुनरपि दृढीकरणार्थं विशेषेण तपोधनसमाचारं कथयति । अथाभ्यागततपोधनस्य दिनत्रयपर्यन्तं सामान्यप्रतिपत्तिं तदनन्तरं विशेषप्रतिपत्तिं दर्शयति;—**वट्टदु** वर्त्तताम् । स कः । अत्रत्य आचार्यः । किं कृत्वा । **दिट्ठा** दृष्ट्वा । किं । **वत्थुं** तपोधनभूतं पात्रं वस्तु । किं विशिष्टम्? **पगदं** प्रकृतं अभ्यन्तरनिरुपरागशुद्धात्मभावनाज्ञापकबहिरङ्गनिर्ग्रन्थनिर्विकाररूपम् । काभिः कृत्वा वर्त्तताम्? **अब्भुट्ठाणप्पधाणकिरियाहिं** अभ्यागतयोग्याचारविहिताभिरभ्युत्थानादिक्रियाभिः **तदो गुणादो** ततो दिनत्रयानन्तरं गुणाद्गुणविशेषात् **विसेसिदव्वत्ति** तेन आचार्येण स तपोधनो रत्नत्रयभावनावृद्धिकारणक्रियाभिर्विशेषितव्यः? **इदि उवदेसो** इत्युपदेशः सर्वज्ञगणधरदेवादीनामिति ॥ ६१ ॥ अथ तमेव विशेषं कथयति, **भणिदं** भणितं कथितं **इह** अस्मिन्ग्रन्थे। केषां सम्बन्धी । **गुणाधि-**

वह भी पुण्यफलको भोगता है ॥ ६० ॥ आगे जो उत्तम फलके कारण उत्तम पात्र हैं उनकी सेवा सामान्य विशेषताकर दो गाथाओंसे दिखलाते हैं;—**[ततः]** इसकारण जो उत्तम पुरुष हैं वे **[प्रकृतं]** उत्तम **[वस्तु]** पात्रको **[दृष्ट्वा]** देखकर **[अभ्युत्थानप्रधानक्रियाभिः]** आता हुआ देखके उठ खड़ा होना इत्यादि उत्तम पात्रकी क्रियाओंकर **[वर्ततां]** प्रवर्तों । क्योंकि **[गुणात्]** उत्तमगुण होनेसे **[विशेषितव्यः]** आदर विनयादिकर विशेषकरना योग्य है **[इति]** ऐसा **[उपदेशः]** भगवंतदेवका उपदेश है ॥ **भावार्थ**—भगवंतकी ऐसी आज्ञा है कि जो ज्ञानादिगुणोंसे अधिक हो उसका आदर विनय करना धर्मात्माओंको योग्य है ।* इसलिये धर्मात्माओंको उत्तमपात्रकी विनयादि क्रिया अवश्य करनी चाहिये ॥ ६१ ॥ आगे विनयादि क्रियाको विशेषपनेसे कहते हैं;—**[इह]** इसलोकमें **[हि]** निश्चयकर **[गुणाधिकानां]** अपनेसे अधिक गुणसहित महापुरुषोंके लिये **[अभ्युत्थानं]**

अभ्युत्थानं ग्रहणमुपासनं पोषणं च सत्कारः।
अञ्जलिकरणं प्रणामो भणितमिह गुणाधिकानां हि ॥ ६२ ॥

श्रमणानां स्वतोधिकगुणानामभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामप्रवृत्तयो न प्रतिषिद्धाः ॥ ६२ ॥

अथ श्रमणाभासेषु सर्वाः प्रवृत्तीः प्रतिषेधयति;—

अब्भुट्ठेया समणा सुत्तत्थविसारदा उवासेया।
संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि समणेहिं ॥ ६३ ॥

अभ्युत्थेयाः श्रमणाः सूत्रार्थविशारदा उपासेयाः।
संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीया हि श्रमणैः ॥ ६३ ॥

गाणं हि गुणाधिकतपोधनानां हि स्फुटम्। किं भणितम्? **अब्भुट्ठाणं गहणं उवासणं पोसणं च सक्कारं अंजलिकरणं पणमं** अभ्युत्थानग्रहणोपासनपोषणसत्काराञ्जलिकरणप्रणामादिकम्। अभिमुखगमनमभ्युत्थानम्, ग्रहणं स्वीकारः, उपासनं शुद्धात्मभावनासहकारिकारणनिमित्तं सेवा, तदर्थमेवाशनशयनादिचिन्ता पोषणम्, भेदाभेदरत्नत्रयगुणप्रकाशनं सत्कारः, बद्धाञ्जलिनमस्कारोऽञ्जलिकरणम्, नमोस्त्वितिवचनव्यापारः प्रणाम इति ॥ ६२ ॥ अथाभ्यागतानां तदेवाभ्युत्थानादिकं प्रकारान्तरेण निर्दिशति;—**अब्भुट्ठेया** यद्यपि चारित्रगुणेनाधिका न भवन्ति तपसा वा तथापि सम्यग्ज्ञानगुणेन ज्येष्ठत्वाच्छ्रुतविनयार्थमभ्युत्थेयाः अभ्युत्थेया अभ्युत्थानयोग्या भवन्ति। के ते। **समणा** निर्ग्रन्थाचार्याः। किं विशिष्टाः। **सुत्तत्थविसारदा** विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावपरमात्मतत्त्वप्रभृत्यनेकान्तात्मकपदार्थेषु वीतरागसर्वज्ञप्रणीतमार्गेण प्रमाणनयनिक्षेपैर्विचारचतुरचेतसः सूत्रार्थविशारदाः। न केवलमभ्युत्थेयाः **उवासेया** परमचिज्ज्योतिःपरमात्मपदार्थपरिज्ञानार्थमुपासेयाः परमभक्त्या सेवनीयाः। **संजमतवणाणड्ढा पणिवदणीया हि** संयमतपोज्ञानाढ्याः प्रणिपतनीयाः हि स्फुटम् बहिरङ्गेन्द्रियसंयमप्राणसंयमबलेनाभ्यन्तरे स्वशुद्धात्मनि यत्नपरत्वं संयमः। बहिरङ्गानशनादितपोबलेनाभ्यन्तरे परद्रव्येच्छानिरोधेन च स्वस्वरूपे प्रतपनं विजयनं तपः। बहिरङ्गपरमागमाभ्यासेनाभ्यन्तरे स्वसंवेदनज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। एवमुक्तलक्षणैः संयमतपोज्ञानैराढ्याः परिपूर्णा यथासम्भवं प्रतिवन्दनीयाः। कैः? **समणेहिं** श्रमणैरिति। अत्रेदं तात्पर्यम्—ये बहुश्रुता अपि चारित्राधिका न भवन्ति तेऽपि परमागमाभ्यासनिमित्तं यथायोग्यं वन्दनीयाः। द्वितीयं च कारणं—ते सम्यक्त्वे ज्ञाने च पूर्वमेव दृढतराः अस्य तु नवतरतपोधनस्य सम्यक्त्वे ज्ञाने चापि दार्ढ्यं नास्ति

सामने आते हुए देखकर उठके खड़ा होके सामने जाना [**ग्रहणं**] बहुत आदरसे आइये २ ऐसे उत्तमवचनोंकर अंगीकार [**उपासनं**] सेवा करना [**पोषणं**] अन्नपानादिकर पोषना [**सत्कारं**] गुणोंकी प्रशंसाकर उत्तम वचन कहना [**अञ्जलिकरणं**] विनयसे हाथ जोड़ना [**च**] और [**प्रणामं**] नमस्कार करना योग्य

सूत्रार्थवैशारद्यप्रवर्तितसंयमतपःस्वतत्त्वज्ञानानामेव श्रमणानामभ्युत्थानादिकाः प्रवृत्तयोप्रतिषिद्धा इतरेषां तु श्रमणाभासानां ताः प्रतिषिद्धा एव ॥ ६३ ॥

अथ कीदृशः श्रमणाभासो भवतीत्याख्याति;—

ण हवदि समणोत्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि ।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे ॥ ६४ ॥

न भवति श्रमण इति मत संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तोपि ।
यदि श्रद्धत्ते नार्थानात्मप्रधानान् जिनाख्यातान् ॥ ६४ ॥

आगमज्ञोपि संयतोपि तपःस्थोपि जिनोदितमनन्यार्थनिर्भरं विश्वं स्वेनात्मना ज्ञेयत्वेन निष्पीतत्वादात्मप्रधानमश्रद्दधानः श्रमणाभासो भवति ॥ ६४ ॥

तर्हि स्तोकचारित्राणां किमर्थमागमे वन्दनादिनिषेधः कृत इति चेत्? अतिप्रसङ्गनिषेधार्थमिति ॥ ६३ ॥ अथ श्रमणाभासः कीदृशो भवतीति पृष्टे प्रत्युत्तरं ददाति;—**ण हवदि समणो** स श्रमणो न भवति **इदि मदो** इति मतः सम्मतः । क? आगमे । कथंभूतोऽपि? **संजमतवसुत्तसंप्पजुत्तोवि** संयमतपःश्रुतैः संप्रयुक्तोऽपि सहितोऽपि । यदि किम्? **जदि सद्दहदि ण** यदि चेन्मूढत्रयादिपञ्चविंशतिसम्यक्त्वमलरहितः सन् न श्रद्धत्ते न रोचते न मन्यते । कान्? **अत्थे** पदार्थान् । कथंभूतान् । **आदपधाणे** निर्दोषिपरमात्मप्रभृतीन् । पुनरपि कथं-

---

है ॥ **भावार्थ**—इतनी पूर्वोक्त उत्तम क्रियायें अपनेसे गुणोंकर उत्कृष्ट पुरुषोंकी करनी योग्य हैं ॥ ६२ ॥ आगे जो असलमें मुनि तो नहीं हैं लेकिन मुनिसे मालूम पड़ते हैं ऐसे द्रव्यलिंगी मुनियोंकी आदर विनयादिक सब क्रियाओंका निषेध है यह कहते हैं;—**[श्रमणैः]** उत्तम मुनियोंकर **[हि]** निश्चयसे **[सूत्रार्थविशारदाः]** परमागमके अर्थोंमें चतुर और **[संयमतपोज्ञानाढ्याः]** संयम तपस्या ज्ञान इत्यादिगुणोंकर पूर्ण ऐसे **[श्रमणाः]** महामुनि **[अभ्युत्थेयाः]** खड़े होके सामने जाकर आदर करने योग्य हैं **[उपासेयाः]** सेवने योग्य हैं और **[प्रणिपतनीया]** नमस्कार करने योग्य हैं ॥ **भावार्थ**—जो मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकर सहित हैं उन्हींकी पूर्वोक्त विनयादि क्रिया करनी योग्य है और जो द्रव्यलिंगी श्रमणाभास मुनि हैं उनकी विनयादि करना योग्य नहीं है ॥ ६३ ॥ आगे श्रमणाभास मुनि कैसा होता है यह कहते हैं;—**[संयमतपःसूत्रसंप्रयुक्तोपि]** संयम तपस्या सिद्धांत इनकर सहित होनेपर भी **[यदि]** जो मुनि **[जिनाख्यातान्]** सर्वज्ञवीतराग कथित **[आत्मप्रधानान्]** सब ज्ञेयोंके जाननेसे आत्मा है मुख्य जिनमें ऐसे **[अर्थान्]** जीवादिक पदार्थोंका **[न श्रद्धत्ते]** नहीं श्रद्धान करता तो वह मिथ्यादृष्टि **[श्रमणः]** उत्तम मुनि **[न भवति]** नहीं होसकता **[इति मतः]** ऐसा यह श्रमणाभास-

अथ श्रामण्येन सममननुमन्यमानस्य विनाशं दर्शयति;—

अववददि सासणत्थं समणं दिट्ठा पदोसदो जो हि ।
किरियासु णाणुमण्णदि हवदि हि सो णट्ठचारित्तो ॥ ६५ ॥

अपवदति शासनस्थं श्रमणं दृष्ट्वा प्रद्वेषतो यो हि ।
क्रियासु नानुमन्यते भवति हि स नष्टचारित्रः ॥ ६५ ॥

श्रमणं शासनस्थमपि प्रद्वेषादपवदतः क्रियास्वननुमन्यमानस्य च प्रद्वेषकषायितत्वाच्चारित्रं नश्यति ॥ ६५ ॥

भूतान् । **जिणक्खादे** वीतरागसर्वज्ञेनाख्यातान् दिव्यध्वनिना प्रणीतान् गणधरदेवैर्ग्रन्थविरचितानित्यर्थः ॥ ६४ ॥ अथ मार्गस्थश्रमणदूषणे दोषं दर्शयति;—**अववदि** अपवदति दूषयत्यपवादं करोति । स कः? **जो हि** यः कर्त्ता हि स्फुटम् । कम्? **समणं** श्रमणं तपोधनम् । कथंभूतम् । **सासणत्थं** शासनस्थं निश्चयव्यवहारमोक्षमार्गस्थम् । कस्मात् । **पदोसदो** निर्दोषिपरमात्मभावनाविलक्षणात् प्रद्वेषात्कषायात् । किं कृत्वा पूर्वं? **दिट्ठा** दृष्ट्वा अपवदते । न केवलं अपवदते? **णाणुमण्णदि** नानुमन्यते । कासु विषयासु? **किरियासु** यथायोग्यं वन्दनादिक्रियासु **हवदि हि सो** भवति हि स्फुटं सः । किं विशिष्टः । **णट्ठचारित्तो** कथंचिदतिप्रसङ्गान्नष्टचारित्रो भवतीति । तथाहि—मार्गस्थतपोधनं दृष्ट्वा यदि कथंचिन्मात्सर्यवशाद्दोषग्रहणं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवति स्फुटं पश्चादात्मनिन्दां कृत्वा वर्त्तते तदा दोषो नास्ति कालान्तरे वा निवर्त्तते तथापि दोषो नास्ति । यदि पुनस्तत्रैवानुबन्धं कृत्वा तीव्रकषायवशादतिप्रसङ्गं करोति तदा चारित्रभ्रष्टो भवतीत्ययं भावार्थः । बहुश्रुतैरल्पश्रुततपोधनानां दोषो न ग्राह्यस्तैरपि तपोधनैः किमपि पाठमात्रं गृहीत्वा तेषां दोषो न ग्राह्यः किन्तु किमपि सारपदं गृहीत्वा स्वयं भावनैव कर्त्तव्या । कस्मादिति चेत्? रागद्वेषोत्पत्तौ सत्यां बहु-

---

मुनि सिद्धांतोंमें महापुरुषोंने कहा है ॥ **भावार्थ**—जो सिद्धांतका जाननेवालाभी है संयमी तपस्वीभी है लेकिन सर्वज्ञप्रणीत जीवादिक पदार्थोंका श्रद्धान नहीं करता इसीसे वह श्रमणाभास कहा जाता है ॥ ६४ ॥ आगे यथार्थ मुनिपदसहित मुनिकी जो क्रिया विनयादि नहीं करता वह चारित्रसे रहित है ऐसा दिखलाते हैं;— [**यः**] जो मुनि [**शासनस्थं**] भगवंतकी आज्ञामें प्रवृत्त [**श्रमणं**] उत्तममुनिको [**दृष्ट्वा**] देखकर [**प्रद्वेषतः**] द्वेषभावसे [**हि**] निश्चयकर [**अपवदति**] अनादरकर बुराई करता है [**क्रियासु**] और पूर्वोक्त विनयादि क्रियाओंमें [**न अनुमन्यते**] नहीं प्रसन्न होता [**सः**] वह द्वेषी अविनयी मुनि [**हि**] निश्चयसे [**नष्टचारित्रः**] चारित्र रहित [**भवति**] है ॥ **भावार्थ**—जो कोई मुनि दूसरे जिनमार्गी मुनिको देखकर द्वेषभावसे निंदा करता है निरादर करता है वह कषायभावोंकी परिणतिसे नष्ट-

अथ श्रामण्येनाधिकं हीनमिवाचरतो विनाशं दर्शयति;—

गुणदोधिगस्स विणयं पडिच्छगो जोवि होमि समणोत्ति।
होज्जं गुणाधरो जदि सो होदि अणंतसंसारी॥ ६६॥

गुणतोऽधिकस्य विनयं प्रत्येषको योपि भवामि श्रमण इति।
भवन् गुणाधरो यदि स भवत्यनन्तसंसारी॥ ६६॥

श्रुतानां श्रुतफलं नास्ति तपोधनानां तपःफलं चेति॥ ६५॥ अत्राह शिष्यः—अपवादव्याख्यानप्रस्तावे शुभोपयोगो व्याख्यातः पुनरपि किमर्थं अत्र व्याख्यानं कृतमिति। परिहारमाह—युक्तमिदं भवदीयवचनं किन्तु तत्र सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गव्याख्याने कृते सति तत्रासमर्थतपोधनैः कालापेक्षया किमपि ज्ञानसंयमशौचोपकरणादिकं ग्राह्यमित्यपवादव्याख्यानमेव मुख्यम्। अत्र तु यथा भेदनयेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपश्चरणरूपा चतुर्विधाराधना भवति। सैवाभेदनयेन सम्यक्त्वचारित्ररूपेण द्विधा भवति। तत्राप्यभेदविवक्षया पुनरेकैव वीतरागचारित्राराधना। तदा भेदनयेन सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपस्त्रिविधमोक्षमार्गो भवति। स एवाभेदनयेन श्रामण्यापरमोक्षमार्गनामा पुनरेक एव सचाभेदरूपो मुख्यवृत्या 'एयग्गगदो समणो' इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः पूर्वमेव व्याख्यातः। अयं तु भेदरूपो मुख्यवृत्या शुभोपयोगरूपेणेदानीं व्याख्यातो नास्ति पुनरुक्तदोष इति। एवं समाचारविशेषविवरणरूपेण चतुर्थस्थले गाथाष्टकं गतम्। अथ स्वयं गुणहीनः सन्नपरेषां गुणाधिकानां योऽसौ विनयं वाञ्छति तस्य गुणविनाशं दर्शयति;—**स होदि अणंतसंसारी** स कथंचिदनन्तसंसारे सम्भवति। यः किं करोति? **पडिच्छगो जो दु** प्रत्येषको यस्तु अभिलाषकोऽपेक्षक इति। कम्। **विणयं** वन्दनादिविनयम्। कस्य सम्बन्धिनम्। **गुणदोधिगस्स** बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयगुणाभ्यामधिकस्यान्यतपोधनस्य। केन कृत्वा। **होमि समणोत्ति** अहमपि श्रमणो भवामीत्यभिमानेन गर्वेण। यदि किम्? **होज्जं गुणाधरो जदि** निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाभ्यां हीनः स्वयं यदि चेद्भवतीति। अयमत्रार्थः—यदि चेद्गुणाधिकेभ्यः सकाशाद्गर्वेण पूर्वं विनयवाञ्छा करोति पश्चाद्विवेकबलेनात्मनिन्दां करोति तदानन्तसंसारी न भवति

चारित्री होता है॥ ६५॥ आगे जो यतिपनेसे उत्कृष्ट है उसको जो अपनेसे हीन आचरे वह अनंतसंसारी है यह दिखलाते हैं;—[**यः**] जो मुनि [**अहं श्रमणः**] मैं यती [**भवामि**] हूं [**इति**] ऐसे अभिमानसे [**गुणतः अधिकस्य**] ज्ञानसंयमादिगुणोंकर उत्कृष्ट महामुनियोंसे [**विनयं**] आदरको [**प्रत्येषकः**] चाहता है वह [**यदि**] जो [**गुणाधरः**] गुणोंको नहीं धारण करनेवाला [**भवन्**] हुआ संता [**सः**] झूठे गर्वका करनेवाला वह [**अनंतसंसारी**] अनंतसंसारका भोगनेवाला [**भवति**] होता है॥ **भावार्थ**—जो कोई महामुनिके पाससे अपना विनय चाहता है और क्या हुआ जो यह गुणोंसे अधिक है मैं भी तो यति हूं ऐसा

स्वयं जघन्यगुणः सन् श्रमणोऽहमपीत्यवलेपात्परेषां गुणाधिकानां विनयं प्रतीच्छन् श्रामण्यावलेपवशात् कदाचिदनन्तसंसार्यपि भवति ॥ ६६ ॥

अथ श्रामण्येनाधिकस्य हीनं सममिवाचरतो विनाशं दर्शयति;—

अधिगगुणा सामण्णे वट्टंति गुणाधरेहिं किरियासु ।
जदि ते मिच्छुवजुत्ता हवंति पब्भट्ठचारित्ता ॥ ६७ ॥

अधिकगुणाः श्रामण्ये वर्तन्ते गुणाधरैः क्रियासु ।
यदि ते मिथ्योपयुक्ता भवन्ति प्रभ्रष्टचारित्राः ॥ ६७ ॥

स्वयमधिकगुणा गुणाधरैः परैः सह क्रियासु वर्तमाना मोहादसम्यगुपयुक्तत्वाच्चारित्राद्भ्रश्यन्ति ॥ ६७ ॥

अथासत्संगं प्रतिषेध्यत्वेन दर्शयति;—

यदि पुनस्तत्रैव मिथ्याभिमानेन ख्यातिपूजालाभार्थं दुराग्रहं करोति तथा भवति । अथवा यदि कालान्तरेऽप्यात्मनिन्दां करोति तथापि न भवतीति ॥ ६६ ॥ अथ स्वयमधिकगुणाः सन्तो गुणाधरैः सह वन्दनादिक्रियासु वर्त्तन्ते तदा गुणविनाशं दर्शयति;—**वट्टंति** वर्त्तन्ते प्रवर्त्तन्ते **जदि** यदि चेत् । क वर्त्तन्ते ? **किरियासु** वन्दनादिक्रियासु । कैः सह **गुणाधरेहिं** गुणाधरैर्गुणरहितैः । स्वयं कथंभूताः सन्तः । **अधिगगुणा** अधिकगुणाः । क? **सामण्णे** श्रामण्ये चारित्रे **ते मिच्छपउत्ता हवंति** ते कथंचिदिति प्रसङ्गान्मिथ्यात्वप्रयुक्ता भवन्ति । न केवलं मिथ्यात्वप्रयुक्ताः **पब्भट्ठचारित्ता** प्रभ्रष्टचारित्राश्च भवन्ति। तथाहि—यदि बहुश्रुतानां पार्श्वे ज्ञानादिगुणवृद्ध्यर्थं स्वयं चारित्रगुणाधिका अपि वन्दनादिक्रियासु वर्त्तन्ते तदा दोषो नास्ति । यदि पुनः केवलं ख्यातिपूजालाभार्थं वर्त्तन्ते तदातिप्रसङ्गाद्दोषो भवति । इदमत्र तात्पर्यम्—वन्दनादिक्रियासु वा तत्त्वविचारादौ वा यत्र रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति तत्र सर्वत्र दोष एव । ननु भवदीयकल्पनीयमागमे नास्ति । नैवम् । आगमः सर्वोऽपि रागद्वेषपरिहारार्थ एव परं किन्तु ये । केचनोत्सर्गापवादरूपेणागमनयविभागं न जानन्ति त एव रागद्वेषौ कुर्वन्ति न चान्य इति॥६७॥इति पूर्वोक्तक्रमेण 'एयग्गगदो'

अहंकार भी करता है वह संसारमें भटकता है । इसकारण अपनेसे बड़ोंका विनय करना योग्य है ॥ ६६ ॥ आगे आप यतिपनेसे उत्कृष्ट हुआ जो गुणहीनकी विनयादिक करता है तो उसके चारित्रका नाश होजाता है यह दिखलाते हैं;—[**यदि**] जो [**श्रामण्ये**] यतिपनेमें [**अधिकगुणाः**] उत्कृष्ट गुणवाले महामुनि हैं वे [**गुणाधरैः**] गुणोंकर रहित हीन मुनियोंके साथ [**क्रियासु**] विनयादि क्रियामें [**वर्तन्ते**] प्रवर्तते हैं तो [**ते**] वे उत्कृष्टमुनि [**मिथ्योपयुक्ताः**] मिथ्याभावोंकर सहित हुए [**प्रभ्रष्टचारित्राः**] चारित्रभ्रष्ट [**भवन्ति**] होजाते हैं ॥ **भावार्थ**:—जो अपनेसे हीनगुणोंवालेका विनय आदर करते हैं वे अज्ञानी हुए संयमका नाश करते हैं ॥ ६७ ॥ आगे कुसंगतिका निषेध करते हैं;—[**निश्चितसूत्रार्थपदः**]

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसायो तवोधिगो चावि ।
लोगिगजणसंसग्गं ण जहदि जदि संजदो ण हवदि ॥ ६८ ॥

निश्चितसूत्रार्थपदः समितकषायस्तपोधिकश्चापि ।
लौकिकजनसंसर्गं न जहाति यदि संयतो न भवति ॥ ६८ ॥

यतः सकलस्यापि विश्ववाचकस्य सलक्ष्मणः शब्दब्रह्मणस्तद्वाच्यस्य सकलस्यापि सलक्ष्मणो विश्वस्य च युगपदनुस्यूततदुभयज्ञेयाकारतयाधिष्ठानभूतस्य सलक्ष्मणो ज्ञातृतत्त्वस्य निश्चयनयान्निश्चितसूत्रार्थपदत्वेन निरुपरागोपयोगत्वात् समितकषायत्वेन बहुशोऽभ्यस्तनिष्कम्पोपयोगत्वात्तपोधिकत्वेन च सुष्ठु संयतोपि ससार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यं भाविविकार-

---

इत्यादि चतुर्दशगाथाभिः स्थलचतुष्टयेन श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाभिधानस्तृतीयान्तराधिकारः समाप्तः । अथानन्तरं द्वात्रिंशद्गाथापर्यन्तं पञ्चभिः स्थलैः शुभोपयोगाधिकारः कथ्यते । तत्रादौ लौकिकसंसर्गनिषेधमुख्यत्वेन 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादिपाठक्रमेण गाथापञ्चकम् । तदनन्तरं सरागसंयमापरनामशुभोपयोगस्वरूपकथनप्रधानत्वेन 'समणा सुद्धुपउत्ता' इत्यादि सूत्राष्टकम् । ततश्च पात्रापात्रपरीक्षाप्रतिपादनरूपेण 'रागो पसत्थभूदो' इत्यादि गाथाषट्कम् । ततः परमाचारादिविहितक्रमेण पुनरपि संक्षेपरूपेण समाचारव्याख्यानप्रधानत्वेन 'दिट्ठापगदं वत्थु' इत्यादि सूत्राष्टकम् । ततः परं पञ्चरत्नमुख्यत्वेन 'जे अयधा गहिदत्था' इत्यादि गाथापञ्चकम् । एवं द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन चतुर्थान्तराधिकारे समुदायपातनिका । तद्यथा अथ लौकिकसंसर्गं प्रतिषेधयति;—**णिच्छिदसुत्तत्थपदो** निश्चितानि ज्ञातानि निर्णीतान्यनेकान्तस्वभावनिजशुद्धात्मादिपदार्थप्रतिपादकानि सूत्रार्थपदानि येन स भवति निश्चितसूत्रार्थपदः **समिदकसाओ** परविषये क्रोधादिपरिहारेण तथाभ्यन्तरे परमोपशमभावपरिणतनिजशुद्धात्मभावनाबलेन च शमितकषायः । **तओधिगो चावि** अनशनादिबहिरङ्गतपोबलेन तथैवाभ्यन्तरे शुद्धात्मभावनाविषये प्रतिपन्नाद्विजयनाच्च तपोऽधिकश्चापि सन् स्वयं संयतः कर्ता **लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि** लौकिकाः स्वेच्छाचारिणस्तेषां संसर्गो लौकिकसंसर्गस्तं न त्यजति यदिचेत् **संजदो णविदि** तर्हि संयतो न भवतीति । अयमत्रार्थः—स्वयं भावितात्मापि यद्यसंवृतजनसंसर्गं

निश्चय करलिये हैं सिद्धांत और जीवादिपदार्थ जिसने [**समितकषायः**] जिसने कषायोंको शांत किया है [**च**] और जो [**तपोऽधिकः अपि**] तपस्याकर उत्कृष्ट है तो भी [**यदि**] जो [**लौकिकजनसंसर्गं**] चारित्र भ्रष्ट अज्ञानी मुनियोंकी संगति [**न जहाति**] नहीं छोड़ता है तो वह [**संयतः**] संयमी मुनि [**न भवति**] नहीं होसकता ॥ **भावार्थ**—जो भगवत्प्रणीत शब्द ब्रह्मका जाननेवाला है, आत्मतत्त्वको जानता है, बहुत अभ्यासकर निष्कंप उपयोगी है और तपकी अधिकतासे उत्कृष्ट संयमी भी है इत्यादि अनेक गुणोंकर युक्त है तो भी लौकिक मुनिकी जो संगति नहीं छोड़े तो संयमी नहीं होसकता । जैसे आगके संबंधसे उत्तम शीतल

त्वात् लौकिकसंगादसंयत एव स्यात्ततस्तत्संगः सर्वथा प्रतिषेध्य एव ॥ ६८ ॥

अथ लौकिकलक्षणमुपलक्षयति;—

णिग्गंथं पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहिं ।
सो लोगिगोदि भणिदो संजमतवसंपजुत्तोवि ॥ ६९ ॥

निर्ग्रन्थं प्रव्रजितो वर्तते यद्यैहिकैः कर्मभिः ।
स लौकिक इति भणितः संयमतपःसंप्रयुक्तोपि ॥ ६९ ॥

प्रतिज्ञातपरमनैर्ग्रन्थ्यप्रव्रज्यत्वादुदूढसंयमतपोभारोपि मोहबहुलतया श्लथीकृतशुद्धचेतनव्यवहारो मुहुर्मनुष्यव्यवहारेण व्याघूर्णमानत्वादैहिककर्मानिवृत्तौ लौकिक इत्युच्यते ॥ ६९ ॥

न त्यजति तदातिपरिचयादग्निसङ्गतं जलमिव विकृतिभावं गच्छतीति ॥ ६८ ॥ अथानुकम्पालक्षणं कथ्यते;—

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो ।
पडिवज्जदि तं किवया तस्सेसा होदि अणुकंपा ॥ १ ॥

तिसिदं व भुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठूण जो हि दुहिदमणो पडिवज्जदि तृषितं वा बुभुक्षितं वा दुःखितं वा दृष्ट्वा कमपि प्राणिनं यो हि स्फुटं दुःखितमनाः सन् प्रतिपद्यते स्वीकरोति । कं कर्म्मतापन्नं । तं प्राणिनम् । कया? **किवया** कृपया दयापरिणामेन **तस्सेसा होदि अणुकंपा** तस्य पुरुषस्यैषा प्रत्यक्षीभूता शुभोपयोगरूपानुकम्पा दया भवतीति । इमां चानुकम्पां ज्ञानी स्वस्थभावनामविनाशयन् संक्लेशपरिहारेण करोति । अज्ञानी पुनः संक्लेशेनापि करोतीत्यर्थः । अथ लौकिकलक्षणं कथयति;—**णिग्गंथो पव्वयिदो** वस्त्रादिपरिग्रहरहितत्वेन निर्ग्रन्थोऽपि दीक्षाग्रहणेन प्रव्रजितोऽपि **वट्टदि जदि** वर्तते यदि चेत् । कैः? **एहिगेहि कम्मेहिं** ऐहिकैः कर्मभिः भेदाभेदरत्नत्रयभावनाशकैः ख्यातिपूजालाभनिमित्तैर्ज्योतिषमन्त्रवादिवैदिकादिभिरैहिकजीवनोपायकर्मभिः **सो लोगिगोत्ति भणिदो** स लौकिको व्यावहारिक इति भणितः । किं विशिष्टोऽपि **संजमतवसंजुदो चावि** द्रव्यरूपसंयमतपोभ्यां संयु-

जल अवश्य गर्म विकारको धारण करता है उसीतरह कुसंगतिसे अवश्य नाश होता है । इसलिये कुसंगति त्यागने योग्य है ॥ ६८ ॥ आगे लौकिकमुनिकालक्षण कहते हैं;—[**नैर्ग्रन्थ्यं प्रव्रजितः**] निर्ग्रंथ मुनिपदको धारणकर दीक्षित हुआ मुनि [**यदि**] जो [**ऐहिकैः**] इस लोकसंबंधी [**कर्मभिः**] संसारी कर्म ज्योतिष वैद्यक मंत्रवादिकोंकर [**वर्तते**] प्रवर्ते तो [**सः**] वह भ्रष्टमुनि [**संयमतपःसंप्रयुक्तोपि**] संयम तपस्याकर सहित हुआ भी [**लौकिकः**] लौकिक [**इति**] ऐसे नामसे [**भणितः**] कहा है ॥ **भावार्थ**—यद्यपि निर्ग्रंथ दीक्षाकी प्रतिज्ञा की है संयमतपस्याका भार भी लिया है लेकिन जो मोहकी अधिकतासे शुद्धचेतनाव्यवहारको शिथिल करता है, 'मैं मनुष्य हूं' ऐसे अभिमानकर घूम रहा है और इसलोकसंबंधी कर्मोंसे

अथ सत्सङ्गं विधेयत्वेन दर्शयति;—

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा अहियं ।
अधिवसदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं ॥ ७० ॥

तस्मात्समं गुणात् श्रमणः श्रमणं गुणैर्वाधिकम् ।
अधिवसतु तत्र नित्यं इच्छति यदि दुःखपरिमोक्षम् ॥ ७० ॥

यतः परिणामस्वभावत्वेनात्मनः सप्तार्चिःसंगतं तोयमिवावश्यं भाविविकारत्वाल्लौकिकसंगात्संयतोप्यसंयत एव स्यात् । ततो दुःखमोक्षार्थिना गुणैः समोऽधिको वा श्रमणः

क्तश्चापीत्यर्थः ॥ ६९ ॥ अथोत्तमसंसर्गः कर्त्तव्य इत्युपदिशति;—**तम्हा** यस्माद्धीनसंसर्गाद्गुणहानिर्भवति तस्मात्कारणात् **अधिवसदु** अधिवसतु तिष्ठतु । स कः कर्त्ता । **समणो** श्रमणः । क ? **तम्हि** तस्मिन्नधिकरणभूते **णिच्चं** नित्यं सर्वकालम् । तस्मिन्कुत्र ? **समणं** श्रमणे लक्षणवशादधिकरणे कर्म पठ्यते । कथंभूते श्रमणे ? **समं** समे समाने । कस्मात् । **गुणादो** बाह्याभ्यन्तररत्नत्रयलक्षणगुणात् । पुनरपि कथंभूते ? **अहियं वा** स्वस्मादधिके वा । कैः ? **गुणेहिं** मूलोत्तरगुणैः । यदि किम् ? **इच्छदि जदि** इच्छति वाञ्छति यदि चेत् । कम् ? **दुक्खपरिमोक्खं** स्वात्मोत्थसुखविलक्षणानां नारकादिदुःखानां मोक्षं दुःखपरिमोक्षमिति । अथ विस्तरः— यथाग्निसंयोगाज्जलस्य शीतलगुणविनाशो भवति तथा व्यावहारिकजनसंसर्गात्संयतस्य संयमगुणविनाशो भवतीति ज्ञात्वा तपोधनः कर्त्ता समगुणं गुणाधिकं वा तपोधनमाश्रयति तदास्य तपोधनस्य यथा शीतलभाजनसहितशीतलजलस्य शीतलगुणरक्षा भवति तथा समगुणसंसर्गाद्गुणरक्षा

रहित नहीं हुआ ऐसा भ्रष्टमुनि लौकिक कहलाता है । ऐसेकी संगति मुनिको त्यागने योग्य है ॥ ६९ ॥ आगे अच्छी संगति करनी चाहिये ऐसा दिखलाते हैं;—**[तस्मात्]** इसकारणसे अर्थात् आगके संबंधसे जलकीतरह मुनिभी लौकिककी कुसंगतिसे असंयमी होजाता है इससे कुसंगतिको त्यागकर **[श्रमणः]** उत्तम मुनि **[यदि]** जो **[दुःखपरिमोक्षं]** दुःखसे मुक्त हुआ (छूटना) **[इच्छति]** चाहता है तो **[गुणात् समं]** गुणोंसे अपने समान **[वा]** अथवा **[गुणैः अधिकं]** अपनेसे गुणोंमें अधिक **[श्रमणम्]** श्रमणको **[तत्र]** इन दोनोंकी संगतिमें **[अधिवसतु]** निवास करो ॥ **भावार्थ**—जो मोक्षाभिलाषी मुनि है उसको चाहिये कि यातो गुणोंकर अपने समान हो या अधिक हो ऐसे दोनोंकी संगति करे अन्यकी न करे । जैसे शीतलघरके कोंनेमें शीतलजलके रखनेसे शीतलगुणकी रक्षा होती है वह जल अतिशीतल होजाता है वरफमिश्रीकी संगतिसे अधिक शीतल होजाता है उसीतरह गुणाधिक पुरुषकी संगतिसे गुण बढते हैं इसलिये सत्संगति करनी योग्य है । मुनिको चाहियेकि पहली अवस्थामें तो पूर्व कहीहुई शुभोपयोगसे उत्पन्न प्रवृत्तिको स्वीकार करे पीछे क्रमसे संयमकी उत्कृष्टताकर परमदशाको धारण करे । इसलिये हे भव्यो ! समस्त वस्तुकी

श्रमणेन नित्यमेवाधिवसनीयः तथास्य शीतापवरककोणनिहितशीततोयवत्समगुणसंगाद्गुण-रक्षा शीततरतुहिनशर्करासंपृक्तशीततोयवत् गुणासंगात् गुणवृद्धिः ॥ ७० ॥ "इत्यध्यास्य शुभोपयोगजनितां काञ्चित्प्रवृत्तिं यतिः सम्यक् संयमसौष्ठवेन परमां क्रामन्निवृत्तिं क्रमात् । हेलाक्रान्तसमस्तवस्तुविसरप्रस्ताररम्योदयां ज्ञानानन्दमयीं दशामनुभवत्वेकान्ततः शाश्वतीम्" ॥ इति **शुभोपयोगप्रज्ञापनम्** । अथ पञ्चरत्नम् । "तन्त्रस्यास्य शिखण्डिमण्डनमिव प्रद्योतयत्सर्वतो द्वैतीयीकमथार्हतो भगवतः संक्षेपतः शासनम् । व्याकुर्वञ्जगतो विलक्षणपथां संसारमोक्षस्थितिं जीयात्संप्रति पञ्चरत्नमनघं सूत्रैरिमैः पञ्चभिः" ॥

अथ संसारतत्त्वमुद्घाटयति;—

जे अजधागहिदत्था एदे तच्चत्ति णिच्छिदा समये ।
अच्चंतफलसमिद्धं भमंति तेतो परं कालं ॥ ७१ ॥

ये अयथागृहीतार्था एते तत्वमिति निश्चिताः समये ।
अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति ते अतः परं कालम् ॥ ७१ ॥

ये स्वयमविवेकतोऽन्यथैव प्रतिपद्यार्थानित्थमेव तत्त्वमिति निश्चयमारचयन्तः सततं

भवति । यथा च तस्यैव जलस्य कर्पूरशर्करादिशीतलद्रव्यनिक्षेपे कृते सति शीतलगुणवृद्धिर्भवति तथा निश्चयव्यवहाररत्नत्रयगुणाधिकसंसर्गाद्गुणवृद्धिर्भवतीति सूत्रार्थः ॥ ७० ॥ इतःपरं पञ्चमस्थले संक्षेपेण संसारस्वरूपस्य मोक्षस्वरूपस्य च प्रतीत्यर्थं पञ्चरत्नभूतगाथापञ्चकेन व्याख्यानं करोति—तद्यथा—अथ संसारस्वरूपं प्रकटयति;—अत्यन्तफलसमृद्धं भ्रमन्ति न विद्यतेऽन्त इत्यत्यन्तं ते परं कालं द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपञ्चप्रकारसंसारपरिभ्रमणरहितशुद्धात्मस्वरूपभावनाच्युताः सन्तः परिभ्रमन्ति । कम् । परं कालं अनन्तकालम् । कथंभूतम् । नारकादिदुःख-

---

प्रकाशनेवाली केवलज्ञानानन्दमयी अविनाशी अवस्थाको सब तरहसे पाकर अपने अतींद्रिय सुखको अनुभवो ॥ ७० ॥ इसप्रकार यह **शुभोपयोगका** अधिकार पूर्ण हुआ आगे पंचरत्नोंको पांच गाथाओंसे कहते हैं । यह पंचरत्न इस सिद्धांतका मुकुट है और भगवंतके अनेकांतमतको संक्षेपसे कहता है और संसारमोक्षकी स्थितिको प्रगट करता है इसलिये यह पंचरत्न जयवंत होवे । संसारतत्त्व १ मोक्षतत्त्व २ मोक्षतत्त्वका साधन ३ मोक्षतत्त्वसाधन सर्वमनोरथस्थानकथन ४ और शिष्यजनोंको शास्त्रपठनका लाभ ५ ये पांच रत्न हैं । आगे पांचोंमेंसे प्रथमही संसारतत्त्वको कहते हैं;—[ये] जो पुरुष [समये] जिनमतमें द्रव्यलिंग अवस्था धारणकर तिष्ठते भी हैं लेकिन [अयथागृहीतार्थाः] अन्यथा पदार्थोंका स्वरूप ग्रहण करते हुए [एते तत्वं] जो पदार्थ हमने जानलिये हैं येही वस्तुका स्वरूप है [इति] ऐसा मिथ्यापना मानकर [निश्चिताः] निश्चय कर बैठे हैं [ते] ऐसे वे श्रमणाभास मुनि [अतः] इस वर्तमानकालसे आगे [अत्यन्तफलसमृद्धं] अनंतभ्रमणरूपी फलकर पूर्ण [परं कालं]

समुपचीयमानमहामोहमलमलीमसमानसतया नित्यमज्ञानिनो भवन्ति ते खलु समये स्थिता अप्यनासादितपरमार्थश्रामण्यतया श्रमणाभासाः सन्तोऽनन्तकर्मफलोपभोगप्राग्भारभयंकरमनन्तकालमनन्तभवान्तरपरावर्तैरनवस्थितवृत्तयः संसारतत्त्वमेवावबुध्यताम् ॥ ७१ ॥

अथ मोक्षतत्त्वमुद्घाटयति;—

अजधाचारविजुत्तो जधत्थपदणिच्छिदो पसंतप्पा।
अफले चिरं ण जीवदि इह सो संपुण्णसामण्णो ॥ ७२ ॥

अयथाचारवियुक्तो यथार्थपदनिश्चितोपशान्तात्मा।
अफले चिरं न जीवति इह स संपूर्णश्रामण्यः ॥ ७२ ॥

यस्त्रिलोकचूलिकायमाननिर्मलविवेकदीपिकालोकशालितया यथावस्थितपदार्थनिश्चयनि-

---

रूपात्यन्तफलसमृद्धं। पुनरपि कथंभूतम्? अतो वर्त्तमानकालात्परं भाविनमिति। अयमत्रार्थः— इत्थंभूतसंसारपरिभ्रमणपरिणतपुरुषा एवाभेदेन संसारस्वरूपं ज्ञातव्यमिति ॥ ७१ ॥ अथ मोक्षस्वरूपं प्रकाशयति;—**अजधाचारविजुत्तो** निश्चयव्यवहारपञ्चाचारभावनापरिणतत्वादयथाचारवियुक्तः विपरीताचाररहित इत्यर्थः। **जदत्थपदणिच्छिदो** सहजानन्दैकस्वभावनिजपरमात्मादिपदार्थपरिज्ञानसहितत्वाद्यथार्थपदनिश्चितः **पसंतप्पा** विशिष्टपरमोपशमभावपरिणतनिजात्मद्रव्यभावनासहितत्वात्प्रशान्तात्मा **जो** यः कर्त्ता **सो** **संपुण्णसामण्णो** स सम्पूर्णश्राम-

---

अनंतकालपर्यंत **[भ्रमन्ति]** भटकते हैं॥ **भावार्थ**—ये अज्ञानी मुनि मिथ्याबुद्धिसे पदार्थका श्रद्धान नहीं करते हैं अन्यकी अन्यकल्पना करते हैं और हमेशा महामोहमलकर चित्तकी मलिनतासे अविवेकी हैं यद्यपि द्रव्यलिंगको धारण कर रहे हैं तौभी परमार्थमुनिपनेको नहीं प्राप्त हुए हैं जो मुनिके समान मालूम पडते हैं वे अनंतकालतक अनंतपरावर्तनकर भयानक कर्मफलको भोगते हुए भटकते हैं। इसलिये वे श्रमणाभास मुनि संसारतत्त्व जानने चाहिये दूसरा कोई संसार नहीं है, जो जीव मिथ्याबुद्धि लिये हुए हैं वेही जीव संसार हैं ॥७१॥ आगे मोक्षतत्त्वको प्रगट करते हैं;—**[अयथाचारवियुक्तः]** जो पुरुष मिथ्या आचरणसे रहित है अर्थात् यथावत् स्वरूपाचरणमें प्रवर्तता है **[यथार्थपदनिश्चितः]** जैसा कुछ पदार्थोंका स्वरूप है वैसाही निश्चल श्रद्धान करलिया है **[प्रशान्तात्मा]** और रागद्वेषसे रहित है ऐसा **[सः]** वह पुरुष **[संपूर्णश्रामण्यः]** संपूर्ण मुनिपदवीसहित हुआ **[इह]** इस **[अफले]** फलरहित संसारमें **[चिरं]** बहुत कालतक **[न जीवति]** प्राणोंको नहीं धारणकरता है थोडेकालतक ही रहता है ॥ **भावार्थ**—त्रिलोकका चूडामणिरत्नसमान निर्मल विवेकरूपी दीपकके प्रकाशकर जिस महामुनिने यथावत् पदार्थोंका निश्चय किया है और एक अपने ही स्वरूपको मुख्यपनेसे आचरता है विपरीत आचरणसे रहित हुआ सदाकाल ज्ञानी है ऐसा परिपूर्ण मुनिपदवीका धारक महामुनि पूर्वबंधे समस्त कर्मफलोंकी निर्जरा करता है नवीनकर्म-

वर्तितौत्सुक्यस्वरूपमन्थरसततोपशान्तात्मा सन् स्वरूपमेकमेवाभिमुख्येन चरन्नयथाचार-वियुक्तो नित्यं ज्ञानी स्यात् स खलु संपूर्णश्रामण्यः साक्षात् श्रमणो हेलावकीर्णसकलप्राक्तनकर्मफलत्वादनिष्पादितनूतनकर्मफलत्वाच्च पुनः प्राणधारणदैन्यमनास्कन्दन् द्वितीयभावपरावर्ताभावान् शुद्धस्वभावावस्थितवृत्तिर्मोक्षतत्त्वमवबुध्यताम् ॥ ७२ ॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमुद्घाटयति;—

सम्मं विदिदपदत्था चत्ता उवहिं बहित्थमज्झत्थं ।
विसयेसु णावसत्ता जे ते सुद्धत्ति णिद्दिट्ठा ॥ ७३ ॥

सम्यग्विदितपदार्थास्त्यक्त्वोपधिं बहिस्थमध्यस्थम् ।
विषयेषु नावसक्ता ये ते शुद्धा इति निर्दिष्टाः ॥ ७३ ॥

अनेकान्तकलितसकलज्ञातृज्ञेयतत्त्वयथावस्थितस्वरूपपाण्डित्यशौण्डाः सन्तः समस्तबहिरङ्गान्तरङ्गसङ्गसङ्गतिपरित्यागविविक्तान्तश्चकचकायमानानन्तशक्तिचैतन्यभास्वरात्मतत्त्व-

---

ण्यः सन् **चिरं ण जीवदि** चिरं बहुतरकालं न जीवति न तिष्ठति **अफले** शुद्धात्मसंवित्तिसमुत्पन्नसुखामृतरसास्वादरहितत्वेनाफले संसारे। किं ? शीघ्रं मोक्षं गच्छतीति । अयमत्र भावार्थः—इत्थंभूतमोक्षतत्त्वपरिणत पुरुषएवाभेदेन मोक्षस्वरूपं ज्ञातव्यमिति ॥ ७२ ॥ अथ मोक्षकारणमाख्याति;—**सम्मं विदिदपदत्था** संशयविपर्ययानध्यवसायरहितानन्तज्ञानादिस्वभावनिजपरमात्मपदार्थप्रभृतिसमस्तवस्तुविचारचतुरचित्तचातुर्य्यप्रकाशमानसातिशयपरमविवेकज्योतिषा सम्यग्विदितपदार्थाः । पुनरपि किं रूपाः ? **विसयेसु णावसत्ता** पञ्चेन्द्रियविषयाधीनरहितत्वेन निजात्मतत्त्वभावनारूपपरमसमाधिसंजातपरमानन्दैकलक्षणसुखसुधारसास्वादानुभवनफलेन विषयेषु मनागप्यनासक्ताः । किं कृत्वा । पूर्वं स्वस्वरूपपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा **चत्ता** त्यक्त्वा । कम् ? **उवहिं** उपधिं परिग्रहं । किं विशिष्टम् ? **बहित्थमज्झत्थं** बहिस्थं क्षेत्राद्यनेकविधं मध्यस्थं

बंध फलका उत्पन्न करनेवाला नहीं होता इससे फिर संसारीक प्राणोंके धारणकरनेकी दीनताको नहीं करता । जिसके दूसरी पर्यायका अभाव है ऐसा यह शुद्धस्वरूपमें स्थित मुनि है वही तुम मोक्षतत्त्व जानो अन्य मोक्ष नहीं । जो परद्रव्यसे मुक्त हुआ स्वरूपमें लीन है वही जीव मुक्त है ॥ ७२ ॥ आगे मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व दिखलाते हैं;—[**ये**] जो जीव [**सम्यग्**] यथार्थ [**विदितपदार्थाः**] समस्ततत्त्वोंको जानते हैं तथा [**बहिस्थमध्यस्थं**] बाह्य और अंतरंग रागादि [**उपधिं**] परिग्रहको [**त्यक्त्वा**] छोड़कर [**विषयेषु**] पांच इन्द्रियोंके स्पर्शादिविषयोंमें [**न अवसक्ताः**] नहीं लीन हैं [**ते**] वे जीव [**शुद्धाः**] निर्मल भगवंत मोक्षतत्त्वके साधन हैं [**इति**] ऐसे [**निर्दिष्टाः**] कहे गये हैं ॥ **भावार्थ**—जो अनेकांतपने सहित सकल ज्ञेय ज्ञायकतत्त्वोंके यथार्थजाननेमें प्रवीण हैं, समस्त बाह्यअंतर परिग्रहका त्यागकर देदीप्यमान हुए हैं, अनंतज्ञानशक्तिकर विराजमान आत्मतत्त्वजिनके घटमें है, इ-

स्वरूपाः स्वरूपगुप्तसुषुप्तकल्पान्तस्तत्त्ववृत्तितया विषयेषु मनागप्यासक्तिमनासादयन्तः समस्तानुभाववन्तो भगवन्तः शुद्धा एवासंसारघटितविकटकर्मकवाटविघटनपटीयसाध्यवसायेन प्रकटीक्रियमाणावदानावमोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वमवबुध्यताम् ॥ ७३ ॥

अथ मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वं सर्वमनोरथस्थानत्वेनाभिनन्दयति;—

सुद्धस्स य सामण्णं भणियं सुद्धस्स दंसणं णाणं ।
सुद्धस्स य णिव्वाणं सोच्चिय सिद्धो णमो तस्स ॥ ७४ ॥

शुद्धस्य च श्रामण्यं भणितं शुद्धस्य दर्शनं ज्ञानम् ।
शुद्धस्य च निर्वाणं स एव सिद्धो नमस्तस्मै ॥ ७४ ॥

यत्तावत्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रयौगपद्यप्रवृत्तैकाग्र्यलक्षणं साक्षान्मोक्षमार्गभूतं श्रामण्यं

मिथ्यात्वादिचतुर्दशभेदभिन्नम् । जे एवं गुणविशिष्टाः ये महात्मानः **ते सुद्धत्ति णिद्दिट्ठा** ते शुद्धात्मानः शुद्धोपयोगिनः सिद्धयन्ति इति निर्दिष्टाः कथिताः । अनेन व्याख्यानेन किमुक्तं भवति—इत्थंभूता परमयोगिन एवाभेदेन मोक्षमार्गा इत्यवबोद्धव्याः ॥ ७३ ॥ अथ शुद्धोपयोगलक्षणमोक्षमार्गं सर्वमनोरथस्थानत्वेन प्रदर्शयति;—**भणियं** भणितं । किं? **सामण्णं** सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैकाग्र्यशत्रुमित्रादिसमभावपरिणतिरूपं साक्षान्मोक्षकारणं यच्छ्रामण्यम् । तत्तावत्कस्य? **सुद्धस्स य** शुद्धस्य च शुद्धोपयोगिन एव **सुद्धस्स दंसणं णाणं** त्रैलोक्योदरविवरवर्त्तित्रिकालविषयसमस्तवस्तुगतानन्तधर्मैकसमयसामान्यविशेषपरिच्छित्तिसमर्थे दर्शनज्ञानद्वयं तच्छुद्धस्यैव **सुद्धस्स य णिव्वाणं** *अव्याबाधानन्तसुखादिगुणाधारभूतं पराधीनरहितत्वेन स्वा-*यत्तं यन्निर्वाणं तच्छुद्धस्यैव **सोच्चिय सिद्धो** यो लौकिकमायाञ्जनरसदिग्विजयमन्त्रयन्त्रादिसिद्धविलक्षणस्वशुद्धात्मोपलम्भलक्षणटङ्कोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावो ज्ञानावरणाद्यष्टविधकर्मरहितत्वेन सम्य-

---

न्द्रियके विषयोंमें किसीसमय भी आसक्त नहीं होते, स्वरूपमें ऐसे लीन हैं कि मानों सुखसे सोरहे हैं इसलिये विषयोंसे रहित हैं, संसारमें लगे कर्मरूप किवाड़ोंके उघाड़नेको जिन्होंने अपनी शक्ति प्रगट की है और महाप्रभावसहित हैं ऐसे शुद्धजीव हैं वे मोक्षतत्त्वके साधक जानने चाहिये ॥ ७३ ॥ आगे मोक्षतत्त्वका साधनतत्त्व सर्व मनोवांछित अर्थोंका स्थान है यह दिखलाते हैं;—[**शुद्धस्य**] जो परमवीतरागभावको प्राप्त हुआ मोक्षका साधक परमयोगीश्वर है उसके [**श्रामण्यं**] सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी एकताकर एकाग्रतालिये हुए साक्षात् मोक्षमार्गरूप यतिपद [**भणितं**] कहा है [**च**] और [**शुद्धस्य**] उसी शुद्धोपयोगी मोक्षसाधक मुनीश्वरके [**दर्शनं ज्ञानं**] अतीत अनागत वर्तमान अनंतपर्याय सहित सकलपदार्थोंको सामान्यविशेषताकर देखना जानना भी कहा है [**च**] तथा [**शुद्धस्य**] उसी शुद्धोपयोगी मोक्षमार्गी मुनीश्वरके [**निर्वाणं**] निरावरण अनंतज्ञानदर्शन सुखवीर्यसहित परमनिर्मल मोक्षअवस्था भी है [**स एव**] वही शुद्ध मोक्षसाधन [**सिद्धः**] टंकोत्कीर्ण परम

तच्च शुद्धस्यैव । यच्च समस्तभूतभवद्भाविव्यतिरेककरम्बितानन्तवस्त्वन्वयात्मकविश्वसामान्यविशेषप्रत्यक्षप्रतिभासात्मकं दर्शनं ज्ञानं च तत् शुद्धस्यैव । यच्च निःप्रतिविजृम्भितसहजज्ञानानन्दमुद्रितदिव्यस्वभावं निर्वाणं तत् शुद्धस्यैव । यश्च टङ्कोत्कीर्णपरमानन्दावस्थासुस्थितात्मस्वभावोपलम्भगम्भीरो भगवान् सिद्धः स शुद्ध एव । अलं वाग्विस्तारेण, सर्वमनोरथस्थानस्य मोक्षतत्त्वसाधनतत्त्वस्य शुद्धस्य परस्परमङ्गाङ्गिभावपरिणतभाव्यभावकभावत्वात्प्रत्यस्तमितस्वपरविभागो भावनमस्कारोऽस्तु ॥ ७४ ॥

अथ शिष्यजनं शास्त्रफलेन योजयन् शास्त्रं समापयति;—

बुज्झदि सासणमेयं सागारणगारचरियया जुत्तो ।
जो सो पवयणसारं लहुणा कालेण पप्पोदि ॥ ७५ ॥

बुध्यते शासनमेतत् साकारानाकारचर्यया युक्तः ।
यः स प्रवचनसारं लघुना कालेन प्राप्नोति ॥ ७५ ॥

यो हि नाम सुविशुद्धज्ञानदर्शनमात्रस्वरूपव्यवस्थितवृत्तिसमाहितत्वात् साकारानाकारचर्यया युक्तः सन् शिष्यवर्गः स्वयं समस्तशास्त्रार्थविस्तरसंक्षेपात्मकश्रुतज्ञानोपयोगपूर्वकानुभावेन केवलमात्मानमनुभवन् शासनमेतदुच्यते स खलु निरवधित्रिसमयप्रवाहावस्था-

---

क्त्वाद्यष्टगुणान्तर्भूतानन्तगुणसहितसिद्धो भगवान् स चैव शुद्ध, एवं **णमो तस्स** निर्दोषिनिजपरमात्मन्याराध्याराधकसम्बन्धलक्षणो भावनमस्कारोऽस्तु तस्यैव । अत्रैतदुक्तं भवति—अस्य मोक्षकारणभूतशुद्धोपयोगस्य मध्ये सर्वेष्टमनोरथा लभ्यन्त इति मत्वा शेषमनोरथपरिहारे तत्रैव भावना कर्त्तव्येति ॥ ७४ ॥ अथ शिष्यजनं शास्त्रफलं दर्शयन् शास्त्रं समापयति;—**पप्पोदि** प्राप्नोति **सो** शिष्यजनः कर्त्ता । कम्? **पवयणसारं** प्रवचनसारशब्दवाच्यं निजपरमात्मानम् । केन? **लहुणा कालेण** स्तोककालेन । यः किं करोति? **बुज्झदि** यः शिष्यजनो बुध्यते जानाति । किम्? **सासणमेयं** शास्त्रमिदम् । किं नाम? **पवयणसारं** सम्यग्ज्ञानस्य तस्यैव ज्ञेयभूतपरमा-

---

आनंद अवस्थाकर थिररूप निरावरणदशाको प्राप्त परब्रह्मरूप साक्षात् सिद्ध, है [**तस्मै**] ऐसे सर्वमनोरथके ठिकाने मोक्षसाधन शुद्धोपयोगीको [**नमः**] हमारा भावनमस्कार होवे ॥ **भावार्थ**—बहुत विस्तार कहांतक कहाजाय यह जो मोक्षतत्त्वका साधन शुद्धोपयोगी महामुनि है वह सब मनोवांछित कार्योंका स्थान है क्योंकि इस दशाके होनेपर सब मनोरथ पूर्ण होते हैं इससे यह मोक्षमार्ग है इसीके अनंतज्ञान दर्शन हैं इसीको मोक्ष है और यही साक्षात् सिद्ध है जो सब उत्तम अवस्थायें हैं उनरूप यही मानना चाहिये ॥ ७४ ॥ आगे शिष्यजनोंको शास्त्रका फल दिखलाकर शास्त्रकी समाप्ति करते हैं;—[**यः**] जो पुरुष [**साकारानाकारचर्यया युक्तः**] श्रावक और मुनिकी क्रियाकर संयुक्त हुआ [**एतत् शासनं**] यह भगवंतप्रणीत उपदेश [**बुध्यते**] समझता है [**सः**] वह [**लघुना कालेन**] थोड़ेही कालमें [**प्रवचनसारं**]

थित्वेन सकलार्थसार्थात्मकस्य प्रवचनस्य सारभूतं भूतार्थस्वसंवेद्यदिव्यज्ञानानन्दस्वभावम-ननुभूतपूर्वं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति ॥ ७५ ॥ गाथासमाप्तिः ॥

इति तत्त्वदीपिकायां श्रीमदमृतचन्द्रसूरिविरचितायां प्रवचनसारवृत्तौ चरणानुसूचिकाचूलिकानामकतृतीयः श्रुतस्कन्धः समाप्तः ॥ ३ ॥

त्मादिपदार्थानां तत्साध्यस्य निर्विकारस्वसंवेदनज्ञानस्य च तथैव तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणसम्यग्दर्शनस्य तद्विषयभूतानेकान्तात्मकपरमात्मादिद्रव्याणां तेन व्यवहारसम्यक्त्वेन साध्यस्य निजशुद्धात्मरुचिरूपनिश्चयसम्यक्त्वस्य तथैव च व्रतसमितिगुप्त्याद्यनुष्ठानरूपस्य सरागचारित्रस्य तेनैवसाध्यस्य स्वशुद्धात्मनिश्चलानुभूतिरूपस्य वीतरागचारित्रस्य च प्रतिपादकत्वात्प्रवचनसाराभिधेयम् । कथंभूतः सः शिष्यजनः? **सागारणगारचरियया जुत्तो** सागारानागारचर्यया युक्तः । अभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानमुपादेयं कृत्वा बहिरङ्गरत्नत्रयानुष्ठानं सागारचर्या श्रावकचर्या । बहिरङ्गरत्नत्रयाधारेणाभ्यन्तररत्नत्रयानुष्ठानमनागारचर्या प्रमत्तसंयतादितपोधनचर्येत्यर्थः ॥ ७५ ॥ इति गाथापञ्चकेन पञ्चरत्नसंज्ञं पञ्चमस्थलं व्याख्यातम् । एवं 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादि द्वात्रिंशद्गाथाभिः स्थलपञ्चकेन शुभोपयोगाभिधानश्चतुर्थोन्तराधिकारः समाप्तः ॥

इति श्री**जयसेनाचार्य**कृतायां तात्पर्यवृत्तौ पूर्वोक्तक्रमेण 'एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येकविंशतिगाथाभिरुत्सर्गाधिकारः । 'ण हिणिरवेक्खो चागो' इत्यादि त्रिंशद्गाथाभिरपवादाधिकारः । ततः परं 'एयग्गगदो समणो' इत्यादिचतुर्दशगाथाभिः श्रामण्यापरनामा मोक्षमार्गाधिकारः । ततोऽप्यनन्तरं 'णिच्छिदसुत्तत्थपदो' इत्यादिद्वात्रिंशद्गाथाभिः शुभोपयोगाधिकारश्चेत्यन्तराधिकारचतुष्टयेन सप्तनवतिगाथाभिश्च**रणानुयोगचूलिका** नामा तृतीयो महाधिकारः समाप्तः ॥३॥

सिद्धांतका रहस्यभूत परमात्मभावको [**प्राप्नोति**] पाता है ॥ **भावार्थ**—जो कोई शिष्यजन निर्मल ज्ञानदर्शनमें स्थिर होके श्रावक अथवा यतिभावको प्राप्त हुआ संक्षेप विस्ताररूप अर्थोंकर गर्भित श्रुतज्ञानको पहले यथावत् (जैसेका तैसा) जानकर आत्माको अनुभवता हुआ इस भगवत्प्रणीत उपदेशको समझता है वह पुरुष सकलपदार्थोंका सूचक इस प्रवचनसिद्धान्तका सारभूत स्वसंवेदनज्ञानगम्य सच्चिदानंद पूर्व नहीं अनुभव किया हुआ ऐसे भगवंत आत्माको पाता है ॥ ७५ ॥

इति श्री **पांडे हेमराजकृत** श्रीप्रवचनसारसिद्धांतकी बालावबोधभाषाटीकामें चारित्रतत्त्व अधिकार पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

ननु कोयमात्मा कथं चावाप्यत इति चेत्? अभिहितमेतत् पुनरप्यभिधीयते । आत्मा हि तावच्चैतन्यसामान्यव्याप्तानन्तधर्माधिष्ठात्रेकं द्रव्यमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुतज्ञानलक्षणप्रमाणपूर्वकस्वानुभवप्रमीयमाणत्वात् । तत्तु द्रव्यनयेन पटमात्रवच्चिन्मात्रम् १ । पर्यायनयेन तन्तुमात्रवद्दर्शनज्ञानादिमात्रम् २ । अस्तित्वनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्तित्ववत् ३ । नास्तित्वनयेनानयोमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् । परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्नास्तित्ववत् ४ । अस्तित्वनास्तित्वनयेनायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् क्रमतः स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरस्तित्वनास्तित्ववत् ५ । अवक्तव्यनयेनायोमया-

---

अत्राह शिष्यः । परमात्मद्रव्यं यद्यपि पूर्वं बहुधा व्याख्यातम् । तथापि संक्षेपेण पुनरपि कथ्यतामिति भगवानाह—केवलज्ञानाद्यनन्तगुणानामाधारभूतं यत्तदात्मद्रव्यं भण्यते । तस्य च नयैः प्रमाणेन च परीक्षा क्रियते । तद्यथा—एतावत् शुद्धनिश्चयेन निरुपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादिविकल्पोपाधिरहितं, तदेवाशुद्धनिश्चयनयेन सोपाधिस्फटिकवत्समस्तरागादिविकल्पोपाधिसहितम्, शुद्धसद्भूतव्यवहारनयेन शुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णानामाधारभूतपुद्गलपरमाणुवत्केवलज्ञानादि-

---

जो कोई यह प्रश्न करे कि यह आत्मा कैसा है और इसकी प्राप्ति किसतरह होती है तो उसका समाधान पहले भी कर आये हैं और फिर भी तात्पर्यरूपसे कहते हैं—यह आत्मा चैतन्यरूप अनंतधर्मात्मक एक द्रव्य है, वे अनंतधर्म अनंतनयोंकर जाने जाते हैं, अनंतनयरूप श्रुतज्ञान है । उस श्रुतज्ञानप्रमाणसे अनंतधर्मस्वरूप आत्मा जाना जाता है इसकारणनयोंकर वस्तु दिखलाई जाती है । वही आत्मा द्रव्यार्थिकनयकर चिन्मात्र है, जैसे वस्त्र एक है । और पर्यायार्थिकनयकर वही आत्मा ज्ञानदर्शनादिरूपसे अनेकस्वरूप है, जैसे वही वस्त्र सूतके तंतुओंकर अनेक है । वही आत्मा अस्तित्वनयकर स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावोंकर अस्तित्वरूप है, जैसे लोहेका वाण अपने द्रव्यादि चतुष्टयकर अस्तित्वरूप है, उसमें लोहा तो द्रव्य है, वह धनुष और डोराके बीचमें रहता है इससे वह वाणका क्षेत्र है, जो साधनेका समय है वह काल है और निशानके सामने है वह भाव है इसतरह अपने चतुष्टयकर लोहमई वाण अस्तित्वरूप है उसीप्रकार स्वचतुष्टयकर आत्मा अस्तित्वरूप है । वही आत्मा नास्तित्वनयकर परद्रव्यक्षेत्रकालभावकर नास्तित्वरूप है, जैसे वही लोहमई वाण परचतुष्टयकर लोहमयी नहीं है, धनुष और डोराके बीचमें नहीं है, साधनेका समय अन्य नहीं है और निशानेके सामने नहीं है ऐसे वही लोहमई वाण परचतुष्टयनयकर नास्तित्वरूप है उसीप्रकार परचतुष्टयकर आत्मा नहीं है । वही आत्मा अस्तिनास्तित्वनयकर स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकर क्रमसे अस्तिनास्तिरूप है, जैसे वही वाण स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकी क्रम विवक्षासे अस्तिनास्तिरूप होता है।

नयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैरवक्तव्यम् ६ । अस्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत् स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्ववदवक्तव्यम् ७ । नास्तित्वावक्तव्यनयेनानयोमयागुणकार्मुकान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्च नास्तित्ववदवक्तव्यम् ८ । अस्तित्वनास्तित्वावक्तव्यनयेनायोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्तिसंहितावस्थलक्ष्योन्मुखानयोमयागुणकार्मु-

---

शुद्धगुणानामाधारभूतम् । तदेवाशुद्धसद्भूतव्यवहारनयेनाशुद्धस्पर्शरसगन्धवर्णाधारभूतद्व्यणुकादिस्कन्धवन्मतिज्ञानादिविभावगुणानामाधारभूतम् । अनुपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन द्व्यणुकादिस्कन्धसंश्लेशबन्धस्थितपुद्गलपरमाणुवत्परमौदारिकशरीरे वीतरागसर्वज्ञवद्वा विवक्षितैकदेहस्थितम्, उपचरितासद्भूतव्यवहारनयेन काष्ठासनाद्युपविष्टदेवदत्तवत्समवशरणस्थितवीतरागसर्वज्ञवद्वा विव-

---

वही आत्मा अवक्तव्यनयकर एक ही समय स्वचतुष्टयपरचतुष्टयकर अवक्तव्य है, जैसे वही वाण स्वपरचतुष्टयकर अवक्तव्य सधता है । वही आत्मा अस्तिअवक्तव्यनयकर स्वचतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर अस्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे समझलेना । नास्तिअवक्तव्यनयकर वही आत्मा परद्रव्यक्षेत्रकालभावोंकर और एकही समय स्वपरचतुष्टयकर नास्तिअवक्तव्यरूप वाणके दृष्टांतसे जानलेना । अस्तिनास्तिअवक्तव्यनयकर वही आत्मा स्वचतुष्टयकर परचतुष्टयकर और एकही वार स्वपरचतुष्टयकर वाणकी तरह अस्तिनास्तिअवक्तव्यरूप सिद्ध होता है । विकल्पनयकर वही आत्मा भेद लिये हुए है, जैसे एकपुरुष कुमार बालक जवान वृद्धभेदोंसे सविकल्प होता है । अविकल्पनयकर वही आत्मा अभेदरूप है, जैसे वही पुरुष अभेदरूप है । नामनयकर वही आत्मा शब्दब्रह्मसे नाम लेके कहा जाता है । स्थापनानयकर वही आत्मा पुद्गलका सहारा लेकर स्थापित किया जाता है । जैसे मूर्तीकपदार्थकी स्थापना है । द्रव्यनयकर वही आत्मा अतीत अनागतपर्यायकर कहाजाता है जैसे श्रेणिकराजा तीर्थंकरमहाराज हैं । भावनयकर वही आत्मा जिस भावरूप परिणमता है उसभावसे तन्मय होजाता है, जैसे पुरुषाधीन स्त्री विपरीतसंभोगमें प्रवर्तती हुई उस पर्यायरूप होती है उसीप्रकार आत्मा वर्तमानपर्यायरूप होता है । सामान्यनयकर अपने समस्त पर्यायोंमें व्यापी है, जैसे हारका सूत सब मोतियोंमें व्यापी है । विशेषनयकर वही द्रव्य एकपर्यायकर कहा जाता है, जैसे उस हारका एक मोती सब हारोंमें अव्यापी है । नित्यनयकर ध्रौव्यरूप है, जैसे नट यद्यपि अनेक स्वांग रखता है तो भी नट एक है उसीतरह नित्य है । अनित्यनय-

कान्तरालवर्त्यसंहितावस्थालक्ष्योन्मुखायोमयानयोमयगुणकार्मुकान्तरालवर्त्यगुणकार्मुकान्त-रालवर्तिसंहितावस्थासंहितावस्थलक्ष्योन्मुखालक्ष्योन्मुखप्राक्तनविशिखवत् स्वद्रव्यक्षेत्रकाल-भावैः परद्रव्यक्षेत्रकालभावैर्युगपत्स्वपरद्रव्यक्षेत्रकालभावैश्चास्तित्वनास्तित्ववदवक्तव्यम् ९ । विकल्पनयेन . शिशुकुमारस्थविरैकपुरुषवत्सविकल्पम् १० । अविकल्पनयेनै-कपुरुषमात्रवदविकल्पम् ११ । नामनयेन तदात्मवत् शब्दब्रह्मामर्शि १२ । स्थापनानयेन मूर्तित्ववत्सकलपुद्गलालम्बि १३।द्रव्यनयेन माणवकश्रेष्ठिश्रमणपार्थिववदनागतातीतपर्यायो-द्भासि १४ । भावनयेन पुरुषायितप्रवृत्तयोषिद्वत्तदात्वपर्यायोल्लासि १५ । सामान्यनयेन हारस्रग्दामसूत्रवद्व्यापि १६ । विशेषनयेन तदेकमुक्ताफलवदव्यापि १७ । नित्यनयेन नटद्युवदवस्थायि १८ । अनित्यनयेन रामरावणवदनवस्थायि १९ । सर्वगतनयेन विस्फा-

---

क्षितैकग्रामगृहादिस्थितम् । इत्यादि परस्परसापेक्षानेकनयैः प्रमीयमाणं व्यवह्रियमाणं क्रमेण मेचकस्वभावविवक्षितैकधर्मव्यापकत्वादेकस्वभावं भवति । तदेव जीवद्रव्यं प्रमाणेन प्रमीयमाणं मेचकस्वभावानामनेकधर्माणां युगपद्व्यापकचित्रपटवदनेकस्वभावं भवति । एवं नयप्रमाणाभ्यां तत्त्वविचारकाले योसौ परमात्मद्रव्यं जानाति स निर्विकल्पसमाधिप्रस्तावे निर्विकारस्वसंवेदनज्ञाने-

---

कर वही द्रव्य अवस्थान्तरकर अनवस्थित है जैसे नट रामरावणादिके स्वांगकर अन्यका अन्य होजाता है । सर्वगतनयकर सकलपदार्थवर्ती है, जैसे खुलीआंख समस्त घटपटादि पदार्थोंमें प्रवर्तती है । असर्वगतनयकर अपनेमें ही प्रवृत्ति करता है, जैसे बंद किया हुआ नेत्र अपनेमें ही मौजूद रहता है । शून्यनयकर केवल एक ही शोभायमान है, जैसे शून्यघर एक ही है । अशून्यनयकर अनेकोंसे मिलाहुआ शोभता है, जैसे अनेकलोकोंसे भरी हुई नाव शोभती है । ज्ञानज्ञेयके अभेदकथनरूपनयकर एक है, जैसे अनेक ईंधन-रूप परिणत हुई आग एक है । ज्ञानज्ञेयके भेदकथनरूपनयकर अनेक है, जैसे आरसी (दर्पण) अपने अनेक घटपटादि पदार्थोंके प्रतिबिंबसे अनेकरूप होती है । नियतनय-कर अपने निश्चितस्वभावको लियेहुए है, जैसे जल अपने सहजस्वभावकर शीतलता लिए होता है । अनियतनयकर अनिश्चितस्वभाव है, जैसे पानी आगके संबंधसे उष्ण होजाता है । स्वभावनयकर किसीका बनायाहुआ नहीं होता, जैसे स्वभावकर कांटा विना बनाया हुआ तीखा (पैंना) होता है । अस्वभावनयकर संभाला हुआ होता है, जैसे लोहेका बाण बनानेसे तीखा होता है । कालनयकर कालके आधीन सिद्धी होती है, जैसे ग्रीष्मकाल (गर्मी) के अनुसार डालका आम सहजमें पकजाता है । अकाल-नयकर कालके आधीन सिद्धि नहीं है, जैसे घासकी गर्मीसे पालमें आम पकजाता है । पुरुषाकारनयसे यत्नसे सिद्धि होती है, जैसे शहतके उत्पन्नकरनेकेलिये काठके छेदमें एक मधुमाखी रखते हैं उस मक्षिकाके शब्दसे दूसरी शहतकी मक्खियां आकर आप मधुछत्ता करती हैं इसतरह यत्नसे भी शहतकी सिद्धि होती है इसीप्रकार यत्नसे भी द्र-

रिताक्षचक्षुर्वत्सर्ववर्ति २० । असर्वगतनयेन मीलिताक्षचक्षुर्वदात्मवर्ति २१ । शून्यनयेन शून्यागारवत्केवलोद्भासि २२ । अशून्यनयेन लोकाक्रान्तनौवन्मिलितोद्भासि २३ । ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयेन महदिन्धनभारपरिणतधूमकेतुवदेकम् २४ । ज्ञानज्ञेयद्वैतनयेन परप्रतिबिम्बसंपृक्तदर्पणवदनेकम् २५ । नियतिनयेन नियमितौष्ण्यवह्निवन्नियतस्वभावभासि २६ । अनियतिनयेन नियत्यनियमितौष्ण्यपानीयवदनियतस्वभावभासि २७ । स्वभावनयेनानिशिततीक्ष्णकण्टकवत्संस्कारानर्थक्यकारि २८ । अस्वभावनयेनायस्कारनिशिततीक्ष्णविशिखवत्संस्कारसार्थक्यकारि २९ । कालनयेन निदाघदिवसानुसारिपच्यमानसहकारफलवत्समयायत्तसिद्धिः ३० । अकालनयेन कृत्रिमोष्मपाच्यमानसहकारफलवत्समयानायत्तसिद्धिः ३१ । पुरुषकारनयेन पुरुषकारोपलब्धमधुकुक्कुटीकपुरुषकारवादिवद्यत्नसाध्यसिद्धिः ३२ । दैवनयेन पुरुषकारवादिदत्तमधुकुक्कुटीगर्भलब्धमाणिक्यदैववादिवदयत्नसाध्यसिद्धिः ३३ ।

नापि जानातीति ॥ पुनरप्याह शिष्यः—ज्ञातमेवात्मद्रव्यं हे भगवन्निदानीं तस्य प्राप्त्युपायः कथ्यताम् ? भगवानाह—सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसा-

---

ध्यकी सिद्धि होती है । दैवनयकर विना यत्न भी साध्यकी सिद्धि होती है, जैसे यत्न किया था शहतकेलिये परंतु दैवसंयोगसे उस मधुछत्तामें माणिकरत्नकी प्राप्ति होगई इसतरह यत्नविनाभी सिद्धि होती है । ईश्वरनयकर पराधीन हुआ भोगता है, जैसे पंथीबालक धायके आधीन हुआ खानपान क्रिया करता है । अनीश्वरनयकर स्वाधीनभोक्ता है, जैसे स्वेच्छाचारी सिंह मृगोंको विदारणकर खानपानक्रिया करता है । गुणनयकर गुणोंका ग्रहण करनेवाला है, जैसे उपाध्यायकर सिखाया हुआ कुमार गुणग्राही होता है । अगुणनयकर केवल साक्षीभूत है गुणग्राही नहीं है, जैसे अध्यापककर सिखलाये हुए कुमारका रक्षक पुरुष गुणग्राही नहीं होता । कर्तानयकर रागादिपरिणामोंका कर्ता है, जैसे रंगरेज रंगका करनेवाला होता है । अकर्तानयकर रागादिपरिणामोंका करनेवाला नहीं है साक्षीभूत है, जैसे रंगरेज जब अनेक रंग करता है तब कोई तमाशा देखनेवाला तमाशा ही देखता है कर्ता नहीं होता । भोक्तानयकर सुखदुःखका भोक्ता है; जैसे हित, अहित पथ्यको लेता हुआ रोगी सुखदुःखको भोगता है । अभोक्तानयकर भोक्ता नहीं है केवल साक्षीभूत है; जैसे हित, अहितपथ्यको भोगनेवाले रोगीका तमाशा देखनेवाला धन्वंन्तरिवैद्यका नौकर साक्षीभूत है । क्रियानयकर क्रियाकी प्रधानतासे सिद्धि होती है, जैसे किसी अंधेने महाकष्टकर किसी पाषाणके खंभेको पाकर अपना माथा फोड़ा वहांपर उस अंधेके मस्तकमें जो लोहीका विकार था वह दूर होगया इस कारण आखें खुलगईं और उसजगह उसने खजाना पाया इसप्रकार क्रियाकष्टकर भी वस्तुकी प्राप्ति होती है । ज्ञाननयकर विवेककी ही प्रधानतासे

ईश्वरनयेन धात्रीहठावलेह्यमानपान्थबालकवत्पारतन्त्र्यभोक्तृ ३४ । अनीश्वरनयेन स्वच्छन्दछदारितकुरङ्गकण्ठीरववत्स्वातन्त्र्यभोक्तृ ३५ । गुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकवद्गुणग्राहि ३६ । अगुणिनयेनोपाध्यायविनीयमानकुमारकाध्यक्षवत् केवलमेव साक्षि ३७ । कर्तृनयेन रञ्जकवद्रागादिपरिणामकर्तृ ३८ । अकर्तृनयेन स्वकर्मप्रवृत्तरञ्जकाध्यक्षवत्केवलमेव साक्षि ३९ । भोक्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृव्याधितवत्सुखदुःखादिभोक्तृ ४० । अभोक्तृनयेन हिताहितान्नभोक्तृव्याधिताध्यक्षधन्वन्तरिचरवत् केवलमेव साक्षि ४१ । क्रियानयेन स्थाणुभिन्नमूर्द्धजातदृष्टिलब्धनिधानान्धवदनुष्ठानप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४२ । ज्ञाननयेन चणकमुष्टिक्रीतचिन्तामणिगृहकोणवाणिजवद्विवेकप्राधान्यसाध्यसिद्धिः ४३ । व्यवहारनयेन बन्धकमोचकपरमाण्वन्तरसंयुज्यमानपरमाणुवद्बन्धमोक्षयोर्द्वैतानुवर्ति ४४ । निश्चयनयेन केवलबध्यमानमुच्यमानबन्धमोक्षोचितस्निग्धरूक्षत्वगुणपरिणतपरमाणुवद्बन्ध-

---

स्वादानुभवमलभमानः सन् पूर्णमासीदिवसे जलकल्लोलक्षुभितसमुद्र इव रागद्वेषमोहकल्लोलैर्यावदस्वस्थरूपेण क्षोभं गच्छत्ययं जीवस्तावत्कालं निजशुद्धात्मानं न प्राप्नोति इति । स एव वीतरागसर्वज्ञप्रणीतोपदेशवत् एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्द्रियसंज्ञिपर्याप्तमनुष्यदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्व-

---

वस्तुकी सिद्धि होती है, जैसे किसी रत्नके परीक्षक पुरुषने किसी अज्ञानी दीनपुरुषके हाथमें चिंतामणिरत्न देखा तब उस दीनपुरुषको बुलाकर अपने घरके कोनेमेंसे एक चनेकी मूठीको देकर उसके बदले चिंतामणिरत्न लेलिया उसीप्रकार क्रियाकष्टके विना हीं वस्तुकी सिद्धि होती है । व्यवहारनयकर यह आत्मा बंधमोक्षावस्थाकी द्विविधामें प्रवर्तता है, जैसे एक परमाणू दूसरे परमाणुसे बंधता है और खुलता है उसीप्रकार यह आत्मा बंधमोक्षअवस्थाको पुद्गलके साथ धारण करता है । निश्चयनयकर परद्रव्यसे बंधमोक्षावस्थाकी द्विविधाको नहीं धारण करता केवल अपने ही परिणामसे बंधमोक्षअवस्थाको धरता है, जैसे अकेला परमाणू बंधमोक्षअवस्थाके योग्य अपने स्निग्धरूक्षगुण परिणामको धरता हुआ बंध मोक्षअवस्थाको धारण करता है । अशुद्धनयकर यह आत्मा उपाधिजन्यस्वभावको लिये हुए है, जैसे एक मट्टी, घड़ा सरवा आदि अनेकभेद लिये हुए होती है ४६ । शुद्धनयकर उपाधिरहित अभेदस्वभावरूप है, जैसे भेदभावरहित केवल मृत्तिका होती है ४७ । इत्यादि अनंतनयोंसे वस्तुकी सिद्धि होती है । वस्तु अनेकतरह वचनविलासकर दिखलाई जाती है जितने वचन हैं उतनेही नय हैं जितने नय हैं उतने ही मिथ्यावाद हैं । जो एक नयको सर्वथा मानें तो मिथ्यावाद होता है और जो कथंचित् मानाजाय तो यथार्थ अनेकांतरूप सर्वज्ञवचन होता है इसलिये एकांतपनेका निषेध है । एकही बार वस्तु अनेकनयकर सिद्ध करते हैं । यह आत्मा नय और प्रमाणकर जानाजाता है, जैसे एक समुद्र जब जुदे २ नदीयोंके जलसे सिद्ध किया जावे तब गंगा यमुना आदिके सफेद नीलादि जलोंके भेदकर एक एक स्वभावको

मोक्षयोरद्वैतानुवर्ति ४५ । अशुद्धनयेन घटशरावविशिष्टमृण्मात्रवत्सोपाधिस्वभावं ४६ । शुद्धनयेन केवलमृण्मात्रवन्निरुपाधिस्वभावं ४७ । तदुक्तं–" जावदिया वयणवहा तावदिया चेव होंति णयवादा । जावदिया णयवादा तावदिया चेव होंति परसमया ॥ " "परसमयाणं वयणं मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा । जइणाणं पुण वयणं सम्मं खु कहंचि वयणादो ॥ " एवमनया दिशा प्रत्येकमनन्तधर्मव्यापकानन्तनयैर्निरूप्यमाणमुदन्वदुदन्तरालमिलद्धवलनीलगाङ्गयामुनोदमारवदनन्तधर्माणां परस्परमतद्भावमात्रेणाशक्यविवेचनत्वादमेचकस्वभावैकधर्मव्यापकैकधर्मित्वाद्यथोदितैकान्तात्मात्मद्रव्यं । युगपदनन्तधर्मव्यापकानन्तनयव्याप्येकश्रुतज्ञानलक्षणप्रमाणेन निरूप्यमाणं तु समस्ततरङ्गिणीपयःपूरसमवायात्मकैकमकराकरवदनन्तधर्माणं वस्तुत्वेनाशक्यविवेचनत्वान्मेचकस्वभावानन्तधर्मव्याप्येकधर्मित्वात् यथोदितानेकान्तात्मात्मद्रव्यं स्यात्कारश्रीवासवश्यैर्नयौघैः पश्यन्तीत्थं चेत् प्रमाणेन चापि पश्यन्त्येव, प्रस्फुटानन्तधर्मस्वात्मद्रव्यं शुद्धचिन्मात्रमन्तः । इत्यभिहित-

---

निर्व्याध्यायुष्यवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धानसंयमविषयसुखनिवर्तनक्रोधादिकषायव्यावर्तनादिपरंपरादुर्लभान्यपि कथंचित्काकतालीयन्यायेनावाप्य सकलविमलकेवलज्ञानदर्शनस्वभावनिजप-

---

धारता है उसीप्रकार यह आत्मा नयोंकी अपेक्षा एक एक स्वरूपको धारण करता है। और जैसे वही समुद्र अनेक नदियोंके जलोंकर एकही है भेद नहीं अनेकांतरूप एक वस्तु है उसीप्रकार यह आत्मा प्रमाणकी विवक्षाकर अनंतस्वभावमय एक द्रव्य है। इसप्रकार एक अनेकस्वरूप नय प्रमाणकर सिद्धि होती है, नयोंसे एकस्वरूप दिखलाया जाता है प्रमाणसे अनेकस्वरूप दिखलाये जाते हैं। इसप्रकार **स्यात्पद**की शोभाकर गर्भितनयोंके स्वरूपकर और अनेकांतरूप प्रमाणकर अनंतधर्मसंयुक्त शुद्धचिन्मात्र वस्तुका जो पुरुष निश्चय श्रद्धान करते हैं वे साक्षात् आत्मस्वरूपके अनुभवी होते हैं। इसप्रकार इस **आत्मद्रव्यका** स्वरूप कहा। आगे उस आत्माकी प्राप्तिका उपाय दिखलाते हैं—यह आत्मा अनादिकालसे लेकर पुद्गलीककर्मके निमित्तसे मोहरूपी मदिरा (शराब) के पीनेसे मदोन्मत्त हुआ घूमता है और समुद्रकी तरह अपनेमें विकल्पतरंगोंकर महाक्षोभित है। क्रमसे प्रवृत्त हुए अनंत इंद्रियज्ञानके भेदोंकर सदाकाल पलटता रहता है एकरूप नहीं अज्ञानभावकर पररूप बाह्यपदार्थोंमें आत्मबुद्धिकर मैत्रीभाव करता है आत्मविवेककी शिथिलताकर सर्वथा बहिर्मुख हुआ है वारंवार पुद्गलीककर्मके उपजानेवाले रागद्वेषभावोंकी द्वैततामें प्रवर्त रहा है। ऐसे आत्माको शुद्ध चिदानंद परमात्माकी प्राप्ति कहांसे होसकती है। यदि यही आत्मा अखंडज्ञानके अभ्याससे अनादि पुद्गलीक कर्मकर उत्पन्न किया जो मिथ्यामोह उसको अपना घातक जानकर भेदविज्ञानद्वारा अपनेसे जुदाकरके केवल आत्मस्वरूपकी भावनासे निश्चल (थिर) होवे तो अपने स्वरूपमें निस्तरंग समुद्रकी तरह निष्कंप हुआ तिष्ठता है । एकहीवार व्याप्तहुए जो अ-

मात्मद्रव्यमिदानीमेतदवाप्तिप्रकारोऽभिधीयते—अस्य तावदात्मनो नित्यमेवानादिपौद्गलिककर्मनिमित्तमोहभावनानुभावघूर्णितात्मवृत्तितया तोयाकरस्येवात्मन्येव क्षुभ्यतः क्रमप्रवृत्ताभिरनन्ताभिर्ज्ञप्तिव्यक्तिभिः परिवर्तमानस्य ज्ञप्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु प्रवृत्तमैत्रीकस्य शिथिलतात्मविवेकतयात्यन्तबहिर्मुखस्य पुनः पौद्गलिककर्मनिर्मापकरागद्वेषद्वैतमनुवर्तमानस्य दूरत एवात्मावाप्तिः। अथ यदा त्वयमेव प्रचण्डकर्मकाण्डोच्चण्डीकृताखण्डज्ञानकाण्डत्वेनानादिपौद्गलिककर्मनिर्मितस्य बध्यघातकविभागज्ञानपूर्वकविभागकरणात् केवलात्मभावानुभावनिश्चलीकृतवृत्तितया तोयाकर इवात्मन्येवातिनिःप्रकम्पस्तिष्ठन् युगपदेव व्याप्यानन्ता ज्ञप्तिव्यक्तीरवकाशाभावान्न जातु विवर्तते, तदास्य ज्ञप्तिव्यक्तिनिमित्ततया ज्ञेयभूतासु बहिरर्थव्यक्तिषु न नाम मैत्री प्रवर्तते। ततः सुप्रतिष्ठितात्मविवेकतयात्यन्तमन्तर्मुखीभूतः पौद्गलिककर्मनिर्मापकरागद्वेषद्वैतानुवृत्तिदूरीभूतो दूरत एवाननुभूतपूर्वमपूर्वज्ञानानन्दस्वभावं भगवन्तमात्मानमवाप्नोति। अवाप्नोत्वेव ज्ञानानन्दात्मानं जगदपि

रमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातरागाद्युपाधिरहितपरमानन्दैकलक्षणसुखामृतरसास्वादानुभवलाभे सत्यमावास्यां दिवसे जलकल्लोलक्षोभरहितसमुद्र इव

नंतज्ञानकी शक्तिके भेद उनकर पलटता नहीं है। अपनी ज्ञानशक्तियोंकर बाह्य पररूज्ञेयपदार्थोंमें मैत्रीभाव नहीं करता है। निश्चल आत्मज्ञानकी विवेकताकर अत्यंत स्वरूपके संमुख हुआ है। पुद्गलकर्मबंधके कारण रागद्वेषकी द्विविधासे दूर रहता है। ऐसा जो परमात्माका आराधक पुरुष है वही पूर्वे नहीं अनुभव किये हुए और ज्ञानानंद स्वभाव ऐसे परब्रह्मको पाता है। आपही साधक है आपही साध्य है अवस्थाके भेदसे साध्यसाधक भेद हैं। यह संपूर्ण जगत भी ज्ञानानंदस्वरूप परमात्मभावको प्राप्त होवौ। और आनंदरूपअमृतजलके प्रवाहकर पूर्ण वहती हुई इस केवलज्ञानरूपीनदीमें जो आत्मतत्त्व मग्न होरहा है, जो समस्त ही लोकालोकके देखनेको समर्थ है, ज्ञानकर प्रधान है, जो तत्त्व अमूल्य उत्तम महारत्नकी तरह अतिशोभायमान है उस आत्मतत्त्वको स्याद्वादरूपी जिनेश्वरके मतको स्वीकार करके हे जगतके भव्यजीवो! तुम अंगीकार करो जिससे कि परमानंदसुखको प्राप्त होवौ। इसप्रकार इस **कुंदकुंदाचार्य**कृत प्रवचनसारमें यह **चरणानुयोग** पूर्ण हुआ। यह अनादिनिधन शब्दब्रह्म अपने अर्थरसकर गर्भित है किसी पुरुषकर इसका अर्थ किया हुआ नहीं होसकता, आपही अर्थशक्तिकर प्रवर्तता है। इसलिये ऐसा कोई नहीं समझलेना कि प्रवचनसारका अर्थ मैंने किया है वह तो स्वतःसिद्ध ही है। हे भव्यो! निर्मल ज्ञानकलाके प्रकाशसे अनेकांत विद्याको निश्चयकर धारणकरके एक परमात्मतत्त्वको पाकर परमआनंदरूप होवौ। जो महाबुद्धिवंत हुए हैं वे भी तत्त्वके कथनसमुद्रके पारगामी नहीं हुए, और जो थोड़ाबहुत तत्त्वका कथन किया है वह सब तत्त्वकी अनंततामें इसतरह समागया है मानो कुछ कहा

परमात्मानमिति ॥ भवति चात्र श्लोकः—“आनन्दामृतपूरनिर्भरवहत्कैवल्यकल्लोलिनी-निर्मग्नं जगदीक्षणक्षममहासंवेदनश्रीमुखम् । स्यात्काराङ्कजिनेशशासनवशादासादयन्तूल्लसत्स्वं तत्त्वं वृतजात्यरत्नकिरणप्रस्पष्टमिष्टं जनाः” ॥ व्याख्येयं किल विश्वमात्मसहितं व्याख्यातु गुम्फे गिरां व्याख्यातामृतचन्द्रसूरिरिति मा मोहाज्जनो वल्गतु । वल्गत्वद्य विशुद्धबोधि-कलया स्याद्वादविद्याबलात् लब्ध्वैकं सकलात्मशाश्वतमिदं स्वं तत्त्वमव्याकुलः ॥ १ ॥ इति गदितमनीचैस्तत्त्वमुच्चावचं यच्चितितदपि किला भूत्कल्पमग्नौ हुतस्य । अनुभवतु तदुच्चैश्चि-च्चिदेवाद्य यस्मादपरमिह न किंचित्तत्त्वमेकं परं चित् ॥ २ ॥

समाप्तेयं तत्त्वदीपिका टीका ।

रागद्वेषमोहकल्लोलक्षोभरहितप्रस्तावे यथा निजशुद्धात्मतत्त्वे स्थिरो भवति तथा तदैव निजशुद्धात्म-स्वरूपं प्राप्नोति ॥

इति श्रीजयसेनाचार्यकृतायां तात्पर्यवृत्तौ एवं पूर्वोक्तक्रमेण “एस सुरासुर” इत्याद्येकोत्तर-शतगाथापर्यन्तं सम्यग्ज्ञानाधिकारः, तदनन्तरं “तम्हा तस्स णमाइं” इत्यादि त्रयोदशोत्तरशत-गाथापर्यन्तं ज्ञेयाधिकारापरनामसम्यक्त्वाधिकारः, तदनन्तरं “तवसिद्धे णयसिद्धे” इत्यादि सप्तनवतिगाथापर्यन्तं चारित्राधिकारश्चेति महाधिकारत्रयेणैकादशाधिकत्रिशतगाथाभिः **प्रवचन-सार**प्राभृतं समाप्तम् ॥

समाप्तेयं तात्पर्यवृत्तिः प्रवचनसारस्य ।
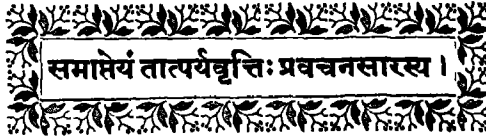
ही नहीं, जैसे आगमें होमकरनेको वस्तु कितनी ही डालो कुछ नहीं रहती उसीप्रकार तत्त्वमें सब कथन समाजाता है । इसकारण परमात्मतत्त्व वचनसे नहीं कहा जासकता केवल अनुभवगम्य है, इससे हे भव्यो! चिन्मात्रवस्तुको अनुभवो क्योंकि इसलोकमें दूसरी उत्तमवस्तु कोई नहीं है । इसलिये श्रीअमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि चिदानंद परमात्मतत्त्व हमेशा घटमें (अंतरंगमें) प्रकाश करो ॥

समाप्ता इयं बालबोधिनी भाषाटीका ।

अथ टीकाकारस्य प्रशस्तिः ।

नाथान्वयं नमस्कृत्य भव्यसारङ्गवार्मुचम् । संग्रथ्नामि प्रशस्तिं हि नानाशब्दविराजिताम् ॥ १ ॥ मुक्तिश्रीर्यस्य कान्ता प्रसभमखिलं त्रोटितं कर्मबन्धं येन ध्यानेन सुष्टं निखिलभवतरुं पातु वो नेमिनाथः । ज्ञानाक्षिर्ज्ञानमूर्तिः सकलमुनिजनैः सेव्यमानो यतीन्द्रो भव्यानां यो हि चिन्त्यः सकलगुणनिधिर्देवनाथो जितारिः ॥ २ ॥ विक्रमादित्यराज्येस्मिंश्चतुर्दशपरे शते । नवषष्ठ्या युते किंतु गोपाद्रौ देवपत्तने ॥ ३ ॥ अनेकभूभुक्पदपद्मलग्नस्तस्मिन्निवासी ननु पाररूपः । शृङ्गारहारो भुवि कामिनीनां भूभुक् प्रसिद्धः श्रीवीरमेद्रः ॥ ४ ॥ मदनारिगृहं तत्र मदविध्वंसनक्षमम् । वैडूर्यघटितं मन्ये किं देवैश्चात्र निर्मितम् ॥ ५ ॥ ननु शक्रस्यादेशेन धनदेनात्र निर्मितम् । कंसतालैश्च घण्टाद्यैर्भृते यत्स्वर्गिभिः सह ॥ ६ ॥ कामिन्यो यत्र गायन्ति नृत्यन्ति हि स्वभावतः । पठन्ति विदुषः पाठं निरवद्यं कृते मुदः ॥ ७ ॥ श्रीकाष्ठसंघे जगति प्रसिद्धे महद्गुणौघे त्रयमाथुरान्वये । सदासदाचारविचारदक्षे गणे सुरम्ये वरपुष्कराख्ये ॥ ८ ॥ मुनीश्वरोऽभून्नयसेनदेवः कृशाष्टकर्मा यशसां निवासः । पट्टे तदीये मुनिरश्वसेन आसीत्सदा ब्रह्मणि दत्तचेताः ॥ ९ ॥ पट्टे तदीये शुभकर्मनिष्ठोप्यनन्तकीर्तिर्गुणरत्नवार्द्धिः । मुनीश्वरोऽभूज्जिनशासनेन्दुस्तत्पट्टधारी भुवि क्षेमकीर्तिः ॥ १० ॥ पट्टे तदीये ननु हेमकीर्तिस्तपःप्रभानिर्जितभानुभानुः । रत्नत्रयालङ्कृतधर्ममूर्तिर्यतीश्वरोऽभूज्जगति प्रसिद्धः ॥ ११ ॥ यतिपपादकुशेशयषट्पदः परमधर्मधरः किमु भूधरः । न हि जडः किं नगः खलु चन्द्रमा न हि विधुः

अथ टीकाकारस्य प्रशस्तिः ।

अज्ञानतमसा लिप्तो मार्गो रत्नत्रयात्मकः । तत्प्रकाशसमर्थाय नमोऽस्तु कुमुदेन्दवे ॥ १ ॥ सूरिः श्रीवीरसेनाख्यो मूलसंघेपि सत्तपाः । नैर्ग्रन्थ्यपदवीं भेजे जातरूपधरोपि यः ॥ २ ॥ ततः श्रीसोमसेनोऽभूद्गणी गुणगणाश्रयः । तद्विनेयोस्ति यस्तस्मै जयसेनतपोभृते ॥ ३ ॥ शीघ्रं बभूव माल्ह? साधुः सदा धर्मरतो वदान्यः । सूनुस्ततः साधुमहीपतिर्यस्तस्मादयं चारुभटस्तनूजः ॥४॥

अथ भाषाकारकी प्रशस्ति ।

दोहा—मूलग्रंथकरता भए, कुंदकुंद मतिमान ।
अमृतचंद्र टीकाकरी, देवभाषपरवान ॥ १ ॥
जैसौ करता मूलकौ, तैसौ टीकाकार ।
तातैं अतिसुंदर सरस, वरतै प्रवचनसार ॥ २ ॥
सकलतत्त्वपरकासिनी, तत्त्वदीपिकानाम ।
टीका सरसुतदेवकी, यह टीका अभिराम ॥ ३ ॥

स कलङ्कविवर्जितः ॥ १२ ॥ पारावारो हि लोके यो जनानिमिषसेवितः । देवकीर्तिमुनिः साक्षात्परं क्षारविवर्जितः ॥ १३ ॥ व्याख्यायैव गुरुः साक्षात्पशुधर्मविनिर्गतः । पद्मकीर्तिमुनिर्भाति परं रागविवर्जितः ॥ १४ ॥ दिगम्बरोऽभूद्भुवि मेरुपर्वतः सुवर्णवर्णैः किमु-सोप्यजङ्गमः । सरित्पतिः किं जलक्षारवर्जितो नक्षत्रराजः स कलङ्कनिर्गतः ॥ १५ ॥ प्रतापचन्द्रो हि मुनिप्रधानः स्वव्याख्यया रञ्जितसर्वलोकः । नियन्त्रितात्मीयमनोविहङ्गो विवादिभूभृत्कुलिशो नितान्तम् ॥ १६ ॥ गुणरत्नैरकूपारो भवभ्रमणशङ्कितः । हेमचन्द्रो यतिः साक्षात्परं ग्राहविवर्जितः ॥ १७ ॥ ग्लावः साम्यं रत्नसानोः स्थिरत्वं भानोः सूर्यः सूर्यकारोश्च रूपम् । गम्भीरत्वं पयोधेः प्रसभमखिलं त्यागमेवं बलेश्च 'संगृहीत्वा विधात्रा किमुत निजबलात्स्थापितोयं धर्मचन्द्रो' लक्ष्मीणो ज्ञानदक्षो विबुधमुनिजनानन्दकारी स्वभा-

---

यः संततं सर्वविदः सपर्यामार्यक्रमाराधनया करोति । स श्रेयसे प्राभृतनामग्रन्थपुष्टात्पितुर्भक्तिविलोपभीरुः ॥ ५ ॥ श्रीमत्त्रिभुवनचन्द्रं निजमतवाराशितायना चन्द्रम् । प्रणमामि कामनामप्रबलमहापर्वतैकशतधारम् ॥ ६ ॥ जगत्समस्तसंसारिजीवाकारणबन्धवे । सिंधवे गुणरत्नानां नमस्त्रि-

---

चौपाई

बालबोध यह कीनी जैसे । सो तुम सुनहु कहूं मैं तैसे ॥
नगर आगरेमें हितकारी । कुमरपाल ज्ञाता अविकारी ॥ ४ ॥
तिन विचार जियमें इहकीनी । जो भाषा इह होइ नवीनी ॥
अल्पबुद्धि भी अरथ वखानैं । अगम अगोचर पद पहिचानैं ॥ ५ ॥
यह विचार मनमें तिन राखी । पांडे हेमराजसों भाखी ॥
आगें राजमल्लनें कीनी । समयसारभाषा रसलीनी ॥ ६ ॥
अब जो प्रवचनकी है भाषा । तौ जिनधर्म वधै वृषसाखा ॥
तातें करहु विलंब न कीजे । परमभावना अंगफल लीजे ॥ ७ ॥

दोहा—अवनीपति वंदहिं चरण, सुयणकमल विहसंत ।
साहजिहांदिनकर उदै, अरिगणतिमिर नसंत ॥ ८ ॥

सोरठा—निज सुबोध अनुसार, ऐसे हित उपदेशसों ।
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगट हु सदा ॥ ९ ॥
हेमराज हितआनि, भविकजीवके हित भणी ।
जिनवर आन प्रमानि, भाषा प्रवचनकी करी ॥ १० ॥

वात् ॥ १८ ॥ पद्मकीर्तिमुनेः शिष्यो गुणरत्नमहोनिधिः । ब्रह्मचारी हरीराजः शी र-
विभूषितः ॥ १९ ॥ इति **प्रशस्तिः ।**

भुवनेन्दुवे ॥ ७ ॥ त्रिभुवनचन्द्रं चन्द्रं नौमि महासंयमोत्तमं शिरसा । यस्योदयेन जगतां स्वान्त-
तमोराशिकृन्तनं कुरुते ॥ ८ ॥ इति **प्रशस्तिः ।**

दोहा—सत्रहसै नव उत्तरें, माघमाससित पाख ।
पंचमि आदितवारको, पूरनकीनी भाख ॥ ११ ॥
षट्सहस्र सततीन है, संख्या ग्रंथप्रमान ।
विदुषविवेकविचारिकरि, सुणि ज्यो पुरुषप्रधान ॥ १२ ॥

इसप्रकार **प्रशस्ति** पूर्ण हुई ।